गीता
दर्शन
भगवान श्री रजनीश

गीता दर्शन

अध्याय ११

(भगवान श्री कृष्ण का विराट स्वरूप दर्शन)

प्रवचन :

भगवान श्री रजनीश

संकलन :

अरविन्द कुमार

जीवन जागृति आंदोलन प्रकाशन, जबलपुर १९७४

प्रकाशक :

सुश्री क्रांति

जीवन जागृति आंदोलन

७९०, राइट-टाउन, जबलपुर

□

□

प्रथम संस्करण : १००० प्रतियां

सितम्बर, १९७४

मूल्य : रुपये १०००/-

□

मुद्रक :

अशोष प्रिन्टर्स

७८१, राइट-टाउन

(नायक नर्सिग होम के सामने)

जबलपुर
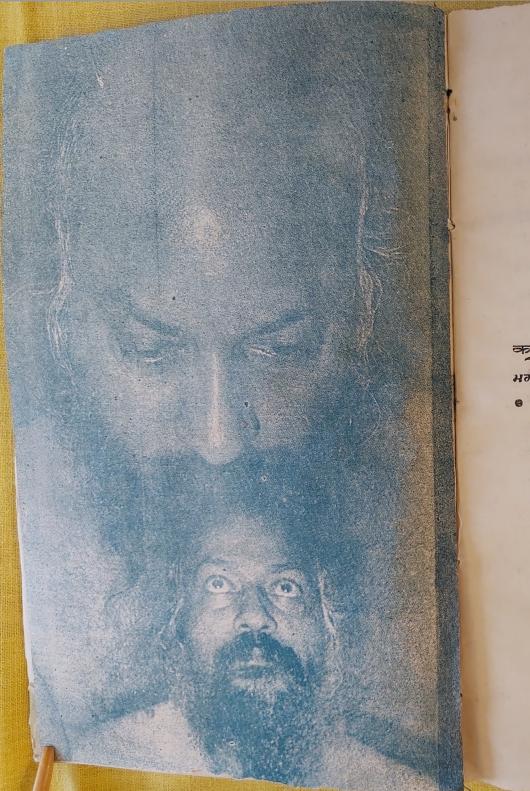
कृष्ण का विराट स्वरूप दर्शन

भगवान रजनीश की वाणी में

●

प्रभु-सत्ता का अनन्त असीम अस्तित्व है। सारा अस्तित्व उसी से है, उसी में है।

भगवान रजनीश की अनन्त आयामी वाणी जब उसके स्वर लेती है तो कभी महावीर का अंतम् दर्शन आता है, कभी लाओत्से का जीवन-दर्शन, तो कभी जीसस क्राइस्ट की या भगवान बुद्ध की कारुणिक जीवन दृष्टि बह आती है... और, प्रस्तुत प्रवचनों में बह आई है उसके ही अनमोल स्वरों से, अस्तित्व के अद्भुत रंगों में भगवान कृष्ण का गीता–अध्याय ११ के अंतर्गत भगवान श्री रजनीश के माध्यम से यह विराट स्वरूप का दर्शन।

●

अनुक्रम

•

★

गीता अध्याय ११ :

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ।।१।।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ।।२।।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ।।३।।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ।।४।।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ।।५।।

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ।।६।।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
ममदेहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ।।७।।

•

अनुग्रह : प्रभु प्रसाद का दर्शन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, क्रास मैदान, बम्बई, संध्या : दिनांक ३ जनवरी, ७३

पहला प्रवचन

क्षुद्र प्रयास से विराट सत्य कैसे मिले ?

एक पहेली से मैं शुरू करता हूं । वो पहेली है कि प्रभु बिना श्रम किए नहीं मिलता है, और साथ ही जब मिलता है, तो उसे लगता है कि यह श्रम का फल नहीं है; प्रभु की अनुकम्पा है । जो उसे पा लेता है, वो जानता है कि जो मैंने किया था उसका कोई भी मूल्य नहीं और जो मैंने पाया है वो सभी मूल्यों से अतीत है । जिसे मिलता है वह समझ पाता है कि यह प्रसाद (ग्रेस) है, अनुग्रह है । लेकिन जिसे नहीं मिला है अगर वो ये समझ ले कि प्रभु-प्रसाद से मिलता है तो कुछ भी नहीं करना तो उसे प्रसाद भी कभी नहीं मिलेगा ।

मनुष्य श्रम करे-श्रम से परमात्मा नहीं मिलता, लेकिन मनुष्य इस योग्य हो पाता है कि प्रसाद की वर्षा उसे मिल पाती है । झील का गड्ढा वर्षा को पैदा करने का कारण नहीं है लेकिन वर्षा हो तो गड्ढे में भर जाती है और झील उपलब्ध होती है । वर्षा पहाड़ पर भी होती है लेकिन पहाड़ पर शिखर रूखे के रूखे रह जाते हैं । वर्षा गड्ढे में भी होती है लेकिन गड्ढा भर जाता है आपूरित हो जाता है । गड्ढा में किसी श्रम से नहीं होती है वर्षा लेकिन गड्ढे का इतना श्रम जरूरी है कि वह गड्ढा बन जाए ।

कोई श्रम करके सत्य को नहीं पा सकता है क्योंकि सत्य इतना विराट है और हमारा श्रम इतना क्षुद्र है कि हम उसे श्रम से न पा सकेंगे। और ख्याल रहे हमारे श्रम से मिलेगा वह हमसे छोटा होगा, हमसे बड़ा नहीं हो सकता। जिसे मेरे हाथ गढ़ लेते हैं वो मेरे हाथों से बड़ा नहीं होगा। और जो मेरा मन समझ लेता है वो भी मेरे मन से बड़ा नहीं हो सकता। जिसे मैं पा लेता हूं वो मुझसे छोटा हो जाता है। इसलिये श्रम से न कभी कोई सत्य को पा सकता है, न कोई परमात्मा को पाता, न कभी कोई मोक्ष को पाता और साथ ही यह भी ख्याल में रखें कि बिना श्रम के भी कभी किसी ने नहीं पाया है। ये पहेली है। श्रम से हम इस योग्य बनते हैं कि हमारा द्वार खुल जाए। खुले द्वार में सूरज प्रवेश कर जाता है। खुला द्वार सूरज को पकड़ कर ला नहीं सकता लेकिन खुला द्वार सूरज आता हो तो बाधा नहीं डालता। मनुष्य का सारा श्रम बाधा को तोड़ने के लिए है। इस बात को ख्याल में लें तो यह सूत्र समझ में आयेगा।

इस प्रकार कृष्ण के विभूति योग पर कहे गये वचन सुनकर अर्जुन बोला मुझ पर अनुग्रह करने के लिए परम गोपनीय अध्यात्म वचन, आपके द्वारा जो कहे गये, उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया। इसका पहला शब्द समझने जैसा है अनुग्रह। अनुग्रह का अर्थ होता है जिसे पाने के लिए हमने कुछ भी नहीं किया। जिसे पाने के लिए हमने कुछ किया ही नहीं सौदा, उसमें अनुकम्पा कुछ भी नहीं है जिसे पाने के लिए हमने कुछ अर्जित की है सम्पदा, वह हमारे श्रम का पुरुस्कार है। उसमें कुछ प्रसाद नहीं है। अर्जुन कहता है आपके अनुग्रह से मुझे जो कहा गया मेरी कोई योग्यता न थी और मेरा कोई श्रम नहीं था, मेरी कोई साधना भी नहीं थी, मैं दावा कर सकूं ऐसी मेरी कोई अर्जित सम्पदा भी नहीं। फिर भी आपके अनुग्रह से मुझे जो कहा गया है उसके लिए मैं अनुग्रह से पूर्ण हूं।

इससे लग सकता है कृष्ण ने अर्जुन के साथ पक्षपात किया है। क्योंकि आपका भी कोई श्रम नहीं है आपकी भी कोई साधना नहीं है, श्री कृष्ण अर्जुन को देने पहुंच गये और आपके द्वार को खोजते-खोजते अभी तक नहीं आ रहे हैं, ऐसा लगेगा कि कुछ पक्षपात मालूम होता है ध्यान रहे जो योग्य है उसे ही यह ख्याल आता है कि मेरी कोई योग्यता नहीं। अयोग्य को सदा ख्याल होता है कि मेरी बड़ी योग्यता है। जो पात्र होता है वही

विनम्र होता है, अपात्र तो बहुत उद्दंड होता है। अपात्र तो मानता है कि मैं योग्य हूं। अभी तक मुझे मिला नहीं इसमें जरूर नियति, भाग्य, परमात्मा का कोई हाथ है, सब भांति मैं योग्य हूं और अगर मुझे नहीं मिला तो अन्याय हो रहा है।

पात्र मानता है कि मैं अपात्र हूं इसलिए नहीं मिला तो दोषी मैं हूं और अगर मिलता है तो प्रभु की अनुकम्पा है, अनुग्रह है। योग्यता का पहला लक्षण है अयोग्यता का बोध। अयोग्यता का पहला लक्षण है योग्यता का दम्भ, योग्यता का अहंकार। इसमें जिन्हें ख्याल है कि वे पात्र हैं, वे ठीक से समझ लें कि उनसे ज्यादा बड़ा अपात्र खोजना मुश्किल है। और जिनको ख्याल है कि उनकी कोई भी पात्रता नहीं है उन्होंने पात्र बनना शुरू कर दिया। अर्जुन पात्र था इसलिए सहज भाव से कह सका कि मेरी कोई पात्रता नहीं, आपका अनुग्रह है। अपात्र तो अनुग्रही भी नहीं हो सकता उल्टे रखे घड़े पर वर्षा भी होती रहे तो घड़ा भर नहीं सकता। उल्टा रखा हुआ घड़ा अपात्र है। इसलिए उलटा घड़ा मैं कह रहा हूं ताकि ख्याल में आ सके कि पात्रता भीतर छुपी है किन्तु उलटी है और घड़ा सीधा हो जाए तो पात्र बन जाए। पात्रता कहीं पाने के लिए नहीं जाना है, हम पात्रता लेकर ही पैदा होते हैं।

ऐसा कोई मनुष्य ही नहीं, ऐसी कोई चेतना ही नहीं है जो प्रभु को पाने की पात्रता लेकर पैदा न होती हो फिर भी परमात्मा हमें मिलता नहीं। उसकी वाणी सुनाई नहीं पड़ती उसके स्वर हमारे हृदय को नहीं छूते, उसका स्पर्श हमें नहीं होता, उसका आलिंगन नहीं मिलता।

हम पात्र हैं लेकिन उलटे रखे हुए और उलटे रहने की सबसे सुलभ जो व्यवस्था है वह दम्भ है, वह अहंकार है। जितना ज्यादा बड़ा हो मन का भाव, उतना ही पात्र उल्टा होता है। अर्जुन ने कहा कि आपका अनुग्रह है, कठिन है क्योंकि अर्जुन के लिए और भी कठिन है।

अगर कृष्ण आपको मिल जाएं तो कृष्ण से आविर्भूत होना आपको कठिन नहीं होगा। लेकिन अर्जुन के कृष्ण हैं मित्र, सखा-साथी उनके कन्धे पर हाथ, गले में हाथ रखके अर्जुन चला है, उठा है—बैठा है गपशप की है। कृष्ण में अनुग्रह को देख लेना मित्र में, जो साथ ही खड़ा हो। और

अर्जुन उंचा बैठा था कृष्ण सारथी बने नीचे बैठे थे। अर्जुन ऊंचा बैठा था उस क्षण में भी अर्जुन अनुग्रह मान पाता है इसके लिये अत्यन्त निरअहंकारी मन चाहिए। इतना विनम्र मन चाहिए कि ऊंचे बैठकर भी अपने को नीचे देख पाता हो। मित्र को भी जो परमात्मा की स्थिति में रख पाता हो। हमें परमात्मा भी मिले तो हम मित्र की स्थिति में रख नहीं सकेंगे! संगी साथी बनाकर खड़ा कर लेंगे। अर्जुन मित्र को परमात्मा की स्थिति में रख पाता है और जो परमात्मा को इतने निकट देख पाता है, वही देख पाता है। दूर आकाश में बैठे हुए परमात्मा को सिर झुकाना बहुत आसान है, पास पड़ौसी में छिपे परमात्मा को सिर झुकाना बहुत मुश्किल है। पति में, पत्नी में, बेटे में, भाई में छिपे परमात्मा को सिर झुकाना बहुत मुश्किल है। स्वभावतः जो जितने निकट हैं, उसके साथ हमारे अहंकार का संघर्ष, प्रतिद्वंदिता उतनी ही बड़ी हो जाती है इसलिए यहूदी कहते हैं कि कभी भी कोई पैगम्बर अपने गांव में नहीं पूजा जाता। नहीं पूजे जाने का कारण है क्योंकि इतने निकट है गांव के लिए पैगम्बर कि ये मानना मुश्किल है कि तुम हम से ऊपर हो, असंभव है। इसलिए गांव में तो पैगम्बर को पत्थर ही पड़ेंगे—पूजा बहुत मुश्किल है। अर्जुन कृष्ण को कह सका तुम्हारा अनुग्रह है, मेरी कोई पात्रता नहीं थी। ये उसकी पात्रता का सबूत है।

परम गोपनीय अध्यात्म

ये एक धार्मिक जगत में प्रवेश करने वाले व्यक्ति की पहली योग्यता है। पहला लक्षण है। मुझ पर अनुग्रह करने के लिए परम गोपनीय अध्यात्म वचन अर्थात उपदेश जो आपके द्वारा कहा गया उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया। दूसरी बात—परम गोपनीय अध्यात्म, अध्यात्म प्रेम से भी ज्यादा गोपनीय है, इसे थोड़ा हम समझें। आप जिसे प्रेम करते हैं, चाहते हैं उसके साथ एकान्त मिल जाए—दूसरी की मौजूदगी खटकती है। दो प्रेमी किसी को भी मौजूद नहीं देखना चाहते। अकेले हो जाना चाहते हैं। ठीक, इसमें अकेले की क्या तलाश है, अकेले में इतना क्या रस है, दूसरे की मौजूदगी क्या बाधा देती है। पहली बात, जिसके साथ हम गहरे प्रेम में हैं, उसमें हम लीन होना चाहते हैं और उसे अपने में लीन कर लेना चाहते हैं। जिसके साथ हम प्रेम में है उसके साथ हम द्वैत को तोड़ देना चाहते हैं अद्वैत हो जाना चाहते हैं। दो न रहें, एक ही रह जाये।

लेकिन अगर तीसरा मौजूद है तो उसके साथ हमारा कोई प्रेम नहीं है। उसकी मौजूदगी अद्वैत को घटित न होने देगी इसलिए प्रेमी एकांत चाहते हैं, प्राइवेसी चाहते हैं—अकेलापन चाहते हैं। और तीसरे की जो मौजूदगी है बाधा बन जाएगी और द्वैत बना रहेगा। कोई मौजूद न हो तो दो व्यक्ति लीन हो सकते हैं एक में। इसलिए, प्रेम गोपनीय है, गुप्त है, सार्वजनिक नहीं है। अध्यात्म और भी गोपनीय है क्योंकि प्रेम में तो शायद दो शरीर ही मिलते हैं अध्यात्म में गुरु और शिष्य की आत्मा भी मिल जाती है और जब तक ये मिलन घटित न हो कि गुरु और शिष्य प्रेमी-प्रेमिका की तरह आत्मा के तल पर एक न हो जायें तब तक अध्यात्म का संचरण, अध्यात्म का दान असंभव है। इसलिए अध्यात्म गोपनीय है। शरीर भी मिलते हैं तो गुप्तता चाहिए, तो फिर जब आत्माएं मिलती हैं तो और भी गुप्तता चाहिए। इसलिए अध्यात्म छिपा छिपाकर दिया गया है, चुपचाप दिया गया है, मौन में दिया गया है। कारण; इतना मौन, इतनी चुप्पी, इतना एकांत न हो तो वो जो भीतर दो का संवाद है, वह असंभव है। अर्जुन कहता है कि इतनी गोपनीय बात को आपने मुझ पर प्रकट किया ये सिवाय अनुग्रह के और क्या हो सकता है! इस प्रगटीकरण में, इस अभिव्यक्ति, इस गोपनीय मिलन में और भी एक बात विचारणीय है कि घटना घटती है, युद्ध के मैदान पर चारों तरफ बड़ा समूह है और साधारण समूह नहीं, युद्ध के रथ युद्ध के लिए तत्पर हैं। उस युद्ध के लिए तत्पर समूह में भी गोपनीयता घट जाती है। ये मिलन, ये कृष्ण का संवाद अर्जुन को सुनाई पड़ जाता है कृष्ण अनुग्रह कर पाते हैं।

एक बात और ख्याल में ले लेनी चाहिए और वो ये कि दो शरीरों को मिलना हो तो भौतिक अर्थों में एकांत चाहिए। दो आत्माओं को मिलना हो तो भीड़ में भी मिल सकती हैं। भौतिक अर्थों में फिर एकांत से कोई अर्थ नहीं है। इस भीड़ में भी दो आत्माओं का मिलन हो सकता है क्योंकि भीड़ तो शरीर के तल पर है। ये बहुत विचार की बात रही, जिन्होंने भी गीता पर अध्ययन किया है उन्हें भी मन में यह विचार उठता हो रहा है, यह प्रश्न जमता ही रहा है कि युद्ध के मैदान पर भीड़ में, युद्ध के लिए तत्पर लोगों के बीच, कृष्ण को भी कहां की जगह मिली गीता का संदेश को कहने की। और ये बहुत सुविचारित मालूम पड़ता है, अध्यात्म समूह के बीच भीड़ में भी एकांत पा सकता है। अध्यात्म बाजार के बीच भी अकेला हो सकता है और

है। क्योंकि युद्ध, बाजार, शरीरों की
अध्यात्म युद्ध के क्षण में भी घट सकता
भीड़ सब बाहर हैं। अगर भीतर तत्परता हो, पात्रता हो और अगर भीतर
ग्रहण करने की क्षमता हो, लीन होने की, विनम्र होने की, डूबने की, चरणों
में गिर जाने की भावना हो तो अध्यात्म कहीं भी घटित हो सकता है : युद्ध में
भी। अध्यात्म की इस बात को कृष्ण ने जिस अनूठे ढंग से गीता में जगत को
जो दिया है वह कोई दूसरा शास्त्र नहीं दे सका। इसलिये गीता इतनी रुचि-
कर हो गई और इतनी मन पर छा गई तो उसका कारण है। उपनिषद् हैं
वनों के एकांत में, शांति में, गुरु और शिष्य के बीच बड़े ध्यान के क्षण में
संवादित हैं। बाइबिल है बहुत एकान्त में चुने हुए शिष्यों से कही गई बातें हैं।
लेकिन गीता घने संसार के बीच दिया गया संदेश है और युद्ध से ज्यादा
घना संसार क्या होगा। कहीं भी अध्यात्म घटित हो सकता है अगर पात्र
सीधा हो, और वो जो गोपनीय है अधिकतम गोपनीय है, जो सबके सामने
नहीं कहा जा सकता—वो भी कहा जा सकता है, अगर पात्र मौन, शांत
स्वीकार करने को तैयार हो। सिर्फ भौतिक अकेलेपन का अर्थ होता है कोई
और मौजूद नहीं। आध्यात्मिक अकेलेपन का अर्थ होता है आप मौजूद नहीं
इसे ठीक से समझ लें। भौतिक भीड़ का अर्थ होता है बहुत लोग मौजूद
हों, आध्यात्मिक एकान्त का अर्थ होता है शिष्य मौजूद न हो, गुरु तो
गैर मोजूदगी का नाम ही है। जिससे हम बात ही न करें—गुरु का तो
अर्थ ही है कि जो गैर मौजूद हो गया, जो उपस्थित नहीं है। जो दिखाई
पड़ता और भीतर शून्य है। जब शिष्य भी गैर मोजूद हो जाए, इतना डूब
जाए कि भूल जाए अपने को कि मैं हूं तो अध्यात्मिक एकान्त घटित होता
है। और इस एकान्त में ही वे गोपनीय सूत्र दिये जा सकते हैं; जो किसी
और तरीके से दिये जाने का कोई भी उपाय नहीं। तो अर्जुन ने कहा कि
जो अत्यन्त गोपनीय है वह भी—अनुग्रह करके तुमने मुझे कहा। उससे मेरा
अज्ञान नष्ट हो गया। इसे ख्याल कर लें।

ज्ञान है : निजी अनुभव

अज्ञान का नष्ट हो जाना यहां ज्ञान का पैदा हो जाना नहीं है। ज्ञान
तो है अनुभव, अज्ञान तो नष्ट हो सकता है गुरु के वचन से भी, लेकिन
नकारात्मक। अर्जुन कह रहा है मेरा अज्ञान नष्ट हो गया। वो यह कह रहा
है कि अब तक जो मान्यताएं थीं वे टूट गईं, अब तक मैं जैसा सोचता था
अब नहीं सोच पाऊंगा। आपने जो कहा उसने मेरे विचार बदल दिए,

रूपांतरित हो गया, मैं बदल गया हूं।
आपने जो मुझे दिया उससे मेरा मन
मेरा अज्ञान टूट गया लेकिन अभी ज्ञान नहीं हो गया। अभी बीमारी तो हट
गई है लेकिन अभी स्वास्थ्य का जन्म नहीं हुआ। अभी नकारात्मक रूप से
बाधाएं मेरी टूट गईं लेकिन अभी (पाजिटिविटी) विधायक रूप से मेरा
आविर्भाव नहीं हुआ। ये काफी कीमती है क्योंकि बहुत से लोग इस तरह के
अज्ञान मिटने को ही ज्ञान समझ लेते हैं। शास्त्र हैं, सदवचन हैं, सदगुरु हैं,
उनके वचनों को लोग इकट्ठा कर लेते हैं। सोचते हैं ज्ञान हो गया, और
सोचते हैं सुन लिया क्योंकि गीता कंठस्थ है, उसके वचन याद हैं, उपनिषद्
ओंठ पर रखे हैं, ज्ञान हो गया। ध्यान रहे अर्जुन कहता है अज्ञान नष्ट हो
गया, अब तक जो मेरी मान्यता थी अज्ञान से भरी हुई, वो टूट गई,
लेकिन अभी ज्ञान नहीं हुआ। क्योंकि ज्ञान तो तभी होता है जब मन अनुग्रह
कर ले। ये कृष्ण ने जो कहा है उस पर भरोसा आ गया। और
कृष्ण जैसे लोग भरोसे के योग्य होते हैं। उनकी मौजूदगी भरोसा पैदा करवा
देती है, उनका खुद का आनन्द, उनका खुद का मौन, उनकी शांति, उनकी
शून्यता छा जाती है, आच्छादित कर लेती है, उनकी आंखें, उनका होना पकड़
लेता है चुम्बक की तरह, खींच लेता है प्राणों को—भरोसा आ जाता है।
लेकिन ये भरोसा ज्ञान नहीं है, ये भरोसा हमारी भ्रान्त धारणाओं को तोड़
देने के लिए जरूरी है लेकिन भ्रान्त धारणाओं का टूट जाना ही सत्य का आ
जाना नहीं है। पंडित ज्ञानी नहीं है, पंडित अज्ञानी नहीं है। पंडित ज्ञानी भी
नहीं है—पंडित अज्ञानी और ज्ञानी के बीच है। अज्ञानी वो है जिसे कुछ भी
पता नहीं, पंडित वो है जिसे सब कुछ पता है। और ज्ञानी वो है जिसके पता
में और जिसके अनुभव में कोई भेद नहीं। जो जानता है—जिसकी जानकारी
है वो उसका अपना निजी अनुभव भी है। वो उधार नहीं जानता—किसी ने
कहा है ऐसा नहीं जानता, खुद ही जानता है। अपने से जानता है। अभी
अर्जुन को जो जानकारी हुई वो कृष्ण के कहने से हुई। अभी कृष्ण ऐसा
कहते हैं; और कृष्ण पर अर्जुन को भरोसा आया इससे अर्जुन कहता है
मेरा अज्ञान टूट गया : लेकिन अभी मैं नहीं जानता हूं अभी तुम कहते हो।
इसमें अगर कृष्ण थोड़ा हट जायें अलग अर्जुन के संदेह वापिस लौट आयेंगे।
इससे अगर कृष्ण खो जायें तो अर्जुन फिर वापिस वहीं पहुंच जाएगा जहां
वो गीता के प्रारम्भ में था, इसमें देर नहीं लगेगी और अगर ईमानदार होगा
तो जल्दी पहुंच जाएगा अगर बेईमान होगा तो थोड़ी देर लगेगी। क्योंकि
फिर वो शब्दों को ही दोहराता रहेगा, घोंटता रहेगा और अपने को समझाता

रहेगा कि मुझे मालूम है। लेकिन अर्जुन ईमानदार है। और इस जगत में सबसे बड़ी ईमानदारी अपने प्रति ईमानदारी है। आप दूसरे को धोखा देते हैं इससे कुछ बहुत बनता बिगड़ता नहीं—अच्छा नहीं है, लेकिन बहुत बनता बिगड़ता नहीं है थोड़ा पैसे का नुकसान पहुंचा देंगे कुछ और करेंगे। लेकिन जो धोखा आप अपने को दे सकते हैं उससे आपका पूरा जीवन मिट्टी हो जाता है—और हम धोखा देते हैं। सबसे बड़ा धोखा जो हम अपने को देते हैं वो ये है कि बिना स्वयं जाने हम मान लें कि हमने जान लिया है।

अगर कोई आप से पूछे कि ईश्वर है तो आप चुप नहीं रह पायेंगे। या तो कहेंगे कि है या कहेंगे नहीं है। ये न कह पायेंगे कि मुझे पता नहीं है। अगर आप ये कह पायें कि मुझे पता नहीं है तो आप ईमानदार आदमी हैं। अगर आप ये कहें कि है और लड़ने झगड़ने को तैयार हो जायें और बिना कुछ अनुभव के—आप बेईमान हैं : अगर आप कहें नहीं है और तर्क करने को तैयार हो जायें बिना किसी अनुभव के—तो आप बेईमान हैं। जिनको हम आस्तिक और नास्तिक कहते हैं—वो बेईमानों की दो शक्लें हैं। ईमानदार आदमी कहेगा मुझे पता नहीं है मैं कैसे कहूं कि है, मैं कैसे कहूं कि नहीं है। कोई कहता है कि है, कोई कहता है कि नहीं है, कभी एक पर भरोसा आ जाता है अगर आदमी बलशाली हो। बुद्ध जैसा आदमी आपके पास खड़ा हो तो भरोसा दिला देगा कि ईश्वर वगैरह कुछ भी नहीं है। वह बुद्ध की वजह है। महावीर जैसा आदमी आपके पास खड़ा हो तो भरोसा दिलवा देगा कि ईश्वर वगैरह सब बकवास है। और कृष्ण जैसा आदमी पास खड़ा हो तो आस्था आ जाएगी कि ईश्वर है और जीसस जैसा आदमी पास खड़ा हो तो आस्था आ जाएगी कि ईश्वर है। लेकिन आपका अपना अनुभव कोई भी नहीं है।

लेकिन कृष्ण के कारण जो झलक आती है वो भी उधार है, बुद्ध के कारण जो झलक आती है वो भी उधार है। उधार झलकों से अज्ञान मिट जाता है—लेकिन ज्ञान अपनी ही झलक से पैदा होता है। इसलिए अर्जुन कहता है कि आपने जो मुझे कहा उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है, क्योंकि हे कमलनेत्र ! मैंने भूतों की उत्पत्ति और पीड़ा आपसे विस्तार पूर्वक सुनी। आपका अविनाशी प्रभाव भी सुना। हे परमेश्वर आप अपने को जैसा कहते हैं वैसे ही हैं ऐसा ही मैंने अनुभव किया। ऐसा ही ठीक मुझे समझ में आया, कि आप जैसा कहते हो वैसा ही है, ऐसी मेरी श्रद्धा बनी।

परन्तु हे पुरुषोत्तम—और ये परन्तु विचारणीय है—नहीं तो बात खतम हो गई। अर्जुन कहता है जैसा आप कहते हो ऐसा ही है—ऐसी मेरी श्रद्धा हो गई—अब बात खतम हो जानी चाहिए थी। जब श्रद्धा आ गई तो अब चुप हो जाओ—गीता समाप्त हो जानी चाहिए। लेकिन परन्तु का क्या अर्थ है। अब यहां बात पूरी हो गई। हम यहां अगर होते तो गीता यहां समाप्त हो गई होती। हम इस जगह रुक जाते आकर, श्रद्धा यहां आ गई, मंदिर में पूजा कर लेते हैं, शास्त्र को सिर झुका लेते हैं, गुरु के चरणों में फूल चढ़ा आये—यहां बात खतम हो गई। हमें सब याद है, सिद्धांतों का पता है, शास्त्र हमारे मन पर है अब और क्या बाकी बचा। अभी कुछ भी नहीं हुआ, अभी नौका किनारे से भी नहीं छूटी। इसलिए अर्जुन कहता है परन्तु हे पुरु-षोत्तम आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, सत्य, बल-वीर्य और आपके रूप को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं। ये तो आपने अपनी आँखों से जो देखा है वो मुझसे कहा, ये मेरे कानों ने सुना है। लेकिन आपकी आंखों से देखा गया है ये अब अपनी ही आंख से देखना चाहता हूं—और जब तक मैं न देख लूं तब तक आप भरोसे योग्य हैं—मैं भरोसा करता हूं—लेकिन जब तक मैं न देख लूं तब तक ज्ञान का जन्म नहीं होगा।

शब्द पर मत रुक जाना, शब्द पर रुकने वाला भटक जाता है। और सारी दुनिया शब्द पर रुक गई है, कोई कुरान के शब्द पर रुका है वो अपने को मुसलमान कहता है—कोई गीता के शब्द पर रुका है वो अपने को हिन्दू कहता है—कोई बाइबिल के शब्द पर रुका है वो अपने को ईसाई कहता है—लेकिन ये शब्दों पर रुके हुए नाम हैं। दुनिया में सब संप्रदाय शब्दों के सम्प्रदाय हैं—धर्म का तो कोई संप्रदाय हो नहीं सकता। धर्म शब्द नहीं—अनुभव है। और अनुभव—हिन्दू—मुसलमान—ईसाई नहीं होता। अनुभव ऐसा है निखालिस—एक होता है—जैसे कि आकाश हो।

आंख द्वारा सत्य-दर्शन : शिष्यत्व की पूर्णता

कृष्ण से अर्जुन ने ठीक बात पूछी। कहा कि आस्था पूरी है जो आप कहते हैं—आप कहते हैं ठीक ही कहते होंगे, और ये कहने को कोई भी गुंजाइश नहीं कि आप गलत कहते हैं। आपने मुझे ठीक-ठीक समझा दिया। जैसा आपने कहा है, वैसा ही है। लेकिन अब मैं अपनी आंख से देखना चाहता हूं और जो शिष्य अपने गुरु से ये न पूछे कि आंख से देखना

चाहता हूं वो शिष्य ही नहीं है। गुरु के शब्द मान कर जो बैठा रहे और उन्हें घोंटता रहे और मर जाय, वो शिष्य नहीं है, और जो गुरु अपने शिष्य को शब्द रटाने में लगा दे, वो गुरु भी नहीं है।

कृष्ण प्रतीक्षा ही कर रहे होंगे कि कब अर्जुन ये पूछे। अब तक तो जो बातचीत थी वो बौद्धिक थी। अब तक अर्जुन ने जो सवाल उठाए थे, वो बुद्धि तक थे, विचारपूर्ण थे—उनका निरसन कृष्ण करते चले गए। जो अर्जुन ने कहा वो गलत है ये बुद्धि और तर्क से कृष्ण समझाते चले गए—निश्चित ही कृष्ण प्रतीक्षा करते रहे होंगे कि अर्जुन पूछे, वो क्षण आए कि वो कहे कि मैं अब आंख से देखना चाहता हूं। आम तौर से गुरु डरेंगे जब आप कहेंगे कि अब मैं आंख से देखना चाहता हूं। तब गुरु कहेंगे कि श्रद्धा रखो, भरोसा रखो, सन्देह मत करो। लेकिन ठीक गुरु ये प्रतीक्षा करेगा कि किसी दिन आप हिम्मत जुटायें और कहें कि अब मैं देखना चाहता हूं। अब शब्दों से नहीं चलेगा, अब विचार काफी नहीं हैं। अब तो प्राण ही उससे एक न हो जायें, मेरा ही साक्षात्कार न हो तब तक अब कोई शांति नहीं है। अर्जुन ने कहा—हे परमेश्वर, हे कमलनेत्र, हे परमात्मा अब मैं आपके विराट को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं। ये प्रश्न अति दुस्साहस का है। इससे बड़ा कोई और दुस्साहस जमीन पर नहीं है—क्योंकि विराट को अगर आंख से देखना हो तो बड़े उपद्रव हैं। क्योंकि हमारी आंख तो सीमा को ही देखने में सक्षम है। हम तो जो भी देखते हैं वो रूप है, आकार है। हमारी आंख ने निराकार तो कभी देखा नहीं, हमारी आंख की क्षमता भी नहीं निराकार को देखने की। हमारी आंख बनी ही है आकृति को देखने के लिए। तो विराट को देखने के लिए ये आंख काम नहीं करेगी। सच तो ये है कि इन आंखों की तरफ से बिलकुल अन्धा हो जाना पड़ेगा, ये आंख खो देनी पड़ेगी। ये आंख बन्द ही कर लेनी पड़ेगी और इन दो आंखों से जो शक्ति बाहर प्रवाहित हो रही है, उस शक्ति को किसी और आयाम में प्रवाहित करना होगा, जहां कि नई आंख उपलब्ध हो सके। जिससे मैं देख रहा हूं उन आंखों के द्वारा। ध्यान रहे हम आंख से नहीं देखते, आंख के द्वारा देखते हैं। आंख के पीछे खड़े हैं हम, आंख हमारी खिड़की है, जिससे हम देखते हैं। इस खिड़की से तो विराट को देखा नहीं जा सकता, क्योंकि खिड़की भी विराट पर ढांचा दिखा देगी। इस खिड़की के कारण विराट का आकार बन जाता है, आप अपनी खिड़की से आकाश को देखते हैं,

आकाश भी लगता है कि खिड़की के ही आकार का है। उतना ही दिखाई पड़ता है जितना खिड़की का आकार है। इन आंखों से तो विराट देखा नहीं जा सकता। इसलिए बड़ी हिम्मत की जरूरत है, अन्धा हो जाने की। इन आंखों से तो सारी शक्ति को खींच और उस दिशा में शक्ति को प्रवाहित करना पड़े जहां कोई खिड़की नहीं है—खुला आकाश है। तब विराट देखा जा सकता है। उस घटना को मैं तीसरा नेत्र (थर्ड आई) या दिव्य चक्षु कोई भी नाम दिया जा सकता है। वो तीसरी आंख खुल जाए—दिव्य चक्षु, उसके बिना परमात्मा के प्रत्यक्ष रूप को नहीं देखा जा सकता। तब जो भी हम देखते हैं वो परोक्ष है। जो भी हम देखते हैं—वो अनेक-अनेक पर्दों के पीछे से देखते हैं। उसे सीधा नहीं देखा जा सकता, हमारे पास जो उपकरण हैं, वे भी उसे परोक्ष करते हैं। इन उपकरणों को छोड़कर, इन्द्रियों को छोड़कर, आंखों को छोड़कर किसी और दिशा से भी देखना हो सकता है—तो पहला तो दुस्साहस अन्धा होने का। क्योंकि इन आंखों से देखना हो तो तीसरे नेत्र पर दृष्टि नहीं पहुंचती।

विराट को देखना अन्तिम खतरा

दूसरा दुस्साहस विराट को देखना बड़ा खतरनाक है। जैसे कि कोई गहरे में—गड्ढे में झांके तो घबड़ा जाए—हाथ-पैर कंपने लगें—सुध भूल जाए। कभी किसी पहाड़ की चोटी पर किनारे—बहुत किनारे बैठकर गड्ढे में झांक कर देखा है—तो जो भय समा जाए—मृत्यु दिखाई पड़ने लगे उस गड्ढ में। लेकिन वो गड्ढ तो कुछ भी नहीं है। परमात्मा तो अनंत गड्ढा है। विराट शून्य है—जहां सब आकार खो जाते हैं—जहां फिर कोई कल और सीमा नहीं है। जहां पर दृष्टि चलेगी तो फिर रुकेगी नहीं क्योंकि कोई जगह न आएगी कि रुक जाए। वहां आपको घबड़ाहट पकड़ेगी और एक संताप पकड़ेगा और लगेगा कि मैं मरा, मिटा, मैं गया। विराट के साथ दोस्ती बनाने का मतलब ही है कि खुद को मिटाना है। तो पहला काम तो है अन्धा होना पड़े, तब वो आंख खुले। दूसरा काम मरने की तैयारी हो तब उसका स्पर्श हो।

इसलिए कीर्कगार्ड ने, ईसाई रहस्यवादी संत ने कहा है कि, परमात्मा को खोजना, सबसे बड़ी खतरे की खोज है। सबसे बड़ा जुआ है। जीवन को दांव पर लगाने का उपद्रव है। यह ऐसा ही है जैसे झील सागर को खोजने

जाए—तो मिटने को जा रही है, जहां सागर को पाएगी—मिटेगी; फिर लौटना भी मुश्किल हो जाएगा। सीमा असीम को खोजती है, क्षुद्र विराट को खोजता हो, आकार निराकार को खोजता हो तो मृत्यु की खोज है। इसलिए बुद्ध ने ईश्वर नाम ही उसे नहीं दिया। बुद्ध ने कहा : वो है महा-शून्य। ईश्वर नाम मत दो। क्योंकि ईश्वर नाम देने से हमारे मन में आकृति बन जाती है। इससे बुद्ध ने कहा : ईश्वर की बात ही मत करो—वो है महाशून्य। इसलिए बुद्ध से जब लोगों ने पूछा कि क्या वो परम जीवन है, तो बुद्ध ने कहा कि जीवन की बात मत करो, वो है परम मोक्ष, वो है निर्वाण, सबका मिट जाना। बुद्ध के पास से भी लोग भाग खड़े होते। हमारे इस बड़े आध्यात्मिक मुल्क में भी बुद्ध के पैर नहीं जम सके। इसका कारण एक ही था कि बुद्ध के पास भी जाना एक खतरा था। बुद्ध के पास भी वो खाई थी। बुद्ध के पास जाने का मतलब था—परम शून्य में जाना। बुद्ध में झांकना, बुद्ध से दोस्ती बनाना एक परम शून्य के साथ दोस्ती बनाना था। बुद्ध आकृति की बात ही न करते थे, वे कहते मिटना—समाप्त होना। सागर में कूदने की बात ही न करो, वे कहते बूंद मिटने की तैयारी रखे तो सागर में ही है। तो कृष्ण से पूछा जा रहा है : एक परम खतरनाक सवाल अर्जुन के द्वारा कि मैं तुझे अपनी ही आंखों से देखना चाहता हूं—प्रत्यक्ष।

ये खतरनाक सवाल है, इसलिए अर्जुन एक शर्त भी रख देता है। वो कहता है—हे महाप्रभो ! मेरे द्वारा वह आपका रूप देखा जाना शक्य है ऐसा यदि मानते हैं, तो हे योगेश्वर ! आप अपने अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइए।

भय अर्जुन को पकड़ा होगा। वो जो कह रहा है, खतरनाक है। वो जो देखना चाहता है, वो मनुष्य की आखिरी आकांक्षा है। वो असंभव चाह है। और मनुष्य, पूरा मनुष्य उसी दिन हो पाता है, जिस दिन वो असंभव चाह उसे पकड़ ले, तब तक हम कीड़े-मकोड़े हैं। हमारी चाह में और जानवरों की चाह में कोई अन्तर नहीं है। हम भी धन इकट्ठा करते हैं, जानवर भी परिग्रह करते हैं—थोड़ा करते हैं हमसे। इसका मतलब है कि वो हमसे थोड़े छोटे जानवर हैं, हम थोड़ा ज्यादा करते हैं—वो एक मौसम का करते हैं तो हम पूरी जिंदगी का करते हैं—तो हमारा जानवरपन थोड़ा विस्तीर्ण है। वे भी काम-वासना की तलाश कर रहे हैं—स्त्री, पुरुष को खोज रही है, पुरुष, स्त्री को खोज रहा

है। हम भी वही कर रहे हैं। तो पशु में और हममें फर्क क्या है, हमारी भी वासना वही है जो पशु की है। लेकिन एक वासना परमात्मा की वासना है जो मनुष्य की है। कोई पशु विराट को नहीं खोज रहा है। और जब तक आप विराट को नहीं खोज रहे हैं, तब तक जानवर की, पशु की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर रहे हैं।

मनुष्य विराट की खोज है, असंभव की चाह है। सभी पशु अपने को बचाने की कोशिश में लगे हैं, कोई भी पशु मरना नहीं चाहता। कोई पशु मिटना नहीं चहता, सिर्फ मनुष्य में कोई मनुष्य ऐसा होता है जो अपने को दांव पर लगाता है, अपने को मिटाता है ताकि परम को जान सके। अकेला मनुष्य है जो अपने जीवन को भी दांव पर लगाए। जीवन को दांव पर लगाने का साहस—असंभव की चाह—विराट को आंखों से देखने की वासना, ये अभीप्सा, अर्जुन को लगा होगा पता नहीं मेरी योग्यता भी है या नहीं, ये संभव भी है या नहीं। मैं अभी उस जगह आ गया हूं या नहीं—जहां ऐसा सवाल पूछ सकूं। ये सवाल कहीं मैंने जरूरत से ज्यादा तो नहीं पूछ लिया। ये सवाल कहीं मेरी सीमा का अतिक्रमण तो नहीं कर जाता। कहीं ऐसा तो नहीं है कि कृष्ण अगर इसे पूरा करें, तो मैं मुसीबत में पड़ जाऊं। इसलिये उसने कहा कि वह आपका रूप देखा जाना शक्य हो, संभव हो, योग्यता हो मेरी, पात्रता हो मेरी, ऐसा मुझे आप मानते हों क्योंकि यहां मेरी मान्यता क्या काम करेगी। जिसे हमने जाना नहीं, उसके संबंध में पात्र हूं—यह भी मैं कैसे मान सकता हूं। बिना किए पात्रता का भी तो कोई पता नहीं चलता। जो हमने किया भी नहीं, वह मैं कर सकूंगा या नहीं कर सकूंगा, उसे जानने का उपाय—मापदंड भी तो कोई नहीं। यह सिर्फ अर्जुन पूछता है—लेकिन उत्तर मिले भी, इसका कोई आग्रह नहीं करता। और जो शिष्य इसका आग्रह करता है कि उत्तर मिलना ही चाहिए, उसे पता ही नहीं है कि वो बचकानी बात कर रहा है।

प्रश्न पूछा जा सकता है लेकिन उत्तर गुरु पर ही छोड़ देना होगा। पता नहीं अभी समय आया या नहीं। अभी फल पका या नहीं। अभी घड़ी पकी या नहीं। अभी वो जगह आई या नहीं जहां तीसरी आंख खुल सके। और अगर खुल भी सके तो मैं झेल भी सकूंगा—उस विराट को या नहीं।

विराट को देखना, उसे झेलना, उसे आत्म सात करना—आपके हाथ में नहीं। ये हो सकेगा मुझसे या नहीं—ध्यान रखना अर्जुन ने बड़ी समझ की

बात कही है कि आप ऐसा मानते हैं तो ही मुझे प्रत्यक्ष करायें—अन्यथा मैं रुक सकता हूं। जल्दी नहीं करूंगा, धैर्य रख सकता हूं—प्रतीक्षा करूंगा, और जब समझें, कई बार ऐसा हुआ है कि शिष्यों को वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी, इसलिए नहीं कि गुरु को उत्तर पता नहीं था, इसलिए भी नहीं कि गुरु कुछ मजा ले रहा था. कि काफी समय व्यतीत हो जाए और आप उसकी सेवा स्तुति करते रहें। सिर्फ इसलिए कि शिष्य जब तक इसके योग्य न हो जाए कि झांक सके अनंत गड्ढ में—विस्तार भूमि में झांक सके—नहीं तो होगा क्या—अगर अर्जुन थोड़ा भी कच्चा हो तो पागल होकर वापिस लौटेगा—विक्षिप्त होकर। अनेक साधक विक्षिप्त हो जाते हैं, जल्दबाजी के कारण—पागल हो जाते हैं। और साधारण पागल का तो इलाज हो जा सकता है, साधक अगर पागल हो जाए तो मनोचिकित्सक के पास इलाज का कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि उसकी बीमारी शरीर की बीमारी नहीं है, उसकी बीमारी मन की बीमारी नहीं है। उसकी बीमारी मन के जो अतीत है, उसके सम्पर्क से पैदा हुई है। उसके इलाज का कोई उपाय नहीं है।

आपने उन फकीरों के संबंध में सुना होगा, जिनको हम मस्त कहते हैं। सूफी जिनको मस्त कहते हैं। मस्त का मतलब इतना है कि अभी कुछ कच्चा है आदमी और कूद गया। तो देख तो लिया उसने लेकिन सब अस्त-व्यस्त हो गया। उस अराजक में झांककर वह भी अराजक हो गया। सब अस्त-व्यस्त हो गया, वापिस लौटना मुश्किल हो गया। अगर वो वापिस भी लौट आए तो जो उसने देखा है वह उसे भूल नहीं सकता। जो उसने जाना है, वो उसका पीछा करेगा। जो उसने अनुभव कर लिया है, वो उसके रोयें-रोयें में समा गया, अब उससे छुटकारा नहीं है। और अब वो उसे बेचैन करेगा, वो उसे जीने नहीं देगा, वो मुश्किल में डाल देगा। विक्षिप्तता घटित होती है अगर साधक जल्दी करे। और सभी साधक जल्दबाजी करने की कोशिश करते हैं। क्योंकि जो भी उसकी तलाश में है, प्यासा है, चाहता है जल्दी पानी मिल जाए। लेकिन जल्दी मिला हुआ पानी हो सकता है जहर साबित हो। जल्दी जहर है।

हो सकता है अभी प्यास ही न थी इतनी और पानी का सागर ऊपर टूट पड़े तो भी मुसीबत हो जाए। फिर हमारी आदत सागर के पानी पीने की नहीं है। सागर का पानी मिल भी जाये तो हम प्यासे मर जायेंगे। हम तो

पानी—छोटे-छोटे कुयें-गड्ढे खोदकर पीने की हमारी आदत है। वहीं हमारा तालमेल भी है। असल में विराट का संपर्क अस्त-व्यस्त कर जाता है। नीत्से को ऐसा हुआ। जर्मन विचारक नीत्से उसी तल की चेतना के थे जिसमें बुद्ध-महावीर थे, लेकिन विक्षिप्त हो गया वो आदमी। और विक्षिप्त होने का एक ही कारण था कि इस आदमी ने अति आग्रह किया है अनंत में उतर जाने का। सब सीमाओं को तोड़कर, विचार की, शब्द की, शास्त्र की, सिद्धांत की, समाज की—सब सीमाओं को तोड़कर नीत्से ने हिम्मत जुटाई अनंत में छलांग लगाने की बिना गुरु के। कभी-कभी बुद्ध जैसा व्यक्ति भी बिना गुरु के वापिस लौट आया है, लेकिन शायद पीछे अनंत जन्मों की साधना है, नीत्से ऐसा लगता है कि बिल्कुल अपरिपक्व—विराट के सामने, आमने-सामने खड़ा हो गया। नीत्से ने कहा है जैसे समय से हजारों मील ऊपर मैं खड़ा हूं। समय से हजारों मील ऊपर—कोई मतलब नहीं होता इसका। क्योंकि समय और मील का क्या संबंध? लेकिन मतलब एक है कि समय के बाहर खड़ा हूं, हजारों मील बाहर खड़ा हूं—और देख रहा हूं विराट अराजकता को। उसके बाद नीत्से फिर कभी स्वस्थ नहीं हो सका। उसके बाद जो भी उसने लिखा है—वे सब हीरे हैं—ऐसे हीरे मुश्किल से मिलते हैं—लेकिन सब हीरे विक्षिप्त मालूम पड़ते हैं, जैसे सब हीरे जहर में बुझाए गए हों। उसकी वाणी में झलक बुद्ध की है और साथ में पागलपन भी। कहीं-कहीं आकाश झांकता है विराट का और सब तरफ पागलपन दिखाई पड़ता है। क्या हुआ इसे? इसने कुछ देखा जरूर है—लेकिन शायद अभी उचित न था देखना, समय के पहले देख लिया। नीत्से पागल ही मरा।

अर्जुन डरा होगा, जो मैं पूछता हूं। छोड़ दिया कृष्ण पर ही। यदि शक्य हो, यदि आप समझें कि मेरा देखा जाना शक्य है, तो अपने अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन करायें, अब मुझे कहें मत कुछ। अब मुझे दिखाइए। अब मैं स्वाद लेना चाहता हूं। सुनना नहीं चाहता अब मैं हो जाना चाहता हूं। अनुभव लेना चाहता हूं कि मैं भी वही जान सकूं. जो आप जानते हैं। वही जान सकूं, जो आप हैं।

इस प्रकार अर्जुन के प्रार्थना करने पर कृष्ण ने कहा, हे पार्थ! मेरे सैकड़ों तथा हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा आकृति वाले अलौकिक रूपों को देख।

अनंत धैर्य सत्य की कसौटी

अर्जुन बिल्कुल तैयार था और उसके रुकने की तैयारी धर्म का लक्षण है। अधैर्य रुग्ण चित्त का लक्षण है। वो कहता है मैं रुक सकता हूं, प्रतीक्षा कर सकता हूं जब समझें योग्य हूं तब तक राह देख सकता हूं, वो उसी क्षण योग्य हो गया। इतना धैर्य योग्यता है—जो कहता है अभी दिखा दें, अभी हो जाए, जल्दी हो जाए। मेरे पास लोग आते हैं वो कहते हैं कि ध्यान कितने दिन करें कि परमात्मा का अनुभव हो जाये। कितने दिन, कितने जन्म पूछें तो संगत मालूम पड़ता है—वे पूछते हैं कितने दिन! मैं उनसे पूछता हूं—चौबीस घंटे करना है? कहते हैं नहीं! आधा घंटा, पन्द्रह मिनिट वक्त निकाल सकते हैं। मैं कहता हूं पन्द्रह मिनिट को मौन हो जाइए, वे कहते हैं किसी एकाध क्षण को पन्द्रह मिनिट में मौन हो जाए तो हो जाए, पक्का नहीं है, तब कितने जन्म लगेंगे। और अगर मैं उनसे कह दूं—एक साल, दो साल, तो ऐसा लगता है ये उनके बस के बाहर की बात है। हो सकता है कोई उनको कह दे कि १०-१५ दिन में हो जाएगा, तो उनको भरोसा आता है। इतना अधीर चित्त हो, तो हम वही चीजें पा सकते हैं जो १०-१५ दिन में मिलती हैं। फिर वे चीजें नहीं पा सकते जो जन्मों-जन्मों में मिलती हैं। फिर मौसमी पौधे लगाने चाहिए, जो लगाए नहीं कि दो चार दिन में फूल देना शुरू कर दें। लेकिन बस मौसम में ही रौनक रहती है, फिर हमें उन वृक्षों की आशा छोड़ देनी चाहिए जो सदियों तक लगते हैं। उनकी हमें आशा छोड़ देनी चाहिए। क्योंकि इतना अधैर्य हो तो जड़ें गहरी नहीं जा सकतीं। और जड़ें जितनी गहरी जायें, वृक्ष उतना ऊपर जाता है। जितना होता है वृक्ष ऊपर उतना ही जड़ों में होता है नीचे—क्योंकि जो मौसमी पौधा है, उसकी कोई जड़ तो होती नहीं। जितने ऊपर होता है, उतनी देर टिकता है। इसलिए बहुत लोग ऐसा ही सोचते हैं—जैसा मौसमी पौधा होता है, दो-चार दिन टिकता है, फिर खो जाता है। दो-चार दिन कहते हैं—ध्यान से बड़ी शांति मिल गई, फिर दो-चार दिन के बाद उनका पता नहीं चलता। बड़ी शांति मिल रही है! वो मौसमी फूल था, उसकी कोई जड़ नहीं थी। अधैर्य की कोई जड़ें नहीं हैं, धैर्य चाहिए। और अर्जुन ने जो यह कहा कि अगर शक्य हो—मुझे कुछ पता नहीं, और मुझे पता हो भी नहीं सकता। जिस अनन्त में मैं झांका नहीं हूं, उसमें झांक सकूंगा, ये मैं कैसे कहूं। आप ही तय कर लें—जो शिष्य

छोड़ता है गुरु पर इतनी हिम्मत से, वो समर्पण है। वो इसी क्षण ही तैयार हो गया, इसलिए कृष्ण ने अर्जुन की योग्यता की बात ही नहीं की—तत्क्षण कहा कि ठीक है तो तू मेरे अलौकिक रूपों को देख।

और हे भरतवंशी अर्जुन! मेरे में आदित्यों को अर्थात् अदिति के द्वादश पुत्रों को और आठ वसुओं को, एकादश रुद्रों को तथा दोनों अश्विनी कुमारों को और उनचास मरुद्गणों को देख तथा और भी बहुत से पहिले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपों को देख। और हे अर्जुन! अब इस मेरे शरीर में एक जगह स्थित हुए चराचर सहित संपूर्ण जगत को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहता है, सो देख।

इसमें कुछ बातें समझने जैसी हैं: पहली तो बात कि कृष्ण ने योग्यता की बात ही न की, कृष्ण ने तो शक्यता की बात ही न की। कृष्ण ने कोई सवाल नहीं उठाया—इस सम्बन्ध में, कि तू पात्र होगा या नहीं—घड़ी आ गई या नहीं। कृष्ण ने कहा देख। यही अर्जुन अगर गीता में थोड़ी देर पहले पूछता, तो कृष्ण दिखाने को सरलता से राजी नहीं हो सकते थे। अर्जुन ने क्या अर्जित कर लिया है इस बीच—उस पर भी ख्याल कर लें, तो वो आपको भी सहयोगी हो जाए। तो जिस दिन आप उतना अर्जित कर लें, उस दिन आपको भी परमात्मा क्षण भर नहीं रुकता, उसी क्षण दिखा देता है। और ऐसा मत सोचिए कि अर्जुन के पास तो कृष्ण थे, आपके पास तो कोई भी नहीं है। हर अर्जुन के पास कृष्ण है और जब आप अर्जुन की श्रेणी में आ जाते हैं, तब आप पायेंगे कि कृष्ण आ जाते हैं। आपको जो भी चला रहा है, वो कृष्ण ही है। और न कभी आपने उससे पूछा है—न कभी उसकी तरफ ध्यान दिया है न कभी उसकी सुनी है। अगर हम आदमी को एक रथ समझ लें, तो आपका मन अर्जुन है, और आपके भीतर जो साक्षी चैतन्य है—वो कृष्ण है। आपके भीतर जो मन को भी देखने वाला, वो जो विटनेस, वो जो मन को भी जानता है—उसका दृष्टा है—वो कृष्ण है। लेकिन आपने अर्थात मन ने कभी उस तरफ देखा नहीं। और अगर वहां से कोई आवाज भी आई तो सुना नहीं। जिस दिन भी आप तैयारी पूरी कर लेंगे कृष्ण को आप अपने निकट पायेंगे—सदा-सदा। इसलिए उनकी फिकर छोड़ें। वो कृष्ण की चिन्ता है—वो आपकी चिन्ता नहीं। आपमें क्या हो जाए कि आप कहें कि परमात्मा मुझे दिखा, और परमात्मा कहे कि देख और बीच में क्षण भर का भी अंतराल न हो।

प्रश्नों के पार की यात्रा

अर्जुन ने इस बीच क्या कमाया, गंवाने से शुरू करें, क्योंकि इस अध्यात्म के जगत में कमाई गंवाने से शुरू होती है। अर्जुन ने अपने संदेह गंवाये हैं अब उसका कोई संदेह नहीं है। अब वो कहता है आप जो कहते हैं ऐसा ही है। ये मेरे लिए श्रद्धा बन गई। अब तक वो पूछ रहा था, संदेह कर रहा था, सवाल उठा रहा था। वो कहता था कि अगर ऐसा करूंगा तो ऐसा होगा, अगर युद्ध में जाऊंगा तो इतने लोग मरेंगे, और मर जायेंगे तो पाप लगेगा। इस द्वंद में अर्जुन पड़ा है—सोचता है क्या करूं, क्या न करूं, सब छोड़ दूं, विरक्त हो जाऊं—और कृष्ण जो भी कहते थे—उस पर दस नए सवाल उठाता था। अब उसके कोई सवाल न रहे, जिस दिन आपके भीतर कोई सवाल न रहे, आप समझना कि आपने कुछ कमाया—एक लिहाज से तो गंवाया क्योंकि हम समझते हैं कि सवाल ही हमारी सम्पत्ति है। मेरे पास लोग आते हैं—एक सवाल पूछते हैं—मैं जवाब भी नहीं दे पाया कि दूसरा सवाल पूछते हैं। मैं जवाब दे रहा हूं, इसकी उन्हें फिकर नहीं है, उन्हें पूछने की ही फिकर है। मैं पूछता हूं कि क्या जवाब दिया तो कहते हैं कि कुछ याद नहीं आता। उन्हें सवाल पूछना है, जैसे सवाल पूछना ही उनकी कुल जिन्दगी है। और अगर मैं उन्हें जवाब दूं तो उस जवाब में से फिर दस सवाल खोज कर वो कल आ जाते हैं। जवाब का केवल एक ही उपयोग करते हैं—नया सवाल बनाने के लिए। बाकी उनकी कोई उपयोगिता नहीं है। जैसे उन्होंने यही काम चुन रखा है। लेकिन क्या होगा उन सवालों से? और लाख सवाल भी आप पूछ सकते हों तो उन लाख सवाल से एक जवाब भी तो बनता नहीं। लाख सवाल बनते हैं—एक जवाब आता नहीं। और एक जवाब आपके पास आ जाए तो लाख सवाल तत्क्षण विलीन हो जाते हैं—हवा में खो जाते हैं। इसलिए जो व्यक्ति उत्तर की तलाश में है उसे पहले तो अपने सवाल खोने की तैयारी दिखानी चाहिए। यह जरा कठिन लगेगा—क्योंकि हम कहेंगे कि ये बड़ी उल्टी बात आप कह रहे हैं; उन्हीं का तो हमें उत्तर चाहिए। जिनको आप छोड़ने को कह रहे हैं, अगर उनको छोड़ देंगे तो उत्तर किस बात का।

बुद्ध के पास कोई जाए—तो वे यही कहते, कि तेरे सवालों का जवाब हम दे देंगे, कुछ दिन तू पहले सवालों के छोड़ने की फिकर कर। और जिस दिन तू कहे कि अब मेरे भीतर कोई सवाल नहीं है—उसी दिन

तेरा जवाब दे देंगे। तो एक युवक मौलंकपुत्त बुद्ध के पास आया, उसने पूछा अभी क्या तकलीफ है आपको उत्तर देने में। बुद्ध ने कहा : तू सवालों से इतना भरा है कि जवाब सुनेगा कौन? और सवाल तुझे इस तरह घेरे हुए हैं कि मेरा जवाब भीतर सुनेगा कौन—अगर मेरा जवाब भीतर जाएगा तो तेरे सवाल मेरे जवाब को तोड़कर हजार सवाल खड़े कर लेंगे—और कुछ भी नहीं होगा। हमारे चारों तरफ सवालों की एक दुनिया है। उसमें रंच भर भी जगह नहीं है भीतर, कुछ प्रवेश हो जाए। तो जो भी जवाब मिलता है, हमारे सवाल उस पर हमला कर देते हैं, उसे तोड़कर दस सवाल बना देते हैं—वापिस लौटा देते हैं कि अब इनको पूछकर आओ। और भीतर हमारे कोई जवाब नहीं पहुंचता। हम बिना उत्तर के मर जाते हैं क्योंकि हम सवालों से भरे हुए जीते हैं।

अर्जुन अब ऐसी जगह पहुंच गया है, जहां उसके पास कोई सवाल नहीं है और वह यह कहने को तैयार हो गया है कि तुम जो कहते हो वो सब ऐसा ही है और अब उसमें मुझे कुछ पूछना नहीं है। और जब पूछना न हो तभी देखने की क्षमता पैदा होती है। जो पूछना चाहता है वो अभी देखना नहीं चाहता, सुनना चाहता है। फर्क समझ लें। जो पूछता है वो सुनना चाहता है कि कुछ कहो। प्रश्न का मतलब है कि कुछ कहो, कुछ सुनाओ, लेकिन सत्य कान के रास्ते से कभी भी गया नहीं है। अब तक तो नहीं गया है, और अभी भी कोई उपाय नहीं दिखता कि सत्य कान के रास्ते से चला जाए। सत्य जब भी गया है आंख के रास्ते से गया है, इसलिए सत्य के जानने वाले को हम कहते हैं दृष्टा। श्रोता नहीं—दृष्टा।

इसलिए जिन्होंने जान लिया है, उनके ज्ञान को हम कहते हैं दर्शन—श्रवण नहीं। देखा। इसलिए हम तीसरी आंख की खोज करते हैं—तीसरे कान की नहीं। कोई तीसरा कान है ही नहीं। पूछते हैं आप, जवाब तो आप चाहते हैं कि आपके कान में कुछ डाला जाय। सत्य इस रास्ते नहीं आता, पर ध्यान रहे कान का अनुभव सदा ही उधार रहता है। सदा ही उधार! आंख का अनुभव ही अपना हो सकता है।

जब तक सवाल हैं तब तक आप उन लोगों की तलाश कर रहे हैं, जो आपके कानों को कचरे से भरते रहें। जिस दिन आपके पास कोई सवाल नहीं, उस दिन आप ऐसे आदमी की खोज करेंगे जो आपको दिखा दे।

तो अर्जुन का यह कहना कि जो आप कहते हैं, ऐसा ही है—खबर देता है, उसके सवाल गिर गए। दूसरी बात, जिंदगी में एक तो हमारे रोजमर्रा की उलझनें हैं, अर्जुन जहां से यात्रा शुरू किया, वो रोजमर्रा की उलझनें हैं। युद्ध का सवाल था—क्षत्री के लिए रोजमर्रा की उलझन है, मारना-नहीं मारना, नैतिक-अनैतिक, क्या करूं, क्या न करूं। क्या उचित है, क्या करना योग्य है—वो उसकी चिंतना है। सवाल तो कूद रहा था जिंदगी से, जिंदगी की सामान्य उलझन थी, हम सबको भी ये उलझन है कि ये करें कि न करें, इसका क्या फल होगा—पुण्य होगा—पाप होगा, न करें तो अच्छा है, कि करें तो अच्छा है। अंतिम परिणाम जन्मों-जन्मों में क्या होंगे, हम सबकी भी चिन्ता यही है, मांसाहार करें या न करें—पाप होगा कि पुण्य होगा ! धन इकट्ठा करें कि न करें, क्योंकि कहीं कोई गरीब हो जाए, तो हम पुण्य कर रहे हैं कि पाप कर रहे हैं; क्या करें—क्या उचित, क्या अनुचित—यही उसकी चिंतना है। इसी से यात्रा शुरू हुई, अभी तक वह यही सोचता रहा था लेकिन अचानक इस बात को कहने के बाद कि अब जो आप कहते हैं वैसा ही है, ऐसी श्रद्धा का मुझमें जन्म हुआ, एक दूसरा ही सवाल उठा रहा है जो जीवन की उलझन का नहीं, जीवन के पार है। वो कह रहा है कि मैं विराट को देखना चाहता हूं—वो आयाम (डायमेंशन) अलग है। जब तक आप उन सवालों को पूछ रहे हैं जिसका सम्बन्ध इस जीवन के चारों तरफ के विस्तार से है, तब तक आप दर्शन की यात्रा नहीं कर सकते। जिस दिन आप इस उलझन के थोड़ा पार उठते हैं और परम जिज्ञासा करते हैं कि जीवन का स्वरूप क्या है, उस दिन ही दर्शन की बात सम्भव हो सकती है।

लोग आते हैं मेरे पास, कहते हैं--मन में बड़ी अशांति रहती है। पूछो क्या कारण है अशांति का वो कहते हैं नौकरी नहीं है, किसी को बेटा नहीं होता है, किसी का धन्धा ठीक नहीं चलता—मन में बड़ी अशांति रहती है। उनके जितने भी कारण हैं अशांति के, उनमें एक भी कारण आध्यात्मिक नहीं है। नौकरी नहीं मिलती है—इसलिए अशांति है, आते हैं कि शायद ध्यान से शांति मिल जाए। अगर ध्यान से नौकरी मिलती होती तो शांति मिल सकती थी, ध्यान से नौकरी मिलेगी नहीं। अगर ध्यान से बच्चा पैदा हो सकता तो शायद शांति मिल जाती, अगर बच्चों के पैदा होने की वजह से शांति मिलती तो भी ठीक क्योंकि जिनको हैं--इनको बच्चों की वजह से

अशांति है। लोग मेरे पास आते हैं वो कहते हैं, कब इस नौकरी से छुटकारा होगा—इसकी वजह से अशांति है—रिटायर हो जाएं—विश्राम मिल जाए तो थोड़ा शांति से ध्यान करें। जो बेकार हैं वे कहते हैं नौकरी कैसे मिले ! जो नौकरी में हैं वे चाहते हैं बेकार कब हो जायें, तो थोड़ी शांति मिले।

लेकिन इनकी कोई भी जिज्ञासा आध्यात्मिक नहीं है। इनका प्रश्न जिन्दगी के साथ काम से उलझा हुआ है, इस रोजमर्रा के काम से सत्य के दर्शन का कोई भी संबंध नहीं है। ये जो पूछ रहे हैं, यह धार्मिक जिज्ञासा ही नहीं है। अब तक अर्जुन जो पूछ रहा था वो नैतिक जिज्ञासा थी, धार्मिक नहीं। अब जो वो जिज्ञासा कर रहा है वो धार्मिक है। अर्जुन भूल गया कि वो युद्ध में खड़ा है, इसको ख्याल में रखें। इस घड़ी आकर अर्जुन भूल पाया कि युद्ध में खड़ा है, इस घड़ी आकर वो भूल पाया कि फौजें सामने खड़ी हैं और मैं उनको मारने को आया हूं। इस घड़ी युद्ध विलीन हो गया, ये जो चारों तरफ कतार में बड़े-बड़े योद्धा खड़े थे, खो गए—जैसे स्वप्न में चले गए हों। वे नहीं हैं अब, अब सिर्फ दो ही रह गये इस बड़ी भीड़ में, अर्जुन और कृष्ण—आमने-सामने खड़े हैं, भीड़ तिरोहित हो गई। ऐसा नहीं कि भीड़ कहीं चली गई, भीड़ जहां है—वहीं है, पर अर्जुन के लिए अब इस भीड़ का कोई भी पता नहीं है, अर्जुन अब इस भीड़ के सम्बन्ध में नहीं सोच रहा, ये संसार हट गया। अब अर्जुन एक सवाल पूछ रहा है कि जो आपने कहा : अनंत, जिस विराट लीना की आपने बात कही, जिस अमृत अनंत धारा का आपने स्मरण दिलाया, मैं उसे देखना चाहता हूं। संसार खो गया, ये जिज्ञासा धर्म की जिज्ञासा है।

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा

भारत का अनूठा ग्रंथ 'ब्रह्म-सूत्र' जिस वचन से शुरू होता है—वो बड़ा अद्भुत है। वो वचन है 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'—यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा, और यहां से शुरू होता है, इसके पहले कुछ है नहीं। जो किताबों को पकड़ते हैं, वे शायद सोचते हैं कि इसका पहला हिस्सा खो गया। अथातो ब्रह्म जिज्ञासा—इसका मतलब हुआ—यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा, इसका मतलब हुआ किताब अधूरी है, आगे का हिस्सा कहां है ? इस वाक्य से ऐसा ही लगता है कि यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा, तो अभी आगे की बात—इसमें पहले कोई और बात रही होगी, इसका पहला खंड खो गया है,

नहीं तो 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' कहने की क्या जरूरत है ? इस किताब का कोई हिस्सा नहीं खो गया है, ये किताब पूरी है, ये वचन अधूरा लगता है— इसका कारण दूसरा है। जिससे ये कहा गया है और जिसने ये कहा है, आयाम की बदलाहट है। अब तक हो रही थी संसार की बकवास, अब गुरु ने कहा : अथातो ब्रह्म जिज्ञासा, अब छोड़ ये बकवास, अब यहां से हम ब्रह्म की चर्चा शुरू करें। शिष्य ने यहां कोई सवाल उठाया होगा, जिससे आयाम बदल गया, जगत खो गया, स्वप्न खो गया और ब्रह्म वास्तविक लगने लगा। इसलिए यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा, अर्जुन को यहां युद्ध खो गया, संसार मिट गया। और उसने पूछा : अब मैं देखना चाहता हूं। क्या है अस्तित्व सीधा, प्रत्यक्ष, आमने-सामने, इसे देख लेना। अब मैं आपको भी बीच में लेने को तैयार नहीं हूं। जिस दिन शिष्य कहता है गुरू से कि अब आप भी हट जायें, सीधा ही देखना चाहता हूं, उस दिन गुरु के आनन्द का कोई पारावार नहीं है। जब तक शिष्य कहता है कि मैं तो आपके चरण ही पकड़े रहूंगा, चाहे आप नरक जायें तो मैं नरक चलूंगा, जहां-जहां आपका सहयोग मिल सकता है, वहीं चलूंगा तब तक गुरु पीड़ित रहता है। क्योंकि फिर एक मोह, एक नयी आसक्ति, नया उपद्रव, एक नया संसार बनता है। यहां अर्जुन क्या कह रहा है, बहुत राजनैतिक ढंग है—क्षत्री था, कुशल था—होशियार था। बड़े सूक्ष्म ढंग से कृष्ण से क्या कह रहा है--वो कह रहा है कि हटो तुम, अब मुझे सीधा ही देख लेने दो। अब तुम्हारा रूप भी हटा लो, अब तुम्हारी आकृति भी विदा कर लो, अब तुम भी न हो जाओ। अब तुम्हारा दरवाजा भी हट जाए और मैं खुले आकाश को सीधा देख लूं : 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'--ऐसे ही क्षण में ब्रह्म की जिज्ञासा शुरू होती है। यहां संसार खो गया, इसीलिए शंकर ने बहुत-बहुत आग्रह करके कहा है कि संसार माया है, स्वप्न है। इसलिए नहीं कि संसार स्वप्न है, बहुत व स्तविक है, अगर स्वप्न होता तो शंकर समझाते किसको, लिखते बोलते किसके लिए, स्वप्नों के पात्रों के लिए ? सिर फोड़ते उनके साथ, सिर खपाते उनके साथ, वाद-विवाद करते पूरे मुल्क में ? भटकते—स्वप्न के पात्रों के साथ ! गांव-गांव खोजते, तब तो खुद ही पागल साबित होते !

संसार अगर सच में ही स्वप्न है तो शंकर को फिर बोलने का कोई कारण नहीं था। जब आप जाग जाते हैं सुबह और जानते हैं कि रात जो देखा वो स्वप्न था तब आप स्वप्न के पात्रों की कोई चर्चा करते हैं, उनको

समझाते हैं कि सब झूठा था, जो देखा—वो होते ही नहीं—समझायेंगे कैसे ? नहीं, शंकर जब कहते हैं कि जगत स्वप्न है, तब इसका एक (डिवाइस) उपाय की तरह उपयोग करते हैं। वो ये कहते हैं कि अगर तुम जगत को स्वप्न देख पाओ थोड़ी देर के लिए भी तो तुम्हारी आंख उस तरफ हट सकती है जो जगत के पार है। जब तक तुम्हें जगत सत्य मालूम पड़ता है, तब तक तुम किसी और सत्य की खोज में निकलोगे ही कैसे। जब तक तुम्हारे चारों तरफ जिसने तुम्हें घेरा है वो तुम्हें इतना वास्तविक मालूम पड़ता है कि जीवन उसी में लगा दें—इसी दुकान में—दो-दो पैसे इकट्ठे करने में, इसी मकान को खड़ा करने में, इन्हीं बच्चों को पालने-पोसने में—इतनी वास्तविकता लगती है कि अपने जीवन को तिरोहित कर दें, समाप्त कर दें, शहीद हो जायें, तब तक उस तरफ आंख कैसे उठाओगे जो सत्य है।

इसलिए अगर यह बात ख्याल में आ जाए, कि स्वप्न है घड़ी भर को भी—ये बोध में गहरा उतर जाये कि चारों तरफ जो है—स्वप्न है तो खोज शुरू हो जाती है कि सत्य क्या है ? सत्य की खोज हो सके इसलिए शंकर ने बड़े अनुग्रह से समझाया है लोगों को कि जगत स्वप्न है। लेकिन लोग बड़े मजेदार हैं, वो इस पर बैठकर विवाद करते हैं कि स्वप्न है या नहीं। स्वप्न है तो किस प्रकार का स्वप्न है—और स्वप्न है तो किसको आ रहा है ? और स्वप्न है तो ब्रह्म से स्वप्न का क्या संबंध ? ये स्वप्न ब्रह्म को आ रहा है कि आत्मा को आ रहा है ? अगर ब्रह्म को आ रहा है तो वास्तविक हो गया और अगर आत्मा को आ रहा है तो आत्मा को शुरुआत इसकी कैसे हुई ? लोग इसकी चर्चा में लग जाते हैं।

अगर शंकर हों तो वो अपना सिर पीटें, उन्होंने कहा था कि थोड़ी देर के लिए तुम अपने इस उपद्रव को—आंख बन्द कर सको, तो एक उपाय था—कि तुम्हें कहा कि एक स्वप्न है, थोड़ा और तरफ भी देखो—आंख को थोड़ा मुक्त करो यहां से, देखने की क्षमता यहां से थोड़ी हटे तो नई यात्रा पर निकल जाए, और निश्चित ही जो एक नई यात्रा पर निकल जाता है, उसे लौटकर ये जगत स्वप्न मालूम पड़ता है। लेकिन स्वप्न इसलिए मालूम पड़ता है कि अब सापेक्ष रूप से उसने जो जाना है वो इतना विराटतर सत्य है कि संसार बिल्कुल फीका और मुर्दा हो गया है। उसे ठीक वैसे ही स्वप्न हो जाता है—जैसे आपने कागज के फूल देखे हों और आपको असली फूल

देखने को मिल जायें। और तब आप कहें कि ये कागज के फूल हैं—लेकिन जिन्होंने कागज के फूल ही देखे हैं, उनको इसमें कुछ भी अर्थ मालूम नहीं पड़ेगा। क्योंकि फूल का मतलब ही कागज का फूल होता है और कोई फूल होता नहीं। जिस दिन हम विराट को देख पाते हैं उस दिन संसार स्वप्न जैसा फीका, मुर्दा-बेजान, अर्थहीन मालूम पड़ने लगता है। वो सापेक्ष दृष्टि है, हमने कुछ और जान लिया, जैसे कोई सूरज को देख ले और घर में आकर मिट्टी के दिए को देखकर कहे कि ये बिल्कुल अंधेरा है। अंधेरा है ही, क्योंकि जो घर में बैठा है उसके लिये दिया ही सूर्य है, लेकिन जो सूरज को देखकर लौटा है, दिए की ज्योति दिखाई भी नहीं पड़ेगी। इतने विराट को जिसने जाना है, दिए की ज्योति उसकी आंखों में कहीं पकड़ में ही नहीं आयेगी। वो कहेगा दिया कहीं है ही नहीं, तुम अंधेरे में बैठे हो, ये सूर्य की तुलना में। सब शब्द सापेक्ष हैं, अर्जुन को जिस क्षण ये बाहर का सारा जगत् कृष्ण की तल्लीनता में—स्वप्नवत हो गया वो भूल गया कि मैं कहां खड़ा हूं—कभी आप भूले हैं—एकाध क्षण को भी कि कहां आप खड़े हैं, कभी आप भूले हैं एकाध क्षण को—अपनी पत्नी को, बच्चे को, घर को, दुकान को। कभी एकाध क्षण को ऐसा हुआ है कि चौंक के ख्याल हुआ हो कि 'मैं कौन हूं'—कहां खड़ा हूं—क्या है मेरे चारों तरफ। अगर ऐसा कोई क्षण आपको आ जाय तो समझना कि इसके बाद 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा', उस क्षण के बाद ब्रह्म सूत्र शुरू होता है। लेकिन वो क्षण हमें आता नहीं—हमें सब पता है कि मैं कौन हूं—नाम का पता है, घर का पता है—अपने बैंक बैलेंस का पता है—कौन कहता है कि नहीं है!

क्षुद्र गिरे तभी विराट का आना संभव

अर्जुन इस घड़ी में ऐसी जगह आ गया है, जहां उसे कुछ भी पता नहीं रहा। वो भूल गया कि युद्ध होने को है, थोड़ी देर में शंख बजेंगे और युद्ध में कूद जाना पड़ेगा। वो नीति-अनीति, वो क्षुद्र सब प्रश्न खो गए। अभी थोड़ी देर पहले वो बड़े महत्वपूर्ण मालूम पड़ते थे, वो मरना-जीना, अपने-पराये, वो सब खो गए। अब उसके लिए एक ही बात महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है कि ये अस्तित्व क्या है—एक्जिस्टेंस—ये होना ही क्या है। तो कृष्ण को कहता है तुम भी हट जाओ। मुझे आमने-सामने सीधा हो जाने दो। मैं एक दफे सीधा ही देख लूं—क्या है? ये योग्यता उसने अर्जित की

गीता के इस क्षण तक। जब जीवन की क्षुद्रता प्रश्न नहीं बनती, तभी जीवन का विराट जिज्ञासा बनता है। जिसने हमें चारों तरफ घेर रखा है अभी और यहां समय के घेरे में, जब अचानक हमें उसका पता भी नहीं चलता, तो जो समय के पार है, हमें आच्छादित कर लेता है। जब क्षुद्र को हम भूलते हैं तो विराट की स्मृति आती है। सब उपाय धर्म के क्षुद्र को भूलने के उपाय हैं। कहो उसे प्रार्थना, कहो ध्यान, कहो पूजा, कहो जप, कोई भी नाम देना हो—दो। ये सब क्षुद्र को भूलने के उपाय हैं। और क्षुद्र भूल जाय तो हम उस किनारे पर खड़े हो जाते हैं जहां से नौका विराट में छोड़ी जा सके। थोड़ी देर को भी क्षुद्र भूल जाय तो कुछ हो सकता है--कोई नये तल पर हमारा होना—कोई नई दृष्टि, कोई नया हृदय हममें धड़क सकता है। कोई नया स्वर जो भीतर निरंतर बजता रहा है—सनातन लेकिन हमारे लिए नया है क्योंकि हम पहली दफे सुनेंगे, चारों तरफ की भीड़, आवाज, शोरगुल बन्द हो जाए क्षण भर को तो भीतर की वो धीमी-सी आवाज, सनातन आवाज, हमें सुनाई पड़ने लगती है। अर्जुन भूल गया—संसार का विस्मरण—युद्ध का विस्मरण—परिस्थिति का विस्मरण--उसके लिए ब्रह्म की जिज्ञासा बन गई। और कृष्ण ने उससे एक बात भी नहीं कही—कहा कि देख, ये देखना सोच लेने जैसा है, कि क्या अर्जुन को अब कुछ करना नहीं है, कृष्ण कहते हैं देख और अर्जुन देखना शुरू कर देता है। क्या हुआ होगा, ये बहुत बारीक है—और जो अध्यात्म में गहरे उतरते हैं, उन्हें समझ लेने जैसा है, या उतरना चाहते हैं कभी तो इसे संभाल-संभाल के रख लेने जैसा है। वो जो तीसरी आंख है, दो प्रकार से सक्रिय हो सकती है। या तो साधक चेष्टापूर्वक अपनी दोनों आंखों की ज्योति को भीतर खींच ले, आंख को बन्द करके, वर्षों की लम्बी साधना है। आंखों को निरज्योति करने की, क्योंकि आंख से हमारी जो चेतना बह रही है बाहर, उसे आंख बन्द करके भीतर खींच लेना है। इसको कबीर ने आँख को उल्टा कर लेना कहा है। मतलब है कि जो धारा बाहर बह रही थी वो भीतर बहने लगे। आपने कृष्ण की प्रेयसी राधा का नाम सुना है, आपको ख्याल न होगा, वो धारा का उल्टा शब्द है।

राधा : अंतर्धारा का प्रतीक

कृष्ण के समय के जो भी शास्त्र हैं, उनमें राधा का कोई भी उल्लेख नहीं है। राधा के नाम का भी कोई जिक्र नहीं है। बहुत बाद की किताबों में

राधा का उल्लेख है, जिनने उल्लेख शुरू किया वो बड़े होशियार लोग थे। उन्होंने इस प्रतीक में एक बड़ा रहस्य छुपा कर रखा। उन्होंने राधा की मूर्तियां बना लीं और फिर लोग कृष्ण और राधा बनके मंच पर रास-लीला करने लगे। राधा एक यौगिक प्रक्रिया है, वो जो जीवन की धारा बाहर की तरफ बह रही है, जिस दिन उल्टी हो जाती है, उस धारा का नाम राधा हो जाता है – सिर्फ शब्द को उल्टा कर देने से। वो जो आंख से हमारी जीवन धारा बाहर जा रही है अब भीतर आने लगती है तो राधा हो जाती है। और भीतर हमारे छिपा है कृष्ण – मैंने कहा : साक्षी। वो साक्षी जो हमारे भीतर छिपा है; जब हमारी जीवन धारा उसकी राधा बन जाती है, उसके चारों तरफ नाचने लगती है, बाहर नहीं जाती – भीतर, और रास शुरू हो जाता है – उस रास की बात है और हम नौटंकी करते हैं, मंच वगैरह सजा के। उपद्रव करने के बहुत उपाय हैं, और आदमी हर जगह से उपद्रव खोज लेता है, और अपने को भरमा लेता है, सोचता है बात खतम हो गई।

राधा हमारी जीवन धारा का नाम है जो उल्टी हो जाय – वापिस लौटने लगे स्रोत की तरफ, अभी जा रही है बाहर की तरफ, जब जाने लगे भीतर की तरफ, अन्तर्यात्रा पर हो जाय, तब जो रास भीतर घटित होता है – परम रास – वो जो परम जीवन का अनुभव और आनन्द, वो जो नृत्य है भीतर, उसकी बात है।

तो एक उपाय है कि हम चेष्टा से, श्रम से, योग से, तंत्र से, साधन से, विधि से, सारी चेतना को भीतर खींच लें : एक उपाय है, साधक का—योगी का। एक दूसरा उपाय है भक्त का, समर्पित होने वाले का—जो समर्पण कर दे। जिस व्यक्ति की अंतर्धारा भीतर की तरफ दौड़ रही हो—उसको समर्पण कर दे। तो जैसे अगर आप एक चुंबक के पास एक साधारण लोहे का टुकड़ा रख दें तो चुंबक की जो चुंबकीय धारा है—उससे लोहे का टुकड़ा भी चुम्बक बन जाता है। ठीक वैसे ही अगर कोई व्यक्ति उस व्यक्ति की तरफ अपने को पूरा समर्पित कर दे, जिसकी कि धारा भीतर की तरफ जा रही है तो तत्क्षण उसकी धारा भी उल्टी होकर बहने लगती है। अर्जुन ने न तो कोई साधना की कभी, अभी साधना करने का उपाय भी नहीं, अभी तो चर्चा ही चलती थी और अचानक अर्जुन ने कहा कि अगर आप समझें मुझे योग्य, समझें शक्य, अगर ये संभव हो, आपकी मर्जी हो तो दिखा दें। और कृष्ण ने कहा : देख। इन दोनों शब्दों के बीच जो घटना घटी है—वो मेगनाटाइज जैसी है, वो अर्जुन का ये समर्पण भाव कि आप जो कहते हैं ठीक ही है, मेरा कोई विवाद नहीं, अब मेरा कोई विरोध नहीं—अब मेरा कोई असहयोग नहीं है, अब मैं सहयोग के लिए राजी हूं। अब मेरी समग्र स्वीकृति है—कृष्ण ने कहा : देख। उन दोनों के बीच जो घटना घटी, उसका कोई उल्लेख गीता में नहीं है, हो भी नहीं सकता; इसका क्या उल्लेख हो सकता है? वो घटना जो घटी तो समर्पण के साथ ही वो जो कृष्ण के भीतर बैठी हुई धारा थी, अर्जुन की धारा उसके साथ भीतर की तरफ लौटी। कृष्ण खो गए, और अर्जुन ने देखना शुरू कर दिया।

इस देखने की बात हम कल करेंगे। लेकिन पांच मिनिट उठेंगे नहीं, ५ मिनिट कीर्त्तन करें, ये मेरा प्रसाद है—कोई भी उठेगा नहीं—अपनी जगह बैठकर ताली बजायें, अपनी जगह बैठकर कीर्त्तन में सहयोगी हों।

गीता अध्याय ११ :

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।।८।।

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ।।९।।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ।।१०।।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ।।११।।

दिव्य चक्षु एवं विराट का दर्शन

गीता-ज्ञान यज्ञ, क्रास मैदान, बम्बई, संध्या : दिनांक ४ जनवरी, ७३

दूसरा प्रवचन

परम रहस्य को जानने का विज्ञान

मनुष्य ने सदा ही जीवन के परम रहस्य को जानना चाहा है। क्या है प्रयोजन जीवन का—क्या है लक्ष्य ? क्यों उत्पन्न होती है सृष्टि और क्यों विलीन, कौन छिपा है इस सबके पीछे—किसके हाथ हैं ? उस मूल को, स्रोत को मनुष्य ने सदा ही जानना चाहा है। लेकिन मनुष्य जैसा है, वैसा ही उस परम को जान नहीं सकता। इससे ही दुनिया में नास्तिक दर्शनों का जन्म होता है। जैसे अन्धा आदमी प्रकाश को जानना चाहे—न जान सके, तो अन्धा आदमी भी कह सकता है कि प्रकाश एक भ्रांति है, और जिन्हें प्रकाश दिखाई देता है—वे किसी विभ्रम में पड़े हैं, किसी इल्यूजन में पड़े हैं। जो प्रकाश की बात करते हैं, वे अन्धविश्वास में हैं। और अन्धे आदमी की इन बातों में तर्क युक्त रूप से कुछ भी गलत न होगा। अन्धे को प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता और प्रकाश को देखने के अतिरिक्त और कोई जानने का उपाय नहीं है। प्रकाश सुना नहीं जा सकता—अन्यथा अन्धा भी प्रकाश को सुन लेता। प्रकाश छुआ नहीं जा सकता, अन्यथा अन्धा भी उसे स्पर्श कर लेता। प्रकाश का कोई स्वाद नहीं, कोई गन्ध नहीं, तो जिसके पास आंख नहीं है, उसका प्रकाश से संबंधित होने का कोई उपाय नहीं है। तो अन्धा

आदमी भी कह सकता है कि जो मानते हैं, वो भ्रांति में होंगे—और अगर प्रकाश है तो मुझे दिखा दो। और इसकी बात में कुछ अर्थ है, अगर प्रकाश है तो मेरे अनुभव में आए—तो ही मैं मानूंगा।

मनुष्य भी परमात्मा को खोजना चाहता है, बिना ये पूछे कि मेरे पास वो आंख—वो उपकरण है, जो परमात्मा को देखें। इसलिए जो कहते हैं कि परमात्मा है, हमें लगता है कि किसी भ्रम में, किसी मानसिक स्वप्न में, किसी सम्मोहन में खो गए हैं। और या फिर अन्धविश्वास कर लिया है किसी भय के कारण, प्रलोभन के कारण, या केवल परम्परागत संस्कार—बचपन से डाला गया मन में, इसलिए कोई कहता है कि परमात्मा है।

परमात्मा है या नहीं—यह बड़ा सवाल नहीं है। ये सवाल भी उठाया नहीं जा सकता, जब तक कि हमारे पास वो आंख न हो, जो परमात्मा को देखने में सक्षम है। प्रकाश है या नहीं, ये सवाल ही व्यर्थ है, जब तक देखने वाली आंख न हो। अन्धे को प्रकाश तो बहुत दूर, अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता है। आम तौर से हम सोचते होंगे कि अन्धे को कम से कम अंधेरा तो दिखाई पड़ता ही होगा। हमारी धारणा भी हो सकती है कि अन्धा अंधेरे से घिरा होगा—गलत है ख्याल। अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। अंधेरे का अनुभव भी आंख का ही अनुभव है। तो अन्धे को अंधेरे का भी कोई अनुभव नहीं होता। आप आंख बन्द करते हैं तो आपको अंधेरे का अनुभव होता है, क्योंकि आप अन्धे नहीं हैं। आपको प्रकाश का अनुभव होता है, इसीलिए उसके विपरीत अंधेरे का अनुभव होता है। जिसे प्रकाश का अनुभव नहीं होता, उसे अंधेरे का भी कोई अनुभव नहीं हो सकता। अंधेरा और प्रकाश, दोनों ही आंख के अनुभव हैं। प्रकाश मौजूदगी का अनुभव है, अंधेरा गैर-मौजूदगी का अनुभव है। लेकिन जिसे प्रकाश ही दिखाई नहीं पड़ा, उसे प्रकाश की अनुपस्थिति कैसे दिखाई पड़ेगी ? वो असंभव है। अन्धे को अंधेरा भी नहीं है। और जिसे अंधेरा भी दिखाई न पड़ता हो वो प्रकाश के सम्बन्ध में क्या प्रश्न उठाये ? और प्रश्न उठाए भी तो उसे क्या उत्तर दिया जा सकता है ? और जो भी उत्तर हम देंगे—वो अन्धे के मन को जंचेंगे नहीं। क्योंकि मन हमारी इन्द्रियों के अनुभव का जोड़ है। अन्धे के पास आंख का अनुभव कुछ भी नहीं है मन में—तो जंचने का, मेल खाने का—तालमेल बैठने का कोई उपाय नहीं है। अन्धे का पूरा

मन कहेगा कि प्रकाश नहीं है। अन्धा जिद करेगा कि प्रकाश नहीं है—सिद्ध भी करना चाहेगा कि प्रकाश नहीं है—क्यों ? क्योंकि स्वयं को अन्धा मानने की बजाय ये मान लेना ज्यादा आसान है कि प्रकाश नहीं है। अन्धे के अहं- कार की इसमें तृप्ति है कि प्रकाश नहीं है। अन्धे के अहंकार को चोट लगती है ये मानने से कि मैं अन्धा हूं इसलिए मुझे प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता। मनुष्य में जो अति अहंकारी हैं वे कहेंगे—परमात्मा नहीं है। बजाय ये मानने के कि मेरे पास वो देखने की आंख नहीं है, जिससे परमात्मा हो तो दिखाई पड़ सके और ध्यान रहे जिसको परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता उसको परमात्मा का न होना भी दिखाई नहीं पड़ सकता क्योंकि न होने का अनुभव भी उसी को होगा जिसके पास देखने की क्षमता है।

नास्तिक कहता है ईश्वर नहीं है, उसके वक्तव्य का वही अर्थ है जो अंधा कहता है कि प्रकाश नहीं है। नास्तिक की तकलीफ ईश्वर के होने न होने में नहीं है। नास्तिक की तकलीफ अपने को अधूरा मानने में, अपंग मानने में, अंधा मानने में है। इसलिए जितना अहंकारी युग होता है उतना नास्तिक होता है। अगर आज सारी दुनिया में नास्तिकता प्रभावी है तो उसका कारण ये नहीं है कि विज्ञान ने लोगों को नास्तिक बना दिया, और उसका कारण ये भी नहीं है कि कम्युनिज्म ने लोगों को नास्तिक बना दिया। उसका कुल मात्र कारण इतना है कि मनुष्य ने इधर पिछले ३०० वर्षों में जो उप- लब्धियां की हैं, उन उपलब्धियों ने उसके अहंकार को भारी बल दे दिया है। इन ३०० वर्षों में आदमी ने उतनी उपलब्धियां की हैं जितनी ३ लाख वर्षों में आदमी ने नहीं की हैं। आदमी की ये उपलब्धियां उसके अहंकार को बल देती हैं, वो बीमारी से लड़ सकता है, वो उम्र को भी शायद थोड़ा लंबा सकता है, उसने बिजली को बांध के घर में रोशनी कर ली है, उसके पूर्वज आकाश को बिजली में देखकर कंपते थे और सोचते थे कि इन्द्र नाराज है, उसको बिजली को बांध लिया है। अगर पुरानी भाषा में कहें तो इन्द्र को उसने बांध लिया है। घर में इन्द्र रोशनी कर रहा है और पंखे चला रहा है। आदमी ने इधर ३०० वर्षों में जो भी पाया है उस पाने से उसे बाहर कुछ चीजें मिली हैं और भीतर अहंकार मिला है—उसे लगता है मैं कुछ कर सकता हूं। और जितना अहंकार मजबूत होता है उतनी ही नास्तिकता सघन हो जाती है—क्योंकि उतना ही ये मानना मुश्किल हो जाता है कि मुझमें कोई कमी है। कोई उपकरण, कोई इन्द्रिय मुझमें खो रही है, अभाव

है। मेरे पास कोई उपाय कम है जिससे मैं और देख सकूं। फिर एक और बात पैदा हो गई, हमने अपनी भौतिक इन्द्रियों को विस्तीर्ण करने की बड़ी क्षमता पा ली है। आदमी आंख से कितनी दूर तक देख सकता है—लेकिन अब हमारे पास दूर-दर्शक यंत्र हैं जो अरबों-खरबों प्रकाश वर्ष दूर तारों को देख सकते हैं। आदमी अपने अकेले कान से कितना सुन सकता है लेकिन अब हमारे पास यंत्र हैं—फोन है, रेडियो है, बे-तार के यंत्र हैं—कोई सीमा नहीं, हम कितने ही दूर की बात सुन सकते हैं, और कितने ही दूर तक बात कर सकते हैं। एक आदमी अपने हाथ से कितने दूर तक पत्थर फेंक सकता है। लेकिन अब हमारे पास सुविधायें हैं कि हम पूरे के पूरे यानों को पृथ्वी के घेरे के बाहर फेंककर चांद की यात्रा पर पहुंचा सकें। एक आदमी कितना मार सकता है—कितनी हत्या कर सकता है, अब हमारे पास हाइड्रोजन बम हैं कि चाहें तो १० मिनिट में हम पूरी पृथ्वी को राख बना दें। सिर्फ १० मिनिट में। खबर पहुंचेगी, इसके पहले मौत पहुंच जाएगी। तो स्वभावतः आदमी ने अपनी बाहर की इन्द्रियों को बढ़ा लिया, ये सब इन्द्रियों का विस्तार है। इन्द्रियों को हमने अपने यंत्रों से जोड़ दिया है। इन्द्रियां भी यंत्र हैं, हमने और नए यंत्र बनाकर इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ा लिया। इसलिए आदमी इंद्रियों को बढ़ाने में लग गया और उसे यह ख्याल भी नहीं कि कुछ इंद्रियां ऐसी भी हैं जो बंद ही पड़ी हैं। अगर हम पीछे लौटें तो आदमी की बाहर की इन्द्रियों की शक्ति बहुत सीमित थी। और आदमी का बल बहुत सीमित था, आदमी की उपलब्धियां बहुत सीमित थीं। आदमी के अहंकार को सघन होने का उपाय कम था। सहज ही जीवन विनम्रता पैदा करता था। सहज ही चारों तरफ इतनी विराट शक्तियां थीं कि हम निहत्थे, असहाय, हेल्पलेस मालूम होते थे। बाहर तो हमारे बल को बढ़ने का कोई उपाय नहीं मालूम पड़ता था—इसलिये आदमी भीतर मुड़ने की चेष्टा करता था। आज बाहर के यात्रा पथ इतने सुगम हैं कि भीतर लौटने का ख्याल भी नहीं आता। आज बाहर जाने की इतनी सुविधा है कि भीतर जाने का सवाल भी नहीं उठता है। आज जब हम किसी से कहें भीतर जाओ तो उसकी समझ में नहीं आता, कहें चांद पर जाओ, मंगल पर जाओ बिल्कुल समझ में आता है।

चांद पर जाना आज आसान है, अपने भीतर जाना कठिन है। और आदमी जो सुगम है, सरल है उसको चुन लेता है। जहां (लीस्ट रेसिस्टेंस) है, उसे चुन लेता है। आदमी के अहंकार के अनुपात में उसकी नास्तिकता

होती है, जितना अहंकार होता है, उतनी नास्तिकता होती है...क्यों ? क्योंकि आस्तिकता पहली स्वीकृति से शुरू होती है कि मैं अधूरा हूं।

ईश्वर है या नहीं, मुझे पता नहीं। लेकिन परम सत्य को जानने का मेरे पास कोई भी उपाय नहीं है। बुद्धि आदमी के पास है, लेकिन बुद्धि से आदमी क्या जान पाता है ? जो नापा जा सकता वो बुद्धि से जाना जा सकता है, क्योंकि बुद्धि नापने की एक व्यवस्था है। जो मेजर मेंट के भीतर आ सकता है, वह बुद्धि से जाना जा सकता है।

हमारा शब्द है माया। माया बहुत अद्भुत शब्द है—उसका मौलिक अर्थ होता है देट विच केन बी मेजर्ड। जिसको नापा जा सके। माप्य जो है जिसको हम नाप सकें। तो बुद्धि केवल माया को ही जान सकती है जो नापा जा सकता है। समझें—एक तराजू है उससे हम उसी चीज को जांच सकते हैं जो नापी जा सकती है। एक तराजू को लेकर हम एक आदमी के शरीर को नाप सकते हैं लेकिन अगर तराजू से हम आदमी के मन को जानने चलें तो मुश्किल हो जाएगी, क्योंकि मन तराजू पर नहीं नापा जा सकता। एक आदमी के शरीर में कितनी हड्डी-मांस-मज्जा है ये हम नाप सकते हैं : तराजू से, लेकिन एक आदमी के भीतर कितना प्रेम है, कितनी घृणा है, इसको हम तराजू से नहीं नाप सकते। इसका यह मतलब नहीं कि प्रेम है नहीं। इसका केवल इतना ही मतलब है कि जो मापने का उपकरण है, वो संगत नहीं है। जो भी मापा जा सकता है, उसे बुद्धि समझती है। जो भी गणित के भीतर आ जा सकता है, बुद्धि समझ सकती है, जो भी तर्क के भीतर आ जाता है, बुद्धि समझ सकती है। विज्ञान बुद्धि का विस्तार है। इसलिए विज्ञान उसी को मानता है जो नप सके, जांचा जा सके, परखा जा सके, छुआ जा सके, प्रयोग किया जा सके उसको ही—जो न छुआ जा सके, न परखा जा सके, न पकड़ा जा सके, न तौला जा सके, विज्ञान कहता है वो है ही नहीं। वहां विज्ञान भूल करता है। विज्ञान को इतना ही कहना चाहिए कि उस दिशा में हमारे पास जाने का कोई उपाय नहीं है। हो भी सकता है, न भी हो, लेकिन बिना उपाय के कुछ भी कहा नहीं जा सकता है। परमात्मा का अर्थ है : असीम। परमात्मा का अर्थ है : सब। परमात्मा का अर्थ है : जो भी है उसका जोड़। इस विराट को बुद्धि नहीं नाप पाती, क्योंकि बुद्धि भी इस विराट का एक अंग है। बुद्धि भी इस विराट का एक अंश है। अंश कभी भी पूर्ण को नहीं

जान सकता और कभी भी अपने पूर्ण को नहीं पकड़ सकता। अगर मैं अपने हाथ से पूरे शरीर को पकड़ना चाहूं तो कैसे पकड़ूंगा, कोई उपाय नहीं है। मेरा हाथ कई चीजें उठा सकता है, लेकिन मेरा हाथ मेरे पूरे शरीर को नहीं उठा सकता। अंश है, छोटा है—शरीर बड़ा है। बुद्धि एक अंश है इस विराट में। एक बूंद सागर में। इस पूरे सागर को नहीं उठा पाती। तो बुद्धि उपाय नहीं है : जानने का। और हम बुद्धि से ही जानने की कोशिश करते हैं। दार्शनिक सोचते हैं, मनन करते हैं, तर्क करते हैं। बुद्धि से सोचते हैं कि ईश्वर है या नहीं। वे जो भी दलीलें देते हैं, दलीलें बचकानी हैं। बड़े से बड़े दार्शनिक ने भी ईश्वर के होने के लिए जो प्रमाण दिए हैं, वो बच्चा भी तोड़ सकता है।

जितने भी प्रमाण ईश्वर के होने के लिए दिए गए हैं, वे कोई भी प्रमाण नहीं हैं। क्योंकि उन सभी को खंडित किया जा सकता है। इसलिए प्रमाण से जो ईश्वर को मानता है, उसे कोई भी नास्तिक दो क्षण में मिट्टी में मिला देगा। ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं है जो ईश्वर के होने को सिद्ध कर सके। क्योंकि अगर हमारा प्रमाण ईश्वर को सिद्ध कर सके तो हम ईश्वर से भी बड़े हो जाते हैं। और हमारी बुद्धि अगर ईश्वर के लिए प्रमाण जुटा सके और अगर ईश्वर को हमारे प्रमाणों की जरूरत हो तब ही वो हो सके और हमारे प्रमाण न हों तो वो न हो सके, तो हम ईश्वर से भी विराट और बड़े हो गए।

मार्क्स ने मजाक में कहा है कि जब तक ईश्वर को टेस्ट ट्यूब में न जांचा जा सके, तब तक मैं मानने को राजी नहीं हूं। लेकिन उसने फिर से ये भी कहा है कि और अगर ईश्वर टेस्ट ट्यूब में आ जाय और जांच लिया जाय तब भी मानूंगा नहीं क्योंकि तब मानने की कोई जरूरत नहीं रह गई। जो टेस्ट ट्यूब में आ गया हो आदमी के उसको ईश्वर कहने का कोई कारण नहीं रह गया। वो भी एक तत्व हो जाएगा, जैसे आक्सीजन है, हाइड्रोजन है—वैसा ईश्वर भी होगा। हम उससे भी काम लेना शुरू कर देगें। पंखे चलायेंगे, बिजली जलायेंगे—कुछ और करेंगे। आदमी को मारेंगे, बच्चों को पैदा होने से रोकेंगे, या उम्र ज्यादा करेंगे। अगर ईश्वर को हम टेस्ट ट्यूब में पकड़ लें तो हम उसका भी उपयोग कर लें। विज्ञान तभी मानेगा जब उपयोग कर सके।

आदमी जो भी प्रमाण जुटा सकता है, वे प्रमाण सब बचकाने हैं, क्योंकि बुद्धि बचकानी है। उस विराट को नापने के लिए बुद्धि उपाय नहीं है। क्या

कोई उपाय और हो सकता है, बुद्धि के अतिरिक्त? बुद्धि के अतिरिक्त हमारे पास कुछ भी नहीं है। सोच सकते हैं, थोड़ा इसे हम समझ लें, कि इस सोचने का क्या अर्थ होता है तो इस सूत्र में प्रवेश आसान हो जाएगा। हम सोच सकते हैं—आप क्या सोच सकते हैं—जो आप जानते हैं, उसी को सोच सकते हैं। सोचना जुगाली है, गाय-भैंस को आपने देखा घास चर लेती है फिर बैठकर जुगाली करती हैं। वो जो चर लिया है उसको वापिस चरती रहती है। विचार जुगाली है। जो आपके भीतर डाल दिया गया, उसको आप फिर जुगाली करते रहें। आप एक भी नई बात नहीं बोल सकते। कोई विचार नया नहीं होता। सब विचार बाहर से डाले गए हैं और फिर हम सोचने लगते हैं उन पर। सब विचार उधार हैं। तो जो हमने जाना नहीं है अब तक, उसको हम सोच भी नहीं सकते। सोच हम उसी को सकते हैं, जिसे हमने जाना है, जिसे हमने सुना है, जिसे हमने समझा है, जिसे हमने पढ़ा है—उसे सोच सकते हैं। ईश्वर को न तो पढ़ा जा सकता, न ईश्वर को सुना जा सकता, ईश्वर को सोचेंगे कैसे? ईश्वर है अज्ञात (अननोन), मौजूद है यहीं, लेकिन इसी तरह अज्ञात है जैसे अंधे के लिए प्रकाश अज्ञात है और अंधे के चारों ओर प्रकाश मौजूद है। अंधे की चमड़ी को छू रहा है, अंधे को जो गर्मी मिल रही है वो उसी प्रकाश से मिल रही है। और अंधे को जो उसका मित्र हाथ पकड़ के रास्ते पर चला रहा है, वो भी प्रकाश के कारण चला रहा है और अंधे के भीतर जो हृदय में धड़कन हो रही है—वो भी उसी प्रकाश की किरणों के कारण हो रही है। और इसके खून में जो गति है वो भी प्रकाश की किरणों के कारण। पूरा जीवन प्रकाश में लिप्त है, प्रकाश में डूबा है, अगर प्रकाश न हो तो अंधा नहीं हो सकता। लेकिन फिर भी अंधे को प्रकाश का कोई भी पता नहीं चलता। क्योंकि जो आंख चाहिए देखने की, वो नहीं है। अंधा जीता प्रकाश में है, होता प्रकाश में है, लेकिन अनुभव में नहीं आता। हम भी परमात्मा में हैं। उसके बिना न खून चलेगा, न हृदय धड़केगा, न श्वासें चलेंगी, न वाणी बोलेगी, न मन विचारेगा। उसके बिना कुछ भी नहीं होगा। वह अस्तित्व है। लेकिन, उसे देखने की अभी हमारे पास कोई भी इन्द्रिय नहीं है। हाथ हैं उनसे हम छू सकते हैं, जिसे हम छू सकते हैं—वो स्थूल है। सूक्ष्म को हम छू नहीं सकते। यहां भी सूक्ष्म, परमात्मा को अलग कर दें, पदार्थ में भी जो सूक्ष्म है उसे भी हम हाथ से नहीं छू सकते। हमारे पास कान हैं: हम सुन सकते हैं, कितना सुन सकते हैं; एक सीमा है। आपका कुत्ता आपसे हजार गुना ज्यादा सुनता है।

उसके पास आपसे बड़ा कान है। अगर कान से परमात्मा का पता लगता होता तो आपसे पहिले आपके कुत्ते को पता लग जाएगा। घोड़ा आपसे १० गुना ज्यादा सूंघ सकता है—कुत्ता १० हजार गुना सूंघ सकता है। अगर सूंघने से परमात्मा का पता होता, तो कुत्तों ने अब तक उपलब्धि पा ली होती।

हमसे ज्यादा मजबूत आंखों वाले जानवर हैं, हमसे ज्यादा मजबूत हाथों वाले जानवर हैं, हमसे ज्यादा मजबूत स्वाद का अनुभव करने वाले जानवर हैं। मधुमक्खी ५ मील दूर से, फूल की गंध को पकड़ लेती है। अगर आपके घर में चोर हो तो उसके जाने के घंटा भर बाद भी कुत्ता उसकी सुगंध को पकड़ लेता है। उसके जाने के घंटा भर बाद भी। और फिर पीछा कर सकता है और १०–२० मील दूर कहीं भी चोर चला गया हो, अनुगमन कर सकता है। हमारे पास जो इन्द्रियां हैं उनसे स्थूल भी पूरा पकड़ में नहीं आता, सूक्ष्म की तो बात ही अलग है। हम जो सुनते हैं वो एक छोटी सी सीमा के भीतर सुनते हैं, उससे नीची आवाज भी हमें सुनाई नहीं पड़ती। हमारी सब इन्द्रियों की सीमा है, इसलिए असीम को कोई इन्द्रिय पकड़ नहीं सकती। हमारी कोई भी इन्द्रिय असीम नहीं, हमारा जीवन ही सीमित है। थोड़ा कभी आपने ख्याल किया कि आपका जीवन कितना सीमित है, घर में थर्मामीटर हो उसमें आप ठीक से देख लेना। सीमा पता चल जायेगी। इधर ९८ डिग्री के नीचे गिरे कि बिखरे। उधर १०८–११० डिग्री के पार जाने लगे कि गए। १२ डिग्री में मौत है। १२ डिग्री में जहां जीवन हो वहां परम जीवन को जानना बड़ा मुश्किल होगा। इस सीमित जीवन से उस असीम को हम कैसे जान पायें। जरा सा तापमान गिर जाए पृथ्वी पर सूरज का हम सब समाप्त हो जायेंगे। जरा सा तापमान बढ़ जाए हम सब वाष्पीभूत हो जायेंगे। हमारा होना कितनी छोटी सी सीमा में—क्षुद्र सीमा में है। इस छोटे से क्षुद्र से जीवन से हम विराट अस्तित्व को जानने चलते हैं और कभी नहीं सोचते कि हमारे पास उपकरण क्या है कि हम नापेंगे। तो जो कह देता है बिना समझे-बूझे कि ईश्वर है वो भी ना-समझ है, जो कह देता है बिना समझे-बूझे कि ईश्वर नहीं है वो भी नासमझ है। समझदार तो वो है जो सोचे पहले कि ईश्वर का अर्थ क्या होता है—विराट, अनंत, असीम में मेरी क्या स्थिति है? इस मेरी स्थिति में उस विराट में क्या कोई सम्बन्ध बन सकता है? अगर नहीं बन सकता तो विराट की फिकर छोड़ूं—मेरी स्थिति में कोई परिवर्तन करूं, जिससे संबंध बन सके। धर्म और दर्शन में यही फर्क है।

दर्शन सोचता है ईश्वर के सम्बन्ध में, धर्म खोजता है स्वयं को कि मेरे भीतर क्या कोई उपाय, क्या मेरे भीतर ऐसा कोई झरोखा है—क्या मेरे भीतर ऐसी कोई स्थिति है जहां से मैं छलांग लगा सकूं अनंत में। जहां मेरी सीमायें मुझे रोकें नहीं, जहां मेरे बंधन मुझे बांधें नहीं, जहां मेरा भौतिक अस्तित्व रुकावट न हो—जहां से मैं छलांग ले सकूं और विराट में कूद जाऊं और जान सकूं कि वो क्या है ?

अब हम इस सूत्र को समझने की कोशिश करें। परन्तु, मेरे को इन अपने प्राकृत नेत्रों द्वारा देखने को निःसंदेह तू समर्थ नहीं है, इसी से मैं तेरे लिए दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु देता हूं, उससे तू मेरे प्रभाव को और योग-शक्ति को देख।

कृष्ण ने अर्जुन को कहा कि जो आंखें तेरे पास हैं—प्राकृत नेत्र—इनसे तू मुझे देखने में समर्थ नहीं है। निश्चित ही—अर्जुन कृष्ण को देख रहा था। नहीं तो बात किससे होती ? यह चर्चा हो रही थी, अर्जुन कृष्ण को सुन रहा था, नहीं तो यह चर्चा किससे होती ? यहां ध्यान रखें कि एक तो वे कृष्ण हैं जो अर्जुन को अभी दिखाई पड़ रहे हैं—इन प्राकृत आंखों से और एक और कृष्ण का होना है जिसके लिए कृष्ण कहते हैं—तू मुझे न देख सकेगा इन आंखों से। तो जिन्होंने कृष्ण को प्राकृत आंखों से देखा है, वे इस भ्रांति में न पड़ें कि उन्होंने कृष्ण को देख लिया। अभी तक अर्जुन ने भी नहीं देखा है। वो साथ रहा है, दोस्ती है, मित्रता है। पुराने संबंध हैं, नाता है : अभी उसने कृष्ण को नहीं देखा है। अभी उसने जिसे देखा है वो इन आंखों—प्राकृत आंखों और अनुभव के भीतर जो देखा जा सकता है वही। अभी उसने कृष्ण की छाया देखी—अभी उसने कृष्ण को नहीं देखा। अभी उसने जो देखा है, वो मूल नहीं देखा—ओरीजनल नहीं देखा—अभी प्रति-लिपि ही देखी। जैसे कि दर्पण में आपकी छवि बनी है और कोई छवि को देखे। जैसे कोई आपका चित्र देखे। या पानी में आपका प्रतिबिम्ब बने और कोई प्रतिबिम्ब को देखे। पानी में प्रतिबिम्ब बनता है—ऐसे ही ठीक प्रकृति में भी आत्मा की प्रतिछवि बनती है। अभी अर्जुन जिसे देख रहा है वो कृष्ण की प्रतिछवि है—सिर्फ छाया है। अभी उसने उसे नहीं देखा है जो कृष्ण हैं। और आपने भी अभी अपने को जितना देखा है—वो भी आपकी छाया है। अभी आपने उसे भी नहीं देखा जो आप हैं। और अगर अर्जुन कृष्ण के मूल को देखने में समर्थ हो जाय तो अपने मूल को भी देखने में

समर्थ हो जाएगा क्योंकि मूल को देखने की आंख एक ही है। चाहे कृष्ण के मूल को देखना हो, चाहे अपने मूल को देखना हो और छाया को देखने वाली आंख भी एक ही है। चाहे कृष्ण की छाया देखनी हो या अपनी छाया देखनी हो।

यहां कुछ बातें ध्यान में ले लें। पहली : कि कृष्ण जो दिखाई पड़ते हैं—अर्जुन को दिखाई पड़ते थे, आपको मूर्ति में दिखाई पड़ते हैं। अब थोड़ा समझें कि आपकी मूर्ति तो प्रतिछबि की भी प्रतिछबि है। छाया की भी छाया है। वो तो बहुत दूर है। कृष्ण की जो आकृति हमने मंदिर में बना रखी है, वो तो बहुत दूर है कृष्ण से। क्योंकि खुद कृष्ण भी जब मौजूद थे शरीर में तब भी वे कह रहे हैं कि मैं ये नहीं हूं जो तुझे अभी दिखाई पड़ रहा हूं और इन आंखों से ही अगर देखना हो तो यही दिखाई पड़ेगा जो मैं दिखाई पड़ रहा हूं। नयी आंख चाहिये। प्राकृत नहीं—दिव्य चक्षु चाहिए। इन आंखों को प्राकृत कहा है, क्योंकि इनसे प्रकृति दिखाई पड़ती है। इनसे दिव्यता दिखाई नहीं पड़ती। इनसे जो भी दिखाई पड़ता है वो मैटर है—पदार्थ है और जो भी दिव्य है वो इनसे चूक जाता है। दिव्य को देखने का इनके पास कोई उपाय नहीं है। तो कृष्ण कहते हैं कि मैं तुझे अब वो आंख देता हूं जिससे तुझे मैं दिखाई पड़ सकूं। जैसा मैं हूं, अपने मूल रूप में अपनी मौलिकता में। प्रकृति में मेरी छाया नहीं, तू मुझे देख। लेकिन तब मैं तुझे नयी आंख देता हूं।

यहां बहुत से सवाल उठना स्वाभाविक हैं कि क्या कोई और आदमी किसी को दिव्य आंख दे सकता है ? कि कृष्ण कहते हैं कि मैं तुझे दिव्य चक्षु देता हूं ! क्या ये सम्भव है कि कोई आपको दिव्य चक्षु दे सके ? और अगर कोई आपको दिव्य चक्षु दे सकता है तब तो फिर अत्यंत कठिनाई हो जाएगी। कहां खोजिएगा कृष्ण को जो आपको दिव्य चक्षु दें। और अगर कोई आपको दिव्य चक्षु दे सकता है तो कोई आपके दिव्य चक्षु ले भी सकता है। और अगर कोई दूसरा आपको दिव्य चक्षु दे सकता है तो फिर आपके करने के लिए क्या बचता है ? कोई देगा प्रभु की अनुकंपा होगी कभी तो हो जायेगा, फिर आपके लिए प्रतीक्षा के सिवाय कुछ भी नहीं है। फिर आपके लिए संसार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

समर्पण : दिव्य चक्षु का मार्ग

इस पर बहुत सी बातें सोच लेनी जरूरी हैं। पहली बात तो ये कि कृष्ण ने जब कहा कि मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूं इसके पहले अर्जुन अपने को पूरा समर्पित कर चुका है। रत्ती मात्र भी अपने को पीछे नहीं बचाया। अगर कृष्ण अब मौत भी दें तो अर्जुन उसके लिए भी राजी है। अब अर्जुन का अपना कोई आग्रह नहीं है। आदमी जो सबसे बड़ी साधना कर सकता है वह समर्पण है—और जैसे ही कोई व्यक्ति समर्पित कर देता है पूरा—तब कृष्ण को चक्षु देने नहीं पड़ते—ये सिर्फ भाषा की बात है कि मैं तुझे चक्षु देता हूं। जो समर्पित कर देता है उस समर्पण की घड़ी में ही चक्षु का जन्म हो जाता है। लेकिन शायद कृष्ण की मौजूदगी वहां न हो तो अड़चनें हो सकती हैं, क्योंकि कृष्ण कैटेलेटिक एजेंट का काम कर रहे हैं। जो लोग विज्ञान की भाषा से परिचित हैं वे कैटेलेटिक एजेंट का अर्थ समझते हैं। कैटेलेटिक एजेंट का अर्थ होता है जो खुद करे न कुछ लेकिन जिसकी मौजूदगी में कुछ हो जाय। वैज्ञानिक कहते हैं कि हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलके पानी बनता है। अगर आप हाइड्रोजन आक्सीजन को मिला दें तो पानी नहीं बनेगा। लेकिन अगर आप पानी को तोड़ें तो हाइड्रोजन और आक्सीजन बन जायगी। अगर आप पानी की एक बूंद को तोड़ें तो हाइड्रोजन आक्सीजन आपको मिलेगी और कुछ नहीं मिलेगा। स्वभावतः इसका नतीजा यह होना चाहिए कि अगर हम हाइड्रोजन आक्सीजन को जोड़ दें तो पानी बन जाना चाहिए। लेकिन बड़ी मुश्किल है, तोड़ें तो सिर्फ हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलती है जोड़ें तो पानी नहीं बनता। जोड़ने के लिए बिजली की मौजूदगी जरूरी है और बिजली उस जोड़ में प्रवेश नहीं करती—मौजूद होती है, जस्ट प्रजेंट, सिर्फ मौजूदगी चाहिए बिजली की। बिजली मौजूद हो तो हाइड्रोजन-आक्सीजन मिलके पानी बन जाता है। बिजली मौजूद न हो तो हाइड्रोजन-आक्सीजन मिलके पानी नहीं बनता। वो जो बरसात में आपको बिजली चमकती दिखाई पड़ती है वो कैटेलिक एजेंट है उसके बिना वर्षा नहीं होती। उसकी वजह से वर्षा हो रही है। लेकिन वो पानी में प्रवेश नहीं करती, वो सिर्फ मौजूद होती है।

ये कैटेलिटिक एजेंट की धारणा बड़ी कीमती है और अध्यात्म में तो बहुत कीमती है, गुरु कैटेलिटिक एजेंट है। वो कुछ देता नहीं, क्योंकि अध्यात्म

कोई ऐसी चीज नहीं कि दी जा सके। वो कुछ करता भी नहीं, क्योंकि कुछ करना भी दूसरे के साथ हिंसा करना है। जबरदस्ती करनी है। वो सिर्फ होता है मौजूद, लेकिन उसकी मौजूदगी काम कर जाती है, उसकी मौजूदगी जादू बन जाती है। सिर्फ उसकी मौजूदगी। और आपके भीतर कुछ हो जाता है, जो उसके बिना शायद न हो पाए। पहली तो बात यह है कि कृष्ण न हों तो समर्पण बहुत मुश्किल है। इसलिए मैं मानता हूं कि अर्जुन को समर्पण जितना आसान हुआ होगा मीरा को उतना आसान नहीं हुआ होगा। इसलिए मीरा की कीमत अर्जुन से ज्यादा है। क्योंकि कृष्ण सामने मौजूद हों तब समर्पण करना आसान है। कृष्ण बिलकुल सामने मौजूद न हों तब दोहरी दिक्कत है। पहले तो कृष्ण को मौजूद करो फिर समर्पण करो। मीरा को दोहरे काम करना पड़े। पहले तो कृष्ण को मौजूद करो: अपनी ही पुकार, अपनी ही अभीप्सा, अपनी ही प्यास से निर्मित करो, बुलाओ, निकट लाओ। ऐसी घड़ी आ जाय कि कृष्ण मालूम पड़ने लगें कि मौजूद हैं, रत्ती मात्र फर्क न रह जाय कृष्ण की इस मौजूदगी में और इसमें। दूसरों को लगेगी कल्पना कि मीरा कल्पना में पागल है: नाच रही है किसके पास। जो देखते हैं उन्हें कोई दिखाई नहीं पड़ता। और ये जो मीरा गा रही है और नाच रही है किसके पास। मीरा की आंखों में जो देखते हैं उन्हें लगता है कि कोई न कोई मौजूद जरूर होना चाहिए। या फिर मीरा पागल है। जो नहीं समझते उनके लिए मीरा पागल है। क्योंकि कोई भी नहीं है और मीरा नाच रही है तो पागल है। जो नहीं समझते हैं वो समझते हैं कल्पना है। लेकिन अगर कल्पना इतनी प्रगाढ़ है, इतनी सृजनात्मक है कि कृष्ण मौजूद हो जाते हों तो जो कल्पनाशील हैं वे धन्यभागी हैं जिनकी कल्पना इतनी सशक्त है कि कृष्ण के और अपने बीच के ५ हजार सालों को मिटा देती है, अंतराल टूट जाता हो, और मीरा ऐसे खड़ी हो जाती हो जैसे अर्जुन खड़ा है। तो पहली तो कठिनाई जब मौजूद कृष्ण न हों तो उनको मौजूद करने की और अगर कोई अपने मन को उनको मौजूद करने में राजी हो जाये तो वो हर घड़ी मौजूद हैं, क्योंकि परम सत्ता तिरोहित नहीं होती सिर्फ उसके प्रतिबिंब तिरोहित होते हैं। परम सत्ता का मूल जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं कि अर्जुन तू देख सकेगा जब मैं तुझे आंख दूंगा वो मूल तो कभी नहीं खोता, प्रतिलिपियां खो जाती हैं। वो मूल कभी पानी में झलकता है और राम दिखाई पड़ते हैं, वो मूल कभी पानी में झलकता है और कृष्ण दिखाई पड़ते हैं। ये भेद भी पानी की वजह से पड़ता है—अलग अलग पानी, अलग अलग प्रतिबिंब

बनाते हैं। वो मूल एक ही बना रहता है। उस मूल का तो खोना कभी नहीं होता, वो आपके भी पार है। वो सदा आपके आस पास, आपको भी घेरे हुए है। जिस दिन आपकी कल्पना इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि आपकी कल्पना जल बन जाये, दर्पण बन जाये, उस दिन वो मूल फिर आप में प्रतिबिंब बना देता है। उसी प्रतिबिंब के पास मीरा नाच रही है। वो प्रतिबिंब मीरा को ही दिखाई पड़ रहा है क्योंकि वो उसने अपने ही कल्पना के जल में निर्मित किया है। किसी और को दिखाई नहीं पड़ रहा है। लेकिन जिनमें समझ है वो मीरा की आंख में भी उस प्रतिबिंब को पकड़ पाते हैं, वो मीरा की धुन और नाच में भी खबर मिलती है कि कोई पास है। क्योंकि मीरा जब उसके पास होने पर नाचती है तो फर्क होता है। मीरा के दो तरह के नाच हैं। एक तो वो कृष्ण को जब पकड़ नहीं पाती अपनी कल्पना में तब वो रोती है, तब वो उदास है, तब उसके पैर भारी हैं। तब वो चीखती है, चिल्लाती है। तब उसे जैसे मृत्यु घेर लेती है और एक वो घड़ी भी है, जब उसकी कल्पना प्रखर हो जाती है और कल्पना का जल स्वच्छ व साफ हो जाता है। और जब उस दर्पण में वो कृष्ण को पकड़ लेती है तब उसकी धुन और उसके पैरों की घुंघरू की आवाज और है। तब उसमें जैसे महा जीवन प्रवाहित हो जाता है। तब उसके रोयें-रोयें से जो गरिमा प्रगट होने लगती है—वो सूर्यों को फीका कर दे। तब वो और जैसे आविष्ट, जैसे कोई और उसमें प्रवेश कर गया है। जब वो रोती है विरह में तब उसकी उदासी, तब मीरा अकेली है, उसका प्रतिबिंब पकड़ में नहीं आ रहा है। और जब वो कहती है आनंद में, अहोभाव में—कृष्ण से बात करने लगती है—तब कृष्ण निकट हैं। उस निकटता में समर्पण-मीरा को कठिन पड़ा होगा अर्जुन को सरल रहा होगा। लेकिन उल्टी बात भी हो सकती है, जिन्दगी जटिल है। हो सकता है मीरा को ही सरल पड़ा हो, जो वास्तविक शरीर में खड़ा हो उसे परमात्मा मानना बहुत मुश्किल है। उसे भी प्यास लगती है, उसे भी भूख लगती है। वो भी रात सोता है वो भी स्नान न करे तो बदबू आती है। वो भी रुग्ण होगा, मृत्यु आयेगी। पदार्थ से बने अस्तित्व के लिए पदार्थ के नियम मानने पड़ेंगे चाहे वो कोई भी किसी का भी प्रतिबिंब क्यों न हो। तो उसे परमात्मा मान लेना कठिन पड़ जाता है और परमात्मा न मान सके तो समर्पण असंभव हो जाता है।

सवाल यह नहीं है बड़ा कि कृष्ण परमात्मा हैं या नहीं। सवाल तो बड़ा यह है कि जो उन्हें परमात्मा मान पाता है उसके लिये समर्पण आसान

हो जाता है। उसे समर्पण आसान हो जाता है। और जो समर्पण कर पाता है उसे परमात्मा कहीं भी दिखाई पड़ जाता है, इसे थोड़ा समझ लेंगे, जरा उल्टा है। कृष्ण का परमात्मा होना या न होना विचारणीय नहीं है, हों न हों। कोई तय भी नहीं कर सकता। कोई तय करने का रास्ता भी नहीं है, कोई परख का भी रास्ता नहीं है। लेकिन जो कृष्ण को परमात्मा मान पाता है उसके लिए समर्पण आसान हो जाता है। और जिसके लिए समर्पण आसान हो जाता है, उसे पत्थर में भी परमात्मा दिखाई पड़ जायगा, कृष्ण तो पत्थर नहीं हैं, उनमें तो दिखाई पड़ ही जायगा। अगर परमात्मा भी आपके सामने मौजूद हो और आप परमात्मा न मान पायें तो समर्पण न कर सकेंगे। समर्पण न कर सकें तो सिर्फ पदार्थ दिखाई पड़ेगा, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ सकता। समर्पण आपका द्वार खोल देता है।

कृष्ण ने अर्जुन को आंख दी वो सिर्फ उसी अर्थ में जैसा कैटेलिटिक एजेंट का अर्थ होता है। उनकी मौजूदगी में। कृष्ण ने दे नहीं दी, नहीं तो वो पहले ही दे देते। इतनी देर इतना उपद्रव, इतनी चर्चा करने की क्या जरूरत थी। इतना युद्ध को विलंब करवाने की क्या जरूरत थी। अगर कृष्ण ही आंख दे सकते थे बिना अर्जुन की किसी तैयारी के तो ये आंख पहले ही दे देते। इतना समय क्यों व्यर्थ खोया। नहीं, जब तक अर्जुन समर्पित न हो, ये आंख अर्जुन को नहीं आ सकती। समर्पित हो तो आ सकती है। लेकिन अगर कृष्ण मौजूद न हों तो भी बहुत कठिनाई है इसके आने में। बहुत बार ऐसा हुआ है कि निकट मौजूद न हो दिव्य व्यक्ति, तो लोग आखिरी किनारे से भी वापिस लौट आए हैं। क्योंकि कैटेलिटिक एजेंट नहीं मिल पाता। अनेक बार लोग उस घड़ी तक पहुंच जाते हैं जहां समर्पित हो सकते थे लेकिन कहां समर्पित हों—वो कोई दिखाई नहीं पड़ता। यदि उनकी कल्पना प्रखर और सृजनात्मक हो, अगर वे बड़े बलशाली चैतन्य के व्यक्ति हों और भावना गहन और प्रगाढ़ हो तो वो उस व्यक्ति को निर्मित कर लेंगे जिसके प्रति समर्पित हो सकें। और नहीं तो वापिस लौट आयेंगे। बहुत से आध्यात्मिक साधक भी समर्पित नहीं हो पाते और तब अधूरे में लटके फिरते हैं क्योंकि भ्रांति रह जाती है।

गुरु का उपयोग यही है कि वो मौका बन जाय। मूर्ति का भी उपयोग यही है कि वो मौका बन जाये—मंदिर का, तीर्थ का भी उपयोग वही है कि मौका बन जाय। आपको आसानी हो जाय कि आप अपने सिर को झुका लें,

लेट जायें—खो जाय। अभी एक जर्मन युवती मेरे पास आई, लौटती थी सिक्किम से। वहां एक तिब्बती आश्रम में साधना करती थी ६ महीने से। मैंने उससे पूछा कि वहां क्या साधना तू कर रही है। उसने कहा कि अभी ६ महीने तक तो नमस्कार करना ही सिखाया गया है। सिर्फ नमस्कार करना, ६ महीने कैसे इसमें व्यतीत हुए होंगे। उसने कहा कि दिन भर करना पड़ता था, जो भी २०० भिक्षु हैं उस आश्रम में, कोई भी दिखाई पड़े तत्क्षण लेटकर साष्टांग दंडवत करना पड़ता है। दिन में ऐसा कभी १ हजार दफे भी हो सकता है कभी २ हजार दफे भी हो सकता है। बस इतनी साधना थी अभी उनके पास। इस साधना से हुआ क्या...उसने कहा अद्‌भुत हो गया। मैं हूं इसका मुझे ख्याल ही बिसर गया, एक नमस्कार का सहज भाव भीतर बैठ गया और पहले तो ये देखके नमस्कार करती थी कि जिसे कर रही हूं नमस्कार वो नमस्कार के योग्य है या नहीं। अब तो कोई भी हो सिर्फ निमित्त है नमस्कार करने में। और अब बड़ा मजा आ रहा है, अब तो जो आश्रम में भिक्षु भी नहीं है जिनको नमस्कार करने की कोई जरूरत नहीं है उनको भी नमस्कार कर रही हूं। और कभी कभी आश्रम के बाहर चली जाती हूं और वृक्षों को, चट्टानों को भी नमस्कार करती हूं। अब ये बात गौण है कि किसको नमस्कार की जा रही है, अब ये बात महत्वपूर्ण है कि नमस्कार में परम आनंद से भर जाती हूं।

नमस्कार अहंकार का विरोध है—झुक जाना अहंकार की मौत है। जो नहीं झुक पाता वो कितना भी पवित्र हो जाये, सिद्ध हो जाये, चरित्र-आचरण सब अर्जित कर ले, ब्रह्मचर्य फलित हो जाये, अहिंसक हो जाए, सत्यवादी हो जाए, लेकिन न झुक पाए तो भी आंख नहीं खुलेगी। अब उसके लिए ये सारी पवित्रता भी उसका अहंकार बन जाएगी। अब ये भी उसका दंभ होगा। और, इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि चरित्रवान, तथाकथित चरित्रवान—चरित्रहीनों से भी ज्यादा अहंकारी हो जाता है। और अहंकार से बड़ा उपद्रव नहीं है। अच्छा आदमी अक्सर अहंकारी हो जाता है, क्योंकि सोचता है मैं अच्छा हूं। इसलिए कभी-कभी ऐसा होता है कि पापी परमात्मा के पास जल्दी पहुंच जाते हैं बजाय साधुओं के, इसका ये मतलब भी नहीं कि आप साधु मत होना। इसका कुल मतलब इतना है कि साधु के साथ भी अहंकार हो तो रोकेगा और पापी के साथ अहंकार न हो तो पहुंचा देगा। इसका इतना ही मतलब हुआ कि अहंकार से बड़ा पाप

और कोई भी नहीं है। और निरहंकारिता से बड़ी कोई साधुता नहीं।

अर्जुन झुक गया, उसने कहा अब जो मर्जी, अब मैं राजी हूं। अब न मेरा कोई संदेह है न कोई सवाल है, अब तुम जो करना चाहो। तो कृष्ण ने कहा तुझे मैं अलौकिक चक्षु देता हूं। दिव्य चक्षु देता हूं।

दिव्य चक्षु के सम्बन्ध में थोड़ी बातें समझ लेना जरूरी हैं। थोड़ी कठिन है। क्योंकि हमें उसका कोई पता नहीं है। तो किस भाषा में कैसे उसे पकड़ें। अभी हम देखते हैं, अभी हम आंख से देखते हैं। रात आप सपना भी देखते हैं, कभी आपने ख्याल किया कि वो आप बिना आंख के देखते हैं। आंख तो बन्द होती है, आप सपना देख रहे हैं। बिना आंख के देख रहे हैं, अगर आपकी आंख फूट भी जाये, आप अंधे हो जायें—तो भी आप सपना देख सकेंगे। जन्मांध नहीं देख सकेगा और जन्मांध अगर देखेगा भी सपना तो उसमें आंख का हिस्सा नहीं होगा, कान का हिस्सा होगा, हाथ का हिस्सा होगा, सुनेगा सपने में, देख नहीं सकेगा। लेकिन अगर आप अन्धे हो जायें तो आप आंख के बिना भी सपने देख सकेंगे। सपना बिना आंख के देखते हैं, कौन देखता है। शायद आपने कभी सोचा नहीं—आंख के बिना भी देखना हो जाता है। अंधेरा होता है, आंख बन्द होती है—आप भीतर सपना देखते हैं। सपना रोशन होता है, जिनके पास थोड़ी कलात्मक रुचि है, वे रंगीन सपना भी देखते हैं। जो थोड़े कलाहीन हैं वे ब्लैक-व्हाइट देखते हैं, जो थोड़े कवि हैं, जिनके मन में काव्य है या चित्रकार जिनके भीतर छिपा है वो रंगीन भी देखते हैं। रंग भी दिखाई पड़ते हैं बिना आंख के। कान बन्द हों तो सपने में आवाज सुनाई पड़ती है और हाथ तो होते नहीं भीतर इसलिए सपने में स्पर्श होता है, गले मिलना होता है। एक बात तय है कि जो आपके भीतर देखने वाला है उसका आंख से कुछ बंधाव नहीं है, आंख से देखने की कोई अनिवार्यता नहीं है। आंख जरूरी नहीं है देखने के लिए। लेकिन बाहर देखने के लिए जरूरी है। भीतर देखने के लिए जरूरी नहीं है। भीतर तो आंख बन्द करके भी देखा जा सकता है। तो एक तो बात ख्याल में लें कि जो आंखें हमारी हैं, वो हमारी दर्शन की क्षमता नहीं है। केवल दर्शन को बाहर ले जाने वाले द्वार हैं, माध्यम हैं, हमारी देखने की क्षमता को बाहर ले जाने की व्यवस्था है। इंस्ट्रुमेंटल है, देखने वाला भीतर है।

दिव्य चक्षु का अर्थ होता है सिर्फ देखने वाला ही हो, बिना किसी माध्यम के। क्यों! क्योंकि माध्यम सीमा बनाता है, जिससे आप देखते हैं,

उससे आपकी सीमा बंध जाती है। जब कोई भी देखने का माध्यम न हो और देखने की शुद्ध क्षमता भीतर जागृत हो जाए तो जो दिखाई पड़ता है वो असीम है। ऐसा ही समझें कि आप एक छोटे से छेद से दीवाल के अपने घर के भीतर छिपे हुए, बाहर के आकाश को देखें। फिर आप दीवाल को तोड़ के और बाहर खुले आकाश के नीचे आकर खड़े हो जायें। अभी तक हमने अपने शरीर के भीतर छिपके जगत को आंखों के छेद से देखा है। इन आंखों का विस्मरण करके सिर्फ भीतर देखने वाला ही सजग हो जाए, सिर्फ देखने वाला ही रह जाय जिसको हम दृष्टा कहते हैं, साक्षी कहते हैं, सिर्फ चैतन्य भीतर रह जाये और कोई माध्यम न हो देखने का तो खुला आकाश प्रगट हो जाता है। वो देखने की शुद्ध क्षमता बिना माध्यम के, उसका नाम ही दिव्य चक्षु है। उसे दिव्य इसलिए कह रहे हैं कि फिर हम असीम को देख सकते हैं, फिर सीमा से कोई सम्बन्ध न रहा। ध्यान रहे वस्तुओं में सीमा नहीं है, हमारी इन्द्रियों के कारण दिखाई पड़ती है। इस जगत में कुछ भी सीमित नहीं है, सब असीम है। लेकिन हमारे पास देखने का जो उपाय है, वह सभी पर सीमा बिठा देता है। ये ऐसा है जैसे कोई एक आदमी रंगीन चश्मा लगा कर देखना शुरू कर दे सब चीज रंगीन हो जाती हैं। और अगर हम जन्म के साथ ही रंगीन चश्मे को लेकर पैदा हुए हों तो हमें ख्याल भी नहीं आ सकता कि चीजें रंगीन नहीं हमारे चश्मे के दिए गए रंग हैं।

हम जो भी अपने चारों तरफ देख रहे हैं, वो वही नहीं है जो है। हम वही देख रहे हैं जो हम देख सकते हैं। हम वही सुन रहे हैं जो सुन सकते हैं। हम वही अनुभव कर रहे हैं जो हम अनुभव कर सकते हैं। चुनाव कर रहे हैं हम—सिलेक्टिव है हमारा सारा अनुभव, क्योंकि हमारी सारी इन्द्रियां चुनाव कर रही हैं। अभी वैज्ञानिक इस पर बहुत अध्ययन करते हैं तो वो कहते हैं कि १०० में से हम केवल २ प्रतिशत देख रहे हैं। जो भी हमारे चारों तरफ घटित होता है उसमें ९८ प्रतिशत हमें पता ही नहीं चलता। उसे हम सुनते ही नहीं। वो हमसे छूट ही जाता है।

इसे हम थोड़ा ऐसे समझें कि आप एक रास्ते से भागे चले जा रहे हैं और आपके घर में आग लगी है। उसी रास्ते से आप रोज गुजरते हैं, आज भी गुजर रहे हैं। रास्ते में वही बातें आप नहीं देखेंगे जो आप रोज देखते हैं। एक सुन्दर स्त्री पास से निकलेगी आपको पता ही नहीं चलेगा। ऐसा बहुत

बार आपने चाहा था कि ऐसी घड़ी आ जाए किसी दिन कि सुन्दर स्त्री पास से निकले और पता न चले, वो घड़ी कभी नहीं आई लेकिन आज मकान में आग लग गई है तो घड़ी आई है। सुन्दर स्त्री पास से निकलती है तो आपकी स्थिति वही नहीं है जो बुद्ध की रही होगी। अभी आपको बिलकुल दिखाई नहीं पड़ती है, लेकिन बुद्ध को मकान में बिना आग लगे, आपको मकान में आग लगे तब। क्या हो गया है : आंखें वही हैं, कान वही हैं, रास्ते पर एक गीत चल रहा है, आज सुनाई नहीं पड़ता। कोई नमस्कार करता है कितनी दफे चाहा था कि ये आदमी नमस्कार करे और इस नासमझ को आज नमस्कार करने का अवसर मिला, वो आज दिखाई नहीं पड़ता। आज मकान में आग लगी है, आपकी सारी चेतना एक तरफ दौड़ गई है, आपकी सारी इन्द्रियां निःस्तेज हो गई हैं, कोई भी इन्द्रिय से आपकी चेतना का सहयोग नहीं रहा है, टूट गया है। आंख से देखने के लिए आपके पीछे आपकी मौजूदगी जरूरी है, आज आपकी मौजूदगी यहां नहीं है, मकान में आग लगी है वहां मौजूद है। आंख से अब आप भाग रहे हैं, आंख से अब आप इतना ही काम ले रहे हैं, कि किस तरह आप अपने मकान के पास पहुंच जायें जहां आपकी चेतना पहले ही पहुंच गई है। इस शरीर को उस मकान के पास तक पहुंचा दें जहां आपका मन पहले ही पहुंच गया है। बस इतना इस आंख से काम लेना, बाकी कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। ऐसा समझें कि रास्ते पर ९८, ९९ प्रतिशत चीजों के लिए आप अंधे हो गए हैं सिर्फ १ प्रतिशत आंख का काम रह गया है। संसार से जब कोई १०० प्रतिशत अंधा हो जाता है, तो दिव्य चक्षु उत्पन्न होता है। लेकिन वो जो १ प्रतिशत भी है वो भी काफी है। जोड़ तो बना ही हुआ है! और १ प्रतिशत के पीछे फिर वापिस ९९ प्रतिशत लौट आएगा। जब कोई संसार के प्रति १०० प्रतिशत अनुपस्थित हो जाता है, इस अनुपस्थिति का पारिभाषिक नाम वैराग्य है। वैराग्य का ये मतलब नहीं कि घर को छोड़के कोई भाग जाए, छोड़ने में भी राग है, छोड़ने में भी घर की पकड़ है। क्योंकि जो पकड़े है वही छोड़ता है। आप छोड़ने की कोशिश करते हैं इसका मतलब है पकड़ भारी है। और छोड़कर जो भाग जाता है उसके भागने में उतनी ही गति होती है जितनी पकड़ मजबूत होती है। क्योंकि वो डरता है कि कहीं खींच न लिया जाऊँ। जोर से भाग जाऊँ—सब बीच के सेतु तोड़ दूं कि लौटने का कोई रास्ता न रहे। सब रास्ते गिरा दूं कि फिर वापिस न लौट सकूं। लेकिन ये सब भय वैराग्य नहीं है। वैराग्य का

मतलब तो इतना ही है कि संसार जहां है-वहां है। न मैं इसे छोड़ता हूं न पकड़ता हूं। सिर्फ, मैं उसके प्रति मेरी जो चेतना सभी इन्द्रियों से दौड़ती थी उसके प्रति उससे वापिस लौट आता हूं। चेतना का प्रतिक्रमण उसकी वापिसी, उसका लौट आना, बस इतना ही वैराग्य का अर्थ है। अगर आंख भी राजी हो जाए, तो दिव्य चक्षु खुल जाता है।

समर्पण कोई करता ही तब है जब संसार में रस न रह जाये। इसे थोड़ा समझ लें। संसार में थोड़ा भी रस हो तो समर्पण नहीं हो सकता। थोड़ी भी वासना हो तो हम कहेंगे, वासना का मतलब ही होता है कि हम चाहेंगे कि ऐसा हो, समर्पण का मतलब होता है कि अब मैं कहता हूं जैसा परमात्मा चाहे—अगर मेरे भीतर जरा सी भी वासना है तो मैं कहूंगा कि सब कर सकता हूं बस परमात्मा इतना मेरे लिए कर देना, बाकी सब समर्पण है—ताकि ये मकान मुझे मिल जाए, इतनी शर्त।

सुना है मैंने फकीर जुन्नैद एक दिन प्रार्थना कर रहा है, और परमात्मा से वो कह रहा है कि वर्षों हो गए तेरी पुकार, तेरी प्रार्थना के गीत गाते, सब तुझ पर छोड़ दिया। मेरे लिए तेरे सिवाय और कुछ भी नहीं। एक बात पूछनी है—ये तो मेरी भावना है कि मेरे लिए तेरे सिवाय और कुछ भी नहीं है, तुझसे भी मैं पूछना चाहता हूं कि मेरी तरफ तेरी क्या नजर है? वो तो मेरा ख्याल है कि मेरे लिए तेरे सिवाय और कोई भी नहीं है। तेरी क्या नजर है मेरी तरफ, इसका भी तो पता चले। तो कहते हैं आवाज जुन्नैद को सुनाई पड़ी कि इसी वासना के कारण तू मुझसे दूर है। इतनी सी वासना भी, तेरा इतना भी आग्रह कि आपका क्या ख्याल है मेरे प्रति—अभी तू अपने को पकड़े हुए है। तूने अपने को छोड़ा नहीं, तूने पूरा नहीं छोड़ा। अभी आखिर में तू मौजूद है। और जानना चाहता है कि परमात्मा मेरे बावद क्या सोचता है। केन्द्र में तू ही है अभी परमात्मा परिधि पर है।

इतनी सी वासना भी बाधा है, समर्पण तो वही कर पाएगा जिसको संसार में कुछ अर्थ नहीं रहा। शायद अर्जुन इस घड़ी में आ गया। अब उसे कुछ अर्थ दिखाई नहीं पड़ता। वो सारा युद्ध-स्थल, वो सारे लोग सब खो गए, सब स्वप्न हो गए। वो कहता है मैं सब छोड़ने को राजी हूं। अगर आप चाहते हैं और शक्य हो और उचित मानें तो मुझे दिखा दें। इस समर्पण की घड़ी में कृष्ण ने कहा कि तुझे मैं दिव्य अलौकिक चक्षु देता हूं। क्यों कहा देता हूं—भाषा की मजबूरी है। भाषा में सब तरफ द्वन्द्व है। भाषा में जो

भी कहा जाय वह द्वैत हो जाता है। अगर कृष्ण ऐसी भाषा बोलें जो कि द्वैत न हो तो अर्जुन की समझ में नहीं आएगा। अभी तो नहीं आएगा। अभी दिव्य चक्षु तो मिला नहीं, अभी तो भाषा लेने-देने की बोलना पड़ेगी। हम भी भाषा में जब किसी ऐसे अनुभव को रखते हैं जो भाषा के पार है तो अड़चन आनी शुरू होती है।

आप किसी को कहते हैं कि मैं तुम्हें प्रेम देता हूं। पर आपने कभी ख्याल किया कि प्रेम क्या दिया जाता है या आप चाहते तो देने से क्या रोक सकते थे। प्रेम होता है, दिया नहीं जा सकता। या फिर कोशिश करके देखें किसी को प्रेम दे के, कि चलो इसको कोशिश करें, अभ्यास करें कि प्रेम दें। तब आप पायेंगे कि कुछ नहीं हो रहा। कुछ हो ही नहीं रहा, प्रेम की कोई उर्जा प्रगट नहीं होती, कोई किरण नहीं जगती, कोई धुन पैदा नहीं होती, कुछ नहीं होता। आप नकल कर सकते हैं, अभिनय कर सकते हैं, लेकिन प्रेम नहीं दिया जा सकता। प्रेम होता है। यद्यपि हम भाषा में कहते हैं कि प्रेम देते हैं, वो देना गलत है। मगर भाषा ठीक है। भाषा में कोई अड़चन नहीं है क्योंकि सारी भाषा लेने देने पर निर्मित है। और प्रेम देने के बाहर है। इसलिए जीसस ने कहा कि 'प्रेम ही परमात्मा है।' और किसी कारण से नहीं, इसलिए नहीं कि परमात्मा बहुत प्रेमी है। सिर्फ इसलिए कि मनुष्य के अनुभव में प्रेम एक अद्वैत का अनुभव है उससे समझ में आ जाय शायद। जैसा कि प्रेमी को कठिन हो जाता है कहना कि देता हूं, होता है—जैसे स्वांस चलती है, ऐसा प्रेम चलता है। शायद स्वांस को तो हम रोक भी सकते हैं थोड़ी देर, प्रेम को हम रोक भी नहीं सकते। शायद स्वांस को हम बाहर भी जोर से फेंक सकते हैं, लेकिन प्रेम को हम जोर से फेंक भी नहीं सकते। हम प्रेम के साथ कुछ भी नहीं कर सकते। इसलिए प्रेमी एकदम असहाय हो जाता है, हेल्पलैस हो जाता है, उस समय कुछ भी नहीं कर सकता, उससे बड़ी शक्ति ने उसे पकड़ लिया। इसलिए प्रेमी हमें पागल मालूम पड़ने लगता है क्योंकि वो सारा नियंत्रण खो देता है। अब वो कुछ कर नहीं सकता, कुछ और उसमें हो रहा है जिसमें उसे बहना ही पड़ेगा। और किसी बड़ी धारा ने उसे पकड़ लिया, जिसमें कुछ करने का उपाय नहीं है—तैर भी नहीं सकता। इसलिये जो समझदार हैं: तथाकथित समझदार, वो प्रेम करने से बचते हैं, नहीं तो कंट्रोल खो जाता है। नियंत्रण खो जाता है। समझदार पैसे की फिक्र करते हैं, प्रेम की नहीं क्योंकि पैसे पर नियंत्रण हो सकता है,

लिया दिया जा सकता है, तिजोड़ी में रखा जा सकता है, जरूरत हो वैसा उपयोग किया जा सकता है।

प्रेम आपसे बड़ा साबित होता है। ध्यान रहे प्रेम प्रेमी से बड़ा साबित होता है, प्रेमी छोटा पड़ जाता है और प्रेम बड़ा हो जाता है। प्रेमी एक तूफान एक अंधड़ में फंस जाता है। कोई बड़ी ताकत, उससे बड़ी ताकत उसे चलाने लगती है—प्रेमी असहाय हो जाता है। फिर भी प्रेमी भाषा में कहता है मैं प्रेम देता हूं। ठीक ऐसे ही कृष्ण ने कहा है कि मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूं। कृष्ण चाहते भी और अर्जुन का समर्पण पूरा होता तो दिव्य चक्षु देने से रुक नहीं सकते—यह ख्याल में ले लें। चाहते भी तो दिव्य चक्षु देने से रोका नहीं जा सकता था। कृष्ण का होना पास और अर्जुन का समर्पण—दिव्य चक्षु घटता ही। वैसे ही घटता जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है। ऐसे ही परमात्मा भी अर्जुन की तरफ बहता ही, कोई उपाय नहीं है। लेकिन जरा अजीब-सा लगता कि कृष्ण कहते कि दिव्य चक्षु तुझमें घटित हो रहा है। वो अर्जुन की समझ के बाहर होता। सच ही देना नहीं है वो एक घटना है। लेकिन भाषा हमेशा अद्वैत को द्वैत से जोड़ देती है। और जहां दो हो जाते हैं वहां लेना-देना हो जाता है। इसलिए, प्रेम को दिया-लिया नहीं जा सकता क्योंकि वहां दो नहीं रह जाते : कौन दो—वहां एक ही रह जाता है। समर्पण की इस घड़ी में अर्जुन मिल गया कृष्ण की सत्ता के साथ—सागर बूंद की तरफ दौड़ पड़ा, आंख खुल गई—सीमायें टूट गई। सब ढांचे गिर गए—खुले आकाश को वो देख सका।

परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप

संजय ने कहा : हे राजन ! महायोगेश्वर और सब पापों के नाश करने वाले भगवान ने इस प्रकार कहकर उसके उपरान्त अर्जुन के लिए परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखलाया।

बड़े मजे की कहानी है और इसमें कई तल सत्य की खबर में विभक्त हो जाते हैं, बंट जाते हैं। घटना घटी कृष्ण के भीतर से अर्जुन के भीतर की तरफ। घटी। की नहीं गई। हुई। हुआ—कि अर्जुन खो गया। उसकी सब पखुड़ियां खुल गईं चेतना की ओर देख सका।

ये संजय अन्धे धृतराष्ट्र को सुना रहा है। संजय बहुत दूर है, जितने दूर हम हैं—कृष्ण से उतने ही दूर। हमारी दूरी समय की है उसकी दूरी स्थान की है, बाकी दूरी में कोई फर्क नहीं पड़ता। दूरी थी। बहुत दूरी। सत्य जब भी घटता है तो जिनको सत्य घटता है उनसे समय और स्थान बहुत दूर हो जाते हैं। तब उनकी खबर लाने वाला हमारे बीच में कोई होना चाहिए अन्यथा खबर नहीं आ सकेगी—हम अन्धे के पास खबर आ भी कैसे सकेगी ? महावीर को घटना घटी, महावीर बोलते नहीं थे, उनके गण-धर उनके संदेशवाहक बोलते। महावीर चुप रह जाते—महावीर और हमारे बीच में एक संदेशवाहक की—गणधर की जरूरत है। वह बीच का संदेश-वाहक है, उसमें दो गुण होना चाहिए : उसे आधा हम जैसा होना चाहिए और आधा उस तरफ कृष्ण-महावीर की चेतना की तरफ होना चाहिए। आधा-आधा—बीच में होना चाहिए।

संजय थोड़ी दूर तक अर्जुन जैसा है—थोड़ी दूर तक—पूरा होता तो वो घटना अन्धे धृतराष्ट्र को नहीं सुना सकता। आधा कृष्ण जैसा है—आधा अर्जुन जैसा है। आधा झुका है उस तरफ, उसे चीजें दिखाई पड़ती हैं जो बहुत दूर घट रही हैं, वो पकड़ पाता है। उसके पास दिव्य चक्षु नहीं हैं—क्योंकि दिव्य चक्षु तो पूरी घटना में घटता है वो अर्जुन को घट रहा है। संजय के पास नहीं है। अनेक लोगों को विचारणीय रहा है कि संजय इतनी दूर से कैसे देख सका, उसके पास टैलीपैथिक : सिर्फ दूरदृष्टि, दिव्य दृष्टि नहीं—दूर दृष्टि है। जो अनुभव को उपलब्ध होता है उसे तो दिव्य दृष्टि उपलब्ध होती है, जो अनुभव और गैर-अनुभवों के बीच में खड़ा होता है उसके पास दूर-दृष्टि उपलब्ध होती है। वो देख पा रहा है, दूर की घटना है, बहुत दूर घट रही है पर वो पकड़ पा रहा है और पकड़ वो किसके लिए रहा है: अंधे धृतराष्ट्र के लिए। वो अंधे धृतराष्ट्र को समझा रहा है, इसलिए और कठिनाई है। ध्यान रहे ये जो गीता की भाषा है वह संजय की भाषा है। वो शब्द संजय के हैं। और ये शब्द भी संजय के लिए एक अंधे की समझ में आ सकें इस लिहाज से बोले गए हैं। इसलिए कई तल हैं—घटना का तल है एक तो कृष्ण और फिर दूसरे तल पर निकट में खड़ा हुआ है अर्जुन, फिर बहुत दूरी पर खड़ा हुआ संजय है और फिर अनंत दूरी पर बैठा हुआ अंधा धृतराष्ट्र है। तो गीता ये चार चरणों में चलती है। हम सब धृतराष्ट्र हैं। अंधे—यहां हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। तो धृतराष्ट्र पूछता है संजय से

और संजय, दूर की घटना को बांध रहा है शब्दों में। स्वाभाविक है संजय के शब्द अधूरे होंगे और इसलिए भी अधूरे होंगे क्योंकि अंधे को समझना है। इसलिए ध्यान रहे—गीता बहुत लोकप्रिय हो सकी उसका कारण है कि हम अंधों की थोड़ी-थोड़ी समझ में आती है। लोग मेरे पास आते हैं कहते हैं कि गीता से ज्यादा लोकप्रिय कुछ भी और क्यों नहीं है? हमारे पास और अद्‌भुत ग्रंथ हैं, बहुत अद्‌भुत ग्रंथ हैं हमारे पास—पर गीता क्यों इतनी लोकप्रिय हो सकी। तो मैं कहता हूं: धृतराष्ट्रों के कारण वो जो अंधे हैं उनकी समझ में आ सके। संजय ने उनके योग्य शब्द उपयोग किए हैं। तो जब तक दुनिया में अंधे हैं तब तक गीता की लोकप्रियता में कोई कमी पड़ने वाली नहीं है। और दुनिया में अंधे सदा रहेंगे, इसलिए लोकप्रियता सदा रहेगी। जिस दिन दुनिया में अन्धे न हों उस दिन संजय की बातें बचकानी मालूम पड़ेंगी या जो अन्धा नहीं रह जाता, जिसकी आंख खुल जाती है, उसको लगता है कि संजय धृतराष्ट्र के लिए बोल रहा है।

संजय के बोलने में कुछ खबर तो है सत्य की लेकिन कुछ असत्य का मिश्रण भी है क्योंकि वो अन्धे की समझ में तभी आ सकेगा। शुद्ध सत्य अन्धे की समझ में नहीं आ सकता। ये मीठा प्रतीक है धृतराष्ट्र का, इसे ख्याल में ले लें। संजय ने कहा: ऐसा कहने के बाद अर्जुन के लिये कृष्ण ने परम ऐश्वर्य युक्त दिव्य स्वरूप दिखाया।

जो पहली बात कही है वह ऐश्वर्य युक्त स्वरूप है। वह भी कृष्ण ने अर्जुन की तैयारी के लिए। क्योंकि परमात्मा के सभी रूप हैं। वो जो विकराल भयंकर कुरूप है, वो भी परमात्मा है। और ये जो सुंदर, ऐश्वर्य-युक्त महिमावान है—वो भी परमात्मा है। इस संबंध में भारतीय दृष्टि को ठीक से समझ लेना जरूरी है। भारत ये नहीं कहता कि कुछ बुरा जो है वो परमात्मा नहीं है। सारी दुनिया में दूसरे धर्म बांट देते हैं जगत को दो हिस्सों में। एक तरफ शैतान को खड़ा कर देते हैं: जो-जो बुरा है वो शैतान की तरफ और जो-जो अच्छा है वो भगवान की तरफ। भगवान उनके लिए अच्छे-अच्छे का जोड़ है। और शैतान बुरे-बुरे का। लेकिन तब वो समझा नहीं पाते कि बुरा क्यों है? और तुम्हारा ये जो अच्छा भगवान है अब तक बुरे को नष्ट क्यों नहीं कर पाया, और अगर अब तक नहीं कर पाया तो कब तक कर पायेगा। और जो अब तक नहीं कर पाया और अनंत काल व्यतीत हो गया तो संदेह पैदा होता है कि वो कभी भी कर पाएगा। क्योंकि

अब तक कर लिया होता अगर कर सकता होता। नीत्से ने कहा कि जो कुछ भी हो सकता था दुनिया में वो हो चुका होना चाहिए, कितने अनंत काल से दुनिया है—अब क्या आशा रखने की जरूरत है। ठीक कहा। इतने अनंत काल से जगत है कि जो भी होना चाहिए था वो हो चुका होगा, और अगर अब तक नहीं हुआ है तो कभी नहीं होगा। बड़ी कठिनाई है जिन धर्मों ने; जैसे जरथुस्त ने दो हिस्सों में बांट दिया, जीसस ने दो हिस्सों में बांट दिया, मोहम्मद ने दो हिस्सों में बांट दिया। ऐसा मालूम होता है कि इनको भी शायद ये अनुभव के लिए बांटना पड़ा होगा। और शायद उनके पास बड़े मजबूत अन्धे रहे होंगे आसपास। बड़े-अन्धे, वो अद्वैत की भाषा नहीं समझ सकते—ऐसा लगता है कि मोहम्मद के आसपास जो समूह था वो निपट अन्धा समूह रहा होगा, असंस्कृत-खूंख्वार, मरने और मारने की भाषा उनकी समझ में आती होगी। मोहम्मद को जो भाषा बोलना पड़ी है इन धृतराष्ट्रों के लिए, मजबूत धृतराष्ट्रों के लिए। ये जो संजय को धृतराष्ट्र मिले काफी विनम्र रहे होंगे, तैयारी रही होगी तो द्वैत की भाषा बोलना पड़ी। तो जिन धर्मों ने दो में बांट दिया है, उनके लिए बड़ा सवाल खड़ा हो गया है कि बुराई फिर है क्यों? और परमात्मा की बिना अनुमति के अगर बुराई हो सकती है तो जगत में परमात्मा से भी बड़ी ताकत है। और अगर परमात्मा की अनुमति से ही बुराई हो रही है तो फिर परमात्मा को अच्छा कहने का क्या प्रयोजन? भारत ने बड़ी हिम्मत की, भारत ने स्वीकार किया है कि बुरा भी परमात्मा है—भला भी परमात्मा है। भारत ये कहता है कि सारा द्वैत परमात्मा है। उसको दो में हम बांटते हैं—जन्म को हम परमात्मा कहते हैं, मृत्यु को भी। और हम सुख को भी परमात्मा कहते हैं और दुख को भी। और हम सत्य को भी परमात्मा कहते हैं और संसार को भी। ये दो छोर हैं एक के ही। जो उस एक को जान लेता है, उसके लिए ये दो तिरोहित हो जाते हैं। जो उस एक को नहीं जानता—वो उन दो के बीच परेशान होता रहता है। परेशानी इसलिए है कि हम एक को नहीं जानते। परेशानी बुराई के कारण नहीं है, परेशानी इसलिए है कि हम बुराई और भलाई दोनों के बीच जो छिपा है एक उससे हमारी कोई पहचान नहीं है। परेशानी मौत के कारण नहीं है। परेशानी इसलिए है कि जीवन और मौत दोनों में जो छिपा है एक, उससे हमारी कोई पहचान नहीं है। इसलिए मौत से परेशानी है। पाप से परेशानी नहीं है, पाप से परेशानी इसलिए है कि पाप और पुण्य दोनों

में जो छिपा है : उस एक की हमें कोई झलक नहीं मिलती। पुण्य में नहीं मिलती, तो पाप में कैसे मिलेगी। पुण्य तक में नहीं दिखाई पड़ता वो तो पाप में हमें कैसे दिखाई पड़ेगा। अंधापन है वो हमारा। लेकिन कृष्ण शुरू करते हैं ऐश्वर्य युक्त रूप से—अर्जुन राजी हो गया। पहली दफा आंख खुलती है उस परम में और अगर पहली दफा ही विकराल दिखाई पड़ जाय—कुरूप दिखाई पड़ जाय, पहली दफा ही मृत्यु दिखाई पड़ जाय तो शायद अर्जुन सिकुड़कर वापिस सदा के लिए बंद हो जाय।

जिन लोगों ने भी कभी किन्हीं कारणों से कुछ गलत विधियों से परमात्मा का विकराल रूप देख लिया है, वो अनेक जन्मों के लिए मुश्किल में पड़ जाते हैं। वो रूप है। एक जर्मन विचारक ने एक किताब लिखी है 'द आइडिया आफ द होली', उस पवित्रतम का प्रत्यय और उसमें उसने दो रूप कहे हैं। एक उसका प्रीतिकर-सुंदर, एक उसका विकराल-कुरूप-खतरनाक। कोई खतरनाक रूप के पास अगर पहुंच जाता है किन्हीं गलत विधियों के कारण और पहली दफा पर्दा उठते ही उसका विकराल रूप दिखाई पड़ जाता है तो व्यक्ति जन्मों-जन्मों के लिए बन्द हो जाता है। फिर वो दिव्य चक्षु की हिम्मत नहीं जुटा पाता। इसलिए ध्यान रखना, कृष्ण ने जो पहला पर्दा उठाया : वो ऐश्वर्य का, महिमा का, सौंदर्य का, प्रीति का कि अर्जुन डूब जाए, आलिंगन करना चाहे, लीन होना चाहे, एक हो जाना चाहे, ताकि फरार हो जाए। इसलिए जो ठीक-ठीक साधना पद्धतियाँ हैं और गलत साधना पद्धतियां भी हैं, गलत साधना पद्धति से इतना ही मतलब है कि आपको पहुंचा तो देंगी वो लेकिन ऐसे किनारे पर पहुंचा देंगी जहां परमात्मा से भी आपका तालमेल होना मुश्किल हो जाएगा। ठीक साधना पद्धति से इतना ही मतलब है कि वो ठीक सामने के द्वार पर आपको परमात्मा के पास पहुंचायेंगी, जहां मिलन सुखद, प्रीतिकर आनंदपूर्ण होगा। पीछे दूसरा छोर भी देखा जा सकता है। देखना ही पड़ेगा—क्योंकि पूरे को ही जानना होगा, तभी कोई मुक्त होता है। इसलिए गलत और ठीक साधना पद्धति का इतना ही फर्क है कि परमात्मा के किस द्वार से—वहां शंकर तांडव करते हुए भी मौजूद हैं और वहां कृष्ण बांसुरी बजाते हुए भी मौजूद हैं। अच्छा है कि कृष्ण की तरफ से यात्रा करें, शंकर की तरफ से भी यात्रा होती है और कुछ के लिए वही उचित होगी। और कुछ के लिए वही प्रीतिकर होगी, कुछ हैं कि जो शंकर की बारात में ही सम्मिलित होना चाहेंगे। वहां से भी परमात्मा तक पहुंचा

जा सकता है। लेकिन वो जो रूप है अत्यंत विकराल मृत्यु का, अत्यंत दुःस्साहसीयों के लिए—जो मृत्यु में भी छलाँग लगाने को तैयार हैं। आप तो अभी जीवन से भी डरते हैं—डर-डर कर जीते हैं, मृत्यु की तो बात अलग। डर-डर कर तो सभी मरते हैं, डर-डर कर जीते हैं। कंपते रहते हैं और जीते हैं। उनके लिए विकराल के निकट जाना खतरनाक हो जाएगा। इसलिए गीता बहुत व्यवस्था से आगे बढ़ती है।

संजय ने कहा : अर्जुन के लिए परम ऐश्वर्य युक्त, दिव्य स्वरूप दिखाया। और उस अनेक मुख तथा नेत्रों से युक्त, तथा अनेक अद्भुत दर्शनों वाले एवं बहुत-से दिव्य भूषणों से युक्त और बहुत-से दिव्य शस्त्रों को हाथ में उठाए हुए तथा दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किए हुए और दिव्य गंध का अनुलेपन किए हुए एवं सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, सीमा रहित, विराट-स्वरूप, परमदेव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा।

ये जितनी बातें वर्णन की गई हैं, ध्यान रखना अर्जुन के लिए यही प्रीतिकर थीं और इसलिए यही परमात्मा का पहला चेहरा था—अर्जुन के लिए। इसमें जितनी चीजें कही गई हैं—ये अर्जुन की ही प्रीति की चीजें हैं। इसे हम फिर से सुन लें तो ख्याल में आ जाएगा। परम ऐश्वर्ययुक्त, ईश्वर का अर्थ होता है मालिक, ऐश्वर्य से भरा हुआ। क्षत्री के लिए ईश्वर जैसा होना, ऐश्वर्य से भर जाना, उसकी पहली वासना है। क्षत्री जीता उसके लिए है, गुलाम होकर क्षत्री मरना पसंद करेगा, मालिक होकर ही जीना पसंद करेगा। ऐश्वर्य उसकी वासना है, उसकी आकांक्षा है, वो ऐश्वर्य की भाषा ही समझ सकता है। वो दूसरी कोई भाषा नहीं समझ सकता। इसलिए पहली जो छवि, पहला जो रूप, आविष्कृत हुआ अर्जुन के सामने, वो था ऐश्वर्य से परिपूर्ण, और ऐश्वर्य में भी जो चीजें गिनाई हैं—वो कई लोगों को लगेंगी, कैसी फिजूल की बातें हैं। खासकर उनको जो त्याग इत्यादि की भाषा सुन-सुनकर परेशान हो गए हैं, उनको बड़ी मुश्किल लगेगी, ये भी क्या बात है।

अनेक मुख तथा नेत्रोंयुक्त, अद्भुत दर्शनों वाले, बहुत से दिव्य भूषणों से युक्त, आभूषण पहने हुए, बहुत से दिव्य शस्त्रों को हाथ में उठाए हुए—वो अर्जुन की प्रीति की चीजें हैं। अगर उसको इस दरवाजे से प्रवेश न मिले तो शायद उसका प्रवेश मुश्किल हो जाय, असंभव हो जाए—कठिन तो हो ही जाए। वो जिन-जिन चीजों से प्रेम करता है—अस्त्र-शस्त्र—वो अर्जुन का

प्रेम है और जब उसने परमात्मा के अनंत-अनंत विराट हाथों में अस्त्र-शस्त्र देखे होंगे, उसका परमात्मा में प्रवेश धीमे-धीमे नहीं हुआ होगा, दौड़ के हो गया होगा—जैसे नदी डूबती है सागर में दौड़ के। दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किए हुए—वो भी अर्जुन की प्रीति की चीजें हैं। दिव्य गंध का अनुलेपन किए, सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, सीमा रहित, विराट-स्वरूप, परमदेव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा। अर्जुन मोहित हो गया, स्तब्ध हो गया। इस सौन्दर्य को देखकर विस्मृत हो गया होगा––सब कुछ, इसे देखकर उसकी श्वासें ठहर गई होंगी। इसे देखकर उसके प्राणों में हलचल मच गई होगी। इसे देखकर वो बिल्कुल शून्यवत हो गया होगा। यही उसकी वासना है, यही वो चाहता था। ये उसकी चाह की भाषा है। इसलिए, त्यागवादी परम्परा के लोगों को सुनकर बहुत हैरानी लगती है जो ईश्वर को ऐसी बातें कहते हैं। तो महावीर को जो नग्न पूजते हैं, उनको कृष्ण का सजा हुआ रूप बड़ा अप्रीतिकर लगता है। आभूषणों से भरा हुआ, उनको ऐसा लगता है, ये भी क्या नाटक है। तपस्वी होना चाहिये, ये कृष्ण भी क्या मोर-मुकुट बांधे हुए, हीरे-जवाहरात पहने हुए खड़े हैं। मगर जो कह रहा है : तपस्वी होना चाहिए, वो भी अगर ठीक से समझे तो वही उसकी भी भाषा है, और कृष्ण के प्रीतिकर रूप से उसको भी प्रवेश मिल सकता है। क्योंकि यही उसकी भी चाह है। इस चाह की ही भाषा में पहला अनुभव अर्जुन को हुआ। ध्यान रखना परमात्मा कैसा दिखाई पड़ेगा यह आप पर निर्भर करेगा कि कैसा उसे पहली दफा आप देखेंगे। वो परमात्मा पर निर्भर नहीं करेगा, वो आप पर निर्भर करेगा कि कैसा उसे आप देखेंगे। आप अपनी ही अनुभव की संपदा के द्वार से उसे देखेंगे, आप अपने ही द्वारा उसे देखेंगे। जो पहला रूप आपको दिखाई पड़ेगा, वो परमात्मा का रूप कम, आपकी समझ-भाषा का रूप ज्यादा है। ये अर्जुन की भाषा समझ का रूप है––जो उसे दिखाई पड़ा और धन्यभागी है वो व्यक्ति जिसे अपनी ही भाषा में परमात्मा से मिलना हो जाए, क्योंकि दूसरी भाषा में मिलना हो तो तालमेल नहीं बैठ पाता। कठिन है—शायद द्वार भी बन्द हो जायें।

गीता अध्याय ११ :

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥१३॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत ॥१४॥

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥१५॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समंताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥१७

प्रकाश के अस्तित्व का दर्शन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, क्रास मैदान, बंबई, संध्या : दिनांक ४ जनवरी ७३

तीसरा प्रवचन

अंश विराट को देखने का द्वार

एक मित्र ने पूछा है कि अर्जुन और कृष्ण के बीच घटी घटना अत्यन्त वैयक्तिक थी : संजय आधा अर्जुन था—उसे दिव्य चक्षु उपलब्ध नहीं थे, फिर संजय अधूरा होकर पूर्ण को कैसे निहार पाया। अंश विराट के दर्शन और वर्णन कैसे कर पाया ! संजय का वर्णन क्यों न कल्पना माना जाये ?

इस सम्बन्ध में कुछ बातें समझ लेना अत्यन्त उपयोगी है। पहली बात तो ये कि अंश से पूर्ण को पकड़ा नहीं जा सकता लेकिन छुआ जा सकता है। अंश से पूर्ण को पकड़ा नहीं जा सकता स्पर्श किया जा सकता है। मेरा हाथ मेरे शरीर को पूरा नहीं पकड़ सकता—क्योंकि हाथ शरीर का एक अंश है, लेकिन मेरे शरीर को स्पर्श कर सकता है। पूरे को न भी स्पर्श करे तो भी स्पर्श कर सकता है। हम इन छोटी-छोटी आंखों से विराट

को न पकड़ पायें लेकिन इन छोटी आंखों से जिसे भी हम पकड़ते हैं वो भी विराट का ही हिस्सा है। मेरे हाथ बहुत छोटे होंगे—पूरे आकाश को नहीं भर पाऊंगा अपनी बाहों में, लेकिन जिसे भी भर पाऊंगा वो भी आकाश ही है। संजय अधूरा है, इसलिए प्रश्न बिलकुल स्वाभाविक है कि वो अधूरी चेतना का व्यक्ति कृष्ण और अर्जुन के बीच घटी उस महिमापूर्ण घटना को कैसे देख पाया। अधूरा कैसे पूरे को देख पाएगा—देख पायेगा, पूरा नहीं देख पाएगा। संजय भी पूरा नहीं देख पा सकता है।

आध्यात्मिक अनुभव जब भी घटित होते हैं तो उनकी पूरी खबर हम तक नहीं आती और न ही आ सकती है। इसे हम थोड़ा यों समझें: बुद्ध को अनुभव हुआ। बुद्ध स्वयं उस अनुभव को कहते हैं, लेकिन साथ ये भी कहते हैं कि जो भी मैं कह रहा हूं, वो उतना नहीं है जितना मैंने जाना। जो मैंने जाना, वह कहते ही आधा हो गया, क्योंकि शब्द सीमित है और जो जाना था वो असीम था। उस असीम को शब्द में रखते ही वो आधा हो गया। फिर बुद्ध जितना जाने उससे आधा कह पाते हैं और हम सुनते हैं जब तो हम उतना भी नहीं सुन पाते, जितना बुद्ध कहते हैं। क्योंकि सुनने वाले के पास और भी छोटी बुद्धि है, और भी अंधेरे में डूबा हुआ मन है, और भी अविकसित चेतना है। तो बुद्ध जब हमसे बोलते हैं तो जो हम समझ पाते हैं वो उसका भी आधा हो तो बड़े सौभाग्यशाली हैं हम जितना वो कहते हैं। और हम अगर किसी और को कहें तो प्रति पल सत्य छूटता चला जाता है और असत्य होता चला जाता है।

कृष्ण के भीतर जो अर्जुन को दिखाई पड़ा वो पूरा अनुभव है। संजय उसको आधा ही पकड़ पायेगा, और धृतराष्ट्र कितना पकड़ पाए होंगे, इस सम्बन्ध में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। तो पहली तो बात ये ख्याल रखनी है कि अधूरा आदमी भी आंख उठा सकता है उस दिशा में। दूसरी बात ये ख्याल में ले लें कि अधूरा आदमी किनारे पर खड़ा हुआ है—आधा उस तरफ, आधा इस तरफ, उसके दो मुंह हैं। एक तरफ वो अन्धे धृतराष्ट्र की तरफ देख रहा है, दूसरी तरफ वहां महाप्रकाश की जो घटना घटी है, अर्जुन की आंखों का खुल जाना जो हुआ है, उस तरफ। संजय की क्या जरूरत थी बीच में, अर्जुन भी ये खबर बाद में दे सकता था—गीता हमें अर्जुन से भी मिल सकती थी। अर्जुन से मिलनी बहुत कठिन थी, जिसको

पूरा अनुभव होता है, जरूरी नहीं है कि वो अभिव्यक्ति में भी कुशल हो। अनुभूति एक बात है, अभिव्यक्ति बिलकुल दूसरी बात है। अर्जुन के पास अभिव्यक्ति नहीं थी, अर्जुन को अनुभव तो हुआ लेकिन वो कह नहीं सकता था। यह हो सकता है कि आप सुबह का सूरज ऊगते हुए देखें लेकिन आप चित्र न बना पायें। क्योंकि चित्र बनाना और बात है। और ये भी हो सकता है कि उस चित्रकार ने जिसने सुबह का सूरज ऊगते न देखा हो, उसको आप जाकर सिर्फ बतायें कि क्या देखा है, वो चित्र आपसे बेहतर बना सके। अर्जुन कहने में असमर्थ था, इसलिए गीता में संजय को लाना अनिवार्य हो गया। बिना संजय के गीता—बिना कही रह जाती। कृष्ण ने उसे अर्जुन से कह दिया था लेकिन अर्जुन उसे हम तक नहीं पहुंचा सकता था। अर्जुन के पास अभिव्यक्ति की कोई क्षमता नहीं है। इसलिए बहुत बार ऐसा हुआ है कि जिन्होंने जाना है वो जानके चुप ही रह गये हैं क्योंकि कहने की उनके पास कोई व्यवस्था न थी। और कई बार ऐसा भी हुआ है कि जिन्होंने नहीं जाना है, उन्होंने भी बहुत बातें हमें समझा दी हैं, उनसे सुनके जिन्होंने जाना था या उनके पास रहके जिन्होंने जाना था। अभी इस सदी में काकेशस में बहुत अद्भुत आदमी पैदा हुआ—जार्ज गुरजिएफ। उसने गहनतम अनुभव किया—जो इस सदी में दो-चार लोगों को हीं मिला है। लेकिन उसकी कहने की कोई भी योग्यता नहीं थी। न तो वो बोल सकता था, न लिख सकता था। न ही किसी भाषा पर उसका कोई अधिकार था। गुरजिएफ की बात ऐसे ही खो जाती, पर उसे एक बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति पी० डी० आस्पेन्स्की मिल गया। आस्पेन्स्की को कोई अनुभव नहीं था—लेकिन आस्पेन्स्की एक कुशल लेखक था, भाषा पर उसका अधिकार था। गणित पर उसकी पकड़ थी। रूस के बड़े से बड़े गणितज्ञों में एक था। इसलिए किसी भी चीज को तर्क से, जांच से—परख से—ठीक ठीक माप में प्रगट करने की उसकी प्रतिभा थी। आस्पेन्स्की कह सका ये गुरजिएफ नहीं कह सका। और गुरजिएफ जानता था, आस्पेन्स्की नहीं जानता था। आस्पेन्स्की गुरजिएफ के पास रहकर पकड़ सका, वो जो अधूरा-अधूरा, टूटा-फूटा प्रगट करता था—बिना व्याकरण के, बिना भाषा के। वो जो टटोल टटोलकर कुछ बातें कहता था, आस्पेन्स्की उसे निखार-निखार के प्रगट कर सका। आस्पेन्स्की न हो तो गुरुजिएफ की शिक्षा खो जायेगी। ये संजय के कारण कृष्ण ने जो अर्जुन को कहा था, वो बच सका है।

संजय अधूरा है, लेकिन बड़ा योग्य है। ऐसा कभी-कभी घटता है कि एक ही व्यक्ति में दोनों बात होती हैं। बहुत अनूठा संयोग है। महावीर को अनुभव हुआ महावीर नहीं बोले, बोलने वाले दूसरे लोग उन्होंने इकट्ठे किए। महावीर उनसे मौन में बोले और उन्होंने फिर वाणी से प्रगट किया। बुद्ध को जो अनुभव हुआ, बुद्ध स्वयं बोले। ये बहुत कठिन है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि अनुभव को उपलब्ध व्यक्ति अभिव्यक्ति भी कर पाता है अन्यथा सहारे खोजने पड़ते हैं। कोई और सहारा खोजना पड़ता है, संजय इस पूरी व्यवस्था में सहारा है। और संजय ने जो कहा है वो रूपक नहीं है। उसने जो देखा है वही कहा है। लेकिन जिसके लिए कहा है वो अन्धा आदमी है। वो बिना रूपक के नहीं समझ पाएगा, इसलिए रूपक का भी उपयोग किया है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें—जब भी हम बोलते हैं, तब बोलने वाला ही महत्वपूर्ण नहीं है, सुननेवाला भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है। हम किसके लिए बोलते हैं, जिसके लिए हम बोलते हैं, वो भी निर्धारक होता है जो बात बोली जाती है। जब दो व्यक्ति बोलते हैं : सुनने वाला—बोलने वाला दोनों ही निर्णायक होते हैं जो बोला जाता है। संजय शून्य में नहीं बोल रहा है, संजय धृतराष्ट्र से बोल रहा है। धृतराष्ट्र जो समझ सकेंगे उस व्यवस्था में बोल रहा है। और इसलिए कल मैंने आपसे कहा कि गीता हमारे लिए उपयोगी है क्योंकि हम अन्धे हैं। और अच्छा हुआ कि संजय धृतराष्ट्र से बोला। अगर वो किसी आंख वाले से बोलता, किसी जानने वाले से बोलता तो पहिली कठिनाई ये थी कि बोलने की कोई जरूरत न थी, क्योंकि जो जान सकता था : आंख वाला था तो खुद ही देख लेता। और जो जानता था : जो देख सकता था, उसके लिए प्रतीक न खोजने पड़ते। इसलिए बहुत बार ये सवाल उठता है कि युद्ध के मैदान पर जहां कि एक-एक पल मुश्किल रहा होगा, इतनी बड़ी गीता कृष्ण ने कैसे कही। जहां एक-एक पल मुश्किल रहा होगा, इतनी बड़ी गीता पूरे १८ अध्याय अर्जुन से कहे होंगे—कितना समय व्यतीत न हुआ होगा! और युद्ध सब ठप्प पड़ा रहा? लोग वहां लड़ने को—मरने को उत्सुक होकर आए थे, वहां कोई धर्म-संवाद कोई धर्म-उपदेश सुनने नहीं आए। ये इतनी लम्बी बात कृष्ण ने कही होगी—तो अनेक लोगों को कठिनाई होती है और उनको लगता है कि संक्षिप्त में कही होगी, बाद में लोगों ने विस्तीर्ण कर

ली होगी। बहुत सार में इशारा किया होगा, बाद में चीजें जुड़ती चली गई होंगी। नहीं ऐसा नहीं है।

समय की सापेक्षता

दो-तीन बातें ख्याल में लेना चाहिए। एक तो, समय बहुत प्रकार के हैं। समय एक ही प्रकार का नहीं है। समय अनेक प्रकार के होते हैं। ट्रेन में आप चल रहे हैं, आँख लग गई आपको झपकी आ गई। आप एक लम्बा स्वप्न देखते हैं, स्वप्न इतना लम्बा हो सकता है कि आप छोटे बच्चे थे और स्कूल में पढ़े और बड़े हुए और कालेज में गए और किसी के प्रेम में पड़े और शादी की और आपके बच्चे हो गए और आप बच्चों की शादी कर रहे हैं, बैंड-बाजा बज रहा है—इससे आपकी नींद खुल गई। और आप घड़ी में देखते हैं तो मुश्किल से दो-चार सैकेण्ड ही निकले। दो-चार सैकेण्ड में तो इतनी लम्बी कथा कही भी नहीं जा सकती, जो देख ली है।

अगर आप अपना सपना और किसी को सुनाएं तो उसमें भी आधा घण्टा लगेगा और आपने सुना नहीं है—आप जिए। बच्चे से बड़े हुए, पढ़े-लिखे, प्रेम में गिरे, विवाह किया—बच्चा हुआ, बड़ा हुआ और आप शादी कर रहे हैं। ये सब आप जिए भीतर सपने में और घड़ी में मिनिट-आधा-मिनिट निकला। क्या हुआ? स्वप्न में समय की व्यवस्था और है। जागने में समय की व्यवस्था और है। जागने में भी समय की व्यवस्था बदलती रहती है, घड़ी में नहीं बदलती, इसलिए हमें भ्रम पैदा होता है। घड़ी में क्यों बदलेगी? घड़ी तो यन्त्र है—वो अपने हिसाब से घूमती रहती है। साठ मिनिट में घण्टा पूरा हो जाता है, चौबीस घंटे में दिन पूरा हो जाता है—घड़ी घूमती रहती है। लेकिन अगर आप घड़ी और अपने बीच थोड़ा-सा विचार करें तो आपको समझ में आ जाएगा कि आपके भीतर समय एक-सा नहीं रहता। जब आप दुख में होते हैं—समय धीमा जाता हुआ मालूम पड़ता है। जब सफल होते हैं तो समय ऐसा बीत जाता है—कि साल ऐसे बीत जाते हैं कि जैसे पल और जब आप असफल होते हैं तो पल ऐसे बीतते हैं—जैसे वर्ष। कोई मर रहा है प्रियजन, उसके पास आप बैठे हैं, तो एक घड़ी ऐसी लगती है...कितनी लम्बी! अगर आपने किसी मरते हुए व्यक्ति के पास रात बिताई हो, तो आपको पता चलेगा कि घड़ी और आपके समय में फर्क है, मरणासन्न व्यक्ति के पास बैठकर रात कटती ही नहीं, और

अगर आपको अपनी प्रेयसी, अपना मित्र मिल गया हो अचानक तो रात कब बीत जाती है, पता नहीं चलता। और ऐसा लगता है, जैसे सांझ से एकदम सुबह हो गई—रात बीच में रही ही नहीं। आपका चित्त जब दुख से भरा हो तो समय लम्बा हो जाता है, आपका चित्त जब सुख से भरा हो, तो समय छोटा हो जाता है। जो लोग आनन्द को अनुभव किये हैं; आपको सुख-दुख का अनुभव है—आनन्द का आपको कोई अनुभव नहीं है; सुख में समय छोटा हो जाता है, दुख में बड़ा हो जाता है। जितना ज्यादा दुख होता है, समय उतना ही लम्बा हो जाता है। जितना ज्यादा सुख होता है, उतना ही छोटा हो जाता है। आनन्द है—परम सुख—समय शून्य हो जाता है। समय होता ही नहीं। इसलिये जिन्होंने आनन्द अनुभव किया है, वे कहते हैं—समय वहां होता ही नहीं। और जैसे स्वप्न में, मिनिट-आधा-मिनिट में वर्षों का जीवन व्यतीत हो जाता है, वैसे ही आनन्द के क्षण में कितना ही समय व्यतीत हो सकता है, और बाहर की घड़ी में कुछ भी फर्क न पड़ेगा। कृष्ण और अर्जुन के बीच जो घटना घटी, वो हमारे समय के हिसाब से कितनी ही लम्बी मालूम पड़े, उनके बीच क्षण भर में घट गई होगी। जैसे, दो आंखों का मिलना—हो जायगा, और बस! संजय को जरूर वक्त लगा बताने में; जैसे आपको अपने स्वप्न बताने में वक्त लगता है। घटते जल्दी हैं; बताने जाते हैं—तो वक्त लगता है। धृतराष्ट्र को समझाने में इतना लम्बा वक्त लगा।

ये जो गीता है, इसके बीच जो समय व्यतीत हुआ, वो संजय और धृतराष्ट्र के बीच व्यतीत हुआ समय है; अर्जुन और कृष्ण के बीच का नहीं। अर्जुन और कृष्ण के बीच तो ऐसे घट गई ये घटना, कि उस युद्ध के स्थल पर मौजूद किसी व्यक्ति को पता ही न चला होगा, कि क्या हो गया? ये कोई भी जान न सका होगा कि कब हो गई ये बात? अनुभव पल में हो गया होगा, लेकिन अनुभव इतना विराट था, कि उसे बताते वक्त संजय को बहुत वक्त लगा होगा। इसे ऐसा समझ लें: आपकी तरफ मैं देखूं, तो एक झलक में सबको देख लेता हूं, लेकिन मैं किसी को बताने जाऊं, तो—नम्बर एक पर कौन बैठा था? नम्बर दो पर कौन बैठा था? नम्बर तीन पर? ...हजारों लोग बैठे थे। उनके नाम—अगर मैं उनका वर्णन करने लगूं, तो मुझे दिनों लग जायेंगे, लेकिन एक झलक में मैं आपको देख लेता हूं, एक पल में आपको देख लेता हूं। अर्जुन ने जो जाना, वो तो एक पलक में हो

गया, लेकिन उसने जो जाना था, उसे जब वर्णन करने संजय चला, तो एक-एक टुकड़े में उसे करना पड़ा। उसमें समय लगा। भाषा रेखाबद्ध है, अनुभव मल्टीडायमेंशनल हैं, अनुभव में अनेक आयाम हैं। भाषा एक रेखा में चलती है। तो एक रेखा में जो वर्णन करना पड़ता है, अनेक आयाम में जो अनुभव हुआ था, उसे खंड-खंड में तोड़कर कहना पड़ता है। ये जो गीता हमें इतनी लम्बी मालूम पड़ रही है, ये संजय और धृतराष्ट्र के कारण। ये कृष्ण और अर्जुन के बीच नहीं। लेकिन संजय योग्य था, शायद उस क्षण में संजय से ज्यादा कोई योग्य आदमी नहीं था, जो कृष्ण और अर्जुन के बीच जो घटा, उसे कह सकता। और शायद उस दिन धृतराष्ट्र से ज्यादा योग्य कोई जिज्ञासु नहीं था, जो उससे पूछता।

गीता के पात्र : अद्भुत संयोग

ये चारों पात्र गीता के—ये एक लिहाज से अद्भुत हैं। ये संयोग असंभव संयोग है। कृष्ण जैसा गुरु खोजना बहुत मुश्किल है, अर्जुन जैसा शिष्य खोजना उससे भी ज्यादा मुश्किल। संजय जैसा व्यक्त करने वाला खोजना उससे भी ज्यादा मुश्किल, धृतराष्ट्र जैसा अन्धा जिज्ञासु खोजना उससे भी ज्यादा और मुश्किल, क्योंकि अन्धे जिज्ञासा करते ही नहीं। अन्धे मानते हैं, कि हम जानते हैं। अन्धे जिज्ञासा करते ही नहीं। अन्धे तो मानके ही बैठे हैं कि जानते हैं। उनका ये मानना ही तो उनका अन्धापन है कि हम जानते हैं। आपका अन्धापन क्या है? आपको पता है कि—आपको "पता है", और पता बिलकुल नहीं। और जिस आदमी को ये ख्याल है कि मुझे मालूम है—बिना मालूम हुए—वो जिज्ञासा क्या करेगा? वो पूछेगा क्यों? वो जानने की उत्सुकता क्यों प्रगट करेगा? उसकी कोई जिज्ञासा नहीं, उसकी कोई खोज नहीं। और जो ये माने ही बैठा है कि मैं जानता हूं, वो कभी भी नहीं जान पायेगा। क्योंकि जानने के लिए जो पहला कदम है—वो जिज्ञासा है। धृतराष्ट्र—अन्धे धृतराष्ट्र ने पूछा, ये बड़ी बात है। जो बता सकता था संजय, उसने बताया; जिसको ये घटना घट सकती थी—अर्जुन—उसे ये घटना घटा, जो उस घटना के लिये कैटेलिटिक एजेंट हो सकता था—कृष्ण, वे हो गए। गीता एक अर्थ में श्रेष्ठतम संयोगों का जोड़ है। फिर ये भी ध्यान रखें कि अधूरा आदमी ही बता सकता है, क्योंकि पूर्ण आदमी संसार की तरफ से पूरा मुड़ जाता है, फिर बड़ी कठिनाई है।

आधा आदमी आधा संसार की तरफ भी होता है, आधा परमात्मा की तरफ भी होता है। उधर की भी उसके पास झलक होती है, और इधर संसार में खड़े लोगों की पीड़ा का भी उसे बोध होता है।

जब बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो कथा है कि सात दिन तक वे बोले ही नहीं। क्योंकि बुद्ध का मुख फिर गया, पूरा का पूरा सत्य की तरफ, वे मौन हो गये, वे संसार को भूल ही गये, उन्हें पता ही न रहा कि पीछे अनंत-अनंत लोग पीड़ा से परेशान—इसी सत्य की खोज के लिये रो रहे हैं। वे भूल ही गये। बड़ी मीठी कथा है, कि देवताओं ने आके बड़ा शोरगुल किया, बहुत बैंड-बाजे बजाये। उनका मौन तोड़ने की कोशिश की। उनको हिलाया-डुलाया, उन्हें काफी डांवांडोल किया, ताकि उन्हें ख्याल आ जाये, कि पीछे एक बड़ा संसार भी है, जिसके लिये उन्हें अभी बात कह देनी है। बुद्ध को देवताओं ने कहा, कि आप चुप क्यों हो गये हैं? अनंत-अनंत युगों के बाद कभी कोई व्यक्ति इस परम अनुभव को उपलब्ध होता है, लाखों लोग प्यासे हैं, आप उनसे कहें। बुद्ध ने कहा: जो समझ सकते हैं उस अनुभव को, वो मेरे कहे बगैर भी समझ जायेंगे, और जो नहीं समझ सकते, उनके सामने मैं सिर पटकता रहूं तो भी वे समझने वाले नहीं हैं, तो मुझे क्यों परेशान करते हो? बुद्ध ने कहा: मुझे छोड़ो, मेरा बोलने का कोई भी मन नहीं, फिर जो मैंने जाना है, वो बोला भी नहीं जा सकता, और जो मैं बोलूंगा, वो वही नहीं होगा, जो मुझे घटा है। शब्द में उसे मैं बांध न सकूंगा। और फिर जो नहीं समझेंगे, वे नहीं ही समझेंगे, और जो समझ सकते हैं, वे मेरे बिना भी देर अबेर, पहुंच ही जायेंगे। इससे मैं क्यों परेशान होऊं? कुशल लोग थे वे देवता, उन्होंने बुद्ध को किसी तरह राजी कर ही लिया, और राजी इस तरह किया, बुद्ध को; उन्होंने कहा कि आप बिलकुल ठीक कहते हैं, जो समझ सकते हैं, वे आपके बिना भी समझ जायेंगे। जो बिलकुल नासमझ हैं, आप उनके सामने जिन्दगी भर सिर पटकते रहें, तो भी वे न समझेंगे, या कुछ समझेंगे भी तो वो, जो आपने कहा ही नहीं। मगर इन दोनों के बीच में भी कुछ लोग हैं, जो अधूरे खड़े हैं। वे नासमझ भी नहीं हैं, वे समझदार भी नहीं हैं। आपके बिना वे समझदार न हो सकेंगे, और आपके बिना वे नासमझ रह जायेंगे, आप उन बीच में खड़े थोड़े से लोगों के लिये बोलें, जिनके लिये तिनका भी सहारा हो जायेगा।

बुद्ध को कठिन पड़ा उत्तर देना, वे राजी हो गये। संजय अधूरा आदमी है, वो दोनों तरफ देख रहा है। उसे धृतराष्ट्र की पीड़ा भी पता है, उसे अर्जुन का आनंद भी। वो ये भी देख रहा है, कि अर्जुन को क्या घट रहा है? किस परम हर्षोल्लास में उसका रोयां-रोयां नाच रहा है? किस महाप्रकाश में अर्जुन डूबकर खड़ा हो गया है? ये भी, और धृतराष्ट्र का अन्धापन भी। और अन्धेपन में घिरी हुई आत्मा की पीड़ा और नर्क, और अन्धेपन में डूबा हुआ धृतराष्ट्र टटोल रहा है, कहीं कोई रास्ता नहीं मिलता, कहीं कुछ समझ में नहीं आता। उसकी पीड़ा भी उसके ख्याल में है, और अर्जुन का आनन्द भी। वो बीच में खड़ा आदमी है। इसलिये वही ठीक आदमी है, जो खबर दे सकता है। अब हम सूत्र को लें।

प्रकाश के अस्तित्व का दर्शन

और हे राजन्! आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न हुआ जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचित् ही होवे।

पहला अनुभव उसने कहा ऐश्वर्य का। संजय ने कहा—कि अर्जुन ने देखा, परमात्मा का महिमाशाली ऐश्वर्य रूप, जो सुन्दर है, जो श्रेष्ठ है, जो बहुमूल्य है, वो सब। जगत का जैसे सारा सौन्दर्य निचोड़ लिया हो, और जगत की जैसे सारी सुगन्ध निचोड़ ली हो, और जगत का जैसे सारा प्रेम निचोड़ लिया हो, और सब, इस सार में जो अनुभव हो, वो ऐश्वर्य है परमात्मा का। अर्जुन ने पहले परमात्मा का ऐश्वर्य रूप देखा। दूसरी बात संजय कहता है—कि परमात्मा का प्रकाशरूप देखा। यही उचित है कि ऐश्वर्य के बाद प्रकाश दिखाई पड़े, क्योंकि ऐश्वर्य भी धीमा प्रकाश है। ऐश्वर्य भी धीमा प्रकाश है—जैसे सुबह होती है, रात भी चली गई और अभी दिन भी हुआ नहीं, बीच में जो भोर के क्षण होते हैं, जब धीमा प्रकाश होता है, जो आंख को परेशान नहीं करता, जो आंख को परेशान नहीं करता, जो आंख पर चोट नहीं करता, जिसमें कोई चमक नहीं होती, सिर्फ आभा होती है। या शाम को जब सूरज ढल गया है, और रात अभी उतरी नहीं, और बीच का जो संध्याकाल है, सिर्फ धीमा-सा आलोक रह जाता है। ऐश्वर्य आलोक है, ऐश्वर्य आंखों को तैयार कर देगा अर्जुन की, कि वो

प्रकाश को देख सके—अनूठा परमात्मा का प्रकाश, आंखें बन्द हो जायेंगी। अनूठा परमात्मा का प्रकाश, उस चकाचौंध में होश खो जायेगा।

ऐसा बहुत बार हुआ है। ऐसा बहुत बार हुआ है कि कुछ साधना पद्धतियां हैं, जिनसे व्यक्ति सीधा परमात्मा के प्रकाश-स्वरूप को देख लेता है। वो प्रकाश इतना ज्यादा है, कि सहा नहीं जा सकता और सदा के लिए भीतर घुप्प अंधेरा छा जाता है। ये शायद आपने नहीं सुना होगा। आपको भी ख्याल नहीं होगा, कि अगर आप सूरज की तरफ सीधा देखें कुछ देर, तो फिर सब—कहीं भी देखें—तो घुप्प अंधेरा मालूम पड़ेगा। अगर रात आप रास्ते से गुजर रहे हैं, अंधेरा है, अमावस की रात है, लेकिन फिर भी आपको कुछ-कुछ दिखाई पड़ रहा है; फिर पास से एक तेज प्रकाशवाली कार गुजर जाती है, रात और अंधेरी हो जाती है। अभी तक उस रास्ते पर चल रहे थे अब अंधेरा और घना हो जाता है। ईसाई फकीरों ने इस बात के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी महत्वपूर्ण खोजें की हैं। अगस्टीन ने, फ्रांसिस ने, उन्होंने इसे 'डार्क नाइट आफ दी सोल' कहा है—आत्मा की अंधेरी रात। क्योंकि जब प्रकाश का इतना तीव्र आभास होता है, तो सब तरफ अंधेरा छा जाता है। वर्षों लग जाते हैं, कभी-कभी साधक को, वापिस उस अंधेरे से बाहर आने में। इसलिये प्रकाश की सीधी साधना खतरनाक है। जो लोग सूर्य पर एकाग्रता करते हैं, वो इसीलिये कर रहे हैं, ताकि सूर्य पर अभ्यास हो जाये, कि जब वो महासूर्य भीतर प्रकट हो, तो आंखें अन्धी न हो जायें, और अंधेरा न छा जाये। इस सूर्य पर एकाग्रता का अभ्यास इसीलिये सिर्फ कि थोड़ा तो; ये सूर्य कुछ भी नहीं है, लेकिन फिर भी जो कुछ है, काफी है हमारे लिये तो बहुत कुछ है। इससे थोड़ा अभ्यास हो जाये, कि जब महासूर्य.. अनंतसूर्य भीतर प्रकाशित हो जायें तो उस वक्त थोड़ी-सी तो तैयारी रहे, इसलिये सूर्य पर एकाग्रता के प्रयोग किये जाते हैं। लेकिन अगर ऐश्वर्य का अनुभव पहले हो, इसलिये हमने भगवान को ईश्वर का नाम दिया है, हम उसके ऐश्वर्यरूप को पहले स्वीकार करते हैं, वो आभा है, और ध्यान रहे, सुबह जब आभा घेर लेती है भोर की और फिर सूर्य निकलता है तो सुबह के सूरज के साथ भी आंखों को मिलाना आसान है वो बाल-सूर्य है। और अगर कोई सुबह से ही अभ्यास करता रहे सूर्य के साथ आंखों को मिलाने का, तो दोपहर के सूर्य के साथ भी आंख मिला सकता है। आभा से शुरू करें, बाल-सूर्य से और धीरे-धीरे बढ़ते रहें।

मेरे गांव में मैं एक आदमी को जानता हूं, जो भैंस को पूरा का पूरा उठा लेता था। गांव में वो अजूबा था, कि वो भैंस को पूरा उठा लेता था। मैं पूछताछ किया—उसने बताया, जब से भैंस का छोटा बच्चा हुआ था, तब से मैं उसे रोज उठाके घंटा भर का अभ्यास करता रहा हूं। भैंस का बच्चा धीरे-धीरे बड़ा होता गया, उसका अभ्यास भी साथ-साथ बढ़ता चला गया। अब भी वो पूरी भैंस को उठा लेता है। बाल सूर्य के साथ जो यात्रा शुरू करेगा, वो धीरे से दोपहर का जब प्रौढ़ सूर्य होगा, तब भी आंखें सूर्य से मिला सकेगा, और आंखें अंधेरी न होंगी। "ईश्वर" इसीलिये हमने शब्द चुना है। ऐश्वर्य से शुरू करना, अन्यथा भयंकर अंधेरी रात भी आ सकती है भीतर जो वर्षों चल सकती है, और कभी-कभी जन्मों चल सकती है। सीधे बिना तैयारी के, परमात्मा के प्रकाश रूप के सामने खड़ा होना खतरे से खाली नहीं है। इसलिये ऐश्वर्य के बाद अर्जुन को अनुभव हुआ अनंत-अनंत सूर्य जैसे जनम गये हों।

एक बात समझ लेने जैसी है, आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है, कि पदार्थ की जो आंतरिक घटना है, वो पदार्थ नहीं है, प्रकाश ही है। जहां-जहां हम पदार्थ देखते हैं, वो प्रकाश का घनीभूत रूप है (कंडेंस्ड लाइट) या उसको प्रकाश की किरण कहें, या शक्ति कहें, लेकिन आज विज्ञान अनुभव करता है, कि पदार्थ जैसी कोई भी चीज जगत में नहीं है, सिर्फ प्रकाश है, और प्रकाश ही जब घनीभूत हो जाता है, तो हमें पदार्थ मालूम पड़ता है। विज्ञान के विश्लेषण से पदार्थ का जो अंतिम रूप हमें उपलब्ध हुआ है, वो (इलेक्ट्रान) है। वो विद्युत कण है। विद्युत कण छोटा सूर्य है—अपने आप में पूरा। सूर्य की भांति—प्रकाशोज्जवल। विज्ञान भी इस नतीजे पर पहुंचा है, कि सारा जगत प्रकाश का खेल है। और धर्म तो इस नतीजे पर बहुत पहले से पहुंचा है कि परमात्मा का जो अनुभव है, वस्तुतः वो प्रकाश का अनुभव है, फिर कुरान कितनी ही भिन्न हो गीता से, और गीता कितनी ही भिन्न हो बाइबिल से, लेकिन एक मामले में जगत के सारे शास्त्र सहमत हैं, और वो है—प्रकाश। सारे धर्म एक बात पर सहमत हैं, और वो है प्रकाश की परम अनुभूति। विज्ञान और धर्म दोनों ही एक नतीजे पर पहुंचे, अलग-अलग रास्तों से। विज्ञान पहुंचा है, पदार्थ को तोड़ तोड़कर इस नतीजे पर, कि अंतिम कण-अविभाजनीय कण प्रकाश है, और धर्म पहुंचा है स्वयं के भीतर डूबकर इसी नतीजे पर, कि जब कोई व्यक्ति अपनी पूरी गहराई में

देखता है, तो वहां भी प्रकाश है, और जब इस गहराई से बाहर देखता है, तो सब चीजें विलीन हो जाती हैं, सिर्फ प्रकाश ही रह जाता है। अगर ये सारा जगत प्रकाश रह जाये, तो निश्चित ही जैसे हजारों सूर्य एक साथ उत्पन्न हो गये हों, ऐसा अनुभव होगा। हजार भी सिर्फ एक संख्या है, अनंत सूर्य। अनंत से भी हमें लगता है कि गिने जा सकेंगे, कोई सीमा बनती है। नहीं, कोई सीमा नहीं है। अगर पृथ्वी का एक-एक कण एक-एक सूर्य हो जाये, और है। एक-एक कण सूर्य है, पदार्थ का एक-एक कण विद्युत ऊर्जा है तो जब कोई गहन अनुभव में उतरता है अस्तित्व के तो प्रकाश ही प्रकाश रह जाता है। संजय इसी तरह धृतराष्ट्र से कह रहा है कि हे राजन! पर बेचारे धृतराष्ट्र को क्या समझ आया होगा, उसे तो दिया भी दिखाई नहीं पड़ता, सूर्य तो कल्पना है। हजार सूर्य से भी उसे क्या फर्क पड़ेगा, क्योंकि सूर्य का पता हो, तो हजार गुना भी कर ले। धृतराष्ट्र को क्या समझ में आया होगा? हजार-हजार सूर्य के उत्पन्न होने से जैसा प्रकाश हो, विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश वह भी कदाचित ही हो पाये। लेकिन धृतराष्ट्र समझ गया होगा शब्द। क्योंकि सूर्य शब्द उसने सुना है। प्रकाश शब्द भी उसने सुना है, हजार शब्द भी उसने सुना है, ये सब शब्द उसकी समझ में आ गये होंगे, लेकिन वो बात जो संजय समझाना चाहता था, वह बिल्कुल समझ में न आयी होगी। यही हम सबकी भी दुर्दशा है, सब शब्द समझ में आ जाते हैं, और जो समझाना चाहा गया है, वो समझ के बाहर रह जाता है। शब्दों को लेकर हम चल पड़ते हैं, संग्रहीत हो जाते हैं शब्द, और उनके भीतर जो कहा गया था, वो हमारे ख्याल में नहीं आता। "ईश्वर" सुन लेते हैं, समझ में आ जाता है। ऐसा लगता है कि समझ गये—ईश्वर कहा। लेकिन क्या कहा गया ईश्वर से? "आत्मा" सुन लिया, कान में पड़ी चोट, पहले भी सुना था, शब्दकोश में अर्थ भी पढ़ा है, समझ गये कि ठीक "आत्मा" कह रहे हैं। लेकिन क्या मतलब है? जब मैं कहता हूं—घोड़ा, तो एक चित्र बनता है आंख में, पर जब मैं कहता हूं—आत्मा तो कुछ भी नहीं होता। सिर्फ शब्द सुनाई पड़ता है। शब्द भ्रांति पैदा कर सकते हैं, क्योंकि शब्द हमारी समझ में आ जाते हैं। इसलिये ध्यान रखना जरूरी है, कि शब्दों की समझ को आप अपनी समझ मत समझ लेना। उसके पार—खोज करते रहना। और जो शब्द सिर्फ सुनाई ही पड़े, और भीतर कोई अनुभव पकड़ में न आये, तो फौरन पूछ लेना कि ये शब्द समझ में तो

आता है, लेकिन अनुभव हमारे भीतर, इसके बाबत कोई भी नहीं है। अनुभव से हमारा कोई अर्थ नहीं निकलता। तब ही आदमी साधक बन पाता है, और नहीं तो शास्त्रीय होकर समाप्त हो जाता है। शास्त्र सिर पर लद जाते हैं, बोझ भारी हो जाता है, आत्मा वगैरह तो कभी नहीं मिलती, शास्त्र ही इकट्ठे होते चले जाते हैं और धीरे धीरे आदमी उन्हीं के नीचे दब जाता है। धृतराष्ट्र ने सुना तो होगा समझा क्या होगा?

प्रकाश से एक का दर्शन

ऐसे आश्चर्यमय रूप को देखते हुए, पांडुपुत्र अर्जुन ने उस काल में अनेक प्रकार से विभक्त हुये, पृथक-पृथक हुये, संपूर्ण जगत को, उस देवों के देव, श्रीकृष्ण भगवान के शरीर में एक जगह स्थित देखा। ये दूसरी बात। ये प्रकाश के अनुभव के बाद ही घटित होती है। ये सारी शृंखला ख्याल में रखना—ऐश्वर्य, प्रकाश, एकता। जब तक हमें जगत में पदार्थ दिखाई पड़ रहा है, तब तक हमें अनेकता दिखाई पड़ेगी।

एक तरफ मिट्टी का ढेर लगा है, एक तरफ सोने का ढेर लगा है, लाख कोई समझाये कि सोना भी मिट्टी है, और लाख हम कहें लेकिन फिर भी भेद दिखाई पड़ता रहेगा। और अगर चुराकर भागने की नौबत आई, तो हम मिट्टी चुराकर भागने वाले नहीं हैं, और यह साधारण आदमी की ही बात नहीं है, जिनको हम समझदार कहें, साधु कहें, महात्मा कहें, वो कितना ही कहते रहें, कि मिट्टी-सोना बराबर, एक है।

एक साधु को मैं जानता हूं, वो बड़े संन्यासी हैं। सोने को हाथ नहीं लगाते, और कहते हैं कि सोना मिट्टी एक है। तो एक दफे मैं उनके आश्रम में ठहरा हुआ था, तो मैंने कहा जब एक ही है, तो फिर मिट्टी को भी हाथ लगाना बन्द कर दो, या फिर सोने को भी हाथ लगाते रहो, चिन्ता क्या है? वे बोले—सोने को मैं हाथ नहीं लगा सकता, सोना तो मिट्टी है। उन्हें ख्याल भी नहीं आ रहा, कि वे क्या कह रहे हैं, सोना तो मिट्टी है—मैं सोने को हाथ नहीं लगा सकता—वो तो मिट्टी है। ये वो अपने को समझा रहे हैं कि सोना मिट्टी है। फिर फर्क क्या है, मिट्टी से तो कोई भी नहीं डरता। सोने से इतना डर क्या है? वो डर बता रहा है, कि मिट्टी–मिट्टी है, सोना-सोना है। और सोने को हाथ नहीं लगाते,

मिट्टी को तो मजे से लगाते हैं। तब फिर बात एक ही है, कोई सोने को तिजोड़ी में भर रहा है, क्योंकि वो मान रहा है कि सोना सोना है, मिट्टी मिट्टी है। कोई कह रहा है सोने को हाथ नहीं लगायेंगे। लेकिन दोनों को भेद है। भेद में कोई अन्तर नहीं पड़ा है। कोई अन्तर नहीं पड़ा है। दृष्टि बदल गई है, उल्टा हो गया है रुख, लेकिन भेद कायम है। और मिट्टी सोना हो कैसे सकती है, आपकी आंख में। कितना ही नीति समझायें, कितना ही धर्मशास्त्र समझायें, सोना मिट्टी हो कैसे सकती है? ये तो तभी हो सकती है, जब सोने का परम रूप आपको दिखाई पड़ जाये, और मिट्टी का परम रूप भी आपको दिखाई पड़ जाये। सोना भी प्रकाश है परम रूप में और मिट्टी भी। जब दोनों प्रकाशित हो जायें—सोना भी खो जाये, मिट्टी भी खो जाये, सिर्फ प्रकाश की किरणें ही शेष रह जायें, प्रकाश का एक जाल भर रह जाये, उस दिन ही आपको पता चलता है कि सोना मिट्टी दो नहीं हैं, उसके पहले पता नहीं चलता। ये कोई नैतिक सिद्धांत नहीं है कि सोना मिट्टी एक है, एक आध्यात्मिक अनुभव है।

जगत एक है इसका अनुभव तभी होगा, जब जगत की जो मौलिक इकाई है, उसका हमें पता चल जाये। नहीं तो जगत एक नहीं है। कैसे एक है? कैसे मानियेगा एक? सब चीजें अलग-अलग दिखाई पड़ रही हैं, पत्थर...पत्थर है, सोना . सोना है, मिट्टी...मिट्टी है। वृक्ष.. वृक्ष हैं, आदमी...आदमी हैं। सब अलग हैं, लेकिन अगर सबका जो कांस्टिट्यूएंट; सबको बनाने व ला जो घटक है भीतर, चाहे आदमी के शरीर के कण हों, और चाहे सोने के कण हों, और चाहे मिट्टी के कण हों, वे सभी कण प्रकाश के कण हैं। अगर ये दिखाई पड़ जाये, कि सभी तरफ प्रकाश ही प्रकाश है, तो भेद खो जायेगा। तब वो आदमी ये नहीं कहेगा कि सोना मिट्टी है, और मिट्टी भी सोना है। वो पूछेगा—कहां है मिट्टी? कहां है सोना? वो पूछेगा—प्रकाश ही है, वे सारे भेद कहां? सारे भेद खो गये। प्रकाश के बाद ही अद्वैत का अनुभव होता है प्रकाश के पहले नहीं। जिसको परमप्रकाश का अनुभव हुआ, वही अद्वैत का अनुभव कर पाता है।

संजय ने कहा: एक महाप्रकाश के अनुभव के बाद अर्जुन ने समस्त विभक्त चीजों को, समस्त खंड-खंड, अलग-अलग बंटी हुई चीजों को, एक परमात्मा में, एक ही जगह, एक रूप स्थित देखा। सब एक हो गया। सारे

भेद गिर गये। सारी सीमायें जो भिन्नता थीं, वे तिरोहित हो गईं, और एक असीम सागर रह गया। प्रकाश का ऐसा सागर अनुभव हो जाये, तो अद्वैत का अनुभव हुआ है। अद्वैत कोई सिद्धांत नहीं है। अद्वैत कोई फिलासफी नहीं है। अद्वैत कोई वाद नहीं है कि आप तर्क से समझ लें कि सब एक है। बड़े मजे की बात है, लोग तर्क से समझते रहते हैं, कि सब एक है, और तर्क से सिद्ध करते रहते हैं, कि दो नहीं हैं, एक है। लेकिन उन्हें पता ही नहीं है कि जहां भी तर्क है, वहां दो रहेंगे, एक नहीं हो सकता। तर्क चीजों को बाटता है, जोड़ नहीं सकता। वाद चीजों को बांटता है, एक नहीं कर सकता। विचार खंडित करता है, इकट्ठा नहीं कर सकता। इसलिये अद्वैत-वादी—एक रोग है। अद्वैत का अनुभव—एक महाअनुभव है, लेकिन अद्वैतवाद—कोई अद्वैतवादी हो जाये, वो एक तरह का रोग है। वो लड़ रहा है। वो द्वैतवादी को गलत सिद्ध कर रहा है कि तुम गलत हो, मैं सही हूं। लेकिन अगर कोई गलत है, और कोई सही है, तो कम से कम दो तो हो ही गये जगत में—कि कोई गलत, कोई सही। एक का अनुभव उस द्वैत-वादी में भी उसी प्रकाश को देखेगा, और द्वैतवादी की वाणी में भी उसी प्रकाश को देखेगा, और द्वैतवादी के सिद्धान्त में भी वही प्रकाश को देखेगा, जो अद्वैतवाद में, अद्वैतवाद की वाणी में, अद्वैतवाद के शब्दों में देखता है। सभी शब्द उसी प्रकाश का रूपांतरण है। सभी सिद्धान्त, सभी शास्त्र, सभी वाद। जिस दिन ऐसे प्रकाश का अनुभव होता है, उस दिन वाद गिर जाता है। उस दिन अनुभव होता है।

संजय ने कहा—इस प्रकाश के अनुभव के बाद अर्जुन ने भगवान के शरीर में, जो-जो चीजें पृथक-पृथक हो गई हैं, उनको एक जगह स्थित देखा, एक हुआ देखा। और इसके अनन्तर वह आश्चर्य से युक्त हुआ, हर्षित रोमों वाला अर्जुन, विश्वरूप परमात्मा को श्रद्धाभक्ति सहित, सिर से प्रणाम करके हाथ जोड़े हुये बोला।

आश्चर्य का अनुभव

कई बातें ख्याल में ले लेने जैसी हैं। ...और इसके अनन्तर वह आश्चर्य से युक्त हुआ। आश्चर्य हम सभी सोचते हैं, हम सबको होता है। सिर्फ धारणा है हमारी। आश्चर्य बड़ी कीमती घटना है और तभी होता है आश्चर्य का अनुभव जब हम उसके सामने खड़े होते हैं, जिस जगह हमारी

समझ कोई भी कार्य नहीं करती। अगर आपकी समझ काम कर सकती है तो आश्चर्य नहीं है। जल्दी ही आप आश्चर्य को हल कर लेंगे। जल्दी ही आप कोई उत्तर खोज लेंगे। जल्दी ही आप कोई हिसाब निर्मित कर लेंगे और किसी निष्कर्ष पर पहुंच जायेंगे, और आश्चर्य समाप्त हो जायेगा। आश्चर्य का अर्थ है, जिसके सामने आपकी बुद्धि गिर जाये। जिसके साथ आप बुद्धिगत रूप से कुछ भी न कर सकें। जिसके सामने आते ही आपको पता चले, मेरी बुद्धि तिरोहित हो गई—अब मेरे भीतर कोई बुद्धि नहीं रही। अब मैं विचार नहीं कर सकता, अब विचार करने वाला बचा ही नहीं। जहां बुद्धि तिरोहित हो जाती है, तब हृदय में जो अनुभव होता है—उसका नाम आश्चर्य है। और इस आश्चर्य में आपके सारे रोयें खड़े हो जाते हैं। आपने कभी-कभी रोयें को खड़ा देखा होगा—कभी किसी दुख में, कभी किसी आकस्मिक घटना में, कभी किसी बहुत अचानक आ गये भय की अवस्था में। लेकिन आश्चर्य में आपके रोयें कभी खड़े नहीं हुए। क्योंकि आश्चर्य तो आपने कभी किया ही नहीं। और आज की सदी में तो आश्चर्य बिलकुल मुश्किल हो गया, सभी चीजों के उत्तर पता हो गये हैं। और सभी चीजों का विश्लेषण हमारे पास है, और ऐसी कोई भी चीज नहीं जिसको हम न समझ सकें, इसलिए आश्चर्य का कोई सवाल नहीं है। इसलिए आज की सदी जितनी आश्चर्यशून्य सदी है, मनुष्य जाति के इतिहास में कभी भी नहीं रही। छोटे-छोटे बच्चे थोड़ा-बहुत आश्चर्य करते हैं—थोड़ा-बहुत। क्योंकि अब तो बच्चे भी खोजना मुश्किल है। अब तो बच्चे होते से ही हम उसे बूढ़ा करने में लग जाते हैं। पुरानी सदियां थीं, वो कहती थीं—बूढ़े फिर से बच्चे हो जायें, तो परम अनुभव को उपलब्ध होते हैं। हमारी कोशिश यह है कि बच्चे जितने जल्दी बूढ़े हो जायें, उतनी ही संसार में ठीक से यात्रा हो। तो सब मिलके—शिक्षा, समाज, संस्कार, सब बच्चे को बूढ़ा करते हैं। आपकी नाराजगी क्या है आपके बच्चे से, कि यह जल्दी बूढ़ा क्यों नहीं हो रहा? आप हिसाब-किताब लगा रहे हैं अपनी बही में और बच्चा सीटी बजा रहा है। आप डांट रहे हैं कि बन्द कर। वह नाच रहा है, आप उसको रोक रहे हैं कि विघ्न-बाधा खड़ी मत कर।

आप कर क्या रहे हैं! आप कह रहे हैं, कि तू भी जल्दी मेरे जैसा बूढ़ा हो जा। खाते-बही हाथ में ले ले—हिसाब लगा। नाचना-गाना ये सब क्या कर रहा है? हमारे लिए किसी को यह कह देना कि क्या बचकानी

हरकत कर रहे हो, काफी निन्दा का कारण है; बच्चा निन्दित है आज। लेकिन बच्चे में थोड़ा-बहुत आश्चर्य है। हम ज्यादा देर बचने नहीं देंगे। क्योंकि जैसे-जैसे हम समझदार होते जा रहे हैं, बच्चे की उम्र स्कूल भेजने की कम होती जा रही है। पहले ७ साल में भेजते थे, फिर ५ साल में भेजने लगे, अब ढाई साल में भेजने लगे, और अब रूस में वे कहते हैं, कि ये समय भी बहुत ज्यादा है; इतनी देर रुका नहीं जा सकता। वे कहते हैं: अब बच्चे को—जब वो अपने झूले में झूल रहा है—तब भी बहुत-सी बातों में शिक्षित किया जा सकता है। और उनके विचारक तो और भी आगे गये हैं; वे कहते हैं कि मां के गर्भ में भी बच्चे में बहुत तरह से कंडीशनिंग डाली जा सकती है। और वे संस्कार, जो मां के गर्भ में डाल दिये जायेंगे, वो जीवन पर्यन्त उसका पीछा करेंगे—उनसे फिर बचा नहीं जा सकता। इसका मतलब ये हुआ कि आज नहीं कल, हम गर्भ में ही बच्चे को स्कूल में डाल देंगे। सिखाना शुरू कर देंगे। हम उसको पैदा ही नहीं होने देंगे कि वो आश्चर्य करता हुआ पैदा हो! वो जानकारी लेकर ही पैदा होगा। अभी वो कहते हैं कि आज नहीं कल, जैसे आज हृदय को ट्रांसप्लांट करने के उपाय हो गए: एक आदमी का हृदय खराब हो गया है तो दूसरे आदमी का हृदय डाल दिया जाये। नवीनतम जो विचार है और वो काम में लग गए हैं—इस सदी के पूरा होते-होते पूरा हो जाएगा। वो कहते हैं कि जब एक बूढ़ा आदमी मरता है तो उसकी स्मृति को क्यों मरने दिया जाये—वो ट्रांसप्लांट कर दी जाए। बूढ़ा आदमी मर रहा है, ८० साल का अनुभव और स्मृति वो सब निकाल ली जाए, मरते वक्त जैसे हम हृदय को निकालते हैं, उसके पूरे मस्तिष्क के यंत्र को निकाल लिया जाये और इस छोटे बच्चे में डाल दिया जाये। उनका कहना है कि यह छोटा बच्चा बूढ़ों की सारी स्मृतियों के साथ काम करना शुरू कर देगा। जो बूढ़े ने जाना था, वो इस बच्चे को मुफ्त उपलब्ध हो जाएगा, इसको सीखना नहीं पड़ेगा। और प्रयोग इस पर काफी सफल हैं, इसमें बहुत ज्यादा देर की जरूरत नहीं है। काफी सफल हैं। अगर हम किसी दिन, स्मृति को ट्रांसप्लांट कर सकें तो फिर तो बच्चे जगत में पैदा नहीं होंगे, सिर्फ कम उम्र के बूढ़े, बड़े उम्र के बूढ़े—बस इस तरह के लोग होंगे। अभी-अभी पैदा हुए बूढ़े, नवजात बूढ़े, बहुत देर से टिके बूढ़े, इस तरह के लोग होंगे। आश्चर्य के खिलाफ हम लगे हैं। हम जगत के रहस्य को नष्ट करने में लगे हैं। हमारी चेष्टा यही है कि ऐसी

कोई भी चीज न रह जाय जिसके सामने मनुष्य को हतप्रभ होना पड़े। ऐसा कोई सवाल न रहे, जिसका जवाब आदमी के पास न रहे। लेकिन इस सबसे घातक परिणाम हुआ है, वो ये कि एक अनूठा अनुभव—आश्चर्य, मनुष्य के जीवन से तिरोहित हो गया है। इसलिए धर्म है रहस्य। और धर्म है : आश्चर्य की खोज।

बुद्धि : दुख की खोज

संजय ने कहा : आश्चर्य से युक्त हुआ। ये अर्जुन कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। पूर्ण सुशिक्षित, उस समय की ठीक-ठीक संस्कृति, उस समय जो भी संभावना हो सकती थी शिखर पर होने की, ऐसा व्यक्ति था। इसको आश्चर्य से भर जाना आसान मामला नहीं था। वो तो आश्चर्य से तभी भरा होगा, जब उस विराट के उद्घाटन के समक्ष उसकी क्षुद्र बुद्धि के सभी तंतु टूट गए हों। जब उसकी कुछ भी समझ में नहीं आया हो, और जब उसको लगा होगा कि ये समझ के पार गया। अब मेरा अनुभव, मेरा ज्ञान, मेरी बुद्धि, कोई भी काम नहीं करती। तब उसका रोयां-रोयां खड़ा हो गया होगा। तब वो आश्चर्य से चकित हुआ, आश्चर्य से युक्त हुआ, हर्षित रोमों वाला, उसका रोयां-रोयां आनन्द से नाचने लगा होगा—क्यों? क्योंकि बुद्धि दुख है, और जब तक बुद्धि का साथ है, तब तक दुख से कोई छुटकारा नहीं। बुद्धि दुख की खोज है, इसलिए बुद्धिमान आदमी वो है : जहां दुख हो ही न, वहां भी दुख खोज ले। दुख खोजने की जितनी कुशलता आप में हो, उतने आप बुद्धिमान हैं। करते क्या हैं आप बुद्धि से—थोड़ा समझें। कोई पशु मृत्यु से परेशान नहीं है, मृत्यु की कोई छाया पशु पर नहीं है। मृत्यु आती है, पशु मर जाता है। लेकिन मृत्यु के बाबद सोचता-विचारता नहीं है। आदमी मरेगा तब मरेगा, उसके पहले हजार दफे मरता है। जब भी सड़क पर कोई मरता है, फिर मरेगा। फिर किसी की अर्थी निकली—फिर अपनी अर्थी निकली। फिर मरघट की तरफ ले जाने लगे लोग—राम-राम करते फिर आप मरे—रोज, हर घड़ी। क्या कारण क्या है? जीवन दिखाई नहीं पड़ता बुद्धि को—मृत्यु दिखाई पड़ती है। जीवन बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। मेरे पास लोग आते हैं—वो कहते हैं कि जीवन क्या है? जी रहे हैं, अभी जिन्दा हैं, श्वांस लेते हैं, इधर चल के आ रहे हैं--पूछ रहे हैं और पूछते हैं कि जीवन क्या है?

तो अगर जीते जी आपको पता नहीं चला जीवन का, तो फिर कब पता चलेगा--मर के? और आप जी रहे हैं, आपका जीवन है और मुझसे पूछने चले आए हैं? अगर जी के पता नहीं चल रहा है तो मेरे जवाब से पता चलेगा। नहीं बुद्धि जीवन को देख ही नहीं पाती है, ये तकलीफ है। बुद्धि मौत को देखती है। जब आप स्वस्थ होते हैं तब आप नाचते नहीं। लेकिन जब बीमार होते हैं तो रोते जरूर हैं। ये बड़े मजे की बात है। जब बीमार होते हैं तो रोते हैं लेकिन जब स्वस्थ होते हैं तो कभी आपको नाचते नहीं देखा। बुद्धि सुख को देखती ही नहीं, दुख को ही देखती है। बुद्धि ऐसी है जैसे आपका एक दांत गिर गया है और जीभ उसी-उसी जगह को खोजे जहां दांत गिर गया। और जब तक था, जीभ को उसकी कोई चिन्ता न थी--मिलने की कोई चिन्ता न थी। प्रेम था इस दांत से तो मिल लेना था, लेकिन जब गिर गया तो गड्ढे में जीभ इसको खोजती है। ये बुद्धि है। बुद्धि हमेशा अभाव को खोजती है, आपकी पत्नी है अभी, जब मरेगी तब आपको पता चलेगा थी। फिर आप रोयेंगे कि प्रेम कर लिया होता तो अच्छा था। जो खो जाए वो दिखाई पड़ता है बुद्धि को, जो है, वह बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। अस्तित्व से बुद्धि का सम्बन्ध ही नहीं होता—अभाव से होता है। जब नहीं होती कोई चीज तब बुद्धि को पता चलता है।

इसकी वजह से जीवन में कई वर्तुल पैदा होते हैं, एक वर्तुल तो ये होता है कि जो हमारे पास नहीं है—वो हमें दिखाई पड़ता है। जब पास आ जाता है, तब दिखाई पड़ना बन्द हो जाता है। तब फिर हमारे पास जो है, वह दिखाई नहीं पड़ता। लोग कहते हैं ये वासना की भूल है, ये वासना की भूल नहीं है—बुद्धि की भूल है। बुद्धि देखती ही खाली जगह को है। अभी जो मकान अथवा कार आपके पास नहीं है, उसकी वजह से दुख उठा रहे हैं। बेटा नहीं है तो उसकी वजह से दुख उठा रहे हैं। जिनके पास है उनको इस सबसे कोई सुख नहीं है। इसे थोड़ा समझें।

जो मकान आपके पास नहीं है, उससे आप दुख पा रहे हैं और जिनके पास है उनसे आप पूछें कि कितना आनंद उठा रहे हैं उससे। वो कोई आनन्द नहीं पा रहा है--वो भी दुख पा रहा है, वो किसी दूसरे मकान से दुख पा रहा है जो उसके पास नहीं है। ये उल्टा दिखाई पड़ेगा लेकिन हम उससे दुखी हैं जो हमारे पास नहीं है और हम उससे बिल्कुल सुखी नहीं हैं—जो पास है।

मैं एक घर में ठहरता था, किसी गांव में । तो जिस घर में ठहरता था उस घर की गृहणी—तीन दिन या चार दिन वर्ष में उनके घर रहता, चार दिन सतत रोती रहती । मैंने उससे पूछा कि बात क्या है ? वो बोली कि जब आप आते हैं तो मुझे ये फिकर हो जाती है कि अब आप चार दिन बाद जायेंगे । जब आप नहीं होते तो मैं साल भर आपके लिए रोती हूं, राह देखती हूं और जब आप होते हैं तो लगने लगता है कि अब चार दिन बीते—आप जायेंगे । ये स्त्री बुद्धिमान है । मेरे चार दिन वहां रहने पर आनन्दित नहीं हो पाती, वो चार दिन भी दुख का ही कारण है; क्योंकि बुद्धि सिर्फ दुख को ही खोजती है । अगर वो निर्बुद्धि हो सके तो हालत उल्टी हो जाएगी । जब मैं उसके घर रहूंगा तो वो आनंदित हो जाएगी—नाचेगी कि मैं उसके घर हूं और जब मैं वर्ष भर उसके घर नहीं रहूंगा तब वो आनंद से प्रतीक्षा करेगी कि अब मैं आता हूं । लेकिन इसके लिए निर्बुद्धि होना पड़े, बुद्धिमान ये काम नहीं कर सकता । बुद्धि को तलाश ही अभाव की तलाश है—अस्तित्व की तलाश नहीं है ।

अंतस चेतना के दो आयाम

अर्जुन की बुद्धि गिरी होगी तो आश्चर्य से भर गया, उसका रोयां-रोयां हर्ष से कंपित होने लगा, रोयां-रोयां, ध्यान रहे जब अनुभव घटित होता है तो वो आत्मा में नहीं होता वो शरीर के रोयें-रोयें में फैल जाता है । इसलिए आत्मिक अनुभव में शरीर समाविष्ट है । आप ये मत सोचना कि आत्मिक अनुभव कोई भूत-प्रेत जैसा अनुभव है जिसमें शरीर का कोई समावेश नहीं होता । और आप ये भी मत सोचना कि शरीर के जो अनुभव हैं वो सभी अनात्मिक हैं—शरीर का अनुभव भी इतना गहरा जा सकता है कि आत्मा खो जाए । और आत्मिक अनुभव भी इतना बाहर तक आ सकता है कि शरीर का रोआं रोआं पुलकित हो जाये । दोनों तरफ से यात्रा हो सकती है । आप शरीर के अनुभव को इतना गहरा कर ले सकते हैं कि शरीर की सीमा के पार आत्मा की सीमा में प्रवेश हो जाए । योग शरीर से शुरू करता है और भीतर की तरफ ले जाता है । भक्ति भीतर की तरफ से शुरू करती है और बाहर की तरफ ले जाती है । बाहर और भीतर दो चीजों के नाम नहीं हैं—एक ही चीज के दो छोर हैं । इसलिए जो भी घटित होता है, वो पूरे प्राणों में स्पंदित होता है । ईश्वर का अनुभव भी रोयें रोयें तक स्पंदित होता है ।

स्वामी राम अमरीका से लौटे, वो राम का जप करते रहते थे । सरदार पूर्णसिंह उनके भक्त थे और उनके साथ रहते थे । एक रात—अंधेरी रात में अचानक पूर्णसिंह ने राम-राम की आवाज सुनी, पास ही सोते थे दोनों, एक छोटे से झोपड़े में एक ही कमरा था । कोई और तो था नहीं, स्वामी राम सोये थे । सरदार उठे, दिया जलाया, कौन आ गया यहां—राम सोये हुए थे । पूर्णसिंह बाहर गए, झोपड़ी का पूरा चक्कर लगा आए, कोई भी नहीं वहां—लेकिन आवाज आ रही थी । बाहर जाके अनुभव में आया कि आवाज तो कमरे के भीतर से आ रही थी, वो बाहर से नहीं आ रही थी—भीतर से आ रही थी । राम सोये थे, वहाँ कोई और तो है नहीं । राम के पास गए—जैसे-जैसे पास गए आवाज बढ़ने लगी । राम के हाथ और पैरों के पास कान लगाकर सुना—राम की आवाज आ रही थी । घबड़ा गए—क्या हो रहा है, जगाया राम को, ये क्या हो रहा है । राम ने कहा : आज जप पूरा हो गया । जब तक रोआं-रोआं जप न करने लगे, तब तक अधूरा है । आज राम मेरे शरीर तक में प्रवेश कर गया । आज रोआं रोआं भी बोलने लगा और कंपित हुआ । जब परम अनुभव घटित होता है तो रोयें-रोयें तक व्याप्त हो जाता है । शरीर भी पवित्र हो जाता है आत्मा के अनुभव में । और जब तक शरीर भी पवित्र न हो जाए आत्मा के अनुभव में समझना कि अनुभव अधूरा है । जब तक शरीर भी पवित्र न हो जाए तब तक समझना अधूरा है । ये संजय कह रहा है कि रोयां-रोयां हर्षित हो गया अर्जुन का और अर्जुन विश्वरूप परमात्मा को श्रद्धा भक्ति सहित सिर से प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए बोला । इसमे फिर भाषा की कठिनाई है, ऐसे क्षण में हाथ जोड़े नहीं जाते, जुड़ जाते हैं । ये कोई अर्जुन ने हाथ जोड़े होंगे, जैसा हाथ जोड़ते हैं कि गुरुजी आ रहे हैं—हाथ जोड़ो, न जोड़ेंगे तो बुरा मान जायेंगे और फिर कर्त्तव्य भी है और संस्कार भी है और फिर हाथ जोड़ने से अपना बिगड़ेगा भी क्या : कुछ मिलता होगा तो मिल जाएगा । आपके हाथ जोड़ना भी व्यवसाय है और चेष्टा है । आप न जोड़ें तो हाथ जुड़ेंगे नहीं, आपको जोड़ना पड़ते हैं । अर्जुन को इस क्षण में जोड़ना पड़े नहीं होंगे, जुड़ गए होंगे । उसे पता ही न रहा होगा, हाथ जुड़ गए होंगे—सिर झुक गया होगा । इसीलिए मैं कहता हूं कि भाषा की भूल है संजय समझा रहा था, भाषा की तकलीफ है, उसको कहना पड़ रहा है अर्जुन ने हाथ जोड़े, श्रद्धा-भक्ति से भरकर सिर झुकाया । नहीं, न तो हाथ जोड़े, न श्रद्धा-भक्ति से भरके सिर झुकाया, श्रद्धा-भक्ति से भर गया—

से घटना है, इसमें कोई श्रम नहीं है। आप भी श्रद्धा-भक्ति से भरते हैं, भरने का मतलब होता है कि आप चेष्टा करते हैं, तो श्रद्धा-भक्ति से भरे मंदिर में जाते हैं, श्रद्धा-भक्ति से भरके सिर झुकाते हैं : सब झूठा होता है, सब अभिनय होता है। नहीं तो, कोई श्रद्धा-भक्ति से चेष्टा से कोई कैसे भर सकता है या तो भीतर से बहती हो और न बहती हो तो कैसे भरियेगा, अभिनय कर सकते हैं। देखिए मंदिर में खड़े आदमी को और उसी आदमी को मंदिर के बाहर सीढ़ियों से उतरते देखिए और उसी आदमी को दुकान पर बैठे हुए देखिए, आप पायेंगे कि तीनों आदमी अलग हैं—एक ही आदमी मालूम नहीं पड़ता। यही आदमी मंदिर में सिर झुका के खड़ा था—कैसी श्रद्धा-भक्ति से भरा हुआ, लेकिन ये श्रद्धा-भक्ति को मन्दिर में ही छोड़ आता है। और मंदिर में केवल वही श्रद्धा-भक्ति छोड़ी जा सकती है जो रही ही न हो।

जो रही हो तो छोड़ी नहीं जा सकती, श्रद्धा भक्ति कोई जूते की तरह नहीं है कि उतार दिया, प्राण है। अर्जुन को जब इस क्षण में इतने आश्चर्य का अनुभव हुआ और जब वह प्रकाश से भर गया, आच्छादित हो गया तो श्रद्धा भक्ति करनी नहीं पड़ी, हो गई। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि गुरु वो नहीं है जिसको आपको प्रणाम करना पड़े, गुरु वो है जिसके सान्निध्य में प्रणाम हो जाए। आपको करना पड़े तो कोई मूल्य नहीं है, हो जाये। अचानक आप पायें कि आप प्रणाम कर रहे हैं। अचानक आप पायें कि आप झुक गए हैं।

मैं एक विश्व-विद्यालय में था, वहां शिक्षकों में, सारी दुनिया में शिक्षकों को एक ही चिन्ता है कि विद्यार्थीगण आदर नहीं देते, अनुशासन नहीं है। तो विश्व-विद्यालय के सारे शिक्षकों ने एक समिति बुलाई थी विचार के लिए, भूल से मुझे भी बुला लिया। वे भारी चिन्ता में पड़े थे कि अनुशासन नहीं है, श्रद्धा खो गई है और गुरु का आदर हमारे देश में तो कम से कम होना ही चाहिए। तो मैंने उनसे पूछा कि मुझे एक व्याख्या पहले साफ-साफ समझा दें कि गुरु को आदर देना चाहिए—ऐसा अगर मानते हैं तो इसका अर्थ ये हुआ कि आदर देने के लिए विद्यार्थी स्वतन्त्र है। दे तो दे, न दे तो न दे। और अगर आप ऐसा मानते हैं कि गुरु है ही वही जिसको आदर दिया जाता है तो विद्यार्थी स्वतन्त्र नहीं रह जाता। मेरी दृष्टि में तो गुरु वही है जिसे आदर सहज दिया जाता है। अगर विद्यार्थी आदर

न दे रहे हों, बजाय इस चिन्ता में पड़ने के कि विद्यार्थी कैसे आदर दें, हमें इस चिन्ता में पड़ना चाहिए कि गुरु हैं या नहीं हैं। गुरु खो गए हैं। गुरु हो और आदर न हो ये असंभव है। आदर न मिले तो यही सम्भव है कि गुरु वहां मौजूद नहीं है। गुरु का अर्थ ही यह है कि जिसके पास जाकर श्रद्धा-भक्ति पैदा हो, जिसके पास झुकके लगे कि भर गए, जिसके पास झुकके लगे कि कुछ पा लिया। कहीं कोई हृदय तक भीतर स्पंदित हो गई कोई लहर। अर्जुन झुक गया। श्रद्धा-भक्ति उसने अनुभव की। हाथ उसके जुड़ गए, सिर उसका झुक गया। और बोला : हे देव ! आपके शरीर में सम्पूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों को और कमल के आसन पर बैठे हुए ब्रह्मा को तथा महादेव को और सम्पूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को देखता हूं। और हे सम्पूर्ण विश्व के स्वामिन् ! आपको अनेक हाथ, पेट, मुख और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रूपों वाला देखता हूं। हे विश्वरूप ! आपके न तो अन्त को देखता हूं तथा न मध्य को और न आदि को ही देखता हूं। और हे विष्णु ! आपको मैं मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त तथा सब ओर से प्रकाशमान तेज का पुन्ज, प्रज्ज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योतियुक्त, देखने में अतिगहन और अप्रमेयस्वरूप सब ओर से देखता हूं।

बुद्धि के पार की झलक

अर्जुन जो कह रहा है वह बिलकुल अस्त-व्यस्त हो गया है। ये जो वचन हैं उसके होश में कहे गए नहीं हैं, जैसे कोई बेहोश है, शराब पी ले, मदहोश हो जाए फिर कुछ कहे। उसकी वाणी में सब अस्त-व्यस्त हो जाए और वो जो कहना चाहे कह न सके और जो कहे उसकी अभिव्यक्ति न हो, साधारण शराब में ऐसा हो जाता है जिससे हम परिचित हैं। और जिस शराब में अर्जुन उस क्षण में डूब गया होगा जिस हर्षोन्माद में, भगवत्-रस में वहां होश खो गया मालूम होता है। वो जो कह रहा है ऐसा जैसा छोटा बच्चा। कहता चला जाता है और फिर अनुभव करता है कि जो मैं कह रहा हूं और जो मैं देख रहा हूं उसमें संगति नहीं है तो बदल भी देता है। वो कहता है कि देखता हूं समस्त देवों को, समस्त भूतों को, कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा को, महादेव को—ये बड़ी उल्टी अनुभूतियां हैं। ब्रह्मा और महादेव दो छोर हैं। ब्रह्मा का अर्थ है जिसने सृजन किया, और महादेव

का अर्थ है जो करता हो विध्वंस। अर्जुन ये कह रहा है कि साथ-साथ देखता हूं : ब्रह्मा को, महादेव को। उसने जिसने जगत को बनाया देखता हूं आपके भीतर और जो मिटाता है उसको भी देखता हूं आपके भीतर। प्रारम्भ सृष्टि का और अन्त। जन्म-मृत्यु साथ-साथ देखता हूं। सारी शक्तियां —सारी दिव्य शक्तियां दिखाई पड़ रही हैं। हे सम्पूर्ण विश्व के स्वामी! कितने आपके पेट, कितने नेत्र!

अगर हम थोड़ी कल्पना करें तो ख्याल में आ जाए। अगर हम पृथ्वी के सारे मनुष्यों के हाथ जोड़ लें, सारे मनुष्यों के पेट जोड़ लें, सारे मनुष्यों की आंखें जोड़ लें, सारे मनुष्यों के सब अंग जोड़ लें तो जो रूप बनेगा, वो भी पूरी खबर नहीं देगा क्योंकि, हमारी पृथ्वी बड़ी छोटी है, और ऐसी हजारों-हजार पृथ्वियों पर हम जैसे हजारों-हजार प्रकार के जीवन हैं। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि कम से कम पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन की संभावना है। परमात्मा का तो अर्थ है : समस्त—समष्टि का जोड़। तो हम सबको जोड़ लें, आदमियों को जोड़ें, पशु-पक्षियों को भी जोड़ें और सारी अनन्त पृथ्वियों के जीवन को जोड़ लें—तब कितने हाथ, कितने मुंह, कितने पेट—वो सब अर्जुन को दिखाई पड़े होंगे। हम उसकी दुविधा समझ सकते हैं। ये सब जुड़ा हुआ दिखाई पड़ा होगा। वो किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया होगा। उसकी कुछ समझ में नहीं आता होगा कि क्या है? इसलिए, वो फिर पूछ रहा है कि ये सब क्या है? और इतना सब देखता हूं फिर भी न तो आपका अन्त दिखाई पड़ता है, न आदि दिखाई पड़ता है। ये सब देख रहा हूं फिर भी मुझे ऐसा नहीं लगता कि आपको पूरा देख रहा हूं क्योंकि मुझे प्रारम्भ का कुछ पता नहीं चलता, अन्त का भी कोई पता नहीं चलता।

इसमें छोटी-सी एक बड़ी कीमती बात है। अर्जुन कहता है कि मध्य भी दिखाई नहीं पड़ता। इसमें हमें थोड़ा संदेह होगा। क्योंकि फिर जो दिखाई पड़ता है—वो क्या है? अर्जुन को जो दिखाई पड़ रहा है—इतने तक बात तर्कयुक्त है कि मुझे प्रारम्भ नहीं दिखाई पड़ता, अन्त नहीं दिखाई पड़ता। आप नदी के किनारे खड़े हैं : न आपको नदी का प्रारम्भ दिखाई पड़ता है न सागर में गिरते समय नदी का अन्त दिखाई पड़ता है। लेकिन मध्य तो दिखाई पड़ता है। जहां आप खड़े हो वो क्या है? तो हमें लगेगा

कि अर्जुन कहता है कि न मुझे प्रारम्भ दिखाई पड़ता है और न अन्त दिखाई पड़ता है, न मुझे मध्य दिखाई पड़ता। कारण है उसके कहने का। क्योंकि जब हमें आदि न दिखाई पड़ता हो—अन्त न दिखाई पड़ता हो तो जो हमें दिखाई पड़ता हो उसे मध्य कहना गलत है। मध्य का मतलब ही है कि आदि और अन्त के बीच में। जब हमें दोनों छोर ही दिखाई नहीं पड़ते तो इसे हम मध्य भी कैसे कहें? दो छोर के बीच का नाम मध्य है। अगर आपको दोनों छोर दिखाई ही नहीं पड़ते तो हम इसे भी कैसे कहें कि ये मध्य है। इसलिए अर्जुन कहता है कि न तो मुझे मध्य दिखाई पड़ता, न आदि दिखाई पड़ता, न अन्त दिखाई पड़ता।

सब कुछ दिखाई पड़ रहा है विराट, फिर भी मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है। ये बिल्कुल जैसे एक बेबसी की घड़ी आदमी पर उतर आई हो। उसकी बुद्धि बिल्कुल चकरा गई। मैं आपका मुकुट-युक्त, गदा-युक्त और चक्र-युक्त प्रकाशमान तेज का पुन्ज, प्रज्ज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योतियुक्त, देखने में अति गहन और अप्रमेय स्वरूप सब ओर देखता हूं। बहुत गहन है जो मैं देख रहा हूं। गहन का यहां ख्याल ले लेना जरूरी है। गहन का अर्थ है जो मैं देख रहा हूं वह सतह मालूम होती है और सतह के पीछे और सतह, सतह के पीछे और सतह, और सतह के पीछे और गहराइयां दिखाई पड़ रही हैं। ये ऐसा लगता है कि मैं आपके बाहर खड़ा होकर देख रहा हूं—मुझे पहला परदा दिखाई पड़ रहा है और उस परदे के पीछे परदे ट्रांसपरेंट मालूम पड़ते हैं। जैसे नदी के किनारे खड़े हों, पानी में गहराई दिखाई पड़ती है। और गहरा, और गहरा, और गहरा; और ये गहराई कहां पूरी होती है उसका मुझे कोई पता नहीं। ऐसा आपको गहन देखता हूं। अप्रमेय, और जो देखता हूं वो ऐसा है कि जिसके लिए न तो कोई प्रमाण हैं कि मैं क्या देख रहा हूं, न मेरी बुद्धि के पास कोई तर्क है जिससे मैं अनुमान कर सकूं कि क्या देख रहा हूं—न मेरे पास कोई निष्पत्ति है, न कोई सिद्धांत है कि मैं क्या देख रहा हूं। अप्रमेय का अर्थ है कि अगर अर्जुन दूसरे को जाकर कहेगा तो दूसरा समझेगा कि ये पागल है, जो इसने देखा, इसका दिमाग खराब हो गया। इसलिए जिन्होंने देखा है उसे, वो कई बार तो आप उन्हें पागल न कहें इसलिए आपसे कहने से रुक जाते हैं। क्योंकि अगर वे कहेंगे तो आप भरोसा तो करने वाले नहीं हैं। आपको शक होने लगेगा कि इस आदमी का इलाज करवाना चाहिए कि ये क्या कह रहा

है। ये जो कह रहा है किसी भ्रम में खो गया है या तो विक्षिप्त हो गया है।

आज पश्चिम के मनसविद् कहते हैं कि जिन लोगों को हम पागल करार दे रहें हैं उनमें सभी पागल हों ये जरूरी नहीं है। इनमें कुछ ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिन्होंने जगत को किसी और पहलू से देख लिया और मुसीबत में पड़ गए। लेकिन जब एक दफे जगत को कोई और किसी पहलू से देख ले तो हमारे बीच फिर बैठ नहीं पाता फिर वो जो कहता है वो हमें मालूम पड़ता है कि किसी स्वप्न की बात कर रहा है या वो जो बताता है हमारी भाषा में, हमारे अनुभव में, उसका कोई मेल न होने से वो व्यर्थ मालूम पड़ता है।

सूफी फकीर कहते रहे हैं कि जब तक योग्य आदमी न मिल जाये तब तक अपने भीतर के अनुभव कहना ही मत, नहीं तो तुम मुसीबत में पड़ोगे। और ऐसी मुसीबत आती रही है, 'अल्इल्हाद' जोर से चिल्लाकर कह दिया कि मैं ब्रह्म हूं—अनलहक, जोर से चिल्ला कर कह दिया और लोगों ने पकड़कर उसकी हत्या कर दी। तुम और ब्रह्म, इसी गांव में पैदा हुए, बड़े हुए, तुम और ब्रह्म। ये कुफ्र है, ये तुम पाप कर रहे हो कि अपने को ब्रह्म कहो। 'अल्इल्हाद' ने उन लोगों से बात कह दी जिनसे नहीं कहनी थी। निश्चित ही उनको ये बात ऐसी मालूम पड़ेगी कि धोखा है या ये आदमी पागल है। 'अल्-इल्हाद' का अनुभव हुआ था लेकिन जो हुआ था वो इतना बड़ा था कि ब्रह्म से छोटे शब्द से नहीं कहा जा सकता था। और जो हुआ था, वो इतने निकट था, अपने से भी ज्यादा निकट कि इसके सिवाय कि 'मैं ब्रह्म हूं' और कोई उपाय नहीं था, लेकिन वो गलत लोगों के बीच कह दी बात।

इस मुल्क में हमने ऐसी व्यवस्था की थी कि जब भी कोई इस तरह की घटना और अनुभव कोई कहे तो उन लोगों को कहें जो समझ सकते हैं। उनसे कहें जो शब्द में न अटक जायेंगे। उनको कहें जिनकी खुद की भी कोई प्रतीति हो, कबीर से लोग पूछते रहे निरंतर कि कहिए आपको भीतर क्या हुआ? तो कबीर कहते कि सुनने वाला आ जाए, थोड़ा रुको।

एक दफा बुद्ध एक गांव में गए, सारे लोग इकट्ठे हो गए। बुद्ध बैठ गए। लेकिन वे देखते रहे चारों तरफ, जैसे किसी को खोजते हों। तो लोगों ने

कहा कि शुरू भी करिए, बुद्ध ने कहा : मैं प्रतीक्षा करता हूं कि वो जो समझ सकता है गांव में, वो अभी आया नहीं। ये भी हो सकता है कि बुद्ध बहुत से अनुभव कह ही न पाये हों। एक बार जंगल से गुजरते वक्त आनंद ने बुद्ध से पूछा कि आपने जो-जो जाना है, वह हमसे कह दिया। पतझड़ के दिन थे और सारे जंगल में सूखे पत्ते गिर रहे थे, उड़ रहे थे—तो बुद्ध ने एक मुट्ठी में सूखे पत्ते ऊपर उठा लिए और कहा आनंद मेरी मुट्ठी में कितने सूखे पत्ते हैं। आनंद ने कहा ४-६, और बुद्ध ने कहा : इस जंगल में कितने सूखे पत्ते जमीन पर पड़े हैं। आनंद ने कहा : अनंत, तो बुद्ध ने कहा कि मैंने जितना जाना—वो इन अनंत पत्तों की तरह है, और जितना मैंने तुमसे कहा वो मुट्ठी में मेरी जितने पत्ते हैं उनकी भांति। क्योंकि अमृत भी ज्यादा हो जाए तो जहर हो जाता है तुम झेल न पाओगे। ये जो अर्जुन को दिखाई पड़ा होगा विराट, अप्रमेय, जिसकी बुद्धि कभी कोई कल्पना भी नहीं कर सकती थी, अनुमान भी नहीं कर सकती थी, सोच भी नहीं सकती थी; जिसकी तरफ कोई उपाय न था, वो उसे दिखाई पड़ा। ये अप्रमेय स्वरूप सब ओर देखता हूं। और ऐसा नहीं है कि आप ही अप्रमेय हो गए कृष्ण, अर्जुन कह रहा है सब तरफ, जो कुछ भी है, इस समय, सभी बुद्धि अतीत हो गया है। कुछ भी समझ में नहीं आता। मेरी समझ बिल्कुल खो गई है, मैं बिल्कुल शून्य हो गया हूं।

●

गीता अध्याय ११ :

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ।१८।

अनादिमध्यांतमनन्तवीर्य-मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेनदिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ।२०।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद्भीताः प्रांजलयो गृणंति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवंति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ।२२।

अनाग्रह योग : द्वन्द के पार का दर्शन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, क्रास मैदान, बंबई, संध्या : दिनांक ५ जनवरी ७३

चौथा प्रवचन

व्यास के कारण गीता हमें मिली

एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि गीता चार व्यक्तियों के संयोग के कारण हमें उपलब्ध हो सकी है—कृष्ण, अर्जुन, संजय और धृतराष्ट्र। लेकिन, गीता श्रीमद्भागवत् का एक अंश है और श्रीमद्भागवत् को महर्षि व्यास ने लिखा है। इसलिए महर्षि व्यास या संजय कौन उसका मूल स्रोत है ?

इस सम्बन्ध में कुछ बातें विचारणीय हैं। एक तो, जो लोग श्रीमद्भागवत् को या गीता को केवल साहित्य मानते हैं, लिट्रेचर मानते हैं, ऐतिहासिक घटनाएं नहीं। जो ऐसा नहीं मानते कि कृष्ण और अर्जुन के बीच जो घटना घटी है, वो वस्तुतः घटी है, जो ऐसा भी नहीं मानते कि संजय ने किसी वास्तविक घटना की खबर की है, या फिर धृतराष्ट्र कोई व्यक्ति है; बल्कि जो मानते हैं कि वे चारों, व्यास ने जो महासाहित्य लिखा है, उसके चार पात्र हैं। जो ऐसा मानते हैं उनके लिए तो व्यास की प्रतिभा मौलिक हो जाती है, मूल आधार हो जाती है—और फिर सब पात्र हो जाते हैं। तब तो सारा व्यास की ही प्रतिभा का खेल है। जैसे सार्त्र के उपन्यास में उसके पात्र हैं, या दोस्तोवस्की की कथाओं में उसके पात्र हैं, ठीक वैसे ही

इस महाकाव्य में भी सब पात्र हैं और व्यास की प्रतिभा से जन्मे—ऐसा भारतीय परम्परा का मानना नहीं है और न ही जो धर्म को समझते हैं वे ऐसा मानने को तैयार हो सकते हैं। तब स्थिति बिल्कुल उल्टी हो जाती है। तब व्यास केवल लिपिबद्ध करने वाले रह जाते हैं, तब घटना तो कृष्ण और अर्जुन के भीतर घटती है। उस घटना को पकड़ने वाला संजय। एक पकड़ने की घटना संजय और धृतराष्ट्र के बीच घटती है, लेकिन उसे लिपिबद्ध करने का काम हमारे और व्यास के बीच घटित होता है। वह तीसरा तल है। जो हुआ है, उसे संजय ने कहा है। जो संजय ने कहा है धृतराष्ट्र को, उसे व्यास ने संग्रहीत किया है, उसे लिपिबद्ध किया है।

अगर साहित्य है केवल, तब तो व्यास निर्माता हैं और कृष्ण, अर्जुन, संजय, धृतराष्ट्र सब इनके हाथ के खिलौने हैं। अगर यह वास्तविक घटना है, अगर यह इतिहास है, न केवल बाहर की आंखों से देखे जाने वाला, बल्कि भीतर घटित होने वाला भी; तब व्यास केवल लिपिबद्ध करने वाले रह जाते हैं, वे केवल लेखक हैं। और पुराने अर्थों में लेखक का इतना ही अर्थ था, वो लिपिबद्ध कर रहा है।

हमारे और व्यास के बीच गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि संजय ने जो कहा वो धृतराष्ट्र से कहा है। अगर बात कही हुई ही होती तो खो गयी होती। हमारे लिए संग्रहीत व्यास ने किया। हमारे तो निकटतम व्यास हैं, लेकिन मूल घटना कृष्ण और अर्जुन के बीच घटी और मूल घटना को शब्दों में पकड़ने का काम संजय और धृतराष्ट्र के बीच हुआ। हमारे और व्यास के बीच भी भीतर घट रहा है—उन शब्दों को संग्रहीत करने का। और इसीलिए व्यास के नाम से बहुत से ग्रन्थ हैं। और जो लोग पाश्चात्य शोध के नियमों को मानकर चलते हैं उन्हें बड़ी कठिनाई होती है कि एक ही व्यक्ति ने, एक ही व्यास ने इतने ग्रन्थ कैसे लिखे होंगे!

सच तो यह है कि व्यास से व्यक्ति के नाम का कोई सम्बन्ध नहीं है। व्यास तो लिखने वाले को कहा गया है। किसी ने भी लिखा हो, व्यास ने लिखा है, लिखने वाले ने लिखा है। कोई एक व्यक्ति ने ये सारे शास्त्र नहीं लिखे। लेकिन लिखने वाले ने अपने को कोई मूल्य नहीं दिया, क्योंकि वह केवल लिपिबद्ध कर रहा है। उसके नाम की कोई जरूरत भी नहीं है। जैसे टेप रिकार्डर रिकार्ड कर रहा है, ऐसे ही कोई व्यक्ति लिपिबद्ध कर

रहा हो, तो लिपिबद्ध करने वाले ने अपने को कोई मूल्य नहीं दिया। और इसलिए एक सामूहिक सम्बोधन व्यास—जिसने लिखा। वह सामूहिक सम्बोधन है। वह किसी एक व्यक्ति का नाम भी नहीं है। लेकिन हमारे लिए तो लिखी गई बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है, इसलिए व्यास को हमने महर्षि कहा है। जिसने लिखा है, उसने हमारे लिए संग्रहीत किया है, अन्यथा बात खो जाती।

निश्चित ही संजय के कहने में और व्यास के लिखने में कोई अन्तर नहीं है। क्योंकि लिखने में और कहने में किसी अन्तर की जरूरत नहीं। अन्तर तो घटित हुआ है कृष्ण के देखने में और संजय के कहने में। जो कहा जा सकता है वह लिखा भी जा सकता है। लिखना और कहना दोनों विधियां हैं। कहने में और लिखने में कोई अन्तर पड़ने की जरूरत नहीं है, इसलिए मैंने व्यास को छोड़ दिया था, कोई बात नहीं उठाई थी। वे परिधि के बाहर हैं। हमारे लिए उनकी बहुत जरूरत है। हमारे पास गीता बचती भी नहीं। व्यास के बिना बचने का कोई उपाय न था। लेकिन घटना के भीतर वे नहीं हैं, इसलिए मैंने उनकी चर्चा नहीं की है। ये चार व्यक्ति ही घटना के भीतर गहरे हैं। व्यास का होना बाहर है, परिधि पर है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या दिव्य-चक्षु सिद्धावस्था के पूर्व भी उपलब्ध हो सकता है?

दिव्य चक्षु : सिद्धावस्था का साम्य

नहीं, दिव्य-चक्षु सिद्धावस्था के पूर्व उपलब्ध नहीं हो सकता, क्योंकि दिव्य-चक्षु का उपलब्ध होना और सिद्धावस्था एक ही बात के दो नाम हैं। लेकिन टेलीपैथी, दूर-दृष्टि उपलब्ध हो सकती है। इससे कोई सिद्धावस्था का सम्बन्ध नहीं है। और वह तो ऐसे व्यक्ति को भी उपलब्ध हो सकती है, जिसकी कोई साधना भी न हो। टेलीपैथी तो हमारे मन की ही क्षमता है। हमारे मन के पास सम्भावना है कि दूर की चीजों को भी देख ले, आंख के बिना। हमारे मन के पास सम्भावना है कि दूर की वाणी को सुन ले, कान के बिना। और बहुत बार तो हममें से अनेक लोग देख लेते हैं, सुन लेते हैं, लेकिन हमें ख्याल नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। बहुत बार हमें पीछे पता चलता है, तो आज के युग की वजह से हम सोच लेते हैं, संयोग की बात है।

अगर बेटा मर रहा हो तो दूर मां को भी प्रतीत होने लगता है।
कोई सिद्धावस्था की बात नहीं है, सिर्फ एक प्रगाढ़ लगाव है। तो कितना
फासला हो, अगर बेटा मर रहा हो तो मां को कुछ परेशानी शुरू हो जाती
है—वह समझ पाए या न समझ पाए। अगर बहुत निकट मित्र कठिनाई
में पड़ा हो तो मित्र को भीतर बेचैनी शुरू हो जाती है, फासला कितना भी
हो। कोई धक्के आंतरिक तरंगों के लगने शुरू हो जाते हैं। कोई संवाद
किसी द्वार से मिलना शुरू हो जाता है। जिसके हम ठीक-ठीक उपयोग को
नहीं जानते, लेकिन कुछ लोग उसका ठीक उपयोग करना सीख लें तो जरा
भी अड़चन नहीं है। आप छोटे-मोटे प्रयोग खुद भी कर सकते हैं, तब
आपको ख्याल आएगा कि टेलीपैथी, दूर-दृष्टि, दूर-श्रवण, साधना से
सम्बन्धित नहीं हैं, अध्यात्म से इनका कोई लेना-देना नहीं है। आप छोटे-
मोटे प्रयोग कर सकते हैं। छोटे बच्चों के साथ करें तो बहुत आसानी होगी।

छोटे बच्चे को बिठा लें एक कमरे के कोने में, कमरे में अन्धेरा कर
दें, दरवाजा बन्द कर दें। आप दूसरे कोने में जाएं और उस बच्चे से कहें
कि तू मेरी तरफ ध्यान रख अन्धेरे में और सुनने की कोशिश कर कि मैं
क्या कह रहा हूं और अपने कोने में बैठकर आप एक ही शब्द मन में दोहराते
रहें बाहर नहीं, मन में...कमल, कमल, कमल या राम, राम, राम...एक
ही शब्द दोहराते रहें। आप दो तीन दिन में पाएंगे कि आपके बच्चे ने
पकड़ना शुरू कर दिया। वह कह देगा कि राम। क्या हुआ ? फिर उससे
जब आपका भरोसा बढ़ जाय कि बच्चा पकड़ सकता है, तो फिर मैं भी
पकड़ सकता हूं। तब उल्टा प्रयास शुरू कर दें, बच्चे को कहें कि एक शब्द
को दोहराता रहे कोई भी—बिना आपको बताए और आप सिर्फ शान्त
होकर बच्चे की तरफ ध्यान रखें। बच्चे ने जब तीन दिन में पकड़ा है तो
नौ दिन में आप भी पकड़ लेंगे। नौ दिन इसलिए लग जाएंगे कि आप
विकृत हो गए हैं, बच्चा अभी विकृत नहीं हुआ है। अभी उसके यन्त्र ताजे
हैं, वह जल्दी पकड़ लेगा। और अगर एक शब्द पकड़ लिया, तो फिर डरिये
मत, फिर पूरे वाक्य का अभ्यास भी आप कर सकते हैं। और अगर एक
वाक्य पकड़ लिया, तो कितनी ही बातें पकड़ी जा सकती हैं। और बीच में
एक कमरे की दूरी ही सवाल नहीं है। जब बच्चा एक शब्द पकड़ ले कमरे
में, तो उसको छः मंजिले पर भेज दीजिए, वहां भी पकड़ेगा। फिर दूसरे
गांव में भेज दीजिए, वहां भी पकड़ेगा। ठीक समय में नोट कर लीजिए कि

ठीक रात नौ बजे बैठ जाएं आंख बन्द करके, वहां भी पकड़ेगा। आप भी
पकड़ सकते हैं। इसका कोई आध्यात्मिक साधना से सम्बन्ध नहीं है।

लेकिन बहुत से साधु-संन्यासी इसको करके सिद्ध हुए प्रतीत होते हैं।
इससे सिद्धावस्था का कोई भी लेना-देना नहीं है। यह मन की साधारण
क्षमता है जो हमने उपयोग नहीं की है, और निरुपयोगी पड़ी हुई है। इसका
उपयोग हो सकता है। और जितने चमत्कार आप देखते हैं चारों तरफ
साधुओं के आसपास, उनमें से किसी का भी कोई सम्बन्ध आध्यात्मिक
उपलब्धि से नहीं है। वे सब मन की ही सूक्ष्म शक्तियां हैं, जिनका थोड़ा
अभ्यास किया जाय, तो वे प्रकट होने लगती हैं। और अक्सर तो ऐसा
होता है कि जो व्यक्ति इस तरह की शक्तियों में उत्सुक होता है, वह धार्मिक
होता ही नहीं; क्योंकि इस तरह की उत्सुकता ही अधार्मिक व्यक्ति का
लक्षण है। अक्सर अध्यात्म की साधना में ऐसी शक्तियां अपने आप ही
प्रकट होनी शुरू होती हैं। तो अध्यात्म का पथिक उनको रोकता है, उनका
प्रयोग नहीं करता है; क्योंकि उनके प्रयोग का मतलब है—भीतर की ऊर्जा
का अनेक-अनेक शाखाओं में बंट जाना। हम शक्ति का प्रयोग ही करते हैं
दूसरे को प्रभावित करने के लिए। और दूसरे को प्रभावित करने का रस
ही संसार है। कोई आदमी धन से प्रभावित कर रहा है कि मेरे पास एक
करोड़ रुपये हैं। कोई आदमी एक आकाश छूने वाला मकान खड़ा करके
लोगों को प्रभावित कर रहा है कि देखो, मेरे पास इतना आलीशान मकान
है। कोई आदमी किसी और तरह से प्रभावित कर रहा है कि देखो, मैं
प्रधानमंत्री हो गया, कि मैं राष्ट्रपति हो गया। कोई आदमी बुद्धि से प्रभा-
वित कर रहा है कि देखो, मैं महापंडित हूं। कोई आदमी हाथ में ताबीज
निकालकर प्रभावित कर रहा है कि देखो, मैं चमत्कारी हूं, मैं सिद्ध पुरुष हूं।
कोई राख बांट रहा है—लेकिन सबकी चेष्टा दूसरे को प्रभावित करने की
है। यह अहंकार की खोज है।

अध्यात्म का साधक दूसरे को प्रभावित करने में उत्सुक नहीं है।
अध्यात्म का साधक अपनी खोज में उत्सुक है। दूसरे इससे प्रभावित हो जाएं—
यह उनकी बात, इससे कुछ लेना-देना नहीं है, इससे कोई प्रयोजन नहीं है,
यह लक्ष्य नहीं है; लेकिन दिव्य नेत्र अलग बात है। इसलिए ध्यान रखना,
दूर-दृष्टि और दिव्य-दृष्टि का फर्क ठीक से समझ लेना। दूर-दृष्टि तो है संजय

के पास, दिव्य-दृष्टि उपलब्ध हुई है अर्जुन को। दिव्य-दृष्टि का अर्थ है—जब हमारे पास अपनी कोई दृष्टि न रह जाय। यह थोड़ा उलटा मालूम पड़ेगा।

अध्यात्म के सारे शब्द बड़े उल्टे अर्थ रखते हैं। उसका कारण है कि जिस संसार में हम रहते हैं और जिन शब्दों का उपयोग करते हैं, उनका यही अर्थ अध्यात्म के जगत में नहीं होने वाला है। वहां चीजें उल्टी हो जाती हैं। करीब-करीब ऐसे, जैसे आप झील के किनारे खड़े हैं और आपका प्रतिबिम्ब झील में बन रहा है। अगर झील में रहने वाली मछलियां आपके प्रतिबिम्ब को देखें तो आपका सिर नीचे दिखायी पड़ेगा और पैर ऊपर। वह आपका प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब उल्टा होता है। अगर मछलियां ऊपर झांक कर देखें पानी पर, छलांग लेकर देखें, तो बहुत हैरान हो जायेंगी। आप उल्टे मालूम पड़ेंगे ऊपर। मछली को लगेगा कि आप शीर्षासन कर रहे हैं, क्योंकि सिर ऊपर पैर नीचे और उसने सदा आपको नीचे देखा था, सिर नीचे पैर ऊपर। आप उल्टे दिखायी पड़ेंगे। प्रतिबिम्ब उल्टा हो जाता है। संसार प्रतिबिम्ब है।

इसलिए संसार में शब्दों का जो अर्थ होता हैं ठीक उल्टा अर्थ अध्यात्म में हो जाता है। यही ख्याल दृष्टि के बाबत भी रखें। दृष्टि का अर्थ है—देखने की क्षमता। दृष्टि का अर्थ है—दूसरे को देखने की योग्यता। लेकिन अध्यात्म में तो दूसरा कोई बचता नहीं है, इसलिए दूसरे का तो कोई सवाल नहीं है। और दृष्टि का अर्थ सदा दूसरे से बंधा है, आब्जेक्ट से, विषय से। तो दृष्टि का वहां क्या अर्थ होगा?

महावीर ने कहा है कि जब सब दृष्टि खो जाती है, तब दर्शन उपलब्ध होता है। जब सब देखना-वेखना बन्द हो जाता है, जब कोई दिखायी पड़ने वाला नहीं रह जाता, जब सिर्फ देखने वाला ही बचता है; तब दर्शन उपलब्ध होता है। जब देखने वाला दृष्टा ही बचता है तब, तब दिव्य-दृष्टि उपलब्ध होती है। यहां दिव्य-दृष्टि कहना बड़ा उल्टा मालूम पड़ेगा। क्योंकि कहें दृष्टि, जब दृष्टियां खो जाती हैं सब, जब सब बिंदु देखने के ढंग खो जाते हैं, जब सब माध्यम देखने के खो जाते हैं और शुद्ध चैतन्य रह जाता है, तब दृष्टि क्यों कहें। लेकिन, फिर हम न समझ पायेंगे। हमारा ही शब्द उपयोग करना पड़ेगा, तो ही इशारा कारगर हो सकता है।

दूर-दृष्टि तो दृष्टि है। दिव्य-दृष्टि, समस्त दृष्टियों से मुक्त होकर दृष्टा मात्र रह जाना है। तब जो अनुभव होता है, वह अनुभव ऐसा नहीं होता कि मैं बाहर से किसी को देख रहा हूं। तब अनुभव होता है कि जैसे भीतर कुछ हो रहा है। सारा जगत जैसे मेरे भीतर समा गया हो। सब कुछ मेरे भीतर हो रहा हो।

स्वामी राम को जब पहली दफा समाधि का अनुभव हुआ, तो वे नाचने लगे, रोने भी लगे, हंसने भी लगे, नाचने भी लगे। जो पास थे इकट्ठे, उन्होंने कहा कि आपको क्या हो रहा है? आप उन्मत्त तो नहीं हो गए हैं? स्वामी राम ने कहा कि समझें कि उन्मत्त ही हो गया हूं, क्योंकि आज मैंने देखा कि मेरे भीतर ही सूरज ऊगते हैं, और मेरे भीतर ही चांद-तारे चलते हैं। और आज मैंने देखा कि मैं आकाश की तरह हो गया हूं। सब कुछ मेरे भीतर है। और आज मैंने देखा कि वह मैं ही हूं, जिसने सबसे पहले इस सृष्टि को जन्म दिया। और वह मैं ही हूं जो अन्त में सारी सृष्टि को अपने में लीन कर लेगा। मैं उन्मत्त हो गया हूं। यह बात पागल की ही है। हमें भी लगेगा कि पागल की है। लेकिन लगना इसलिए स्वाभाविक है कि हमें ऐसा कोई भी अनुभव नहीं है जहां दूसरा विलीन हो जाता है और केवल देखने वाला ही रह जाता है।

यह जो अर्जुन को घटित हो रहा है, वह दिव्य-दृष्टि है। जो संजय के पास है, वह दूर-दृष्टि है। अब हम सूत्र को लें:

अनाग्रह योग

"इसलिए हे भगवन्! आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं, परम ब्रह्म परमात्मा हैं, आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं, आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं, आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं—ऐसा मेरा मत है।"

अर्जुन अति विनम्र है। और जो भी जान लेते हैं वे अति विनम्र हो जाते हैं। विनम्रता जानने की शर्त भी है और जानने का परिणाम भी। जो जानना चाहता है उसे विनम्र होना होगा, झुका हुआ। और जो जान लेता है वह अति विनम्र हो जाता है। शायद जान लेने के बाद उसे विनम्र होना ही नहीं पड़ता, विनम्रता उस पर छा जाती है। वह एक हो जाता है विनम्रता के साथ।

अर्जुन देख रहा है—अपनी अनुभूति में सब घटित हुआ; फिर भी कहता है, ऐसा मेरा मत है। यह थोड़ा विचारें। अर्जुन देख रहा है। वह कह सकता है कि मैं देख रहा हूं। वह कह सकता है कि मेरा अनुभव है। लेकिन कहीं मेरा अनुभव कहने से 'मैं' को बल न मिले। वह कहे कि मेरी प्रतीति है, तो कहीं प्रतीति गौण न हो जाय और मेरा होना महत्वपूर्ण न हो जाय।

इसलिए अर्जुन कहता है, कि हे भगवन्! आप ही अक्षर, अविनाशी, परमाश्रय, रक्षक—ऐसा मेरा मत है। 'दिस इज माई ओपिनियन', यह सिर्फ मेरा मत है। यह गलत भी हो सकता है, यह सही भी हो सकता है। मैं कोई आग्रह नहीं करता कि यह सत्य है।

इस कारण कई बार बड़ी कठिनाई खड़ी होती है। जो अहंकारी हैं, वे अपने मत को भी इस भांति कहते हैं, जैसे प्रतीति हो कि यह सत्य है। वे जो नहीं जानते केवल सोचते हैं, उसको भी इस भांति घोषणापूर्वक कहते हैं कि लगे कि यह उनका अनुभव है। और जो जान लिये हैं, वे इस भांति कहते हैं कि ऐसा लगे कि उन्होंने भी किसी से सुना होगा।

पुराने ऋषियों की बड़ी पुरानी आदत है कि वो कहते हैं, ऐसा फलां ऋषि ने फलां ऋषि से कहा है। उन्होंने फिर किसी और से कहा, फिर उन्होंने किसी और से कहा, फिर मैंने किसी से सुना। यह मात्र गहन विनम्रता का परिणाम है। मैंने देखा, इसे कहने में कोई कठिनाई नहीं है—इसे कहने में कोई अड़चन भी नहीं है। अर्जुन अभी कह सकता है कि मैंने देखा, लेकिन अर्जुन कहता है—मेरा मत। बस मेरा ऐसा विचार है, आग्रह नहीं है कि मैं जो कह रहा हूं वह सत्य ही है। क्यों? शायद इस आघात के क्षण में, इस गहन शक्ति का आघात हुआ है उसके ऊपर। इस क्षण में उसे 'मैं' का कोई पता भी नहीं चल रहा होगा। इस क्षण में उसे ख्याल भी नहीं आ रहा होगा कि मैं भी हूं। इसलिए कह रहा है—मेरा मत। यह मत माना भी जाय तो ठीक, न भी माना जाय तो ठीक, यह गलत भी हो। मत और सत्य में इतना ही फर्क होता है। जब कोई कहता है, यह सत्य है तो उसका अर्थ यह है, यह गलत नहीं हो सकता। और जब कोई कहता है यह मत है, तो वह यह कह रहा है कि यह गलत भी हो सकता है। यह मेरा है, इसलिए गलत भी हो सकता है। हमारी स्थिति उल्टी है। जिस

चीज को हम कहते हैं—सत्य, हम उसे सत्य ही इसलिए कहते हैं, क्योंकि वह मेरा है। अगर आपसे कोई पूछे कि हिन्दू-धर्म सत्य क्यों है, या कोई पूछे कि मुसलमान-धर्म सत्य क्यों है, या कोई पूछे कि जैन-धर्म सत्य क्यों है? तो जैन-धर्मी कहेगा कि जैन-धर्म सत्य है। हजार कारण बताए, लेकिन मूल में कारण यह होगा कि वह मेरा धर्म है। हिन्दू हजार कारण बताएगा, लेकिन मूल में कारण यह होगा कि वह मेरा धर्म है—चाहे वह कहे और चाहे न कहे। लेकिन अगर विश्लेषण करे, तो उसे पता चलेगा कि जो भी मेरा है, वह सत्य होना ही चाहिए। यह अहंकार का आरोपण है। सत्य—मेरे होने से सत्य नहीं होता। सच तो यह है कि मेरे होने से मेरा सत्य भी असत्य हो जाता है। सत्य होता है अपने कारण। और मैं जितना कम रहूं उतना ज्यादा होता है, और मैं जितना ज्यादा हो जाऊं उतना क्षीण हो जाता है।

इसलिए अर्जुन कहता है—मेरा मत। महावीर इस दिशा में अनूठे व्यक्ति हैं। महावीर से कोई पूछे कि आत्मा है तो वे कहते हैं, ऐसा भी कुछ लोगों का मत है, वे भी ठीक कहते हैं। और ऐसा भी कुछ लोगों का मत है कि नहीं है, वे भी ठीक कहते हैं। और ऐसा भी कुछ लोगों का मत है कि कुछ भी नहीं कहा जा सकता, वे भी ठीक कहते हैं। हम अड़चन में पड़ जायेंगे महावीर के साथ कि अगर सभी लोग ठीक कहते हैं तो फिर ठीक क्या है। महावीर कहते हैं कि बड़े से बड़े असत्य में भी थोड़ा-बहुत सत्य तो होता ही है। उतना सत्य तो होता ही है। उस सत्य को हम पकड़ लें। और महावीर कहते हैं कि बड़े से बड़े सत्य में भी व्यक्ति का अहंकार थोड़ा न बहुत प्रवेश कर जाता है, उतना असत्य हो जाता है। उस असत्य को हम छोड़ दें। इसलिए वे कहते हैं कि जो कहता है, आत्मा नहीं है, उसकी बात में भी थोड़ा सत्य है। कम से कम इतना सत्य तो है ही कि संसारी व्यक्ति का अनुभव यही है कि आत्मा नहीं है। आपका अनुभव भी यही है कि आत्मा नहीं है। आपका अनुभव यही है कि शरीर है।

तो महावीर कहते हैं कि अगर चार्वाक कहता है कि आत्मा नहीं है तो ठीक ही कहता है। करोड़ों लोगों का अनुभव है कि हम शरीर हैं। आत्मा का पता किसको है? इतना सत्य तो है ही। और अगर हम लोकतंत्र के हिसाब से सोचें तो शरीरवादी का ही सत्य जीतेगा; आत्मवादी का कैसे

जीतेगा। कभी करोड़ों में एक आदमी अनुभव कर पाता है कि आत्मा है। करोड़ में एक, बाकी शेष तो अनुभव करते हैं कि हम शरीर हैं।

इसलिए हमने एक बड़ी अद्भुत बात की है। हमने चार्वाक को जो नाम दिए हैं, नास्तिक विचार को भारत में, वे बड़े विचारणीय हैं। दो नाम हैं चार्वाक के। एक तो चार्वाक और दूसरा लोकायक। दोनों बड़े मीठे हैं। लोकायक का मतलब है—जिसे लोग मानते हैं, जो लोक में प्रभावी हैं। बड़े मजे की बात है। अगर आप खोजने जाएं तो एक भी आदमी जनगणना के वक्त अपने को नास्तिक नहीं लिखवाता है। कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन, कोई बौद्ध। लेकिन हमारी परम्परा कहती है कि चार्वाक को मानने वाले सर्वाधिक लोग हैं, हालांकि कोई नहीं लिखवाता कि मैं चार्वाक वादी हूं। मगर हमारी परम्परा कहती है कि करोड़ में एक को छोड़कर बाकी के सब चार्वाक को ही मानते हैं, चाहे समझते हों, चाहे न समझते हों—चाहे कहते हों, चाहे न कहते हों। उनका अनुभव तो यही है कि वे शरीर हैं और इन्द्रियों से ज्यादा कुछ भी नहीं हैं। और जो इन्द्रियों का भोग है—वही जीवन है।

इसलिए हमने चार्वाक को—हालांकि कोई सम्प्रदाय माननेवाला नहीं है—कहा है लोकायक, लोक जिसको मानता है। और चार्वाक शब्द भी बड़ा अद्भुत है। उसका मतलब होता है—चारुवाक्, जिसके वचन बड़े मधुर हैं। बड़ी उल्टी बात है, क्योंकि हम तो बुरे लगेंगे। चार्वाक-वचन जो भी सुनेगा कि ईश्वर नहीं है, वो तो बुरे लगेंगे, कटु लगेंगे। लेकिन हमारी परम्परा ने नाम दिया है—चारु-वाक्, जिनके वचन बड़े मधुर हैं। हमने बड़े सोचकर शब्द दिये हैं। हम ऊपर से कितने ही कहें कि हमें यह बात जंचती नहीं कि ईश्वर नहीं है, भीतर यह बात बड़ी प्रीतिकर लगती है—भीतर बड़ा रस आता है कि ईश्वर नहीं है। बेफिक्र, कोई फिक्र नहीं; चोरी करो, बेईमानी करो, हत्या करो। ऊपर से हम भला कहें कि यह बात जंचती नहीं; भीतर बहुत जंचती है। तो फिर कोई भी पाप नहीं है।

दोस्तोवस्की ने लिखा है कि अगर ईश्वर नहीं है, 'देन एवरीथिंग इज परमीटेड'। अगर ईश्वर नहीं है, तो फिर हर चीज की आज्ञा मिल गई—फिर कुछ भी करने में कोई रोक नहीं है। अगर ईश्वर है तो अड़चन है। ईश्वर का डर घेरे हुए रहता है। कितने ही अकेले में चोरी कर रहे हों, फिर

भी लगा रहता है कि कम से कम कोई एक देख रहा है। अगर नहीं है कोई, तो आदमी स्वतन्त्र है। प्रीतिकर लगेगा भीतर कि कोई ईश्वर नहीं है।

नीत्से ने कहा है—'गाड इज डेड' ईश्वर मर गया। और अब तुम्हें जो भी करना हो तुम कर सकते हो, आदमी स्वतंत्र है। 'नाउ मैन इज फ्री', ईश्वर ही उसका बन्धन था। नीत्से ने कहा है, वही इसकी जान लिए ले रहा था कि यह मत करो, वह मत करो, यह बुरा है, यह भला है; यह पाप, यह पुण्य, यह नर्क, वह स्वर्ग। नीत्से ने कहा है कि ईश्वर मर चुका है और अब मनुष्य स्वतन्त्र है, और अब तुम्हें जो करना हो करो; स्वतंत्रता तो हम सभी चाहेंगे।

इसलिए ऊपर से हम भला कहते हों कि चार्वाक के वचन कटु मालूम पड़ते हैं, भीतर हम भी चाहते हैं कि ईश्वर न हो। क्यों? क्योंकि अगर ईश्वर न हो तो हमारे ऊपर से सारा दबाव हट गया—फिर कोई दबाव नहीं है। फिर आदमी उत्तरदायित्वहीन है। फिर कोई दायित्व नहीं है, फिर कोई जवाब मांगने वाला नहीं है। फिर जिन्दगी स्वच्छन्द होने के लिए मुक्त है। तो भला हम कहते हों कि ये बातें जंचती नहीं है, लेकिन चार्वाक की बातें हमारे मन को बड़ी प्रीतिकर लगती हैं। चार्वाक ने कहा है कि अगर ऋण लेकर भी घी पीना पड़े, तो लेते रहना ऋण, क्योंकि मरने के बाद न कोई लेने वाला है, न कोई देने वाला है, न कोई छुटकारा है। कोई लेना-देना नहीं है, कोई ऋणी नहीं है, कोई धनी नहीं है। सिर्फ नासमझ और समझदार लोग हैं।

चार्वाक ने कहा है, जो समझदार हैं, वे सब तरह से अपनी इन्द्रियों को तृप्त कर लेते हैं, जो नासमझ हैं वे बुद्ध बन जाते हैं और तृप्त नहीं कर पाते। हमको भी प्रीतिकर लगेगी यह बात भीतर। ऊपर तो हम कहेंगे कि नहीं, लेकिन भीतर हमको लगेगी कि बात तो बड़ी रुचिकर है कि भोग लें। चार्वाक् ने कहा है, इस क्षण कुछ खबर नहीं है अगला क्षण होगा या नहीं होगा, नहीं कहा जा सकता। इसलिए इस क्षण को निचोड़ लें पूरा, जितना भोग सकते हों भोग लें। हम कहते कुछ हों करते यही हैं; न कर पाते हों तो पछताते हैं, और जो कर लेता है उससे हमारी ईर्ष्या—उससे हमारी ईर्ष्या पकड़ जाती है। आप किसी को भी सुख में देखकर बड़े दुखी हो जाते हैं।

भला आप कह सकते हों कि धन में कुछ भी नहीं है, लेकिन जिसके पास धन है, उसको देखकर आपको दुविधा शुरू हो जाती है। भीतर दु:ख शुरू हो जाता है। भला आप कहते हों कि शरीर में क्या रखा है, यह तो मल-मूत्र है; लेकिन एक सुन्दर स्त्री दूसरे के साथ देखकर बेचैनी शुरू हो जाती है। हम ऊपर से कुछ कहते हों, लेकिन भीतर से हम सब चार्वाकवादी हैं। इसलिए हमने दो शब्द दिए हैं, लोकायक और मधुर वचन वाले लोग : चार्वाक। यह जो चार्वाक कहता है, इसमें भी महावीर कहते हैं, थोड़ा सत्य है, क्योंकि अधिक लोगों का अनुभव तो यही है। हम जो कहते हैं, महावीर कहेंगे वह तो कितने थोड़े लोगों का सत्य है।

इसलिए महावीर कहते हैं, जो भी कहा जाए उसको मत की तरह व्यक्त करना, सत्य की तरह व्यक्त मत करना। कहना कि यह हमारा एक मत है। विपरीत मत भी हो सकते हैं। वे भी ठीक हो सकते हैं। अनेक मत हो सकते हैं, वे भी ठीक हो सकते हैं। आग्रह मत करना कि यही सत्य है, क्योंकि यह आग्रह सत्य को कमजोर कर देता है—'मैं' को मजबूत कर जाता है। थोड़ा ध्यान रखें : जितना आग्रह हम करते हैं, आग्रह सत्य को नहीं मिलता, अहंकार को मिलता है, इसलिए धार्मिक आदमी विनम्र होगा। और अगर धार्मिक आदमी विनम्र नहीं है, तो धार्मिक नहीं है।

इसलिए हमने अपने इस मुल्क में कभी किसी आदमी के धर्म को कनवर्ट करने की चेष्टा नहीं की—कभी आग्रह नहीं किया कि हम एक आदमी को समझा-बुझा कर जबर्दस्ती कोई भी उपाय करके एक धर्म से दूसरे धर्म में खींच लें। क्योंकि यह कृत्य ही अधार्मिक हो गया—यह आग्रह करना कि मैं जो कहता हूं वही ठीक है और तुम जो कहते हो वह गलत है, मान लें मेरे धर्म को। चाहे धन देकर, चाहे पद देकर और चाहे तर्कों से, समझा-बुझाकर किसी भी तरह आक्रमण करके, किसी व्यक्ति को उसके धर्म को बदलने की कोशिश हमने इसीलिए तो नहीं की, कनवर्शन हमने कभी उचित नहीं माना। और उसका कुल कारण इतना था कि कनवर्शन के लिए हिन्दू को ईसाई बनाने के लिए, ईसाई को हिन्दू बनाने के लिए मतांध आदमी चाहिए, जो आग्रहपूर्वक कहें कि यही ठीक है—जो इतने पागलपन से कह सकें कि यही ठीक है और दूसरे को सुनने को बिल्कुल राजी ही न हों। महावीर कैसे किसी को कन्वर्ट करें। अगर उनके विपरीत भी आप जाकर

कहें, तो महावीर कहेंगे कि आप भी ठीक हैं—इसमें भी सचाई है, आप जो कह रहे हैं, बड़ा कीमत का है। महावीर के विपरीत कहें तो भी, तो कनवर्शन असम्भव है।

इसलिए महावीर जैसे बहुत विचार का आदमी भी हिन्दुस्तान में बहुत जैन पैदा नहीं करवा पाया। उसका कारण था, क्योंकि कन्वर्ट करने का कोई उपाय ही नहीं था। मतांध आदमी दूसरे पर जबर्दस्ती छा जाते हैं। लेकिन जो मतांध है, वह राजनीतिज्ञ हो सकता है, धार्मिक नहीं। दूसरे को बदलने की चेष्टा ही असल में राजनीति है। स्वयं को बदलने की चेष्टा धर्म है। दूसरे पर छा जाना अहंकार की यात्रा है। अपने को सब भांति पोंछ के मिटा देना धर्म है।

अर्जुन कहता है, यह मेरा मत है। और अभी अनुभव हो रहा है उसे। अभी प्रत्यक्ष, अभी क्षण भी नहीं बीता है, अभी वह अनुभव के बीच खड़ा है। चारों तरफ घटनाएं घट रही हैं उसे। द्वार खुल गया है अनन्त का और ऐसे क्षण में भी अर्जुन कहता है, यह मेरा मत है, यह बहुत कीमती है।

जानने योग्य क्या...?

आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं। जानने योग्य...जानने योग्य क्या है? किस चीज को कहें जानने योग्य? आमतौर से जिसका कोई उपयोग हो, उसे हम जानने योग्य कहते हैं। विज्ञान जानने योग्य है, क्योंकि उसके बिना न मशीनें चलेंगी, न रेलगाड़ियां दौड़ेंगी, न रास्ते बनेंगे, न कारें होंगी, न यंत्र होंगे, न टेक्नालाजी होगी। विज्ञान जानने योग्य है, क्योंकि उसके बिना जीवन की सुख-सुविधा असम्भव हो जाएगी। चिकित्साशास्त्र जानने योग्य है, क्योंकि उसके बिना बीमारियों से कैसे लड़ेंगे। उपयोगिता...हमारे जानने योग्य का अर्थ होता है—जिसकी यूटीलिटी है, जिसकी उपयोगिता है।

इसीलिए जिन चीजों की उपयोगिता है, उनकी तरफ हम ज्यादा दौड़ते हैं। अगर आज युनिवर्सिटी में जाएं, तो इंजीनियरिंग की तरफ, मेडिकल साइंस की तरफ दौड़ते हुए युवक मिलेंगे; फिलासाफी, दर्शनशास्त्र के कमरे खाली होते जाते हैं, वहां कोई जाता नहीं है। तो जिनको कहीं जाने के लिए उपाय नहीं बचता, वे वहां चले जाते हैं। सब दरवाजे जिनके लिए बन्द हो जाते हैं, वे सोचते हैं—चलो अब दर्शन-शास्त्र ही पढ़ लें। सारी दुनिया में

दर्शन-शास्त्र की तरफ लोगों का जाना कम होता जाता है, क्यों? क्योंकि उसकी उपयोगिता नहीं है। क्या करियेगा? अगर दर्शन में कोई उपाधि भी मिली तो करिएगा क्या? उससे न रोटी पैदा हो सकती है, न यंत्र चलता है। किसी काम का नहीं है, बेकाम हो गया। उपयोगिता गिर गई। हमारे लिए जानने योग्य वह मालूम पड़ता है, जो उपयोगी है।

लेकिन यहां अर्जुन कहता है, आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं। क्या अर्थ होगा इसका? भगवान की क्या उपयोगिता होगी, क्या करिएगा भगवान को जानकर? रोटी पकाइयेगा, दवा बनाइयेगा, यंत्र चलवाइयेगा... क्या करियेगा? अगर उपयोगिता की दृष्टि से देखें, तो भगवान बिल्कुल जानने योग्य नहीं है, जानकर करियेगा भी क्या। अगर आज पश्चिम के मस्तिष्क को हम समझाना चाहें कि भगवान, तो वह पूछेगा कि किसलिए? क्या करेंगे जानकर? क्या होगा जानने से? उपयोगिता क्या है?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते ध्यान; लेकिन ध्यान से होगा क्या? मिलेगा क्या? उपयोगिता क्या है? स्वभावतः ध्यान के बाबत भी वही सवाल पूछते हैं जो रुपये के बाबत, धन के बाबत पूछेंगे, मकान के बाबत पूछेंगे। उपयोग ही मूल्य है। तो ध्यान का उपयोग क्या है? प्रार्थना का उपयोग क्या है? कोई उपयोग तो मालूम नहीं पड़ता। और परमात्मा तो परम निरुपयोगी है। क्या उपयोग है? उपादेयता क्या है उसकी? उससे क्या कर सकते हैं? कोई 'प्रोफिट मोटिव', कोई लाभ का विचार लागू नहीं होता। क्या करियेगा? और यह अर्जुन कह रहा है कि आप ही जानने योग्य परम अक्षर।

जानने योग्य से हमारी परिभाषा और है। हम कहते हैं उसे जानने योग्य, जिसे जानने के बाद कुछ जानने को शेष न रह जाय। हम कहते हैं उसे जानने योग्य, जिसको जान लिया तो फिर जानने को कुछ बाकी न रहा। तो वह जो जानने की दौड़ थी, समाप्त हो गई। वह जो अज्ञान की पीड़ा थी, तिरोहित हो गई। वह जो जिज्ञासा का उपद्रव था, विलीन हो गया। जब तक जानने को कुछ शेष है तब तक मन में अशान्ति रहेगी। जब तक जानने को कुछ भी शेष है तब तक तनाव रहेगा। जब तक जानने को कुछ भी शेष है, चिन्ता पकड़े रहेगी कि कैसे जान लें। तो हम जानने योग्य उसे कहते हैं, जिसे जानकर फिर और कुछ जानने को शेष नहीं रह जाता—

जिज्ञासा शून्य हो जाती है—तनाव विलीन हो जाता है। सब जान लिया जैसे। एक को जान लिया, सबको जान लिया जाता है।

जानने योग्य, पाने योग्य, कामना करने योग्य—इन सबका भारतीय परम्परा में जो गहन अर्थ है, वह यह एक ही है। पाने योग्य वह है, जिसको पाने के बाद फिर पाने को कुछ बचे ना। कामना करने योग्य वह है, जिसको पाने के बाद फिर पाने को कुछ बचे ना। कामना करने योग्य वह है, जिसके साथ हो सब कामनाएं शान्त हो जाएं। पहुंचने योग्य वह जगह है, जिसके बाद पहुंचने को कोई जगह न बचे। उसको हम कहते हैं अल्टीमेट, परम; वह है परम बिन्दु अभीप्सा का।

विराट चेतना का ऐश्वर्य के बाद दूसरे रूप मृत्यु का दर्शन

अर्जुन कहता है—अनुभव कर रहा हूं, ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आप ही जानने योग्य परम अक्षय हैं, परम ब्रह्म परमात्मा हैं। आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं, आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं, आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं, ऐसा मेरा मत है। हे परमेश्वर! मैं आपको आदि, अन्त और मध्य से रहित तथा अनन्त सामर्थ्य से युक्त और अनन्त हाथों वाला तथा चन्द्र, सूर्य रूप नेत्रों वाला और प्रज्ज्वलित अग्नियुक्त मुख वाला तथा अपने तेज से इस जगत को तपायमान करता हुआ देखता हूं।

अब दूसरा रूप शुरू होता है। एक रूप था सुन्दर, मोहक, मनोहर, मन को भाए, लुभाए, आकर्षित करे। लेकिन यह एक पहलू था। अब दूसरा रूप भी होगा, जो जीवन को तपाए, भयंकर अग्नि-मुखों वाला, मृत्यु जैसा विकराल, विनाश करे।

अर्जुन कहता है कि देख रहा हूं कि आपके अनन्त मुख हैं, प्रज्ज्वलित अग्निरूप, आपके हर मुख से आग जल रही है; आभा नहीं, प्रकाश नहीं, आग। पहले ऐश्वर्य की आभा देखी उसने, फिर सूर्यों का प्रकाश देखा उसने, अब अग्नि, अब आग्नेय अनुभव है। मुखों से अग्नि की लपटें निकल रही हैं, और आपके इस तेज से, इस जगत को तपायमान करता हुआ देखता हूं।

लोग जल जाएंगे, लोग तप रहे हैं, लोग भस्मीभूत हो जाएंगे—ऐसा अग्नि रूप अर्जुन के सामने प्रकट होना शुरू हुआ।

जीवन जोड़ है—विपरीत द्वंदों का, डाइलेक्टिकल है, द्वंदात्मक है। यहां जन्म है, तो दूसरे छोर पर मृत्यु है। यहां प्रेम है, तो दूसरे छोर पर घृणा है। यहां सुख है, तो दूसरे छोर पर दुख है। यहां सफलता है, शिखर है; वहां खाई है, असफलता है। जोड़ है सबका। और द्वंद के आधार पर ही सारे जीवन की गति है। हम सब की आकांक्षा होती है, इसमें जो प्रीतिकर है, वह बच रहे; जो अप्रीतिकर है, वह समाप्त हो जाय। हम चाहते हैं कि सुख बच रहे और दुख नहीं। और मजे की बात यह है कि जो ऐसा चाहता है, वह इसी चाह के कारण दुख में गिरता है, क्योंकि दोनों में से एक को बचाया नहीं जा सकता। ये दोनों जीवन के अनिवार्य हिस्से हैं: जैसे कोई चाहे कि खाइयां तो मिट जाएं और शिखर बचें, तो वह पागल है। खाई और शिखर साथ-साथ हैं। एक ही तरंग है। जब शिखर बनता है तो खाई बनती है और खाई मिटती है तो शिखर मिट जाता है। कोई चाहे, जवानी तो बचे और बुढ़ापा मिट जाय, हम सभी चाहते हैं।

लेकिन जवानी शिखर है, तो बुढ़ापा खाई है। जवान होने के साथ ही आप बूढ़े होने शुरू हो जाते हैं। जवानी बुढ़ापे की शुरुआत है। जिस दिन जवान हुए उस दिन जान लेना अब बुढ़ापा ज्यादा दूर नहीं है—अब करीब है। हम चाहते हैं, सौन्दर्य तो बचे, कुरूपता विलीन हो जाय; लेकिन हमें पता ही नहीं कि कुरूपता विलीन हो जाय तो सौन्दर्य बचेगा कैसे! सौन्दर्य है ही अनुभव—कुरूपता के विपरीत उसी की पृष्ठभूमि में होता है। जब आकाश में काले बादल घिरे होते हैं, तो बिजली चमकती दिखाई पड़ती है। हम चाहते हैं, बिजली तो खूब चमके, काले बादल बिल्कुल न हों। वह काले बादल में ही चमकती है। और काले बादल में चमकती है, तो ही दिखायी पड़ती है। यह जीवन की सारी चमक मृत्यु की ही पृष्ठभूमि में दिखायी पड़ती है। हम चाहते हैं, मृत्यु विदा हो जाय—मृत्यु हो ही न दुनिया में—बस जीवन ही जीवन हो। हमें ख्याल ही नहीं है कि हम क्या कह रहे हैं! हम असंभव की मांग कर रहे हैं। और असंभव की जो मांग करता है, वह दुख में पड़ता चला जाता है। यह होने वाला नहीं। समझदार तो वह है जो संभव को स्वीकार कर लेता है और असंभव को विदा कर देता है अपनी कामना से।

द्वंद जीवन का स्वरूप है। हर चीज दो में है। जिससे हम प्रेम करते हैं, सोचते हैं कि कभी इस पर क्रोध न करें—करना ही पड़ेगा। जिससे हम प्रेम करते हैं उससे क्रोध भी होगा, घृणा भी होगी, संघर्ष भी होगा, द्वंद भी होगा, झगड़ा भी होगा। प्रेम के साथ ही घृणा भी जुड़ी हुई है। इसलिए जितने प्रेमी हैं, लड़ते रहते हैं। जब प्रेमी लड़ना बन्द कर दें, समझ लेना प्रेम समाप्त हो गया। वह जुड़ा है। उसमें एक को बचाने का कोई भी उपाय नहीं है। या तो दोनों बचते हैं, या दोनों विदा हो जाते हैं।

अर्जुन ने एक रूप देखा परमात्मा का। हम भी वह रूप देखना चाहेंगे। लेकिन दूसरे रूप से भी बचने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि अगर जन्म उससे होता है, तो मृत्यु भी उसी से होती है। और अगर अच्छाई उससे पैदा होती है, तो बुराई भी उसी से पैदा होती है। और अगर जगत में सौन्दर्य का जन्म उससे होता है, तो कुरूपता भी उसका ही पहलू है। वह भी देखना ही पड़ेगा। वह दूसरी तरफ यात्रा शुरू हो गई। जो लोग भी परमात्मा के अनुभव में जाते हैं, उन्हें इसकी तैयारी रखनी चाहिए।

दुनिया में दो तरह के धर्म हैं—इन दो रूपों के कारण। एक तो वे धर्म हैं, जिन्होंने इस ऐश्वर्य महिमा वाले रूप को प्रमुखता दी है। और एक वे धर्म हैं, जिन्होंने उस भयंकर रूप को प्रमुखता दी है। जैसे कि पुराना जरथुस्त्र, या पुराना यहूदियों का धर्म, ओल्ड टेस्टमेंट, वहां ईश्वर विकराल है, भयंकर है, बहुत क्रूर और कठोर है, दुष्ट मालूम पड़ता है। हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इसीलिए जीसस की बात यहूदियों को स्वीकृत न हो सकी। उसका कारण जीसस नहीं थे; उसका कारण था—ओल्ड टेस्टमेंट। पुराने यहूदी की जो ईश्वर की धारणा थी, उससे बिल्कुल उलटी बात जीसस ने कही है। पुरानी धारणा यह थी कि ईश्वर, अगर तुमने उसके खिलाफ जरा-सा भी काम किया, तो तुम्हें जलाएगा, मारेगा, सड़ाएगा, अनन्तकाल तक भयंकर कष्ट देगा, दण्ड देगा, नर्क उसने बनाया है। पुराने टेस्टमेंट का जो नर्क है—वह इटर्नल है, अनन्त है। उसमें जरा से पाप के लिए भी फेंका जायेगा आदमी, तो फिर दोबारा वापसी का कोई उपाय नहीं है। और ईश्वर एक भयंकर विकराल व्यक्तित्व है, जिसकी आंखों से लपटें निकल रही हैं; और जिसको शान्त करने का एक ही उपाय है, भय स्तुति, प्रार्थना, उसके चरणों में सिर को रख देना; और वह जो कहता है उसको मान

लेना—उसकी आज्ञा के अनुकूल। उसकी आज्ञा से जरा सी प्रतिकूलता हुई तो वह भस्म कर देगा। यह था यहूदी रूप ईश्वर का, यह एक पहलू है। यह गलत नहीं है। यह भी ईश्वर का एक पहलू है। और ऐसा लगता है मोजेस को इसका अनुभव हुआ होगा।

मोजेस ने भूल-चूक से ईश्वर के भयंकर पहलू को पहले देख लिया। और वह भयंकर पहलू मोजेस को इस तरह आविष्ट हो गया कि उन्होंने जो बात कही उसमें वह भयंकर पहलू केन्द्र बन गया।

जीसस उल्टी बात कहते हैं। वे कहते हैं—'गाड इज लव', ईश्वर प्रेम है। इसलिए यहूदी मन जीसस को स्वीकार नहीं कर पाया। कहां ईश्वर था भयंकर और यहूदियों की सारी साधना पद्धति यह थी कि उससे भयभीत होवो, उससे डरो। उससे डरोगे यही धार्मिक होने का लक्षण है। और जीसस ने कहा कि ईश्वर है प्रेम। तो जिससे प्रेम है, उससे डरने की क्या जरूरत है? और जिससे हमारा प्रेम है उससे डर समाप्त हो जाता है। और जब डर समाप्त हो जाता है, तो यहूदियों ने कहा फिर ईश्वर का वह जो रूप, उसको हमने कहा—ट्रमेंडस—वह जो भयंकर रूप है, वह जो विकराल तांडव करता रूप है, तो सारा धर्म नष्ट हो जाएगा।

इसलिए जीसस को यहूदी मन स्वीकार न कर पाया। ओल्ड-टेस्टमेंट और न्यू-टेस्टमेंट बड़ी विपरीत किताबें हैं—दो पहलू वाली। लेकिन एक अर्थ में बाइबिल पूरी किताब है। ओल्ड-टेस्टमेंट, न्यू-टेस्टमेंट दोनों मिलकर बाइबिल पूरी किताब है; क्योंकि उसमें परमात्मा के दोनों पहलू हैं। मोजेस ने जो देखा अग्निरूप और जीसस ने जो देखा प्रेम रूप—वे दोनों समाहित हैं, दोनों इकट्ठे हैं। अगर किसी तरह यहूदी और ईसाइयत दोनों का तालमेल हो जाय गहरा, तो वह ईश्वर की पूरी छबि हो गई। लेकिन बहुत मुश्किल है, क्योंकि जो उसके प्रेमपूर्ण रूप को प्रेम कर पाता है, वह सोच ही नहीं पाता कि वह भयंकर और विकराल भी हो सकता है।

मैं पीछे जार्ज गुर्जियेफ की बात कर रहा था। जार्ज गुर्जियेफ अनूठा आदमी था, जैसा हम साधारणतः साधुओं को मानते हैं—ऐसा भी; और जैसा हम कभी सोच भी नहीं सकते साधु को—वैसा भी। अमरीका के बहुत विचारशील साधक अलिनवाट ने गुर्जिएफ को 'रेस्कल सेन्ट' कहा है,

रेस्कल सेन्ट। बड़ा अजीब शब्द है। हिन्दी में बनाएं तो और कठिनाई हो जायेगी। शैतान साधु, या कुछ ऐसा अर्थ करना पड़ेगा। मगर ठीक कहा है उसने। गुर्जिएफ ऐसा आदमी था। और लोगों के ऐसे अनुभव हैं कि गुर्जिएफ बैठा हो अपने शिष्यों के बीच और वह इस तरफ मुंह करेगा और उसका मुंह इतना प्रेमपूर्ण होगा और जो लोग उसे देखेंगे प्रफुल्लित हो जाएंगे। और वह दूसरी तरफ मुंह करेगा और उसकी आंखें इतनी दुष्ट हो जाएंगी कि जो लोग उसको देखेंगे, वे एकदम थर्रा जाएंगे। और यह दोनों तरफ बैठे हुए आदमी जब उसके मकान के बाहर जाकर बात करेंगे, तो उनकी बातों का कोई मेल ही नहीं हो सकेगा। क्योंकि एक ने चेहरा देखा तो बड़ा प्यारा है, और एक ने चेहरा देखा उसका बड़ा दुष्टता से भरा हुआ कि वह गर्दन दबा देगा, मार डालेगा, क्या करेगा। और वे दोनों जाकर बाहर कहेंगे: एक कहेगा वह रेस्कल और एक कहेगा वह सेन्ट। अलिनवाट कहता है, वह रेस्कल सेन्ट दोनों था। एक ही साथ था वह आदमी। वह एक आंख से क्रोध प्रकट कर सकता था, एक से प्रेम। बहुत कठिन है, बहुत कठिन है। कोई चालीस साल की लम्बी साधना थी उसकी, इस तरह का अभिनय करने की कि वह एक आंख से क्रोध प्रकट कर सके और एक से प्रेम। और एक हाथ से प्रेम दे सके और दूसरे हाथ से जहर, एक साथ। लेकिन एक अर्थ में वह पूरा सन्त था—पूरा।

अगर हम परमात्मा के दोनों रूप लें, तो वे जो सन्त मछलियों को दाना चुगा रहे हैं और चीटियों को आटा डाल रहे हैं वे एक ही हिस्से वाले मालूम होते हैं—अधूरे। तो दूसरे हिस्से का क्या होगा? कृष्ण में जरूर परमात्मा के दोनों रूप एक साथ प्रकट हुए। इसलिए कई लोगों को कठिनाई होती है कि कृष्ण को समझें कैसे; क्योंकि कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत कन्ट्राडिक्टरी है। एक तरफ आश्वासन देते हैं कि मैं युद्ध में अस्त्र नहीं उठाऊंगा; मौका आता है, उठा लेते हैं। वचन का कोई भरोसा नहीं है, बदल जाते हैं। हम सोच भी नहीं सकते कि साधु और वचन दे और पूरा न करे। लेकिन कारण है कि हम ईश्वर के एक ही पहलू को पकड़ते हैं।

कृष्ण में ईश्वर के दोनों पहलू एक साथ हैं। इसलिए कृष्ण एक तरफ गीता जैसा अद्भुत ग्रन्थ दे पाए। दूसरी तरफ स्त्रियों के साथ नाच भी पाते हैं और इसमें उन्हें कोई अड़चन नहीं है, इसमें कोई अड़चन नहीं

है। एक तरफ प्रेम की बात भी कर पाते हैं और दूसरी तरफ अर्जुन को युद्ध में जाने के लिए सलाह भी दे पाते हैं—काटो, इसकी भी कोई चिन्ता नहीं है। दूसरी तरफ बांसुरी भी बजा पाते हैं। यह बांसुरी बजाने वाला कभी कहेगा कि उठाओ तलवार और काटो; क्योंकि कोई कटता ही नहीं, बेफिक्री से काटो। यह हमारी समझ के बाहर हो जाता है। इसलिए कृष्ण के भक्त भी बंटे हुए हैं। पूरे हिस्से को कोई स्वीकार नहीं करता। कोई बांसुरी बजाने वाले को स्वीकार करता है, तो बाकी हिस्से को छोड़ देता है—वह अपने काम का नहीं है, सिलेक्ट करना पड़ता है कृष्ण को। कोई दूसरे हिस्से को स्वीकार करता है, तो फिर बांसुरी वाले को मानता है कि यह कवियों की कल्पना होगी—हटाओ।

लेकिन पूरे कृष्ण को स्वीकार करना वैसे ही मुश्किल है, जैसे पूरे जीवन को स्वीकार करना मुश्किल है। और जो पूरे जीवन को स्वीकार करता हो वही केवल कृष्ण को पूरा स्वीकार कर सकेगा। और पूरे जीवन को स्वीकार करने का अर्थ है—परमात्मा की दोनों शक्लें एक साथ; दो शक्लें नहीं हैं। लेकिन परमात्मा की, हमने अपने मुल्क में तीन शक्लों की बात की है। दो को छोड़कर। एक उसका जन्मदाता का छोर, मां का है। एक विध्वंस का—मृत्यु का। ये दो छोर हैं। ये दो शक्लें खास हैं। और बीच में एक शक्ल और है। क्योंकि जहां भी दो हों, वहां जोड़ने के लिए तीसरे की जरूरत पड़ जाती है। ये दो इतने विपरीत हैं कि इनको जोड़ने के लिए तीसरे की जरूरत है, जो दोनों के मध्य में हो।

इसलिए हमने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन शक्लें त्रिमूर्ति की धारणा की है। उन तीनों मूर्तियों के पीछे एक ही शक्ति है—कहें। एक ही बिराट ऊर्जा है। लेकिन एक तरफ तो वह बनाती है, एक तरफ से मिटाती है, बीच में संभालती भी है; क्योंकि बनने और मिटने के बीच में कोई सम्भालने वाला भी चाहिए। अगर ब्रह्मा और महादेव ही हों जगत में, तो बनना-मिटना काफी होगा, लेकिन और कुछ नहीं होगा, बीच में कुछ भी नहीं होगा। इधर ब्रह्मा बना नहीं पाएंगे, वहां महादेव मिटा डालेंगे। आपको रहने का बीच में मौका नहीं मिलेगा। संसार के लिए उपाय नहीं रहेगा।

इसलिए हमने सारी जमीन पर, जो मन्दिर बनाए, वे विष्णु के मंदिर हैं। और सारे अवतार विष्णु के अवतार हैं। उसका कारण है, क्योंकि वह

बीच में है, वही संसार है हमारा। विष्णु संसार है। दो छोर हैं ब्रह्मा और महादेव के। महादेव की हम पूजा करते हैं, तो भय के कारण कि मना-बुझा लो। आपको पता है कि भय के कारण हम बहुत पूजा करते हैं। सभी लोग अपने बही-खाता शुरू करते हैं—'श्री गणेशायनमः'—गणेशजी की स्तुति से। आपको पता नहीं कि क्यों। शायद आप भी कुछ करते हों लेकिन पता नहीं कि गणेशजी की मूर्ति मकान पर बनाए रखते हैं। हर जगह पहले कुछ करना हो, तो गणेशजी की पहले पूजा प्रार्थना करनी पड़ती है। उसका कुल कारण इतना है कि पुराने शास्त्र कहते हैं कि गणेश, जो हैं, वे पहले बहुत विध्वंस-कारी थे, बहुत उपद्रवी थे और जहां भी कुछ शुभ कार्य हो रहा हो वहां विघ्न खड़ा करना उनका काम था। विघ्नेश्वर उनका पुराना नाम है। तो वो उपद्रव न करें, इसलिए पहले उनकी स्तुति करते हैं, हम समझा-बुझा लेते हैं कि कोई गड़बड़ न करना महाराज—श्री गणेशायनमः। तो उनको हम पहले स्मरण करते हैं। यह अक्सर हो जाता है, जिससे भय होता है, उसको पहले स्मरण करना है। अब तो हम भूल ही गए कि वे विघ्नेश्वर हैं। अब तो हम समझते हैं, वे मंगलमूर्ति हैं। उपद्रवी हैं, उपद्रव से बचने के लिए कि आपको पहले मना लेते हैं फिर किसी और की करेंगे पूजा और प्रार्थना। आप पहले राजी रहें, नहीं तो सब उपद्रव हो जाएगा।

शंकर की जो हम पूजा प्रार्थना करते हैं, भय के कारण। ब्रह्मा की हम कोई पूजा नहीं करते। शायद एक मन्दिर है मुल्क में ब्रह्मा के लिए और कोई मन्दिर नहीं है, क्योंकि क्या करना वह तो बात खत्म हो गयी। ब्रह्मा ने जन्म दे दिया, अब कुछ और काम है नहीं उनका। शंकर का अभी थोड़ा डर है, क्योंकि मौत वे देंगे। विष्णु के सारे मन्दिर हैं। और सब रूप, राम हों, कृष्ण हों, सब विष्णु के रूप हैं। और हम उनके मन्दिर में पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं। विष्णु संसार है। वह मध्य है। ये दो छोर हैं। और इन दोनों छोरों को जोड़ने वाली लकीर विष्णु है।

दूसरा छोर अर्जुन को दिखाई पड़ना शुरू हो रहा है—"अग्नि, अग्नि-रूपमुख वाला तथा अपने तेज से इस जगत को तपायमान करता हुआ देखता हूं। और हे महात्मन्! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का सम्पूर्ण आकाश तथा दिशाएं एक आपसे ही परिपूर्ण हैं। तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर—अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीन लोक अतिव्यथा को प्राप्त हो रहे हैं।"

अर्जुन को दिखाई पड़ रहा है, यह दूसरा रूप। और उसे साथ में दिखाई पड़ रहा है, दूसरे रूप के कारण सारा लोक व्यथित हो रहा है। आप व्यथित हो रहे हैं—किस लिए। बीमारी है, दुख है, मौत है—यह दुख है। मृत्यु गहन दुख है और सारे दुख इसी की छाया हैं। हर आदमी कंप रहा है, दुखी हो रहा है। घबरा रहा है, मिट न जाऊं। जब कोई इस विराट को अनुभव करता है—दूसरे रूप में, तो देखा होगा अर्जुन ने कि सारे लोग मृत्यु के मुंह में चले जा रहे हैं—चाहे वे कुछ भी कर रहे हों। चाहे वे दुकान जा रहे हों, मन्दिर जा रहे हों, घर लौट रहे हों, कहीं भी जा रहे हों आप, आपका जाना-आना कुछ अर्थ नहीं रखता। एक बात तय है कि आप मौत के मुंह में जा रहे हैं। चाहे दुकान जा रहे हों, चाहे घर जा रहे हों। हर हालत में आप मौत के मुंह में जा रहे हैं।

जब अर्जुन को प्रतीत हुआ होगा यह विकराल अग्निमुख, तब उसने देखा होगा सारा लोक, सारे प्राणी, मौत के मुंह में चल रहे हैं और हर एक कंप रहा है। यह बहुत गहन अनुभव है, अगर आप भी आंख बन्द करके लोगों के बाबत सोचें। यहाँ इतने लोग बैठे हैं, अगर आंख बन्द करके क्षण भर को सोचें, तो यहां जो लोग बैठे हैं, वे सब मौत के मुंह में जा रहे हैं। एक घंटा व्यतीत हुआ तो आप मौत के मुंह में सरक गए और थोड़ा ज्यादा। कोई आज मरेगा, कोई कल मरेगा, कोई परसों मरेगा, समय का ही फासला है। हम सब लाशें हैं जिन पर तारीखें लिखी हैं कि कब घोषणा हो जाएगी। लाशें चल रही हैं, गिर रही हैं, उठ रही हैं और कंप रही हैं, क्योंकि वे तारीख हैं।

गुर्जिएफ कहा करता था कि अगर इस जमीन को अब धार्मिक बनाना हो तो एक ही उपाय है, और वह कहता था कि वैज्ञानिकों को सारी चिन्ता छोड़कर एक यंत्र खोज लेना चाहिए घड़ी की तरह, जो हर आदमी के हाथ पर बांध दिया जाय जो हमेशा उसको बताता रहे कि अब मौत कितने करीब है। वह कांटा उसका घूमता रहेगा। यह हो सकता है। कठिन नहीं है।

लेकिन वैज्ञानिक अगर बनायेंगे भी तो हम उस वैज्ञानिक को ही मार डालेंगे, वह यंत्र भी तोड़ देंगे। यंत्र बन सकता है, क्योंकि शरीर के स्पन्दन बताते हैं कि अब आप में कितना जीवन शेष है। आज नहीं कल, क्योंकि बच्चा जब पैदा होता है, तो उसके जो क्रोमोसोम हैं, उसकी जो बनावट के

बुनियादी ढांचे हैं, जिस पर खड़ा है सारा जीवन, उनकी नाप-जोख हो सकती है कि ये कितनी देर चलेंगे। जैसे आप घड़ी खरीदते हैं तो दस साल की गारन्टी हो सकती है तो बच्चा पैदा होता है उसकी सारी की सारी, जिस दिन हम शरीर की व्यवस्था को पूरा समझ लेंगे, उसके कोष की जीवन की व्यवस्था को, उस दिन हम कह सकेंगे कि बस अब सत्तर साल चलेगा, कि अस्सी साल चलेगा। तो फिर एक यंत्र उसके हाथ पर बिठाया जा सकता है, जो बताता रहेगा कि अब जीवन कितना कम होता जा रहा है। घड़ी का कांटा घूमता रहेगा और जीवन की तरफ जाता रहेगा और एक दिन आकर मौत पर रुक जायेगा।

लेकिन गुर्जिएफ कहता है, अगर यह यंत्र खोज लिया जाय, तो दुनिया आज फिर से धार्मिक हो सकती है। वह ठीक कहता है। यंत्र चाहे खोजा जाय या न खोजा जाय, जिस आदमी को भी मौत का ख्याल आना शुरू हो जाय उसकी जिन्दगी में परिवर्तन शुरू हो जाता है। क्योंकि, जिसको भी यह पता चल जाय कि मैं मिट जाऊँगा, उसकी सारी वासनाओं का अर्थ खो जाता है। सब बेकार (फ्यूटायल), सब व्यर्थ मालूम होने लगता है—सारा। क्या अर्थ है फिर एक मकान बनाने का। फिर क्या अर्थ है, इतना धन इकट्ठे करने का। फिर क्या अर्थ है कि इतने लोग इज्जत दें, प्रतिष्ठा करें। कुछ भी अर्थ नहीं है। मुर्दे, मुर्दे से प्रतिष्ठा मांग रहे हैं। मुर्दे, मुर्दे से इज्जत इकट्ठी कर रहे हैं। और कुल फर्क इतना है कि हम आते थोड़ी देर से हैं, आप जाते थोड़े जल्दी हैं; या हम जाते थोड़े जल्दी, आप आते थोड़ी देर से हैं। क्यू है, वह जो बस के पास क्यू लगा रहता है। क्यू लगाकर हम मौत के पास खड़े हैं। आपके पिता जरा आगे होंगे, आपका बेटा जरा पीछे होगा, आप जरा क्यू के बीच में होंगे। बाकी क्यू लगा हुआ है, और उधर मुंह है।

अर्जुन को दिखा होगा कि सारा प्राणी जगत क्यू लगाए खड़ा है, और मौत के मुंह में जा रहा है। और लपटें हर एक के ऊपर घूम रही हैं। इसलिए वह कह रहा है कि सारा जगत, आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीन लोक अति व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं। अलौकिक भी है यह रूप भयंकर भी। अलौकिक क्यों? भयंकर कैसे अलौकिक कहा होगा। अगर आप पूरे को देख पाएं, तो जब पतझड़ हो रही है और पत्ते गिर रहे हैं, और वृक्ष नग्न हो गये हैं। अगर आपको दिखाई पड़ता हो थोड़ा गहरा,

अगर आपके पास झांकने की क्षमता हो, तो ये जो पत्ते गिर गए हैं और
वृक्ष नग्न हो गए हैं, वह आने वाले बहार की खबर है। ये गिरते हुए पत्ते
नये आने वाले पत्तों के द्वारा धक्का दिए गये हैं। भीतर से नये पत्ते आ
रहे हैं, वे जगह बना रहे हैं। ये पुराने पत्तों को धक्का दे कर गिरा रहे हैं।
वृक्ष थोड़ी देर को नग्न हो गया है, क्योंकि फिर दुल्हन की तरह सजने की
उसकी तैयारी है। तो एक तरफ पतझड़ बहुत विकराल है और दूसरी तरफ
पतझड़ बसन्त के आगमन की खबर है। वह जो आने वाला है, वह जो हो
रहा है।

एक तरफ मौत, दुख है। लेकिन हर मौत जन्म की खबर है। जब
एक बूढ़ा आदमी मर रहा है, तो हमें सिर्फ एक मरता हुआ आदमी दिखाई
पड़ता है। हमें पता नहीं कि जैसे नया पत्ता पुराने पत्ते को धक्का देकर
गिरा रहा है, कोई नया बच्चा इस जगत में प्रवेश कर रहा है, पुराने शरीर
को गिरा रहा है। अगर हम इस पूरे को देख पाएं, तो हम देखेंगे कि नया
बच्चा किसी गर्भ में प्रवेश कर गया है, और एक बूढ़ा आदमी कब्र के किनारे
आ गया है। वह नया बच्चा गर्भ में बढ़ने लगेगा और वह बूढ़ा आदमी कब्र
में प्रवेश करने लगेगा। वह नया बच्चा गर्भ को छलांग लगाकर बाहर आ
जायेगा, यह बूढ़ा आदमी छलांग लगाकर कब्र में प्रवेश कर जाएगा। यह
जरा दूर है फासले पर, इसलिए हमें दिखाई नहीं पड़ता, जरा बड़े परस्पेक्टिव
जरा बड़े परिपेक्ष में देखने की नजर चाहिए। तो बूढ़ा आदमी जब मर रहा
है, तो नया बच्चा पैदा हो रहा है।

इसलिए अर्जुन कहता है, अलौकिक और भयंकर। इधर देखता हूं
कि जन्म हो रहा है, उधर देखता हूं कि मौत हो रही है। और देखता हूं
कि जन्म और मौत किसी एक ही चीज के दो पैर हैं, जिसे हम जीवन कहते
हैं, तो बहुत अलौकिक है। अलौकिक क्यों? क्योंकि लोक में ऐसा दिखाई
नहीं पड़ता। अलौकिक का मतलब है, जैसा लोक में दिखाई नहीं पड़ता।
यहां तो हम बच्चे को बच्चा देखते हैं, बूढ़े को बूढ़ा देखते हैं, पतझड़ को
पतझड़ और वसन्त को वसन्त देखते हैं। यहां हम दोनों को जोड़कर नहीं
देखते।

लेकिन जो आदमी जरा ऊपर उठता है और दृष्टि उसकी खुलती है,
उसे दिखाई पड़ता है कि ये दोनों तो जुड़े हैं। कल तक हमने समझा था

जन्म अलग, मौत अलग, अब हम देखते हैं वह एक ही हैं। वह एक ही लहर
के दो छोर हैं। यह अलौकिक है कि अर्जुन को लगता है, बड़ा अलौकिक है।
क्योंकि हम तो सोचते थे—सुन्दर अलग, कुरूप अलग। हम तो सोचते थे—
मित्र अलग, शत्रु अलग। हम तो सोचते थे अपना-पराया। यहां तो दोनों
एक हैं। द्वंद हम सोचते थे विपरीत हैं, यहां पता चलता है कि द्वंद तो मिले
हैं। यह तो साजिश है। यह तो जन्म और मौत की साजिश है। ये दोनों
एक साथ जुड़े हैं। अब तक हमने विपरीत समझा था। हमने सोचा था—
मृत्यु जो है वह जन्म के खिलाफ है और हमने चाहा था कि मृत्यु को
रोक दें, ताकि जगत में जन्म ही जन्म रह जाय।

लेकिन हमें पता नहीं है कि हम जो सोचते हैं वह हो नहीं सकता,
क्योंकि अस्तित्व हमारे ख्याल में नहीं है। जिस दिन जन्म हुआ मौत हो
गई। जन्म के साथ ही मरना शुरू हो गया। आप कल मरेंगे, लेकिन मरने
का काम आपको जीवन भर करना पड़ेगा तब तो मरेंगे। एकदम से कैसे
मरेंगे। इस जगत में कुछ भी एकदम से नहीं घटता। प्रक्रिया है, सीढ़ी-सीढ़ी
चढ़ेंगे और मरेंगे। तो जन्म पहला कदम है मौत की तरफ। अगर जन्म
पहला कदम है मौत की तरफ, तो जो देखता है, उसको दिखाई पड़ेगा कि
मौत फिर पहला कदम है नये जन्म की तरफ। हम मरते आदमी को देखते
हैं कि मर गया, क्योंकि हमें आगे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। हमें लगता है कि
बस एक खाई के किनारे जाकर एक आदमी गिर गया, खत्म हो गया, क्योंकि
हमें आगे दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन जहां मौत घट रही है, तत्क्षण उससे
जुड़ा हुआ जन्म घट रहा है, क्योंकि इस जगत में कुछ भी मिट नहीं सकता—
मिटने का कोई उपाय भी नहीं है।

वैज्ञानिक कहते हैं, रेत के एक छोटे से कण को भी नष्ट नहीं किया
जा सकता। इस जगत में जितना है, जो है, वह उतना ही है, उतना ही
रहेगा। न हम उसमें कुछ जोड़ सकते हैं न कुछ घटा सकते हैं। तो फिर
एक आदमी मरता है, मर कैसे सकेगा? कुछ मिटता नहीं है, तो यह आदमी
कैसे मिट सकेगा? यह केवल हमारी नजर से ओझल हुआ जा रहा है।
जहां तक हम देख सकते हैं वहां तक दिखाई पड़ रहा है, उसके पार हम
नहीं देख सकते, यह किसी नये डायमेन्शन में, किसी नये आयाम में प्रवेश
कर रहा है—जहां हमें दिखाई नहीं पड़ता। जैसे एक जहाज जाता है पानी

में। दिखाई पड़ता है, दिखाई पड़ता है, दिखाई पड़ता है, फिर फीका होता जाता है, फीका होता जाता है, फिर अचानक तिरोहित हो जाता है; क्योंकि जमीन गोल है। जैसे ही जमीन की उस गोलाई को जहाज पार कर लेता है, जिसके पार गोलाई उसको छुपाने का कारण बन जाएगी, हमारी आंख से ओझल हो जाता है, गया।

मृत्यु भी एक वर्तुल, एक गोलाकार घटना है। जन्म और मृत्यु तक आधा वर्तुल पूरा होता है। फिर मृत्यु से जन्म तक आधा वर्तुल पूरा होता है। मृत्यु के किनारे जाकर एक चेतना उस ओझल होते जहाज की तरह आगे निकल जाती है, जहां तक हम देखते हैं, उस सीमा के आगे हम कहते हैं—आदमी मर गया, शरीर गिरकर हमारे पास रह जाता है, चेतना नये जन्म की यात्रा पर निकल जाती है।

जब अर्जुन ने देखा होगा कि जन्म और मौत एक ही वर्तुल के हिस्से हैं, सुन्दर-कुरूप एक ही वर्तुल के हिस्से हैं, मित्र-शत्रु एक ही बात है, तो अलौकिक लगा होगा; क्योंकि लोक में ऐसा अनुभव नहीं होता है। और भयंकर भी लगा कि यह क्या है सब। घबड़ाने वाला भी लगा और यह देखकर कि सारा जगत इसमें फंसा हुआ है; वह कहने लगा, "और हे गोविन्द ! वे देवताओं के समूह आप में ही प्रवेश कर रहे हैं, और कई एक भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए आपके नाम और गुणों का उच्चारण कर रहे हैं। देवता भयभीत होकर, हाथ जोड़े हुए, आपके ही नाम और गुणों की स्तुति कर रहे हैं।" यह थोड़ा विचारें।

मनस्विद्, समाज शास्त्री कहते हैं कि धर्म का जन्म भय से हुआ है। उनके कारण दूसरे हैं। वे कहते हैं, आदमी डरता है प्रकृति की शक्तियों से और डर की वजह से उन्हें फुसलाने के लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करता रहता है। आकाश में बादल गरजते हैं, अगर आप गुफा में रहते होते, रहे होंगे कभी, तो घबड़ा गए होंगे। प्रकृति की विराट शक्तियां हैं, विध्वंस कर सकती हैं, क्षण में पहाड़ गिर जाते हैं लोग दब कर नष्ट हो जाते हैं। भूकम्प होता है लोग विनष्ट हो जाते हैं, खो जाते हैं। गर्जना होती है बिजली की, कुछ समझ नहीं आता। तूफान आते हैं, बाढ़ आती है, और कुछ आदमी कर नहीं सकता। तो विज्ञानविद् कहते हैं कि आदमी उस भय की स्थिति में एक ही बात सोच सका और वह यह थी कि यह जो इतनी भयभीत करनेवाली शक्तियां हैं,

इनसे प्रार्थना की जाय, इन्हें परसुएड किया जाय, फुसलाया जाय कि मत, नाराज मत हों। वह यही सोच सका कि नाराज हो गई है नदी, इसलिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करो। नाराज हो गए हैं बादल, इसलिए पानी नहीं गिर रहा है, हाथ जोड़कर प्रार्थना करो, कुछ पूजा करो, स्तुति करो, महिमा गाओ।

वैज्ञानिक कहते हैं, इसी भय से धर्म का जन्म हुआ है। थोड़ी दूर तक उनकी बात सच है। लेकिन बहुत ज्यादा दूर तक नहीं है। बहुत ज्यादा दूर तक नहीं है। थोड़ी दूर तक इसलिए सच है कि जरूर भय का थोड़ा हाथ है। लेकिन इतना ही भय काफी नहीं है। असली भय न तो नदियों का है, असली भय न तो पहाड़ों के गिरने का है, असली भय न तो ज्वालामुखियों के फूटने का है, असली भय तो मौत का है। मौत के भय के कारण ही बाढ़ भी भयभीत करती है, ज्वालामुखी भी भयभीत करता है। लेकिन अगर पहाड़ गिरे और आप न मरें और वैसे के वैसे ही वापिस निकल आएं, फिर पहाड़ भयभीत नहीं करेगा। बाढ़ आए और कुछ न बिगाड़ पाए, पृथ्वी कंपे और आप अडिग बैठे रहें और आपका बाल भी बांका न हो, तो फिर भय नहीं होगा। तो न तो पहाड़ों का भय है, न नदियों का भय है, न सूर्यों का भय है, भय तो सिर्फ एक है मौत का।

इसको अगर हम ठीक से समझें, तो एक ही भय है मिट जाने का। मैं नहीं हो जाऊंगा। मैं नहीं बचूंगा, मेरा मिटना हो जायेगा, मैं शून्य हो जाऊंगा, 'न-कुछ' हो जाऊंगा। मेरी सब रेखाएं खो जायेंगी, जैसे रेत पर बनी रेखाएं हवा का झोंका आए और मिट जाएं। ऐसा मैं नहीं हो जाऊंगा।

ये नथिंगनेस—सार्त्र ने एक किताब लिखी है—'बीइंग एण्ड नथिंगनेस', होना और न होना। सारी कथा जीवन की यही है। हैं हम, और न होना हमें चारों तरफ से घेरे हुए है और कुछ भी करें वह कंपाता है कि आज नहीं कल, आज नहीं कल, मैं नहीं हो जाऊंगा। यह है भय। जिससे कि एक भय से धर्म का विचार पैदा हुआ होगा। और यह ख्याल में आना शुरू होगा कि अगर नहीं ही हो जाना है, तो इसके पहले कि मैं नहीं हो जाऊं, वह थोड़ा इसका भी तो पता लगा लूं कि क्या कुछ मेरे भीतर ऐसा भी है, जिसे दुनिया की कोई शक्ति मिटा नहीं सकती। तो सारी मृत्यु भी आ जाय तो भी मेरे भीतर कोई अमृत बचेगा। क्या मैं बचूंगा ? सारे मिटने के घटना के बाद भी क्या

कुछ बच रहेगा ? वह कुछ क्या है ? उसको ही हम आत्मा कहते हैं। वही सार जिसको मृत्यु नहीं मिटा पाती—उसका नाम आत्मा है।

अगर आपको ऐसा पता चलता हो कि जो भी आप अपने बाबत जानते हैं, वह मृत्यु में मिट जाएगा; तो आप पक्का समझना कि आपको आत्मा का कोई पता नहीं है। अगर आपको ऐसी किसी चीज का अनुभव होता हो आपके भीतर, जो मृत्यु में नहीं मिटेगी, तो ही समझना कि आपको आत्मा का कोई अनुभव शुरू हुआ है। आत्मा मानने की बात नहीं है, अनुभव की बात है। आत्मा मृत्यु के विपरीत खोज है।

अर्जुन देख रहा है कि आदमी की तो बिसात क्या, देवता भी कंप रहे हैं। वे भी हाथ जोड़े खड़े हैं। उनके भी घुटने टिके हैं। वे भी प्रार्थना कर रहे हैं। वे आपका नाम लेकर उच्चारण कर रहे हैं, स्तुति कर रहे हैं। क्यों ? क्योंकि देवता भी मिटने से उतना ही डरा हुआ है। बुरा आदमी ही मिटने से डरता है, ऐसा मत समझना, भला आदमी भी मिटने से डरता है। बल्कि कई दफे तो बुरे आदमी से ज्यादा भला आदमी मिटने से डरता है; क्योंकि भले को लगता है कि इतना सब भला किया और मिट गए। बुरे को लगता है, डर भी क्या है, ऐसा कुछ किया भी क्या है, जिसको बचाने की जरूरत हो। मिट गये तो मिट गये। और बुरा तो चाहेगा कि मिट ही जाएं तो अच्छा है, क्योंकि जो किया है, कहीं उसका फल न भुगतना पड़े। भला चाहता है—बचे। क्योंकि इतना उपद्रव किया है, इतनी साधना की है, इतने व्रत-उपवास किए, इतनी पूजा-प्रार्थना की और मिट गए। इसका पुरस्कार ! तो नाहक ही जीवन गया।

देवता भली चेतनाओं के नाम हैं—शुद्धतम चेतनाओं के नाम हैं; लेकिन देवता वासना के बाहर नहीं हैं। शुद्धतम चेतना है, लेकिन वासना के भीतर। इसलिए हमने मनुष्य से देवता को एक अर्थ में ऊपर रखा है कि वह मनुष्य से ज्यादा शुद्धतर स्थिति है। लेकिन एक अर्थ में नीचे भी रखा है, क्योंकि अगर उसको मुक्त होना हो तो उसे फिर मनुष्य में वापिस लौट आना पड़ेगा। मनुष्य चौराहा है। पशु होना हो तो मनुष्य की तरफ से यात्रा जाती है। देवता होना हो तो मनुष्य की तरफ से यात्रा जाती है। और अगर समस्त जीवन के पार जाना हो, तो भी मनुष्य से ही यात्रा जाती है। तो देवता एक छोर है शुद्ध होने का।

इसे हम ऐसा समझें कि अगर नैतिक आदमी सफल हो जाय पूरी तरह तो देवता हो जायेगा। नैतिक आदमी अगर सफल हो जाय पूरी तरह जो दस धर्मों को मानकर चलता है, अगर सफल हो जाय पूरी तरह, अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अचौर्य, सब सध जाय, सारे पाप क्षीण हो जायं और सारे पुण्य उसे उपलब्ध हो जायें, तो हमारी अन्तिम कल्पना है, वह यह है कि वह देवता हो जायेगा। वह शुद्धतम होगा, उसके पास शरीर नहीं होगा, सिर्फ चेतना होगी। उसके पास इन्द्रियां नहीं होंगी, लेकिन वासना होगी। इन्द्रियों के कारण वासना से जो बाधा पड़ती है, वह उसे नहीं पकड़ेगी। उसकी वासना, उसकी इच्छा पैदा होते ही पूरी हो जाएगी उसी क्षण। वह सोचेगा यह हो, वैसा हो जाएगा। उसकी वासना में और वासना के पूरे होने में समय का व्यवधान नहीं होगा। आपको भूख लगती है, तो फिर रोटी बनानी पड़ती है, भोजन पकाना पड़ता है, या होटल जाना पड़ता है, आर्डर करना पड़ता है, समय लगता है। देवता को भूख लगेगी, भोजन हो जाएगा। बीच में कोई इन्द्रियां नहीं हैं, जिनके बीच समय के लिए कोई बाधा पड़े, कोई माध्यम नहीं है। उसकी वासना उसकी तृप्ति होगी, लेकिन वासना जहां होती है, वहां अहंकार भी होता है। और जहां अहंकार होता है वहां मिटने का डर भी होता है। जब तक लगता है—मैं हूं, तब तक मिटने का डर भी रहेगा। तो देवता भी डर रहा है। बल्कि सच तो यह है कि देवता आपसे ज्यादा डर रहे हैं, क्योंकि उनके पास खोने को ज्यादा है।

कम्यूनिस्ट कहते हैं कि जब तक जमीन पर किसी मुल्क में बड़ी संख्या ऐसी न हो जाय जिसके पास खोने को कुछ भी नहीं, तब तक क्रांति नहीं हो सकती। वे ठीक कहते हैं। मध्यमवर्गीय आदमी कभी क्रांतिकारी नहीं होता। और धनपति तो क्रांतिकारी होगा कैसे ? क्योंकि क्रांति का मतलब है 'जो है' वह खो जाएगा। मध्यमवर्गीय भी क्रांतिकारी नहीं होता। इसलिए अमरीका में कोई क्रांति नहीं हो रही क्योंकि अमरीका में पूरा देश मध्यवर्गीय हो गया है। गरीब से गरीब आदमी भी बिल्कुल गरीब नहीं है, उसके पास भी कुछ है। और वह जो कुछ है, वह खुद उसको बचाना चाहता है, तो क्रांति की बातचीत में वह नहीं पड़ सकता, क्योंकि क्रांति में खोने का डर है। और अगर तुम दूसरों से छीनने जाओगे, तुम्हारा भी छिन जाएगा। तो क्रांति रोकने का एक ही उपाय अमरीका में सफल हो पाया है, और वह यह कि जो क्रांति नहीं कर सकते हैं, उनके पास कुछ होना चाहिए।

अगर उनके पास कुछ भी नहीं तो फिर बहुत उपद्रव है, फिर क्रांति होगी। डर क्या है? डर हमेशा यह है कि जो मेरे पास है, वह खो न जाय।

इसलिए आपने कहानियां सुनी हैं पुरानी, लेकिन कभी उस कोण से नहीं देखा होगा। इस पूरे प्राणियों के विस्तार में इन्द्र से ज्यादा भयभीत पुरानी कहानियों में कोई भी नहीं मालूम पड़ता। हमेशा उसका सिंहासन डगमगा जाता है। जरा ही किसी ने तपस्या की कि उनको तकलीफ शुरू हो गई। कोई साधु मुनि बेचारा ब्रह्मचारी हुआ कि वे मुश्किल में पड़ गए और उन्होंने अपनी अप्सराएं भेजीं कि करो भ्रष्ट इसको। आखिर इन्द्र को इतना डर क्या है? इतना क्या भय है? भय का कारण है उसके पास, वह शिखर पर बैठा है वासना के।

देवता शुद्धतम वासना है और देवताओं में श्रेष्ठतम वासना, आखिरी शिखर, एवरेस्ट गौरीशंकर वह इन्द्र है। वहां एक ही पहुंच सकता है। वह शिखर आखिरी है चोटी। वहां दो नहीं हो सकते। तो जब भी नीचे कोई ऊपर चढ़ने की कोशिश शुरू करता है तब वह शिखर कंपने लगता है और इन्द्र घबड़ाता है। इसके पहले कि वह आदमी चढ़े इसको उतारने की कोशिश करो। और आदमी को उतारने के लिए स्त्री से ज्यादा बेहतर और कुछ भी नहीं है। भेजो स्त्री। वह तो स्त्रियों ने साधना नहीं की, नहीं तो आदमियों को भेजना पड़ता। इसमें कोई फर्क नहीं है। स्त्रियां इस झंझट में नहीं पड़ीं कि क्यों तकलीफ दो, इन्द्र को काहे को हिलाओ। किसी को क्यों तकलीफ दो!

यह जो भय है, इन्द्र का, यह बहुत सायकोलोजिकल है, यह बहुत मन के गहरे में है। जो भी शिखर पर होगा किसी चीज के, वह उतना ही ज्यादा भयभीत हो जायगा। आप जिस मजे से सोते हैं, प्रधानमंत्री नहीं सो सकता। कोई उपाय नहीं है, क्योंकि कई ऋषि-मुनि नीचे कोशिश कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, कुछ भेजो उनके लिए। कोई अप्सरा भेजो, कोई पद भेजो, कहीं गवर्नर बनाओ, कुछ करो, नहीं तो वे ऋषि-मुनि आ रहे हैं। वे चल दौड़ेंगे, आज नहीं कल उतार कर प्रधान मंत्री को, राष्ट्रपति को नीचे करेंगे खुद आकर क्योंकि वहां एक ही बैठ सकता है, तो वह जो एक बैठा हुआ है, दिक्कत में है।

लाओत्से ने कहा है—उस जगह रहना जो आखिरी हो, ताकि कोई तुम्हें धक्का देने न आए। आखिरी जगह खड़े हो जाना, ताकि तुम्हें कोई धक्का न दे। अगर पहले जाने की कोशिश करोगे, तो अनेक तुम्हें पीछे खींचने की कोशिश करेंगे। तो इन्द्र बेचैन है।

कृष्ण से अर्जुन कह रहा है कि देवताओं को भी मैं देख रहा हूं कि वे कंप रहे हैं, भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए हैं। आपके नाम और गुणों का उच्चारण कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धों के समुदाय 'कल्याण होवे'—ऐसा कहकर उत्तम-उत्तम शब्दों द्वारा आपकी प्रशंसा कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धों के समुदाय भी कह रहे हैं—कल्याण हो, कल्याण होवे, दया हो, कृपा हो, अनुग्रह हो। महर्षि और सिद्धों के समुदाय भी क्यों घबड़ा रहे हैं? मिटने का भय आखिरी सीमा तक है, आखिरी सीमा तक। जिसने बहुत सी सिद्धियां पा ली हैं, उसको सिद्ध कहा है। वे सिद्ध महावीर और बुद्ध के अर्थों में नहीं हैं। सिद्ध उसको कहा है, जिसने बहुत-सी सिद्धियां पा ली हैं। ऋद्धियां-सिद्धियां पा ली हैं, चमत्कार कर सकता है। वह भी कंप रहा है। महर्षि जो बहुत जानते हैं, ज्ञान का अम्बार जिनके ऊपर है, जिनकी जानकारी का कोई अन्त नहीं है, वे भी कंप रहे हैं। वे भी कह रहे हैं, कल्याण, कल्याण, दया करो, क्षमा करो, भयभीत हो रहे हैं। क्यों? इस तरफ, दूसरी तरफ से समझें।

बुद्ध ने कहा है जब तक तुम्हें ख्याल है कि तुम हो, तब तक तुम्हारा भय नहीं मिट सकता। तो बुद्ध ने कहा है, अगर तुम भय से मुक्त होना चाहते हो, तो तुम पहले ही मान लो कि तुम हो ही नहीं। और तुम इस तरह जियो, जैसे नहीं हो। और तुम्हारी एक ही साधना हो कि तुम हो ही नहीं। फिर तुम्हें कोई भयभीत न कर सकेगा। और एक क्षण भी जिस दिन तुम्हें यह अनुभव हो जाएगा कि तुम हो ही नहीं, शून्य हो, उस दिन तुम्हें कहीं भी भय का कोई कारण नहीं रह गया; क्योंकि जो मिट सकता था, उसे तुमने खुद ही त्याग दिया। अब तो वही बचा है, जो मिट ही नहीं सकता।

हमारे भीतर जो 'मैं' का भाव है, वह मिट सकता है। और हमारे भीतर जो 'मैं-शून्यता' की अवस्था है, वह नहीं मिट सकती। 'मैं' स्ट्रक्चर है, ढांचा है हमारे चारों तरफ, वह मिटेगा। जैसे शरीर का एक ढांचा है, वह

ऐसे ही 'मैं' का भी एक ढांचा है, वह भी मिटेगा। इस मृत्यु में मिटेगा। ऐसे ही 'मैं' का भी एक ढांचा है, वह भी मिटेगा। इस ढांचे के भीतर एक शून्य, ऐसा समझें कि आपने एक मकान बनाया। मकान तो मिटेगा, दीवालें तो गिरेंगी, खंडहर होगा, देर-अबेर। लेकिन मकान के भीतर जो शून्य आकाश था, वह नहीं मिटेगा। जब आपकी दीवालें नहीं थीं तब भी शून्य आकाश था, फिर आपने दीवालें उठाईं तो आपने शून्य आकाश को दीवालों के भीतर घेर लिया, फिर आपकी दीवालें गिर जावेंगी। वह शून्य आकाश वहीं के वहीं रहेगा। और ध्यान रखें मकान है क्या—दीवालों का नाम मकान नहीं है; क्योंकि दीवालों में कौन रह सकता है! रहते तो शून्य आकाश में हैं। दीवाल में रह सकते हैं आप? रहते कमरे में हैं। अंग्रेजी का शब्द रूम बहुत अच्छा है। रूम का मतलब होता है—स्पेस। आप रहते रूम में हैं। खाली जगह में हैं। दीवालों में नहीं रहते।

अगर अकेली दीवालें ही हों मकान में, और खाली जगह न हो, तो उसको कौन मकान कहेगा। आप रहते खाली जगह में हैं, वही जीवन है। दीवालें सिर्फ खाली जगह को घेरे हुए हैं। दीवालें नहीं थीं तब यह खाली जगह थी, यह रूम था, बिना दीवाल के। कल दीवालें गिर जायेंगी, तब भी यह रूम रहेगा, बिना दीवाल के रहेगा। अगर आपने दीवालों को समझा है कि अपना मकान है, तो आप घबराए रहेंगे कि आज मिटा, कल मिटा। अगर आपने इस जगह, रूम को समझा कि मेरा मकान है, फिर आपको भय की कोई भी जरूरत नहीं है।

'मैं' दीवाल है। भीतर जो शून्य, शान्त चैतन्य है—वह आकाश है। देवता भी कंपेंगे, सिद्ध भी कंपेंगे, वे सभी के सभी, किसी न किसी तरह से 'मैं' से अभी घिरे हुए हैं।

और हे परमेश्वर! जो एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य तथा आठ वसु और साध्य गण, विश्वदेव तथा अश्विनीकुमार, मरुदगण और पितरों का समुदाय तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धगणों के समुदाय हैं, ये सभी विस्मित हुए आपको देखते हैं। उनकी किसी की समझ में नहीं आता कि यह क्या है।

जहां द्वंद खो जाते हैं, वहां समझ भी खो जाती है। और केवल विस्मय रह जाता है। समझ चलती है तब तक, जब तक द्वंद को अलग-अलग करके हम रखते हैं। जहां एक हो जाती हैं दोनों बातें वहां समझ खो जाती है। और यह जो नासमझी है, समझ के खो जाने से जो आती है, इस नासमझी को ज्ञान कहा है। यह जो नासमझी है, इसे ज्ञान कहा है। इस ज्ञान के क्षण में सिर्फ भीतर का शून्य, बाहर का शून्य दिखाई पड़ता है, जो एक हो गए। और बाहर भीतर भी दिखायी नहीं पड़ता कि क्या बाहर है, क्या भीतर है। दोनों एक हो गए होते हैं। इस बाहर भीतर की एकता में, इस शून्य में ही भय तिरोहित होता है।

अर्जुन कह रहा है कि सभी भयभीत हो रहे हैं। आपका यह रूप देखकर सभी विस्मित हो गए हैं—किसी को कुछ समझ में नहीं पड़ रहा है।

•

गीता अध्याय ११ :

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ।२३।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितांतरात्मा धृतिं न विंदामि शमं च विष्णो

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्टैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ।२५।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ।२६।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनांतरेषु संदृश्यंते चूर्णितैरुत्तमांगैः ।२७।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशंति वक्त्राण्यभिविज्वलंति ।२८।

तथाता-योग का दर्शन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, क्रास मैदान, बंबई, संध्या : दिनांक ७ जनवरी ७३

पांचवां प्रवचन

चुनाव रहित जीवन : बहने की दृष्टि

एक मित्र ने पूछा है कि परमात्मा के विराट स्वरूप को समझाते हुए आपने कल जन्म और मृत्यु, सृजन और संहार, सुन्दर और भयानक आदि के द्वन्द्वात्मक अस्तित्व की बात की; समझाएं कि जिस परमसत्य को अमृत या सच्चिदानन्द के नाम से कहा गया, वह उपर्युक्त द्वन्द्वों का जोड़ है, अथवा इन दो के अतिरिक्त वह कोई तीसरी सत्ता है ।

द्वन्द्व चारों ओर है । संसार में जहां भी देखेंगे वहां एक कभी भी दिखाई नहीं पड़ेगा—विपरीत सदा मौजूद होगा । संसार के होने का ढंग ही विपरीत के बिना असम्भव है । इस एक बात को ठीक से समझ लें—जैसे कि कोई मकान बनाने वाला राजगीर विपरीत ईंटों को जोड़कर गोल दरवाजा बनाता है । अगर एक ही रुख में ईंटें लगाई जाएं तो दरवाजा गिर जाएगा । विपरीत ईंटें एक दूसरे के प्रति विरोध का काम करके दरवाजे को संभालने का आधार बन जाती हैं ।

सारा जगत विपरीत ईंटों से बना हुआ है । वहां प्रकाश है तो केवल इसलिए कि अन्धेरा भी है । और अन्धेरा भी हो सकता है तभी तक, जब

तक प्रकाश है। प्रकाश और अन्धेरा विपरीत ईंटें हैं—दो कारणों से। एक तो सभी ईंटें समान होती हैं। हम उन्हें विपरीत लगा सकते हैं। अन्धेरा और प्रकाश एक ही सत्ता के दो रूप हैं। ईंटें एक जैसी हैं, लेकिन एक दूसरे के विपरीत लग जाती हैं।

जन्म और मृत्यु एक ही जीवन के दो छोर हैं। लेकिन जन्म नहीं होगा, जिस दिन मृत्यु बन्द हो जाएगी; और मृत्यु भी नहीं होगी उसी दिन, जिस दिन जन्म बन्द हो जाएगा। जन्म और मृत्यु का विरोध जो तनाव पैदा करता है, वही तनाव संसार है। संसार एक अशांत अवस्था है। और अशांत अवस्था तभी हो सकती है, जब विपरीत द्वन्द्व मौजूद हो। आप भी अगर केवल आत्मा हों तो संसार में नहीं रह जाएंगे। आप भी केवल शरीर हों तो भी आप, आप नहीं रह जाएंगे—मिट्टी हो जाएंगे। आपके भीतर भी शरीर और आत्मा का एक द्वन्द्व है। उस द्वन्द्व के तनाव में विपरीत ईंटों के बीच ही आपका अस्तित्व है। जहां भी खोजेंगे वहां पाएंगे कि विरोध है।

राम के अकेले होने का कोई उपाय नहीं। रावण का होना एकदम जरूरी है। और रावण हमें कितना ही अप्रीतिकर लगे, कितना ही हम चाहें कि वह न हो; लेकिन हमें पता नहीं है कि रावण के न होते ही राम के होने का कोई उपाय नहीं रह जाता। थोड़ा सोचें। रावण को हटा लें राम की कथा से, तो रावण के हटाते ही राम में जो भी महत्वपूर्ण है तत्क्षण गिर जाएगा। वह तो रावण की विपरीत ईंट के कारण ही राम की प्रखरता है। राम को हटा लें तो रावण व्यर्थ हो जाएगा। सारे जीवन का चक्र द्वन्द्व के आधार पर है।

यह जो द्वन्द्व है, यह जिस दिन शान्त हो जाता है, उस दिन हम संसार के बाहर हो जाते हैं। जिस क्षण यह द्वन्द्व शान्त होता है, उस क्षण अद्वैत में प्रवेश होता है। लेकिन अद्वैत जीवन नहीं है; अद्वैत ब्रह्म है। अद्वैत जीवन इसलिए नहीं है कि वहां कोई मृत्यु नहीं है। जहां मृत्यु नहीं है वहां जीवन का कोई अर्थ नहीं होता। जहां हार हो सकती है वहां विजय का कोई मूल्य है। जहां मिटना हो सकता है वहां होने का कोई अर्थ है। हमारे सारे शब्द संसार के हैं, इसलिए भी जो हम कहें भाषा में उसका विपरीत होगा ही। उस विपरीत को हम कितना ही भुलाने की कोशिश करें, उसे भुलाने का कोई उपाय नहीं है। हम कितना ही छिपाएं वह छिपेगा नहीं।

इस पहली बात को ध्यान में ले लेना जरूरी है। संसार का अस्तित्व द्वंद्वात्मक है, डायलेक्टिकल है। और संसार की सारी गति द्वन्द्व से होती है।

जर्मन विचारक हीगेल ने पश्चिम की विचारधारा में डायलेक्टिक्स को जन्म दिया। उसने पहली दफा पश्चिम में यह विचार प्रस्तुत किया कि जीवन की सारी गति द्वन्द्व से है, और जहां द्वन्द्व है वहां गति होगी। और जहां गति है वहां द्वन्द्व होगा। और जहां गति नहीं होगी वहां द्वन्द्व समाप्त हो जाएगा या द्वन्द्व बन्द हो जाय तो गति समाप्त हो जाएगी।

हीगल के ही विचार को कार्ल मार्क्स ने नया रूप देकर कम्यूनिज्म को जन्म दिया। क्योंकि हीगेल ने कहा था, वाद पैदा होता है तो तत्क्षण विवाद पैदा होता है। थीसेस, एन्टीथीसेस और दोनों मिलकर सिन्थेसिस बन जाते हैं, समन्वय बन जाता है। लेकिन समन्वय फिर वाद हो जाता है। फिर उसका प्रतिवाद होता है। और ऐसे विकास होता है।

मार्क्स ने इसी विचार के आधार पर समाज की व्याख्या की और उसने कहा गरीब और अमीर का द्वन्द्व है। इस द्वन्द्व से, इस द्वन्द्व के पास समाजवाद का जन्म होगा। लेकिन मार्क्स अपने ही विचार को बहुत दूर तक नहीं खींच सका। अगर यह सच है कि विकास द्वन्द्व से होता है, तो समाजवाद के पैदा होते ही समाजवाद के विपरीत कोई धारा तत्काल पैदा हो जाएगी।

लेकिन, मार्क्स को यह हिम्मत नहीं पड़ सकी कि वह कहे कि समाजवाद के विपरीत भी कोई धारा पैदा होगी। उसने पुराने इतिहास में तो द्वन्द्व को देखा, कामना की कि भविष्य में कोई द्वन्द्व नहीं होगा और साम्यवाद सदा बना रहेगा, उसका कोई विरोध नहीं होगा। वह अपने विचार के प्रति अति मोह के कारण है। जैसे मां अपने बेटे को नहीं चाहती कि वह मरे—जानते हुए कि सभी मरते हैं, उसका बेटा भी मरेगा। विचारक भी अपने विचार से अति मोहग्रस्त हो जाते हैं।

इस जगत में कुछ भी पैदा नहीं हो सकता जिसका विरोध न हो—विरोध होगा ही। विरोध ही गति है, इस जगत का प्राण है। यहां निर्विरोध कोई बात नहीं हो सकती।

जिन्होंने पूछा है, उन्होंने पूछा है कि उस परम एकाकार का जब अनुभव होगा, तो दोनों द्वन्द्व मिल जाएंगे या दोनों द्वन्द्वों के अतीत चला

जाता है व्यक्ति। दोनों बातें एक ही हैं। जहां द्वन्द्व मिलते हैं, वहां एक दूसरे को काट देते हैं। जैसे ऋण और धन अगर मिल जाएं तो दोनों कट जाते हैं। जहां दोनों बिन्दु मिलते हैं वहां उनकी दोनों की शक्ति एक दूसरे को काट देती है और द्वन्द्व शून्य हो जाता है। वही शून्यता पार होना भी है, वही ट्रान्सडेन्स भी है, वहीं आदमी पार भी हो जाता है।

जब तक आपका जीवन से मोह है, तब तक मृत्यु से भय रहेगा। अगर जीवन का मोह छूट जाय, मृत्यु का भय भी तत्क्षण छूट जायगा। जहां जीवन का मोह नहीं, मृत्यु का भय नहीं वहां आप पार निकल गए—वहां आप उस जगह पहुंच गए जहां द्वन्द्व नहीं है। लेकिन हम तो ईश्वर की भी बात करते हैं तो हमारी भाषा का द्वन्द्व प्रवेश कर जाता है। हम कहते हैं, ईश्वर प्रकाश है। हम डरेंगे कहने में कि ईश्वर अन्धकार है; क्योंकि हमारी आकांक्षा हमारे शब्द की निर्मात्री है। हम चाहते हैं कि ईश्वर प्रकाश हो। तो अन्धेरे को हम छोड़ देंगे। हम कहते हैं ईश्वर अमृत है, परम जीवन है। हम यह कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते कि ईश्वर परम मृत्यु है—महामृत्यु है। हम चुनते हैं शब्द भी तो हमारा मोह है। हम चाहते हैं, कहीं भी मृत्यु न हो। तो हम ईश्वर के लिए अमृत का उपयोग करते हैं। हम कहते हैं ईश्वर सच्चिदानन्द है। यह भी हमारा मोह है। हम नहीं कह सकते कि ईश्वर परम दुख है; हम कहते हैं परम सुख है। द्वन्द्व में से एक को चुनते हैं; वहां भूल हो जाती है। ईश्वर सुख-दुख दोनों का मिल जाना है।

और जहां सुख-दुख मिल जाते हैं, एक दूसरे को काट देते हैं। उस घड़ी को हम जो नाम देंगे, वह नाम सुख नहीं हो सकता। इसलिए हमने आनन्द चुना है। आनन्द के विपरीत कोई शब्द नहीं है। सुख के विपरीत दुख है। आनन्द के विपरीत कुछ भी नहीं है। हालांकि आप जब भी आनन्द की बात करते हैं, तो आपका अर्थ सुख होता है। वह अर्थ ठीक नहीं है। आपके आनन्द की धारणा में सुख समाया होता है; और दुख अलग होता है ! वह ठीक नहीं है।

आनन्द की ठीक स्थिति का अर्थ है—जहां सुख और दुख मिलकर शून्य हो गए—एक दूसरे को काट दिया उन्होंने—एक दूसरे का निषेध हो गया—जहां दोनों नहीं रहे। इसलिए बुद्ध ने आनन्द शब्द का प्रयोग नहीं किया, क्योंकि आनन्द से हमारे सुख का भाव झलकता है। तो बुद्ध ने कहा—

शान्ति, परम शान्ति, सब शान्त हो जाता है, द्वन्द्व शान्त हो जाता है। इसे चाहे हम कहें दो का मिल जाना, चाहे हम कहें दो के पार हो जाना, एक ही बात है।

जीवन में जहाँ भी आपको द्वन्द्व दिखाई पड़े, चुनाव मत करना। जो चुनाव करता है, वह गृहस्थ है, जो चुनाव नहीं करता, वह संन्यस्थ है। इस बात को थोड़ा समझ लें। दुःख है, सुख है। तत्क्षण हमारा मन कहता है—जन्म ठीक है, मृत्यु ठीक नहीं है। मित्र हैं, शत्रु हैं। हमारा मन कहता है—मित्र ही मित्र रहें शत्रु कोई भी न रहे। यह चुनाव है, च्वाइस है। और जहां चुनाव है, वहां संसार है; क्योंकि आपने दो में से एक को चुन लिया। और दो ही अगर आप एक साथ चुन लें, तो कट जाएंगे दोनों।

अगर आप मान लें कि मित्र भी होंगे, शत्रु भी होंगे; और आपके मन में कोई रत्ती भर चुनाव न हो कि मित्र ही बचें, शत्रु न बचें। आपके मन में कोई चुनाव न हो कि जीवन ही रहे, मृत्यु न रहे। आप दोनों के लिए राजी हो जाएं। जो हो, उसके लिए आपको पूरी की पूरी तथाता, एक्सेप्टी-बिलिटी हो, स्वीकार हो; तो आप संन्यस्थ हैं। फिर आप मकान में हैं, दुकान में हैं, बाजार में हैं कि हिमालय पर हैं, कोई फर्क नहीं पड़ता। आपके भीतर चुनाव खड़ा न हो—च्वाइसलेसनेस।

कृष्णमूर्ति निरन्तर च्वाइसलेसनेस—चुनावरहितता—की बात करते हैं। वह चुनावरहितता यही है। दो के बीच कोई भी न चुनें। जैसे ही आप दो के बीच चुनाव बन्द करते हैं, दोनों गिर जाते हैं। क्यों ? क्योंकि आपके चुनाव से ही वे खड़े होते हैं। और जटिलता यह है कि जब आप एक को चुनते हैं तब अनजाने आपने दूसरे को भी चुन लिया। जब मैं कहता हूं, मुझे सुख ही सुख चाहिए तभी मैंने दुख को भी निमन्त्रण दे दिया। जो सुख की मांग करेगा, वह दुखी होगा। उस मांग में ही दुख है। जो सुख की मांग करेगा, वह अगर सुख न पाएगा, तो दुखी होगा, अगर पा लेगा तो भी दुखी होगा; क्योंकि जो सुख पा लिया जाता है, वह व्यर्थ हो जाता है। और जो सुख नहीं पाया जाता, उसकी पीड़ा सालती रहती है।

जैसे हम चुनते हैं एक को, दूसरा भी आ गया पीछे के द्वार से। और हम चाहते हैं कि दूसरा न आए। इसलिए हम चुनते हैं कि दूसरा न आए। हम चाहते हैं यश तो मिले, अपयश न मिले—प्रशंसा तो मिले, कोई

अपमान न करे। लेकिन जो प्रशंसा चाह रहा है, उसने अपमान को बुलावा दे दिया। अपमान मिलेगा। अपमान तो केवल उसी को नहीं मिलता है, जिसने मान को चुना नहीं। जिसने मान को चुना, उसे अपमान मिलेगा। जरूरी नहीं है कि आप मान को न चुनें, तो कोई आपको गाली न दे...दे। लेकिन आपके पास गाली, गाली की तरह नहीं पहुंच सकती। यह दूसरे देने वाले पर निर्भर हो कि वह फूल फेंके कि पत्थर फेंके। लेकिन आपके पास अब पत्थर भी नहीं पहुंच सकता, फूल भी नहीं पहुंच सकता। वह तो फूल मुझे मिले, इसलिए पत्थर पहुंच जाता था। फूल ही मेरे पास आए, इसलिए पत्थर भी निमंत्रित हो जाता था। जैसे ही आप चुनाव छोड़ देते हैं, आप जगत के बीच भी जगत के बाहर हो जाते हैं।

यह जो चुनावरहितता है, यह संन्यास की गुह्य साधना है, आन्तरिक साधना है। संन्यास है मार्ग—दो के पार जाने का। संसार है द्वार—दो के भीतर जाने का। तो जितना आप ज्यादा चुनेंगे उतने आप उलझते चले जाएंगे। जितना आप मांग करेंगे उतने आप परेशान होते चले जाएंगे। जितना आप कहेंगे ऐसा हो, और ऐसा न हो उतनी ही आपकी चित्त-दशा विक्षिप्त होती चली जाएगी। जितना आप चुनाव क्षीण करते जाएंगे और आप कहेंगे—जैसा हो मैं राजी हूं, जो भी हो मैं राजी हूं। जैसा भी हो रहा है, उसके विपरीत की मेरी कोई मांग नहीं है। जीवन मिले तो ठीक और मृत्यु मिल जाय तो ठीक, दोनों के साथ मैं एक-सा ही व्यवहार करूंगा। मैं कोई भेद नहीं करूंगा। जैसे ही आपके भीतर का यह तराजू समतुल होता जाएगा वैसे ही वैसे द्वन्द्व क्षीण होगा और आप अद्वैत में, निर्द्वन्द्व में प्रवेश कर जाएंगे।

अर्जुन ऐसी ही घड़ी में खड़ा है—जहां उसके भीतर वह जो संसार था, खो गया है। वह चुनावरहित हो गया है। इस चुनावरहित होने के लिए बहुत उपाय हैं। एक उपाय साधक का है, योगी का है। वह चेष्टा कर-करके चुनाव को छोड़ता है। एक उपाय भक्त का है, प्रेमी का है। वह चेष्टा कर-करके नहीं छोड़ता। वह नियति को स्वीकार कर लेता है—भाग्य को स्वीकार कर लेता है। वह राजी हो जाता है।

यह, कृष्ण के पास जो अर्जुन खड़ा है और अर्जुन का यह खड़ा होना, एक भक्त का खड़ा होना है—एक समर्पित चेतना का, एक समर्पित उस

चेतना का जो द्वन्द्व की मैं बात कर रहा हूं वही है। वह रहेगा, उससे बचने का कोई उपाय नहीं है—उसमें चुनाव न करें, शांत बैठे रहें। कृष्ण के सामने अर्जुन की जो दशा है, वह किसी साधक की नहीं है, वह कोई साधना नहीं कर रहा है, वह कोई योग नहीं साध रहा है, लेकिन कृष्ण के प्रेम में समर्पित हो गया है। वह एक गहरी समर्पण की भाव-दशा है। उसने छोड़ दिया सब कृष्ण पर। छोड़ने का अर्थ है—अब मेरा कोई चुनाव नहीं है। समर्पण का अर्थ है—अब मैं न चुनूंगा, अब तुम्हारी मरजी ही मेरा जीवन होगी। अब जो तुम चाहोगे, अब जो तुम्हारा भाव हो—मैं उसके लिए बहने को राजी हूं, अब मैं तैरूंगा नहीं।

एक तो आदमी नदी में तैरता है। वह कहता है, उस किनारे, उस जगह मुझे पहुंचना है। एक आदमी नदी में बहता है। वह कहता है, कहीं मुझे पहुंचना नहीं, नदी जहां पहुंचा दे, वहीं मेरी मंजिल है। अगर नदी बीच में डुबा दे, तो वही मेरा किनारा है। मुझे कहीं पहुंचना नहीं। नदी जहां पहुंचा दे, वही मेरा लक्ष्य है। यह समर्पित—सरेंडर्ड—भक्त का लक्षण है।

अर्जुन ऐसी दशा में है। वह कह रहा है, मैंने छोड़ा। अब मैं तैरूंगा नहीं। मैंने तैर कर देख लिया, सोचकर, विचारकर देख लिया। अब मैं छोड़ता हूं, अब मैं बहूंगा। अब कृष्ण तुम्हारी नदी मुझे जहां ले जाय। जो भी हो परिणाम, और जो भी हो मंजिल, या न भी हो, तो जहां भी मैं पहुंच जाऊं, जहां तुम पहुंचा दो मैं उसके लिए राजी हूं। यह अचुनाव है, च्वाइस समाप्त हो गई, चुनाव समाप्त हो गया। इस चुनाव के समाप्त होने के कारण ही अर्जुन निर्द्वन्द्व हो सका और अद्वैत की उसे झलक मिल सकी।

गीता की व्याख्या : विज्ञान की दृष्टि

एक और मित्र ने पूछा है कि क्या गीता स्वयं में पर्याप्त नहीं है, जो आप उसकी इतनी लम्बी व्याख्या कर रहे हैं ? और शब्दों में दबी हुई आज की मनुष्य सभ्यता के लिए आप गीता को इतना विस्तृत रूप दे रहे हैं, इसके पीछे क्या कारण है ?

गीता तो अपने में पर्याप्त है, लेकिन आप बिलकुल बहरे हैं। गीता तो पर्याप्त से ज्यादा है। उसकी व्याख्या की कोई भी जरूरत नहीं। लेकिन

आप उसे सुन भी न पाएंगे। आप उसे पढ़ भी न पाएंगे। वह आपके भीतर प्रवेश भी न पा सकेगी।

बुद्ध की आदत थी कि वह एक बात को हमेशा तीन बार कहते थे। तीन बार, छोटी-मोटी बातों को भी तीन बार कहते थे। आनन्द ने एक दिन बुद्ध को पूछा कि आप क्यों तीन-तीन बार किसी बात को कहते हैं? और छोटी-मोटी बात को आप तीन बार क्यों दोहराते हैं? सुन लिया। बुद्ध ने कहा कि तुम्हें भ्रम होता है कि तुमने सुन लिया। मुझे तीन बार कहना पड़ता है तब भी पक्का नहीं है कि तुमने सुना हो; क्योंकि सुनना बड़ी कठिन बात है। सुन केवल वही सकता है, जो भीतर विचार न कर रहा हो। जब आप भीतर विचार कर रहे होते हैं, तो जो आप सुनते हैं, वह कहा गया नहीं है। वह तो आपके विचारों ने तोड़ लिया, बदल लिया, नई शक्ल दे दी, नया ढंग दे दिया, नया अर्थ हो गया।

तो जब मैं कुछ कह रहा हूं, तो आप वही सुनते हैं, जो मैं कह रहा हूं, ऐसी भ्रांति में न पड़ें। आप वही सुनते हैं जो आप सुन सकते हैं, सुनना चाहते हैं। और आप जो सुनते हैं, वह आपकी व्याख्या हो जाए।

तो गीता तो पर्याप्त है, लेकिन आपके लिए ऐसा अवसर खोजना जरूरी है जबकि गीता आपके ऊपर हैमर की जा सके, हथौड़ी की तरह आपके सिर पर ठोंकी जा सके। इसलिए इतनी लम्बी व्याख्या करनी पड़ती है, फिर भी कोई पक्का भरोसा नहीं है कि आपको सुनाई पड़ जाएगी। फिर दूसरा कारण भी है। जिस दिन गीता निर्मित हुई, उस दिन के आदमी और आज के आदमी में जमीन-आसमान का अन्तर पड़ गया है। रोज अन्तर पड़ जाता है। शब्द पुराने हो जाते हैं; जैसे वस्त्र पुराने हो जाते हैं, जैसे शरीर पुराने हो जाते हैं, तो शब्द पुराने हो जाते हैं; और पुराने शब्दों की पकड़ हम तक खो जाती है। उनको सुन-सुनकर हम बहरे हो जाते हैं। फिर उस अर्थ को बाहर खींचकर नए शब्द देने की हर युग में जरूरत पड़ जाती है। सत्य तो कभी बासा नहीं होता, लेकिन शब्द सदा बासे हो जाते हैं। आत्मा तो कभी पुरानी नहीं पड़ती, लेकिन शरीर पुराने पड़ जाते हैं। जब आप बूढ़े हो जाएंगे, आपका शरीर पुराना पड़ जाएगा। फिर आपकी आत्मा को नया शरीर ग्रहण कर लेना पड़ेगा।

गीता बहुत पुरानी हो गई है। और युग-युग में जरूरत है कि उसको नई देन मिल जाय—नए शब्द, नए आकार मिल जाएं। हमने इस मुल्क में उसकी बड़ी गहरी कोशिश की है; और इसके परिणाम हुए। अगर हम दूसरे मुल्कों को देखें तो ख्याल में आ जाएगी बात।

सुकरात ने कुछ कहा, वह बहुत कीमती है। लेकिन फिर उस पर कभी व्याख्या नहीं की गयी—फिर उस पर कोई व्याख्या नहीं हुई, वह संग्रहीत है। लेकिन हमने इस मुल्क में एक अनूठा प्रयोग किया और वह अनूठा प्रयोग यह था—कृष्ण ने गीता कही, अर्जुन ने सुनी। फिर बार-बार शंकर होंगे, रामानुज होंगे, निम्बार्क होंगे, बल्लभ होंगे, वे फिर से व्याख्या करेंगे। शंकर क्या कर रहे हैं: वे जो शब्द पुराने पड़ गए हैं, उनको हटाकर नये शब्द रख रहे हैं—आत्मा को नए शब्दों में प्रवेश दे रहे हैं, ताकि शंकर के युग के कान सुन सकें; और शंकर के युग का मन समझ सके।

लेकिन अब तो शंकर भी पुराने पड़ गए और हमेशा बात पुरानी पड़ जाएगी, शब्द तो पुराने पड़ ही जाएंगे। मैं जो कह रहा हूं, वह थोड़े दिन बाद पुराना हो जाएगा। जरूरत होगी कि फिर अर्थ को शब्द से छुटकारा करा दिया जाय।

व्याख्या का अर्थ है—अर्थ को, आत्मा को, शब्द से मुक्ति दिलाने की कोशिश। वह जो शब्द उसे पकड़ लेता है, उसे हटा दिया जाय; नया ताजा शब्द दे दिया जाय; ताकि आप नए ताजे शब्द को सुन सकें। मन रोज बदल जाता है और मन के बदलने के साथ मन के पकड़ने-समझने के ढंग बदल जाते हैं। थोड़ा समझ लें।

आज से पांच हजार साल पहले मन का आधार था—श्रद्धा, आस्था, भरोसा, विश्वास, ट्रस्ट। आज मन का आधार नहीं है—श्रद्धा पर। आज आस्था आधार नहीं है। आज ठीक विपरीत आधार है, सन्देह, डाउट। उसका कारण है; क्योंकि विज्ञान की सारी की सारी खोज संदेह पर खड़ी होती है, डाउट पर खड़ी होती है। विज्ञान चलता ही संदेह करके है। विज्ञान खोजता ही संदेह करके है और जो सन्देह नहीं कर सकता वह वैज्ञानिक नहीं हो सकता।

इसलिए जिसे वैज्ञानिक होना हो उसे संदेह की कला सीखनी ही पड़ेगी। सारी दुनिया को हम विज्ञान की शिक्षा दे रहे हैं। हर बच्चा विज्ञान

में दीक्षित हो रहा है। इसलिए हर बच्चे के मन में सन्देह प्रवेश कर रहा है; और जरूरी है। विज्ञान की शिक्षा ही बिना संदेह के हो नहीं सकती। विज्ञान का आधार ही संदेह है—सोचो, पूछो। तब तक मत मानो जब तक कि प्रमाण न मिल जाय। तब तक रुको। मानने की जल्दी मत करो।

धर्म का आधार बिलकुल विपरीत है। धर्म का आधार है—चुपचाप, सहज, स्वीकार कर लो—पूछो मत। पूछना ही बाधा हो जाएगी। तो पांच हजार साल पहले विज्ञान का कोई शिक्षण नहीं था। आदमी का मन धार्मिक था। गीता में जो कहा गया है वह सीधा भीतर प्रवेश कर जाता था। आज आदमी का मन धार्मिक बिल्कुल नहीं है; वैज्ञानिक है। विज्ञान बुरा है, यह मैं नहीं कह रहा हूं; या धर्म अच्छा है, यह भी मैं नहीं कह रहा हूं। इतना ही कह रहा हूं कि वैज्ञानिक होने के लिए संदेह अनिवार्य है। और धार्मिक होने के लिए श्रद्धा अनिवार्य है। उन दोनों के यात्रा-पथ बिलकुल अलग हैं, विपरीत हैं।

तो सारी दुनिया का मन आज विज्ञान की तरफ आंदोलित हो रहा है। इसलिए धर्म की जो बात है उससे और आज के मन का कोई तालमेल नहीं है—हारमनी नहीं है—कोई संगति नहीं बैठती—कोई संबंध नहीं जुड़ता। आदमी जा रहा विज्ञान की तरफ, उसकी पीठ है श्रद्धा की तरफ। तो पीठ की तरफ से जो सुनाई पड़ता है वह समझ में नहीं आता। दो ही उपाय हैं, या तो आदमी को मोड़ कर श्रद्धा की तरफ खड़ा किया जाय, जो कि अति कठिन हो गया है। अति कठिन है; क्योंकि एक दिन में किसी का चित्त मोड़ा नहीं जाता। और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि पहले सात वर्षों में बच्चे को जो शिक्षण मिल जाता है, वह फिर जीवन भर पीछा करता है, फिर बदलना बहुत मुश्किल है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि चौदह वर्ष में बच्चे की बुद्धि करीब-करीब परिपक्व हो जाती है। चौदह वर्ष के बाद फिर बुद्धि में कोई बहुत विकास नहीं होता। तो चौदह वर्ष की उम्र तक जो प्रवेश कर जाता है, वह आधार बन जाता है। फिर जो कुछ भी होगा, उसके ऊपर होगा। इसलिए किसी आदमी के चेहरे को एकदम मोड़ा नहीं जा सकता। उसके सन्देह पर श्रद्धा नहीं बनाई जा सकती। और अगर जबरदस्ती बनाने की कोशिश की जाय

तो सन्देह भीतर होगा, श्रद्धा ऊपर हो जाएगी—थोथी, झूठी, मुर्दा, उसमें कोई प्राण नहीं होंगे।

तो एक ही उपाय है और वह यह है कि धर्म की ऐसी व्याख्या की जाय जो संदेह से मन को भी आकर्षित करती हो। सन्देह को इन्कार न किया जाय, स्वीकार कर लिया जाय। और श्रद्धा की जबर्दस्ती न की जाय, श्रद्धा को सन्देह के मार्ग से ही लाया जाय, जो अति कठिन है। लेकिन अब इसके सिवाय कोई उपाय नहीं।

अगर मनुष्य जाति पुनः धार्मिक होगी, तो एक नया अनूठा प्रयोग करना पड़ेगा। वह यह कि आपके संदेह का ही उपयोग किया जाय आपको श्रद्धा तक लाने के लिए। आपके विचार, आपके तर्क, आपकी समझ का ही उपयोग किया जाय, समझ को ही नष्ट करने के लिए। आपके तर्क का ही उपयोग किया जाय, आपके तर्क को ही काट डालने के लिए। यह हो सकता है। पैर में कांटा लग जाता है तो दूसरे कांटे से उस कांटे को निकाल लेते हैं। और कोई भी यह नहीं कहता कि आप कांटे से कांटे को कैसे निकालेंगे। आदमी बीमार होता है, उसके शरीर में जहर फैल जाता है तो हम एन्टी-बायोटिक्स, और जहर डालकर उसके जहर को नष्ट कर देते हैं। वैक्सीनेशन का तो सारा सिद्धांत इस बात पर खड़ा हुआ है कि आपके शरीर में जो कीटाणु हैं बीमारी के, वे ही कीटाणु और बड़ी मात्रा में आपके भीतर डाल दिये जाएं।

तो अब तो धर्म होगा वैक्सीनेशन। अब तो आपसे यह नहीं कहा जा सकता कि श्रद्धा करिये। यह कोई खेल नहीं है। अब बहुत मुश्किल है। अब किसी छोटे बच्चे को भी कहना कि चुपचाप मान लो—व्यर्थ है। वह बच्चा भी कहेगा कि आप क्या कह रहे हैं। पूछूं ना? विचार न करूं? तर्क न करूं? तो आपका यह कहना कि श्रद्धा ही हमारी पहली शर्त है बच्चों के लिए तो आपके धर्म का द्वार बन्द हो गया। इसका अर्थ हुआ कि आप व्यर्थ की बकवास कर रहे हैं। जिसमें प्रश्न न पूछा जा सके और जिसमें संदेह न किया जा सके, वह सत्य नहीं हो सकता—वह अंधविश्वास है। आपने द्वार बन्द कर दिये। आज किसी से कहना, श्रद्धा करो, ना-समझी है।

आज तो एक ही उपाय है कि उसके संदेह को संदेह के ही मार्ग से काट डाला जाय। एक ऐसी घड़ी आ जाय कि उसका संदेह करने वाला मन संदेह करने में असमर्थ हो जाय, संदेह कर-कर के असमर्थ हो जाय। एक उपाय तो यह होता है कि आपको बांध कर बिठा दिया जाय कि शांत हो जाओ। छोटे बच्चों को घर में मां-बाप बिठा देते हैं कि शांत हो जाओ। छोटा बच्चा बैठ जाता है, लेकिन जरा उसका निरीक्षण करें, आबजर्व करें। वह हाथ-पैर हिलायेगा, कुछ करेगा। सिर हिलायेगा, कुछ करेगा। वह जो दौड़ता था, वह दौड़ अब उसके भीतर-भीतर चलेगी। आप उसको जबर्दस्ती बिठा दिये। इससे कुछ हल होने वाला नहीं है। ज्यादा वैज्ञानिक यह होगा कि उसे कहें, जाकर के मकान के दस चक्कर लगा कर आ। तो दस चक्कर लगाने में, शायद दस वह लगा भी न पाएगा, तीन और चार या पांच में थक जाएगा। कहेगा मुझे नहीं लगाना है। उसे कहें कि और पांच पूरे कर। फिर आप कोने में बैठा हुआ उसे देखें। अब उसके भीतर कोई गति नहीं होगी। अब वह शांत होगा। अब वह बुद्ध की प्रतिमा की तरह बैठा होगा।

आपके लिए अब दूसरा ही रास्ता है। आपको सीधे नहीं बिठाया जा सकता। इसलिए दस चक्कर मुझे लगाने पड़ते हैं। जो सीधा बैठ सकता है, उसे मुझे कुछ नहीं कहना है। लेकिन मुझे एक आदमी नहीं दिखाई पड़ता जो अब सीधा बैठ सकता हो। आपको दस चक्कर लगाने पड़ेंगे। इसलिए इतनी लम्बी व्याख्या करनी पड़ती है। वह चक्कर है। और आपके साथ मुझे भी लगाने पड़ते हैं; क्योंकि ध्यान रखना पड़ता है कहीं बीच में आप रुक न जाएं। जब तक थक न जाएं, एक्जास्टिड, आपकी बुद्धि को थकाने के सिवाय अब श्रद्धा तक ले जाने का कोई मार्ग नहीं है।

प्रेम और मृत्यु का एक साथ दर्शन

अब हम सूत्र को लें :

"और हे महाबाहो ! आपके बहुत मुख और नेत्रों वाले, तथा बहुत हाथ, जंघा और पैरों वाले, और बहुत उदरों वाले, तथा बहुत सी विकराल जाड़ों वाले, महान रूप को देख कर सारे लोक व्याकुल हो रहे हैं, तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूं।"

अर्जुन ने देखा विकराल रूप। जहां परमात्मा मृत्यु का मुख बन गया है। वह कह रहा है कि हे महाबाहो ! यह मैं देख रहा हूं इससे सारे

लोक व्याकुल हो रहे हैं, मैं भी व्याकुल हो रहा हूं। मेरा हृदय धड़कता है और घबड़ाहट रोएं-रोएं में समा गई है। क्या यह भी आप हैं? यह व्याकुलता स्वाभाविक है, क्योंकि हमने परमात्मा का एक ही रूप देखा, और हमने परमात्मा के एक ही रूप की पूजा की और हमने परमात्मा के एक ही रूप को सराहा। और हमने यह माना कि वह एक इसी रूप से एक है, दूसरा रूप परमात्मा का नहीं है। तो जब हमें पूरा परमात्मा दिखाई पड़े, तो व्याकुलता बिल्कुल स्वाभाविक है। यह व्याकुलता परमात्मा के रूप के कारण नहीं है; हमारी बुद्धि के तादाम्य के कारण है। हमने एक हिस्से के साथ तादाम्य कर लिया है। हमने देखा कि परमात्मा होगा—सौन्दर्य। हमने परमात्मा की सारी प्रतिमाएं सुन्दर बनाई हैं। कुछ हिम्मतवर तांत्रिकों ने कुरूप प्रतिमाएं भी बनाई हैं, लेकिन वे धीरे-धीरे खोती जा रही हैं। हमारे मन को उनकी अपील नहीं है।

अगर आप विकराल काली को देखते हैं—हाथ में खंजर लिये, कटा हुआ सिर लिये, गले में मुंडों की माला डाले हुए, पैरों के नीचे किसी की छाती पर सवार, लाल जीभ, खून टपकता हुआ, तो भला भय की वजह से आप नमस्कार करते हों, लेकिन मन में यह भाव नहीं उठता कि यह परमात्मा का रूप है। भला मान्यता के कारण आप सोचते हों कि ठीक, लेकिन भीतर यह भाव नहीं उठता कि यह परमात्मा का रूप है।

और स्त्री, ममता, मां जिसको हमने कहा; और काली को हम मां कहते हैं। मां जो है, वह ऐसा विकराल रूप लिये खड़ी है, तो मन को बड़ी बेचैनी होती है कि क्या बात है। लेकिन, जिन्होंने यह विकराल रूप खोजा था, उन्होंने एक द्वंद्व को इकट्ठा करने की कोशिश की। मां से ज्यादा प्रेम से भरा हुआ हृदय पृथवी पर दूसरा नहीं है। इसलिए मां को खड़ा किया इतने विकराल रूप में, जो कि दूसरा छोर है। मां को ऐसे खड़ा किया जैसे वह मृत्यु हो। मां तो जन्म है। मां को ऐसे खड़ा किया जैसे वह मृत्यु हो। दो द्वंद्व, जन्म और मृत्यु दोनों को एक साथ काली में इकट्ठा किया। एक तरफ वह जन्मदात्री है और दूसरी तरफ मृत्यु उसके हाथ से घटित हो रही है। और हड्डियों की खोपड़ियों की माला उसने गले में डाल रखी है।

कभी आपने अपनी मां को इस भाव से देखा। बहुत घबड़ाहट होगी। और अगर आप अपनी मां को इस भाव से नहीं देख सकते तो काली को

आप मां कैसे कह सकते हैं ! असंभव है । लेकिन जिन्होंने, जिन तांत्रिकों ने ये द्वंद्व को जोड़ने का ख्याल किया, बड़े अदभुत लोग थे । इसमें एक प्रतीक है । इसमें जन्म और मृत्यु एक साथ खड़े हैं । इसमें प्रेम और मृत्यु एक साथ खड़े हैं । इसमें मां का हृदय और मृत्यु के हाथ एक साथ खड़े हैं । मगर धीरे-धीरे यह रूप खोता चला गया । यह रूप आज अगर कभी आपको दिखाई भी पड़ता है तो सिर्फ परम्परागत है । इसकी धारणा खो गई । इसके हृदय में संबंध हमारे खो गए । हमने परमात्मा का तो सौम्य, सुन्दर रूप ही भला माना है । कृष्ण बांसुरी बजाते खड़े हैं, वे लगते हैं कि परमात्मा हैं । मोर-मुकुट बांधा हुआ है, उनके होठों पर मुस्कान है, वे लगते हैं कि परमात्मा हैं । उनसे हमें आश्वासन मिलता है, राहत मिलती है, सांत्वना मिलती है । हम वैसे भी बहुत दुखी हैं । काली को देखकर और उपद्रव क्यों खड़ा करना है । कृष्ण को देखकर सांत्वना, कंसोलेशन मिलता है कि ठीक है । इस जीवन में होगा दुख, इस जीवन में होगी मृत्यु । आज नहीं कल वह मुकाम आ जाएगा, जहां बांसुरी ही बजती रहती है—जहां सुख ही सुख है—जहां शांति ही शांति, जहां संगीत ही संगीत है—जहां फिर कुछ बुरा नहीं है । उसकी आशा बंधती है, उसका भरोसा बंधता है, मन को राहत मिलती है । तो जो हमारे पास नहीं है, जो जिन्दगी में खोया हुआ है, जिसका अभाव है—उसे हमने कृष्ण में पूरा कर लिया ।

आपने कभी ख्याल किया कि हमने कृष्ण, राम, बुद्ध, महावीर, किसी के बुढ़ापे का चित्र नहीं बनाया । कोई बुढ़ापे की मूर्ति नहीं बनाई । ऐसा नहीं है कि ये लोग बूढ़े नहीं हुए । बूढ़े तो होना ही पड़ेगा । इस जमीन पर जो है, जमीन के नियम उस पर काम करेंगे । और ये जमीन के नियम किसी को भी छूट नहीं देते, यहां कोई छुट्टी नहीं है । और अगर इस जमीन के नियमों में छुट्टी हो, तो फिर जगत बिल्कुल एक बेईमान व्यवस्था हो जाय ।

यहां तो कृष्ण को भी बूढ़ा होना पड़ेगा, राम को भी होना पड़ेगा, बुद्ध को भी होना पड़ेगा, महावीर को भी होना पड़ेगा । लेकिन हमने उनको बूढ़ा नहीं बनाया । उससे यह पता नहीं चलता कि वे बूढ़े नहीं हुए । उससे यही पता चलता है कि बुढ़ापे से हम कितने भयभीत हैं, कितने डरे हुए हैं । और अगर बुद्ध को भी हम देखें—दांत टूटे हुए, लकड़ी टेकते हुए, तो फिर

भगवान मानना बहुत मुश्किल हो जायगा । सुन्दर, युवा, जो सदा ही युवा हैं, उनका युवापन ठहर गया है, वह आगे नहीं बढ़ता । भगवान को बूढ़ा देखें, खखारते हुए, खांसते हुए, खाट पर, किसी अस्पताल में भर्ती ! यह हमारे विश्वास के बाहर हो गए हैं । हमारी सारी श्रद्धा नष्ट हो जाएगी । और हमें लगेगा कि यह भी क्या बात हुई । कम से कम भगवान होकर तो ऐसा नहीं होना था ।

तो भगवान, हम हमारी कामनाओं से निर्मित करते हैं । उनकी मूर्ति हम अपनी वासना से निर्मित करते हैं । उसका तथ्य से कम संबंध है, हमारी भावनाओं से ज्यादा संबंध है । देखते हैं आप : न दाढ़ी उगती राम को, न कृष्ण को, न बुद्ध को, न महावीर को । न मूंछ निकलती, न दाढ़ी निकलती है । जरा कठिन मामला है । कभी-कभी ऐसा होता है, कोई पुरुष मखन्नस होता है । कभी-कभी किसी पुरुष को दाढ़ी-मूंछ नहीं उगती; क्योंकि उसमें कुछ हारमोन की कमी होती है, वह पूरा पुरुष नहीं है । लेकिन, यह कभी-कभी होता है । सब अवतार हमने मखन्नस खोज लिये ! जरा कठिन है, थोड़ा सोचने जैसा है ।

जैनियों के चौबीस तीर्थंकर हैं । चौबीस तीर्थंकरों में किसी को दाढ़ी-मूंछ नहीं उगती । यह मामला मुश्किल है कि उन्होंने इतनी खोज कर ली हो । और हमेशा जब भी कोई तीर्थंकर हुआ तो वह ऐसा आदमी हुआ जिसमें हारमोन की कमी थी । यह बात नहीं है । दाढ़ी-मूंछ उगी ही है । लेकिन हमारा मन नहीं कहता कि दाढ़ी-मूंछ उगे ; क्यों ? क्योंकि वह दाढ़ी-मूंछ, जो उगे, तो फिर बुढ़ापा आएगा । वह जो दाढ़ी-मूंछ उगे, तो युवावस्था को ठहराना मुश्किल हो जाएगा । वह जो दाढ़ी-मूंछ उगे, तो वे फिर ठीक हम जैसे हो जाएंगे । और हमारा मन कहता है कि वे हम जैसे न हों । हम अपने से बहुत परेशान हैं । हम अपने से बहुत पीड़ित हैं । वे हम जैसे न हों ।

इसलिए हमने अपने अवतारों, अपने तीर्थंकरों, अपने पैगम्बरों में वे सब बातें जोड़ दी हैं—जो हम चाहते हैं हममें होतीं, और नहीं हैं । हम सुबह-शाम लगे हैं दाढ़ी छीलने में । वह हम चाहते हैं कि न हो । वह हम चाहते है कि न होती । और आदमी कल विज्ञान-व्यवस्था खोज लेगा कि पुरुष दाढ़ी-मूंछ से छुटकारा पा जाय । इतनी उत्सुकता दाढ़ी-मूंछ से

छुटकारा पाने की भी बड़ी अजीब है और बड़ी विचारणीय है और बड़ी मनोवैज्ञानिक है, थोड़ी पैथालाजिकल है, थोड़ी रुग्ण भी है। पुरुष के मन में जो सौन्दर्य की धारणा है, वह स्त्री की है। उसको स्त्री का चेहरा सुन्दर मालूम पड़ता है। और स्त्री के चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ नहीं है। वह सोचता है, सुन्दर होने का लक्षण दाढ़ी-मूंछ का न होना। मगर स्त्रियों को भी पूछो कि दाढ़ी-मूंछ न हो तो पुरुष का चेहरा सुन्दर सच में लग सकता है ? लगना नहीं चाहिए। और अगर लगता है तो उसका मतलब—पुरुषों ने उनका दिमाग भी भ्रष्ट किया हुआ है। लगना नहीं चाहिए। प्राकृतिक रूप से स्त्री को दाढ़ी-मूंछ वाला चेहरा सुन्दर लगना चाहिए; जैसा पुरुष को गैर-दाढ़ी-मूंछ का चेहरा सुन्दर लगता है। थोड़ा सोचें कि आपकी पत्नी दाढ़ी-मूंछ लगाए हुए खड़ी है। तो जब आप गैर-दाढ़ी-मूंछ के खड़े हैं तब वही हालत हो रही है।

लेकिन, चूंकि पुरुष प्रभावी है और स्त्रियों के मन को उसने अपने ही सांचे में ढाल रखा है हजारों साल से कि स्त्रियां कह भी नहीं सकतीं कि तुम यह क्या कर रहे हो, क्यों स्त्री जैसे हुए जा रहे हो। स्त्रियां भी मानती हैं कि यह सुन्दर है। क्योंकि उनकी अपनी सुन्दरता की व्याख्या भी हमने नष्ट कर दी। स्त्री का हमने मन्तव्य ही समाप्त कर दिया है। पुरुष की ही धारणा उसकी भी धारणा है। जिसको पुरुष सुन्दर मानता है, वह भी सुन्दर मानती है।

तो सुन्दर की जो हमारी धारणा थी—हमने भगवान पर थोप दी है। लेकिन वे हमारी कामनाएं हैं। वे तथ्य नहीं हैं। तथ्य तो जीवन के साथ मृत्यु जुड़ी है, यह है। मृत्यु से हम भयभीत हैं। हम बचना चाहते हैं। हम में से अधिक लोग आत्मा को अमर इसीलिए मानते हैं कि इसके सिवाय बचने का और कोई उपाय नहीं दीखता। उन्हें कुछ पता नहीं है कि आत्मा अमर है। उन्हें कुछ भी पता नहीं है कि आत्मा है भी ! लेकिन फिर भी वे माने चले जाते हैं कि आत्मा अमर है। क्यों ? भय है मृत्यु का। शरीर तो जाएगा यह पक्का है, कितना ही उपाय करो। तो बचने का अब एक ही उपाय है कि आत्मा अमर हो। इसलिए जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होता है, आत्मा में भरोसा करने लगता है। जवान आदमी कहता है, पता नहीं—है या नहीं। हो सकता है न भी हो। यह आदमी अभी समझ के नहीं बोल रहा, अभी जवानी का जोश बोल रहा है। थोड़ा हाथ-पैर ढीले पड़ने दें,

भरोसा आने लगेगा। थोड़ी मौत करीब आने दें, दांत गिरने दें, भरोसा आने लगेगा। क्यों ? इसलिए नहीं कि इसे कोई अनुभव हुआ जा रहा है। कोई बूढ़े होने से अनुभवी नहीं होता। अगर बूढ़े होने से दुनिया में अनुभव मिलता होता, तो सारे लोग कितनी दफे बूढ़े हो चुके हैं, अनुभव ही अनुभव होता। कोई अनुभव नहीं मिलता। लेकिन बूढ़े होने से भय बढ़ता है, मौत करीब मालूम पड़ने लगती है। अब इतना भरोसा नहीं मालूम पड़ता, पैरों में इतनी ताकत नहीं मालूम पड़ती। अब तर्क करने की सुविधा नहीं मालूम पड़ती। अब लगता है, अब तो ऐसा लगता है कि वह जो अंधविश्वासी कहते हैं, वही ठीक हो तो अच्छा है कि आत्मा हो। यह हमारा विश-फुलफिलमेंट है—आत्मा हो। तो हम मानने लगते हैं कि आत्मा है।

जाएं मस्जिद में, मंदिर में, चर्च में; बूढ़े लोग और पुरुषों से भी ज्यादा बूढ़ी स्त्रियां वहां इकट्ठी हैं। क्योंकि पुरुष बूढ़ा भी हो जाय तो थोड़ा बहुत अपना पुरुषत्व, अकड़ कायम रखता है। स्त्रियां और जल्दी घबड़ा जाती हैं और मंदिर की तरफ चल पड़ती हैं। घबड़ाहट की वजह से, भय की वजह से आदमी मान लेता है—आत्मा अमर है। अनुभव की वजह से नहीं, क्योंकि अनुभव तो बड़ी और बात है। और अनुभव तो उसे उपलब्ध होता है, जो मृत्यु से भय छोड़ देता है और जीवन की वासना छोड़ देता है।

हम तो मृत्यु के भय से 'आत्मा अमर है' मान लेते हैं। हमें कभी पता नहीं चलेगा कि आत्मा है भी। उसी को पता चलेगा, जो मृत्यु का भय नहीं करता और जीवन का मोह नहीं करता। कौन है जो मृत्यु का भय नहीं करे और जीवन का मोह न करे ? वही व्यक्ति जो जीवन और मृत्यु को एक की तरह देख ले, अनुभव कर ले। और इसके लिए कहीं शास्त्र में जाने की जरूरत नहीं, और इसके लिए किसी महापुरुष, महाज्ञानी के चरणों में बैठने की जरूरत नहीं। जीवन काफी शिक्षा है।

जीवन और मृत्यु दो कहां हैं ? वे एक ही हैं। हमने अपने मोह में बांधा है दो में, वे एक ही हैं। कभी आपको पता है किस दिन जन्म समाप्त होता है और मृत्यु शुरू होती है। और किस दिन, किस सीमा पर जीवन समाप्त होता है, और मृत्यु का आगमन होता है। कहीं कोई विभाजन नहीं है, कोई वाटरटाइट कम्पार्टमेन्ट, कोई खंड-खंड बांटने का उपाय नहीं है।

जीवन, मृत्यु एक ही चीज के दो नाम मालूम पड़ते हैं। एक ही घटना लिए दो शब्द मालूम पड़ते हैं। एक छोर जीवन, दूसरा छोर मृत्यु।

तो हम परमात्मा का रूप बनाते हैं—मोहक, सुन्दर! हमने नाम जो रखे हैं वे सब ऐसे रखे हैं कि मन को लुभाएं। लेकिन जो दूसरा हिस्सा है, वह हमने काट रखा है।

अर्जुन भी भयभीत हुआ। इसलिए नहीं कि परमात्मा का भयंकर रूप है। बल्कि इसलिए कि आज तक उसने सोचा ही नहीं था कभी, यह कभी धारणा ही मन में न बनी थी कि यह भयंकर रूप भी परमात्मा का होगा। हम सोचते हैं यमराज को, भैंसे पर बैठे हुए विकराल दांतों वाला, काला आदमी, सींगों वाला, लेकिन हम कभी यमराज को परमात्मा के साथ एक करके नहीं देखते। यमराज—अलग ही मालूम पड़ता है उसका डिपार्टमेन्ट, वह सब अलग विभाग है। परमात्मा से हम उसको नहीं जोड़ते कि मृत्यु परमात्मा से आती है।

गीता के ये सूत्र बड़े कीमती हैं। इन्हें थोड़ा समझ लेना। यमराज कहीं भी नहीं, परमात्मा के मुंह में ही है। और यमराज कहीं किसी हाथी-घोड़े पर बैठकर, किसी भैंसे पर सवार होकर नहीं आने वाला है। परमात्मा के दांत, वे ही यमराज हैं।

भयभीत अन्तःकरण : भय का मूल

यह देखकर अर्जुन घबड़ा गया है और वह कह रहा है :

"सारे लोग व्याकुल हो रहे हैं। मैं भी व्याकुल हो रहा हूं। क्योंकि हे विष्णु! आकाश के साथ स्पर्श किए हुए देदीप्यमान अनेक रूपों से युक्त तथा फैलाए हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रों से युक्त आपको देख कर भयभीत अन्तःकरण वाला मैं धीरज और शान्ति को नहीं प्राप्त होता हूं।"

वह ठीक कह रहा है। वह कह रहा है आपकी वजह से मैं भयभीत हो रहा हूं, ऐसा नहीं। मैं भयभीत अंतःकरण वाला हूं, इसलिए भयभीत हो रहा हूं। आपके कारण भयभीत नहीं हो रहा हूं। आप तो विशाल हैं, महान हैं, विष्णु हैं, महादेव हैं, आप तो परमेश्वर हैं। आपके कारण नहीं भयभीत हो रहा हूं, लेकिन मेरा अंतःकरण भय वाला है। इसे हम थोड़ा समझ लें।

हम सबके पास अंतःकरण भय वाला है। यह थोड़ा गहन है। और आपको पता भी नहीं कि आपका अंतःकरण क्या है, कांशेन्स क्या है? आप चोरी करने से डरते हैं। भीतर कोई कहता है, चोरी बुरी है। आप पड़ोसी की स्त्री को भगा ले जाने से बचते हैं। भीतर कोई कहता है, यह बात बुरी है। किसी की हत्या करने से मन भय से कंपता है। भीतर कोई कहता है, हत्या पाप है, हिंसा बुरी है। कौन कहता है आपके भीतर? जो आपके भीतर बोलता है, यह अंतःकरण है। यह अंतःकरण वास्तविक नहीं है। क्योंकि वास्तविक अंतःकरण भय के कारण नहीं जीता, वास्तविक अंतःकरण तो ज्ञान के कारण जीता है। यह अंतःकरण सोशल प्रोडक्ट है, समाज के द्वारा पैदा किया गया है।

यह समाज—बच्चा पैदा होते से ही बच्चे में अंतःकरण पैदा करने में लग जाता है। क्योंकि समाज को भय है कि अगर बच्चे को ऐसे ही छोड़ दिया जाय, तो वह पशु जैसा हो जाएगा। और इस भय में सचाई है। अगर बच्चे को कुछ भी न कहा जाय तो वह पशु जैसा हो जाएगा।

तो समाज उसे बताना शुरू करता है। वह कहता है—अगर तुम ऐसा करोगे तो दंड पाओगे। अगर तुम ऐसा करोगे तो पुरस्कार पाओगे। अगर तुम ऐसा करोगे तो माता-पिता प्रसन्न होंगे; अगर तुम ऐसा करोगे दुखी होंगे, नाराज होंगे, कष्ट पाएंगे। धीरे-धीरे हम बच्चे में भय और लोभ के आधार पर अंतःकरण पैदा करते हैं। हम कहते हैं—तुम ऐसा करो, मां प्रसन्न हैं, पिता प्रसन्न हैं, सब लोग प्रसन्न हैं तुमसे। तुम ऐसा करो। और सब लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे, और सब तुम्हें निन्दित कर रहे हैं।

तो बच्चे को धीरे-धीरे समझ में आने लगता है, किस चीज से डरें। तो जिस-जिस चीज से मां-बाप डराते हैं उस-उस चीज से वह डरने लगता है। भय गहरे में बैठ जाता है, अंतःकरण बन जाता है। इसलिए हर समाज का अंतःकरण अलग-अलग होता है—हिन्दू का अलग, मुसलमान का अलग, ईसाई का अलग, जैन का अलग। आत्मा अलग-अलग नहीं होती अंतःकरण अलग-अलग होता है।

अब एक जैन है, वह मांसाहार नहीं कर सकता; क्योंकि बचपन से उसे कहा गया है कि महापाप है। तो अगर मांस सामने आ जाय तो भीतर उसके हाथ-पैर कंपने लगेंगे। इसलिए नहीं कि मांस को देखकर कंपते हैं

क्योंकि दूसरा मुसलमान बैठा है, उसके नहीं कंप रहे हैं। तो मांस में कंपाने वाली कोई बात नहीं। कंप रहे हैं अंतःकरण के कारण। और इसी बच्चे को अगर एक मांसाहारी घर में रखा जाता, तो इसके भी नहीं कंपते। और अगर एक मांसाहारी बच्चे को गैरमांसाहारी घर में रखा जाता है, तो उसके भी कंपते। वह जो अंतःकरण बचपन से पैदा किया गया है, वह जो भय है कि क्या गलत है—वह नहीं करना। उसे देखकर यह कंप रहा है। यह वास्तविक अंतःकरण नहीं है। यह सामाजिक व्यवस्था है।

इसलिए एक समाज में अगर चचेरी बहन से शादी होती है, तो कोई अड़चन नहीं है। चचेरी बहन से शादी हो जाती है किसी को कोई तकलीफ नहीं होती और दूसरे समाज में उसी के पड़ोस में चचेरी बहन से शादी करने की बात ही महापाप हो सकती है। कई सोच भी नहीं सकता कि बहन से भी वह प्रेम कर सकते हैं। संभव ही नहीं है। और उसको पत्नी बना सकते हैं, यह तो बिल्कुल कल्पना के बाहर है। यह अंतःकरण है। जब तक दुनिया में बहुत समाज हैं, बहुत सम्प्रदाय हैं तब तक बहुत अंतःकरण होंगे। और इन अंतःकरण के कारण बड़ा उपद्रव है। और दुनिया तब तक एक नहीं हो सकती जब तक हम कोई एक युनिवर्सल कांशेन्स पैदा न कर लें—तब तक दुनिया एक नहीं हो सकती। लाख लोग सिर पटकें कि हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई, लाख लोग सिरपटकें कि हिन्दी-चीनी भाई-भाई, यह असम्भव है। क्योंकि भाई-भाई तब तक नहीं हो सकते जब तक भीतर के अंतःकरण भिन्न-भिन्न हैं। तब तक सब ऊपरी होगा, थोथा, दिखावा। मौके पर सब कलई खुल जाएगी और दुश्मन बाहर निकल आएगे। ऊपर से होगा, क्योंकि वह जो भीतर अंतःकरण बैठा है, वह भेद निर्मित कर रहा है।

अर्जुन कहता है—मेरे अंतःकरण के कारण मैं भयभीत हो रहा हूं; आपके कारण नहीं। और ठीक कह रहा है। यह उसका निरीक्षण बिलकुल उचित है। अंतःकरण में आज तक उसने यही जाना है कि परमात्मा सौम्य है, सुन्दर है, प्रीतिकर, आनन्दपूर्ण है, सच्चिदानन्द है, आनन्द-घन है। अब तक उसने यही जाना है। मृत्यु भी परमात्मा है—यह उसने न सुना है, न जाना है।

इसलिए बचपन से बना हुआ अंतःकरण परमात्मा की एक प्रतिमा लिए है, वह प्रतिमा खंडित हो रही है, इसलिए वह व्यथित है। और व

केवल वह कहता है, मैं व्यथित हूं, सारे लोग व्यथित हैं। यह रूप बहुत बबड़ाने वाला है।

तथाता योग का दर्शन

"और हे भगवन्! आपके विकराल जाड़ों वाले और प्रलयकारी अग्नि के समान प्रज्ज्वलित मुखों को देखकर, दिशाओं को नहीं जानता हूं और सुख को भी प्राप्त नहीं होता हूं, दिशा-भ्रांति हो गई। अब मुझे पता नहीं कि उत्तर कहां है, दक्षिण कहां है, पूर्व कहां है।"

वह यह कह रहा है कि अब मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है, मेरा सिर घूम रहा है। दिशाएं पहचान में नहीं आतीं कि क्या, क्या है। यह तुम्हारा रूप देखकर दिशाएं भ्रान्त हो गईं, मेरे पथ खो गए, मेरा मार्ग धुएं से भर गया है और जरा भी सुख को प्राप्त नहीं होता हूं। यह जो आपको देख रहा हूं, आप भगवान हैं। वह कह रहा है, आप भगवान हैं, आप परमेश्वर हैं फिर भी आपका यह रूप देखकर जरा भी सुख को प्राप्त नहीं होता हूं। आपकी इस स्थिति को देखकर जरा भी मुझे सुख के लिए सहारा नहीं मिलता है।

"इसलिए हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न होवें।"—यह कह रहा है कि आप कृपा करें और यह रूप तिरोहित कर लें। और वह जो प्रसन्नवदन, वह जो मुस्कुराता हुआ आनंदित रूप था, आप उसमें वापस लौट आएं। आदमी का मन आखीर तक, अंत तक भी परमात्मा पर अपने को थोपना चाहता है। अंत तक भी परमात्मा जैसा है उसे वैसा ही स्वीकार कर लेने की तैयारी नहीं होती—अन्त तक।

साधक की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि वह परमात्मा पर भी अपने को थोपता है। और तब तक सिद्ध नहीं हो पाता, जब तक परमात्मा 'जैसा भी हो', उसको वैसा ही स्वीकार कर लेने की स्थिति न आ जाय। अभी अर्जुन थोड़ा-सा विनम्र है, निवेदन कर रहा है कि प्रसन्न हो जाएं, यह हटा लें—यह प्रज्ज्वलित, प्रलयंकारी रूप अलग कर लें। मुख पर थोड़ी मुस्कुराहट ले आएं। आपके चेहरे पर हंसी को देखकर, आनन्द को देखकर मुझे सुख होगा।

इसे ख्याल में लें। जब तक आप सोचते हैं कि परमात्मा ऐसा होना चाहिए, जब तक आपकी परमात्मा की कोई धारणा है तब तक आप परमात्मा को नहीं जान पाएंगे। तब तक जो भी आप जानेंगे, वह परदा होगा। अगर आपको परमात्मा को ही जानना है तो आपको अपनी सारी धारणा अलग कर देनी होगी। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सब हटा देने होंगे। आपको निपट परमात्मा को शून्य की तरह जानने के लिए खड़ा हो जाना पड़ेगा। अपना अंतःकरण, अपने भरोसे, विश्वास, अपनी दृष्टि सब हटा देनी होगी। और जैसा भी हो, विकराल हो, मृत्यु हो, अमृत हो, जो भी हो उसके लिए राजी हो जाना होगा।

जब भी कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति में राजी हो जाता है, तो परमात्मा के दोनों रूप खो जाते हैं—विकराल भी, सौम्य भी। और जिस दिन ये दोनों रूप खोते हैं उस अनुभव को हमने ब्रह्म अनुभव कहा है। इस फर्क को थोड़ा समझ लें। यह ईश्वर का अनुभव है जब तक ये दो रूप हमें दिखाई पड़ते हैं। जिस दिन ये दो रूप भी नहीं दिखाई पड़ते, दोनों में चुनाव नहीं रह जाता, उसी दिन दिखाई नहीं पड़ते। उस दिन जो रह जाता है—वह ब्रह्म है।

भारत ने बड़ी साहस की बात कही है। भारत ने ईश्वर को भी माया का हिस्सा कहा है। यह सुनकर आपको कठिनाई होगी। भारत कहता है, ईश्वर भी माया का हिस्सा है। ईश्वर-अनुभव भी माया का हिस्सा है—ब्रह्मानुभव। क्योंकि ईश्वर में भी रूप है। और ईश्वर के साथ भी हमारा लगाव है—अच्छा-बुरा, ऐसा हो, ऐसा न हो।

भक्त भगवान को निर्मित करते रहते हैं, सजाते रहते हैं। मंदिरों में ही नहीं, मंदिरों में तो वे सजाते ही हैं; क्योंकि भगवान बिल्कुल अवश है—वह कुछ कर नहीं सकता, जो करना चाहो करो। लेकिन यह अर्जुन ठेठ भगवान के सामने खड़े होकर भी कह रहा है कि ऐसा अच्छा होगा। मुझे सुख मिलेगा, आप जरा प्रसन्न हो जाएं। यह रूप हटा लें, यह तिरोहित कर लें। यह क्या कर रहा है? यह कह रहा है कि अभी भी केन्द्र मैं हूं, मेरा सुख। आप ऐसे हों, जिसमें मुझे सुख मिले। मैं ऐसा हो जाऊं, जिसमें आप आनंदित हों—ऐसा नहीं। मैं आनंदित होऊं, ऐसे आप हो जाएं, यह

आखिरी राग है। और तब तक शेष रहता है जब तक हम माया की आखिरी परिधि ईश्वर को पार नहीं कर लेते।

शंकर ने कहा है कि ईश्वर माया का हिस्सा है, इसलिए ईश्वर के अनुभव को भी अंतिम अनुभव मत समझ लेना। यहीं कठिनाई खड़ी हो जाती है। ईसाइयत, इस्लाम, शंकर की बात से व्यथित हो जाते हैं। हिन्दू, साधारण चित्त भी व्यथित हो जाता है; क्योंकि ईश्वर हमारे लिए लगता है—आखिरी। भारत की मनीषा के लिए ईश्वर भी आखिरी नहीं है। आखिरी तो वह स्थिति है, जहां कहने को इतना भी शेष नहीं रह जाता कि आनंद है, कि दुख है, कि मृत्यु है, कि जीवन है। सब भेद गिर जाते हैं। सारी रेखाएं खो जाती हैं।

अर्जुन कहता है, "हे जगन्निवास! आप प्रसन्न होवें। और मैं देखता हूं कि वे सब ही धृतराष्ट्र के पुत्र, राजाओं के समुदाय, आप में प्रवेश करते हैं और भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य तथा कर्ण और हमारे पक्ष के भी प्रधान योद्धाओं के सहित सब के सब वेग-युक्त हुए आपके विकराल जाड़ों वाले भयानक मुख में प्रवेश करते हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरों सहित आपके दांतों के बीच में लगे हुए दीखते हैं।

और हे विष्णुमूर्ति! जैसे नदियों के बहुत से जल के प्रवाह समुद्र के ही सन्मुख दौड़ते हैं और समुद्र में प्रवेश करते हैं वैसे ही वे शूरवीर मनुष्यों के समुदाय भी आपके प्रज्ज्वलित हुए मुखों में प्रवेश कर रहे हैं।"

कहता है कि आपके दांतों में दबे हैं और न केवल दबे हैं, उनके सिर चूर्ण हो गए; जैसे, आपने उनका भोजन कर लिया हो। और वे आपके दांतों में चिपक कर रह गए हैं। और वे मनुष्य, बलशाली लोग, जिनके लिए कल्पना भी नहीं कर सकता अर्जुन। भीष्म पितामह—इतना बलशाली व्यक्ति, वह भी जाकर चूर्ण हो जाएगा—मृत्यु के मुख में पड़कर। द्रोणाचार्य उसका गुरु, वह भी इस तरह असहाय होकर दांतों में चिपट जाएगा। कर्ण, उस विपरीत शत्रुओं के वर्ग का सबसे शूरवीर पुरुष, वह भी ऐसा दयनीय हो जाएगा। और न केवल धृतराष्ट्र के पुत्र, मेरे पक्ष के लोग भी आपके दांतों में दबे मर रहे हैं, चूर्ण हुए जा रहे हैं। न केवल इतना ही; बल्कि जो बाहर हैं, वे तेजी से दौड़ रहे हैं आपके मुंह की तरफ; जैसे नदियां

सागर की तरफ दौड़ती हैं। बहुत भय लगता है। अर्जुन कहता है, बहुत व्यथा होती है.. हंसें...बन्द कर लें यह मुंह।

हम सभी दौड़ रहे हैं मृत्यु को तरफ, जैसे नदियां दौड़ती हैं। और अगर यह सारा जगत, यह सारा जगत अगर शरीर है, तो निश्चित ही इस जगत के मुंह में कहीं दांतों के नीचे दबकर हम सब चूर्ण हो जाएंगे। और फिर कौन! भीष्म हों, कि द्रोणाचार्य, कि कर्ण, या कि अर्जुन, कोई भी हो, वे सभी चूर्ण हो जाएंगे। और जो नहीं चूर्ण हो रहे हैं, वे भी दौड़ रहे हैं; बड़ा श्रम उठा रहे हैं, भागे जा रहे हैं—कुछ उपलब्धि के लिए। हम सबको यह ख्याल है कि जिन्दगी में कुछ पा लेंगे। और आखिर में सिवाय मौत के हम कुछ भी नहीं पाएंगे। लगता है न मालूम क्या पा लेंगे और पाते सिर्फ मौत हैं, और कुछ भी नहीं पाते। लाख करें उपाय, आदमी कब्र के सिवाय कहीं और पहुंचता नहीं है—कोई और दूसरी मंजिल नहीं। और कितना ही इकट्ठा करें, कितनी ही उपलब्धियां, कितना ही सोचें, विचारें, योजना बनाएं, आखिर में पहुंच जाता है आदमी मृत्यु के मुंह में, बिना योजना बनाए। बचता है तो भी नहीं बच पाता। शायद बचने की कोशिश में भी वहीं पहुंच जाता है।

अर्जुन को इस जीवन की पूरी की पूरी मृत्यु में दौड़ती हुई धारा दिखायी पड़ गई। वह भयभीत न होता, अगर उसे ऐसा दिखाई पड़ता कि मृत्यु कहीं और घटित हो रही है, परमात्मा के मुंह में नहीं। तो इतना भयभीत न होता, कम से कम परमात्मा से सहारा मिल सकता था—मृत्यु के विपरीत भी, अगर मृत्यु कहीं और घट रही थी। अगर कोई शैतान, कोई यमदूत, मृत्यु को ला रहा था तो परमात्मा बचाने वाला हो सकता था। अब तो बचाने का भी कोई उपाय नहीं है, क्योंकि यह परमात्मा का ही मुंह है जहां मृत्यु घटित हो रही है। इससे भयभीत हुआ। अगर आपको भी यह पता चल जाय कि आपके दुख का कारण परमात्मा ही है, आपकी मृत्यु का कारण परमात्मा ही है, तो भय और भी ज्यादा संतप्त कर देगा। हम कई तरकीबें निकालते हैं। हम कहते हैं कि दुख का कारण दुष्ट आत्माएं हैं। दुख का कारण है—शैतान इबलिश, बीलजबब। हमने शैतान के हजार नाम खोज रखे हैं, वे हैं। दुख का कारण पिछले जन्मों के कर्म हैं। ये मृत्यु कोई परमात्मा के कारण नहीं हो रही, यह तो शरीर क्षण-भंगुर है इसके

कारण हो रही है। हम हजार तरकीबें खोजते हैं। परमात्मा को बचाते हैं। उससे हमारे मन में एक तो राहत रहती है कि सब कुछ हो।

सुना है मैंने, कबीर ने एक पद लिखा कि चलती चक्की देखकर मैं बहुत घबड़ा गया। क्योंकि उस चलती चक्की के बीच जो भी दाने दब गए, वे चूर्ण हो गए। और कबीर ने कहा है कि मुझे ऐसा लगा, यह सारा जगत एक चलती चक्की है, जिसके भीतर सब पिसे जा रहे हैं। कबीर का लड़का था—कमाल। कमाल अक्सर कबीर के विपरीत बातें कहा करता था। अक्सर बेटे बाप के विपरीत कहा करते हैं। और बेटा भी क्या जो बाप के विपरीत थोड़ा बहुत न हो। उसमें नमक ही नहीं है. जान ही नहीं। कबीर का बेटा था, इसलिए जानदार तो था ही। कबीर ने उसको नाम दिया था—कमाल। वह कबीर के खिलाफ पद लिखा करता था।

तो कबीर ने जब यह लिखा कि दो चक्की के बीच मैंने किसी को बचता हुआ नहीं देखा। तो कमाल ने एक पद लिखा कि ठीक है यह तो, लेकिन जिसने बीच की डडी का सहारा पकड़ लिया चक्की में, वह बच गया। वह डंडी हमारे लिए परमात्मा है। उसमें भी, वही मतलब था उसका कि जिसने राम का सहारा ले लिया वह बच गया, बाकी सब पिस गए। अब यह बेचारे ने—अगर अर्जुन ने—कमाल की पंक्ति पढ़ी होती। नहीं पढ़ी होगी, क्योंकि कमाल बहुत बाद में हुआ। तो यह घबड़ा जाएगा कि यह मामला क्या है? हम तो सोचते थे तुम बीच की डंडी हो, जिनके सहारे बचेंगे, पर तुम्हारे मुंह में ही मौत घट रहा है। तो जिन्हें अपना समझा था, जिनके सहारे सोचते थे मौत से लड़ लेंगे और जिनके सहारे सदा सोचा था कि कोई भय नहीं, बचाने वाला है, उसके ही मुंह में मौत घट रही है। रक्षक जिसे समझा था वह भक्षक दिखायी पड़ गया हो, तो हम सोच सकते हैं अर्जुन की घबड़ाहट कैसी रही होगी। वह घबड़ाहट स्वाभाविक है। लेकिन स्वाभाविक इसलिए है कि हमने परमात्मा का जो रूप बनाया है, वह अपनी मनोनुकूल आकांक्षा से बनाया है। वह परमात्मा का रूप नहीं, हमारी वासनाओं का रूप है। मृत्यु भी परमात्मा में ही घटित होती है और जीवन भी उसमें ही घटित होता है। वही मां भी है, वही मृत्यु भी।

इसलिए काली की प्रतिमा बड़ी सार्थक है। उससे ही सब निकलता है और उसमें ही सब लीन होता है। सागर में सारी नदियां गिरती हैं और

सारी नदियां सागर से ही पैदा होती हैं। सारी नदियां सागर से पैदा होती हैं फिर चढ़ती हैं नदियां धूप की किरणों के सहारे बादलों में। फिर बादलों के सहारे पहाड़ों पर, फिर गंगोत्रियों में गिरती हैं और फिर सागर की तरफ दौड़ती हैं।

जो नदी सागर में अपने को गिरते देखती होगी वह घबड़ा जाती होगी, मिट रही है—मौत है सागर। लेकिन उसे पता नहीं कि यह सागर मौत भी है, गर्भ भी; क्योंकि कल फिर उठेगी ताजी होकर, नई होकर, युवा होकर। बूढ़ी हो गई, बासी हो गई, जमीन ने गंदी कर दी। सब गंदगी सागर छांट देगा। फिर ताजा, फिर शुद्ध, फिर वाष्पीभूत होगी, फिर गंगोत्री, फिर यात्रा शुरू होगी। यह वर्तुल है। सागर: नदी की मृत्यु भी है, जन्म भी। परमात्मा सृष्टि भी है, प्रलय भी। वहां होना भी है और न होना भी।

इससे अर्जुन भयभीत हो गया है। और वह कहता है, वापस लौटा लो इस रूप को, मत दिखाओ—यह रूप प्रीतिकर नहीं। इससे मुझे जरा भी सुख नहीं मिलता। फिर भी वह कहे चले जा रहा है—भगवान, परमेश्वर, महादेव, देवों के देव। थोड़ा हम उसका द्वंद्व, उसकी दुविधा समझें। वह अनुभव तो कर रहा है कि यह भी परमात्मा का ही रूप है। लेकिन मन मानना नहीं चाहता कि यह भी रूप है। वह कहता है हटा लो, प्रसन्न हो जाओ। यह रूप नहीं देखा जाता।

यह अर्जुन की ही दुविधा नहीं है। जो व्यक्ति भी परम अनुभव के निकट पहुंचते हैं और ईश्वर-अनुभूति को उपलब्ध होते हैं, उनकी यही दुविधा है।

सुना है मैंने, मुसलमान फकीर जुन्नेद एक रात प्रार्थना किया कि हे प्रभु, मैं जानना चाहूंगा कि इस मेरे गांव में सबसे पवित्र आदमी कौन है? सबसे ज्यादा पुण्यात्मा? ताकि मैं उसके चरणों में सिर रखूं, उसका आशीर्वाद पाऊं। रात उसने स्वप्न देखा। बहुत घबड़ा गया, नींद टूट गई उसकी। स्वप्न में उसे दिखाई पड़ा कि परमात्मा कहता है, वह जो तेरे पड़ोस में रहता है आदमी, वही सबसे ज्यादा पवित्र और पुण्यात्मा है। वह एक बिलकुल साधारण आदमी था। जुन्नेद ने कभी उस पर नजर भी नहीं डाली थी। पांव छूना तो दूर, वह उसके पांव छूता था। वह जो बगल में रहता था, वह इसके पांव

छूता था। जब भी यह निकलता था तो इसको नमस्कार करता था। इसको वह महात्मा मानता था। वह तो बहुत, जुन्नेद मुश्किल में पड़ गया कि इसके मैं पांव छूऊं और यह भी क्या मजाक रही। हमने पूछा, पवित्रतम आदमी, इससे तो हम ही ज्यादा पवित्र हैं। यह खुद हमारे पैर छूता है।

अक्सर जिनके लोग पैर छूते हैं, वे सोचते हैं कि हम ज्यादा पवित्र हैं, क्योंकि लोग हमारे पैर छूते हैं। और हो यह सकता है कि जो पैर छूता है, वह ज्यादा पवित्र भी हो सकता है; क्योंकि पैर छूना भी एक गहरी पवित्रता है—वह भी एक बड़े विष्कलुष हृदय का लक्षण है। पर जब आदेश हो गया परमात्मा का, तो मुसीबत हो या कुछ भी हो, जुन्नेद उठा, अपने को संभाला, संयम से साधा, निकला घर के बाहर कि पैर तो छूने पड़ेंगे और आदेश परमात्मा का हुआ। देखा कि कोई नहीं है, अकेला बैठा है वह आदमी, जल्दी जाकर उसके पैर छू लिए कि कोई देख न ले गांव में कि इसके तू पैर छू रहा है जुन्नेद। पूरा गांव उसको महात्मा मानता था। उस आदमी ने कहा कि मेरे पैर छू रहे हैं; कुछ भूल-चूक हो गई, कुछ मुझसे नाराज हो। ऐसा मैंने क्या पाप किया? उस आदमी ने कहा कि आप और मेरे पैर छुओ! नहीं, नहीं वापस लें! आपका दिमाग तो नहीं खराब हो गया, उस आदमी ने कहा, जुन्नेद, तुम जैसा साधु पुरुष मुझ जैसे असाधु के पैर छुए!

जुन्नेद कुछ बोला नहीं। उसने कहा बताना ठीक भी नहीं कि मामला क्या है, क्योंकि झंझट में पड़ गए परमात्मा से पूछकर। एक दफे छू लिया बात खत्म हो गई।

रात उसने फिर परमात्मा को कहा, एक मर्जी और पूरी कर दें। एक तूने पूरी कर दी। अब मैं जानना चाहता हूं, इस गांव में सबसे बुरा, सबसे शैतान, सबसे पापी आदमी कौन है? उसका भी तो पता चल जाय।

परमात्मा फिर रात सपने में प्रकट हुआ। उसने कहा कि वही आदमी जो तेरे पड़ोस में रहता है। और कल सुबह उठकर तू उसके पैर छू आना। अब तो और मुसीबत हो गई। कल तो पैर छूना आसान भी था, कम से कम परमात्मा ने कहा था। भरोसा तो नहीं आ रहा था, फिर भी परमात्मा ने कहा था कि आदमी पवित्र है, तब पैर छूना तब भी मुसीबत थी। और अब यह आदमी सबसे बड़ा पापी है, परमात्मा कहता है, और अब उसके पैर छू

लूं। और फिर जुन्नेद ने कहा, यह क्या खेल है मालिक ! यही आदमी पवित्र और यही आदमी पापी ! यह एक ही आदमी है। उसे आवाज सुनाई पड़ी कि जिस दिन तू दोनों को एक साथ देख पाएगा, बस उसी दिन तू मुझे देख पाएगा, उसके पहले नहीं।

वह जो बुरा है, वह जो भला है; वह जो शुभ है, वह जो अशुभ है; प्रीतिकर, अप्रीतिकर—जिस दिन हम दोनों को एक में देख पाते हैं, उसी दिन, उसी दिन हम पार होते हैं—द्वंद्व के।

अर्जुन की तकलीफ यही है कि वह द्वंद्व के पार होने के किनारे खड़ा है। वह कृष्ण से कहता है, लौटा लो, वापस हो जाओ। वही रूप ठीक था। तुम जैसे थे—वही...हंसो...मुस्कराओ। यह मृत्यु वाला रूप मुझे जरा भी सुख नहीं देता है, हालांकि उसे अनुभव हो रहा है कि यह भी उनका ही रूप है। अगर वह आज राजी हो जाय इस रूप के लिए, तो द्वंद्व के इसी क्षण पार हो जाय; लेकिन अर्जुन इस क्षण तक राजी नहीं हो सका, और वापस द्वंद्व में गिरने का आग्रह कर रहा है।

•

गीता अध्याय ११ :

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशंति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशंति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।२९

लेलिह्यसे ग्रसमानः समंताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपंति विष्णो।३०।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्।३१

•

नियति और विज्ञान का दर्शन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, क्रास मैदान, बंबई, संध्या : दिनांक ८ जनवरी ७३

छठवां प्रवचन

वर्तमान और भविष्य : तथ्य के दो बिंदु

एक मित्र ने पूछा है कि महाभारत युद्ध शुरू होने के पहले ही अर्जुन देखता है कि परमात्मा के विराट स्वरूप के अन्दर सब योद्धा मृत्यु-मुख में प्रविष्ट हो रहे हैं। तो क्या यह महायुद्ध उस क्षण एक अपरिहार्य नियति थी, जिसे संपन्न करने के लिए सब मजबूर थे।

जीवन को देखने के दो दृष्टिकोण हैं। एक दृष्टिकोण है कि भविष्य अनिश्चित है और परिवर्तनीय भी। मनुष्य चाहे तो भविष्य वैसा ही हो सकता है, जैसा वह चाहता है। भविष्य पूर्व से निश्चित नहीं है। मनुष्य के हाथ में है कि भविष्य को निर्मित करे। यह जो दृष्टि है, इसका अपरिहार्य परिणाम मनुष्य की अशान्ति होता है। यदि भविष्य अनिश्चित है तो अशांत होना होगा, बेचैन होना होगा, असन्तुष्ट होना होगा। उसे बदलने की कोशिश करनी होगी। यदि बदलाहट हो सकी तो भी तृप्ति नहीं मिलेगी, क्योंकि भविष्य का कोई अन्त नहीं है। एक बदलाहट, पचास और बदलाहट की आकांक्षा पैदा करेगी। अगर बदलाहट न हो सकी तो उसे गहन पीड़ा, उदासी, विपदा घेर लेगी। मन संतप्त हो जाएगा, हारा हुआ, पराजित हो जाएगा।

दोनों ही स्थितियों में भविष्य अगर अनिश्चित है और आदमी के हाथ में है, तो आदमी परेशान होता है। पश्चिम ने यह दृष्टिकोण लिया है। पश्चिम मानकर चलता है कि अतीत तो निश्चित है, हो गया। वर्तमान हो रहा है। आधा निश्चित है, आधा अनिश्चित है। भविष्य पूरा अनिश्चित है, अभी बिलकुल नहीं हुआ है। अगर भविष्य अनिश्चित है तो मुझे आज वर्तमान के क्षण को भविष्य के लिए अर्पित करना होगा। आज ही मुझे काम में लग जाना होगा कि भविष्य को मैं अपनी आकांक्षा के अनुकूल बना लूं।

इसके दो परिणाम होंगे। एक तो वर्तमान का क्षण मेरे हाथ से चूक जाएगा। उसे मैं भविष्य के लिए समर्पित कर दूंगा। मैं आज नहीं जी सकूंगा। मैं आशा रखूंगा कि कल जब मेरे मनोनुकूल स्थिति बनेगी, तब मैं जीऊंगा। आज को मैं भविष्य के लिए कुर्बान कर दूंगा—पहली बात। और कल की चिन्ता मुझे आज सताएगी, खींचेगी, परेशान करेगी।

पश्चिम ने इसका प्रयोग किया है और परिणाम में पश्चिम को गहन अशांति उपलब्ध हुई है। लेकिन भौतिक अर्थों में पश्चिम अपने जीवन को नियत करने में बहुत दूर तक सफल भी हुआ है। यह बड़ी उलझन की बात है, इसे थोड़ा गौर से समझ लेना चाहिए।

पश्चिम अपनी भौतिक स्थिति को मनुष्य के अनुकूल बनाने में बहुत दूर तक सफल हो गया है। तो एक अर्थ में तो उनकी जो धारणा है सत्य सिद्ध हो गई है कि वर्तमान को अगर हम भविष्य के लिए अर्पित करें, तो भविष्य को मन के अनुकूल कुछ दूरी तक निश्चित ही निर्मित किया जा सकता है। इस मामले में पश्चिम की सफलता साफ है। बीमारी कम हुई है। लोगों की उम्र बढ़ी है। भौतिक समृद्धि बढ़ी है। साधन बढ़े हैं। वैभव की सुविधा बढ़ी है। उन्होंने अपने मन के अनुकूल जो कल भविष्य था और आज वर्तमान हो गया है—उसे निर्मित करने में सफलता पाई है। लेकिन दूसरे अर्थों में वे हार गए।

यह सब हो गया है और आदमी इतना अशान्त हो गया है, इतना भीतर विक्षिप्त हो गया है कि अब विचार होने लगा है कि इतनी कीमत पर आदमी को खोकर इतनी व्यवस्था करनी क्या उचित है? और अगर

आदमी की भीतर की सारी शान्ति और आनन्द ही खो जाता हो, तो हम बाहर कितनी ही समृद्धि अर्जित कर लेते हैं, उसका प्रयोजन क्या है? क्योंकि अन्ततः सारी समृद्धि मनुष्य के लिए है, मनुष्य समृद्धि के लिए नहीं है और अन्ततः बाहर हम जो भी बना लेते हैं, वह आदमी के लिए है कि जो उसके काम आ सके। लेकिन अगर आदमी ही खो जाता हो बनाने में, तो यह बहुत मंहगा सौदा है और मूढ़तापूर्ण भी।

पश्चिम इस बात में सफल हुआ है कि भविष्य को आदमी प्रभावित कर सकता है लेकिन प्रभावित करने में आदमी नष्ट हो जाता है।

पूर्व ने दूसरा दृष्टिकोण लिया है। पूर्व कहता है—भविष्य को आदमी निश्चित, निर्मित कर ही नहीं सकता। भविष्य नियत है—अपरिहार्य है। जो होना होगा, वह होगा। इसका दुष्परिणाम हुआ कि बाहर के जगत में हम गरीब हैं, दीन हैं, बीमार हैं, परेशान हैं। हम कोई भौतिक समृद्धि अर्जित नहीं कर पाए। यह परिणाम हुआ, क्योंकि जब भविष्य को हमने छोड़ ही दिया नियति पर, तो हम भविष्य के लिए कोई श्रम करें, यह बात ही समाप्त हो गई।

लेकिन इसका एक गहरा लाभ भी हुआ। और वह लाभ यह हुआ कि भविष्य की चिन्ता से जो विक्षिप्तता मनुष्य में पैदा हो सकती थी, उससे हम बच सके। और कुछ लोग सब कुछ भविष्य पर छोड़कर परम आनन्द के क्षण को भी उपलब्ध हो सके। अभी पश्चिम को बुद्ध पैदा करने में देर है। अभी पश्चिम को कृष्ण पैदा करने में देर है। अभी पश्चिम चेतना की उन ऊंचाइयों को छूने में असमर्थ हैं, जो हमने छुईं। उसका आधार सिर्फ एक था कि हमने कहा भविष्य तो निश्चित है—जो होना है, होगा। इसका परिणाम हुआ।

अगर भविष्य में जो होना है, होगा, तो मुझे भविष्य के लिए चिन्तित और परेशान होने का कोई भी कारण नहीं है। दूसरा परिणाम यह हुआ कि अगर भविष्य निश्चित है तो वर्तमान को भविष्य पर कुर्बान करना नासमझी है। तो मैं अभी जीऊं, यहीं इस क्षण को पूरा जीऊं।

मजे की बात यह है कि वर्तमान ही हमारे हाथ होता है, भविष्य नहीं। आज ही हमारे हाथ में होता है, कल हमारे हाथ में होता नहीं। और अगर मन

की ऐसी आदत हो जाय कि आज को कल पर कुर्बान कर दूं, तो कल जब आएगा, वह भी आज होकर आएगा। उसे भी मैं आने वाले कल पर कुर्बान करूंगा। तो जीवन निरन्तर पोस्टपोन होता जायगा—जी न सकेंगे हम कभी। कल तो कभी आता नहीं है। आता तो सदा आज है। मिलता तो सदा वर्तमान है। भविष्य तो कभी मिलता नहीं। आपकी भविष्य से कभी मुलाकात हुई है! कभी नहीं हुई है। कभी होगी भी नहीं। मुलाकात तो वर्तमान से होती है।

लेकिन अगर मन की यह आदत हो जाय कि वर्तमान को भविष्य के लिए नष्ट करना है, तो यह आदत आपका पीछा करेगी। मरते दम तक आप जी नहीं पाएंगे, सिर्फ जीने का सपना देखेंगे—सोचेंगे कि जीऊंगा।

तो पश्चिम ने जीवन के साधन जुटा लिये। लेकिन जो जी सकता है, वह अनुपस्थित हो गया। हम जीवन के साधन न जुटा पाए। लेकिन जो जी सकता है, यह उपस्थित रहा है। और दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं।

सत्य क्या है? दोनों ही सत्य हैं। भविष्य निर्मित किया जा सकता है, अगर मनुष्य अपने को कीमत में चुकाने को राजी है। भाग्य बदला जा सकता है, अगर आप अपने को मिटाने को राजी हैं। अगर आप अपने को बचाने की इच्छा रखते हैं और अपने होने का आनन्द लेना चाहते हैं, तो फिर भविष्य नहीं बदला जा सकता—फिर भविष्य नियति है।

पश्चिम का विचारशील व्यक्तित्व आज अनुभव कर रहा है कि शायद पूर्व के लोग जो कहते रहे हैं, वही ठीक है। और यह उचित भी है। अनुभव के बाद ही यह बात अनुभव की जा सकती है। अब पश्चिम को अनुभव हो रहा है कि उन्होंने जो पाया वह ठीक, लेकिन जो गंवाया? हम भी परेशान हैं, क्योंकि हमने भी कुछ गंवाया है। चुनाव जब भी करना होता है तो कुछ गंवाना भी होता है। हम भी आज परेशान हैं। इसलिए एक बड़ी अनूठी स्थिति पैदा हो गई। पूर्व, पश्चिम की तरफ हाथ फैलाए खड़ा है—भिक्षापात्र लिए। और पश्चिम, पूर्व की तरफ भिक्षापात्र लिए खड़ा है।

पश्चिम पूछ रहा है पूर्व से मन की शान्ति के उपाय—ध्यान, योग, तन्त्र, जप, पूजा, प्रार्थना, क्या है? और पूर्व, पश्चिम से मांग रहा है—रोटी, कपड़ा, अन्न, भोजन, मकान, इंजीनियर, डाक्टर। दोनों भिक्षा मांग रहे हैं। यह होने वाला था।

समृद्धि के साथ विध्वंस

पश्चिम का अनुभव नया है अभी। पश्चिम पहली दफा समृद्ध हुआ है और समृद्ध होकर उसने भीतर की दरिद्रता जानी। और समृद्ध होकर उसे पता चला कि कितनी ही समृद्धि हो जाय, भीतर की दरिद्रता उससे घटती नहीं, बल्कि बढ़ जाती है।

पूर्व बहुत बार समृद्ध हो चुका है। पूर्व बहुत बार यह अनुभव कर चुका है कि सब मिल जाय, किन्तु जब तक आत्मा न मिले, तब तक सब मिलना व्यर्थ है। आज जहां पश्चिम खड़ा है, पूर्व बहुत बार इस जगह खड़ा हो चुका है। पूर्व की कथा बहुत पुरानी है।

गीता जिस क्षण घटित हुई होगी, उस क्षण पूर्व करीब-करीब उसी विज्ञान के उस शिखर पर था, जहां आज पश्चिम है। महाभारत में जिन अस्त्र-शस्त्रों की चर्चा है—उन अस्त्र-शस्त्रों को हम आज पहली दफे समझ सकते हैं कि वे क्या रहे होंगे, क्योंकि हमें आज हाइड्रोजन, और एटम-बम की प्रक्रिया पता है। आज हम पहली दफा समझ सकते हैं कि महाभारत में जो घटित हुआ होगा, वह क्या था और आदमी ने क्या खोज लिया था। आज हमने फिर पश्चिम में उसे खोज लिया है। उस समृद्धि के शिखर पर खड़ा होकर महाभारत घटित हुआ। जब भी समृद्धि बहुत बढ़ जाती है तो युद्ध अनिवार्य हो जाता है। उसके कारण हैं। क्योंकि जितना ही आदमी बाहर समृद्ध हो जाता है, भीतर दरिद्र हो जाता है। और जितना ही भीतर दरिद्र हो जाता है, घृणा, वैमनस्य, क्रोध उसमें बढ़ जाते हैं--प्रेम, करुणा, दया, ममता कम हो जाती है। प्रेम और करुणा और दया और ममता तो भीतर की समृद्धि के लक्षण हैं। जब भीतर आदमी दरिद्र होता है तो हिंसा बढ़ जाती है। जब भी आदमी भीतर दरिद्र होता है तो हिंसा बढ़ेगी ही। हिंसा का अन्तिम परिणाम युद्ध होगा, विनाश होगा। समृद्धि शिखर पर थी, आदमी भीतर दरिद्र था। वह आदमी जो भीतर दरिद्र था, हिंसा के लिए तत्पर था।

आज पश्चिम पूरी तरह उसी हालत में है, जहां महाभारत के समय पूर्व था। और कुछ आश्चर्य न होगा कि पश्चिम को तीसरे महायुद्ध से न बचाया जा सके। कोई आश्चर्य न होगा। बहुत संभावना तो यह है कि

पश्चिम विनाश को करके ही रुकेगा। आदमी भीतर दरिद्र है; दीन है, हिंसा, क्रोध से भरा है; विनाश से भरा है।

अभी रोम में एक पागल आदमी ने कुछ दिन पहले, आपने खबर पढ़ी होगी, जीसस की एक मूर्ति को जाकर तोड़ दिया। अब जीसस की मूर्ति को तोड़ देने का कोई भी प्रयोजन नहीं है। और जब उस आदमी से पूछा गया कि क्यों उसे तोड़ दिया, तो उसने कहा कि मुझे तोड़ने में बहुत आनन्द आया। अगर मेरी जान भी ले ली जाय अब इसके बदले में, तो मुझे कोई चिन्ता नहीं है। जीसस की मूर्ति तोड़ने में, मूर्ति तोड़ने में क्या आनन्द मिला होगा? लेकिन उस मूर्ति को लाखों लोग प्रेम करते थे। वह अपने तरह की अनूठी मूर्ति थी। उस मूर्ति को तोड़कर फिर करोड़ों लोगों के हृदय को तोड़ने की कोशिश की है। यह कहता है, इसे आनन्द मिला।

अगर आज हम पश्चिम में देखें तो विनाश का आनन्द बढ़ता जाता है। विनाश रुचिकर, आनंदपूर्ण मालूम हो रहा है। सैकड़ों हत्याएं हो रहीं हैं सिर्फ इसलिए कि हत्या करने में लोगों को मजा आ रहा है। सैकड़ों लोग आत्मघात कर रहे हैं, सिर्फ इसलिए कि मिटाने का एक रस, एक थ्रिल—तोड़ देने की, समाप्त कर देने की।

सार्त्र ने कहा है, आदमी जन्म लेने के लिए तो स्वतन्त्र नहीं है, लेकिन अपने को मार डालने के लिए तो स्वतन्त्र है। तो जब कोई अपने को मारता है तो स्वतन्त्रता का अनुभव होता है। पैदा आप हो गए, आपसे कोई पूछता नहीं है—आपकी कोई राय नहीं ली जाती। आप पाते हैं कि आप पैदा हो गए बिना आपकी मरजी के। यह परतन्त्रता है—निश्चित ही। स्वतन्त्रता कहां है फिर?

सार्त्र को मानने वाला वर्ग कहता है कि सुसाइड, आत्महत्या में ही स्वतन्त्रता मालूम पड़ती है, बाकी कुछ भी करो, परतंत्रता मालूम पड़ती है। एक चीज कम से कम आदमी कर सकता है—अपने को मिटा सकता है। और मिटाकर अनुभव कर सकता है कि मैं स्वतन्त्र हूं। अगर विध्वंस स्वतन्त्रता बन जाय और आत्मघात स्वतन्त्रता बन जाय, तो सोचना पड़ेगा कि आदमी भीतर गहन रूप से रुग्ण और बीमार हो गया है—विक्षिप्त और पागल हो गया है।

आज वियतनाम में जो हो रहा है, बिल्कुल अकारण है। कोई भी कारण नहीं सूझता कि वियतनाम में क्यों आदमी की हत्या जारी रखी जाय, न अमरीका को विजय से कोई प्रयोजन है कि वियतनाम की विजय कोई अमरीका में चार चांद जोड़ देगी। वियतनाम का कोई मूल्य भी नहीं है अमरीका के लिए। पर यह युद्ध क्यों जारी है? विध्वंस अपने आप में सुख दे रहा है—अकारण। अब कोई आवश्यकता नहीं कि कोई कारण हो।

जैसे, एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता है। हम उससे पूछें, क्यों बना रहा है तो वह कहता है, बनाने में आनन्द है। एक चित्रकार चित्र बनाता है। हम उससे पूछें, क्यों, तो वह कहता है, निर्मित करने में आनन्द है। एक मां अपने बेटे को बड़ा होते देख कर खुश होती है, हम पूछें, क्यों? तो सृजन, एक जन्म विकसित हो रहा है उसके हाथों में, वह आनंदित है।

ठीक ऐसे ही विध्वंस का भी आनन्द है—रुग्ण, बीमार। और जब आदमी की आत्मा दरिद्र होती है तो विध्वंस का आनन्द होता है। महाभारत ऐसे ही घटित नहीं हुआ। वह घटित हुआ समृद्धि के शिखर पर जब भीतर आत्मा बिलकुल दरिद्र हो गयी। और जब हिंसा में रस रह गया और तोड़ने-फोड़ने, मिटा डालने की उत्सुकता इतनी बढ़ गई कि दुर्योधन राजी न हुआ—एक इन्च जमीन देने को। चाहे सारी मनुष्य जाति नष्ट हो जाय इसके लिए राजी था, लेकिन एक इन्च जमीन देने को राजी नहीं था।

यह जो भाव दशा है, यह भाव दशा पश्चिम में फिर खड़ी हो गई है। और पश्चिम किसी भी दिन फूट सकता है, विस्फोट हो सकता है और सारी तैयारी है विस्फोट की। किसी भी क्षण जरा-सी चिंगारी और फिर पश्चिम को मृत्यु के मुंह से रोकना मुश्किल हो जाएगा। ठीक ऐसी ही घड़ी भारत में महाभारत के समय आ गई थी। और ऐसी घड़ी पूर्व में बहुत बार आ चुकी है। यह दुनिया नयी नहीं है। और हम जमीन पर पहली दफा सभ्य नहीं हुए हैं।

अभी जितनी नवीनतम खोजें हैं—पुरातत्व की, वे आदमी के इतिहास को पीछे हटाती जाती हैं। अभी सिर्फ पचास साल पहले पश्चिम के इतिहासविद् मानते थे कि जीसस से चार हजार साल पहले दुनिया का निर्माण हुआ। तो कुल इतिहास छः हजार साल का था। हमें मानने में सदा

कठिनाई रही कि छः हजार साल का कुल इतिहास। हमारे पास किताबें हैं, वेद हैं, जो पश्चिम भी स्वीकार करता है कि कम से कम छः हजार साल पुराने तो हैं ही। हमारे लेखे से तो वे कोई नब्बे हजार साल पुराने हैं। और हमारा लेखा रोज-रोज सही होता जा रहा है। संभव है कि वे और भी पुराने हों।

मोहनजोदड़ो, हड़प्पा की खुदाई ने बताया है कि सात हजार साल पुरानी सभ्यता थी। लेकिन ये पुरानी बातें हो गईं। अभी जो नवीन खोजें हैं, वे सभ्यता को पचास हजार साल पीछे ले जाएंगी। और अभी नवीनतम कुछ ऐसी खोजें हाथ में लगी हैं, जिन्होंने कि सारे इतिहास की धारणा को अस्त-व्यस्त कर दिया।

आस्ट्रेलिया में कोई सत्तर हजार साल पुराने पत्थर पर खुदे हुए दो चित्र मिले हैं। वे चित्र ऐसे हैं जैसे कि जब हमारा अन्तरिक्ष यात्री चन्द्र पर पहुंचता है, तो जिस तरह के कपड़े पहने होता है, जिस तरह की ड्रेस पहने होता है, जिस तरह का नकाब लगाए होता है। सत्तर हजार साल पुराना पत्थर पर खुदा हुआ चित्र अन्तरिक्ष यात्री का। जब तक हमारे पास अन्तरिक्ष यात्री नहीं था तब तक हम समझ भी नहीं सकते थे कि यह चित्र किस चीज का है। अब हम समझ सकते हैं। अब बड़ी कठिनाई है। यह सत्तर हजार साल पुराना चित्र जिन लोगों ने बनाया उनके पास अन्तरिक्ष यात्री जैसी कोई चीज रही होगी, अन्यथा इसके बनाने का कोई उपाय नहीं।

अगर सत्तर हजार साल पहले आदमी अन्तरिक्ष की यात्रा कर सकता था तो हमें सोचना होगा कि हम पहली दफा चांद पर पहुंच गए हैं—इस भ्रम में न पड़ें। और हमें यह भी सोचना होगा कि हम पहली दफा इन सारी समृद्धियों को पा लिए हैं—इस भ्रम में न पड़ें।

तिब्बत के एक पर्वत पर सत्तर रिकार्ड मिले हैं—पत्थर के। जैसा ग्रामोफोन रिकार्ड होता है। वे पत्थर के हैं। और ठीक ग्रामोफोन रिकार्ड पर जैसे ग्रूव्ह्स होते हैं, वैसे ग्रूव्ह्स उन पत्थर पर हैं, बीच में छेद है जैसा कि ग्रामोफोन रिकार्ड पर होता है। और अभी वैज्ञानिक उन पर अनुसंधान करते हैं तो वे कहते हैं उन पत्थर के रिकार्ड से ठीक वैसी ही विद्युत तरंगें उठती हैं जैसे ग्रामोफोन के रिकार्ड से उठती हैं। फिर एकाध नहीं सत्तर।

और अंदाजन कोई बीस हजार से चालीस हजार साल पुराने हैं। तो क्या कभी आज से बीस हजार साल पहले किसी सभ्यता ने कोई उपाय खोज लिया था—पत्थर पर भी रिकार्ड करने का। और अगर खोज लिया हो तो फिर हमें भ्रम छोड़ देना चाहिए कि हम पहली बार सभ्य हुए हैं।

पूर्व बहुत बार सभ्य हो चुका है और पूर्व बहुत बार अनुभव ले चुका है समृद्धि का। और हर समृद्धि के अनुभव के बाद उसे पता चला है कि आदमी चीजें तो कमा लेता है, अपने को खो देता है। मकान तो बन जाता है, धन तो इकट्ठा हो जाता है, आत्मा विनष्ट हो जाती है। इस कारण पूर्व ने यह विकल्प चुना कि भविष्य की चिन्ता छोड़ी जा सके तो ही आत्मा निर्मित होती है। भविष्य का तनाव ही पीड़ा है। और भविष्य की चिन्ता छोड़ने का एक ही उपाय है और वह उपाय यह है कि अगर आप इस बात को मानने को राजी हो जाएं कि भविष्य अपरिहार्य है, नियत—जो होना है, होगा। 'जो होना है, होगा'—इसके लिए अगर राजी हो जाएं, तो फिर आपको करने को कुछ नहीं बचता है; और जब करने को ही नहीं बचता तो बेचैन होने का कोई कारण नहीं है। करने को कुछ है, तो फिर बेचैनी है। करने के पहले भी बेचैनी रहेगी और करने के बाद भी बेचैनी रहेगी; क्योंकि करने के बाद भी लगेगा कि अगर जरा ऐसा कर लिया होता तो परिणाम दूसरा हो सकता था। अगर मैंने ऐसा कर लिया होता तो, ऐसा हो सकता था। तो आप पीछे भी परेशान रहेंगे कि अगर ऐसा न करके जरा-सा फर्क किया होता, तो आज जिन्दगी दूसरी होती। और भविष्य के लिए भी परेशान रहेंगे कि मैं क्या करूं। फिर एक आखिरी परिणाम, जब आप असफल हो जाते हैं। और आदमी कुछ ऐसा है कि वह सफल कभी होता ही नहीं। इसे थोड़ा समझ लें।

आदमी के मन का ढांचा ऐसा है कि वह सदा अन्त में असफल ही होता है। इसका कारण यह है कि जितने आप सफल हो जाते हैं, वह तो व्यर्थ हो जाती है बात; और नए लक्ष्य निर्मित हो जाते हैं। एक आदमी को दस हजार रुपये कमाने हैं, वह कमा लेता है। कोई दस हजार रुपये कमाने में मुश्किल मामला नहीं है—कमा लेता है। सफल हो गया, लेकिन उसे पता ही नहीं कि सफलता की खुशी वह कभी नहीं मना पाता; क्योंकि जब तक दस हजार इकट्ठे कर पाता है तब तक उसकी आकांक्षा लाख की हो

जाती है। जब दस हजार पा लेता है तो खुशी से नाचता नहीं है। केवल दुख से पीड़ित होता है कि अभी यात्रा और बाकी है, उसे लाख कमाने हैं। ऐसा भी नहीं है कि लाख न कमा ले, वह भी हो जाएगा। लेकिन जिस मन ने दस हजार से लाख पर यात्रा पहुंचा दी थी, वही मन लाख से दस लाख पर यात्रा पहुंचा देगा। हर आदमी असफल मरता है। कोई आदमी सफल नहीं मर सकता। क्योंकि जो भी आप पा लेते हैं, आपकी वासना उससे आगे चली जाती है। मरते वक्त भी आपकी वासना अधूरी ही रहेगी—वह पूरी नहीं हो सकती।

एंड्रोकार्नेजियम अमरीका का सबसे बड़ा धनपति मरा। तो अपने पीछे दस अरब रुपये छोड़ गया। लेकिन मरने के दो दिन पहले का उसका वक्तव्य है कि मैं एक असफल आदमी हूं; क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब रुपये छोड़ने के थे। केवल दस छोड़े जा रहा हूं—दस अरब रुपये !

आप कितना पा लेंगे, इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। आपका मन उससे ज्यादा की मांग करेगा। मन सदा आपसे आगे चला जाता है। आप होते हैं वर्तमान में, मन भविष्य में चला जाता है। यह नियति की धारणा भविष्य का दरवाजा बन्द करने की है। मैं कुछ कर ही नहीं सकता हूं। तो भविष्य में यात्रा करने का कोई उपाय नहीं है। दस रुपये मिले, कि दस लाख, कि कुछ भी न मिले, मैं भिखारी रह जाऊं। जो भी होगा, वह होगा। उसमें मेरा कोई हाथ नहीं है।

ऐसा आदमी कभी असफल नहीं होता। इसे थोड़ा समझ लें। ऐसे आदमी को आप असफल नहीं कह सकते; क्योंकि असफलता को भी वह स्वीकार कर लेगा कि यही होना था। आप सफल नहीं हो सकते। आप सफलता को भी असफलता कर देंगे; क्योंकि जो हो गया वह कुछ भी नहीं है, जो होना चाहिए वह सदा आगे है। नियति की धारणा वाला आदमी असफल नहीं किया जा सकता। आप कुछ भी करें वह सफल है। और जो सफल हैं वह शान्त हैं, और जो असफल हैं वह अशान्त हैं। और जो सफल है वह प्रसन्न है, और जो असफल है वह उदास है। और जो सफल है, और एक घटना घटती है।

अब आप असफल होते चले जाते हैं अपनी वासना की यात्रा में, तो सिवाय आपके और कोई जिम्मेवार नहीं होता असफलता के लिए—आप

ही जिम्मेवार होते हैं। तो गहन पीड़ा आदमी पर टूट पड़ती है। अकेला आदमी इस बड़ी दुनिया में लड़ता है, इस बड़ी दुनिया से। टूट जाता है, उसके कंधे पर बोझ पहाड़ों का इकट्ठा हो जाता है। और आखिर में सिवाय स्वयं को निन्दा करने के और कोई उपाय नहीं है।

लेकिन नियति की धारणा वाला व्यक्ति अपने कंधे पर कोई भार लेता नहीं। वह कहता है, परमात्मा की मर्जी। जीतूं तो वह, हारूं तो वह, सदा जिम्मेवार वही है। वह जिम्मेवार नहीं है। और जो रिस्पांसिबिलिटी, जो दायित्व का बोझ और भार है—व्यक्ति के ऊपर, वह उसके ऊपर नहीं है। आप उस आदमी की तरह हैं जो ट्रेन में चल रहा हो और अपना सब सामान सिर पर रखे हो। वह नियतिवादी वह आदमी है जिसने सब सामान ट्रेन में रख दिया और खुद भी सामान के ऊपर बैठा हुआ है। वह कहता है ट्रेन चल रही है मैं क्यों बोझ उठाऊं। आपको पक्का नहीं कि ट्रेन चला रही है। आप सोच रहे हैं कि आप ही चला रहे हैं सारा और जरा ही भूल-चूक हुई, तो आप ही जिम्मेदार हैं। कुछ भी गड़बड़ हुई तो आप ही फंस जाएंगे। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कौन-सी धारणा ठीक है। ख्याल रखना, मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि ये दो धारणाएं हैं। इसे थोड़ा ख्याल में ले लेना।

आम तौर से लोग जल्दी करते हैं कि कौन-सी धारणा ठीक है। अगर नियतिवाद ठीक है तो हम मान लें और अगर ठीक नहीं है तो हम कोशिश में लग जाएंगे, यह मैं कुछ भी नहीं कह रहा हूं। मेरा वक्तव्य बहुत अलग है। मैं ये दोनों धारणाएं आपको समझा रहा हूं। इसमें से फिर जो आपको चुननी हो आप चुन सकते हैं। फिर उसका परिणाम आपके साथ होगा। ये दोनों धारणाएं ठीक हैं। अगर आपको अशान्त होना है, विक्षिप्त होना है, धन इकट्ठा करना है, महल बनाने हैं, तो आप नियति को कभी मत मानें। आपको शांत होना है, आनंदित होना है, और झोपड़ा भी महल जैसा मालूम पड़े, ऐसी आपकी कामना हो और न कुछ हो पास में तो भी आप सम्राट मालूम पड़ें—ऐसी आपकी कामना हो, तो नियति आपके लिए चुनना उचित है। ये दोनों रास्ते हैं। एक पागलखाने में ले जाता है, ले ही जाएगा।

इसलिए अब सारी दुनिया एक बड़ा पागलखाना है। अब किसी को पागलखाना वगैरह भेजना ठीक नहीं है। अब तो जो ठीक हों उनके चारों

तरफ घेरा लगाकर उनको बचाने का उपाय करना चाहिए। क्योंकि बाकी तो बड़ा पागलखाना है जिसमें, कोई अगर आज आप मनस्विद् से पूछें तो वह कहता है चार में से तीन आदमियों का मस्तिष्क गड़बड़ है। चार में से तीन का! तो जमीन करीब-करीब तीन चौथाई पागलखाना हो गई है। और जिस एक को भी वह कह रहा है कि इसका मस्तिष्क ठीक है, कितनी देर ये तीन उसको ठीक रहने देंगे। ये तीन उसके पीछे पड़े हैं—उसको भी डांवाडोल कर रहे हैं।

आपको पता नहीं चलता कि आपका मस्तिष्क विक्षिप्त है, क्योंकि आपके चारों तरफ पागलों की भीड़ है, उन्हीं जैसा आपका मस्तिष्क है। इसलिए कोई अड़चन नहीं होती। लेकिन आप जरा बैठकर एक कागज पर अपने दिमाग में जो चलता है, उसे लिखें और फिर किसी को दिखाएं। यह मत बताएं कि मैंने लिखा है, बता भी नहीं सकेंगे कि मैंने लिखा है। ऐसा बताएं कि किसी का पत्र आया है। वह आदमी कहेगा किसी पागल ने लिखा है। तब आपको पता चल जाएगा कि आपके दिमाग में जो चलता है, ईमानदारी से दस मिनट एक कोने में बैठ जाएं, और लिख डालें जो भी चलता हो। उसमें आप कुछ फर्क मत करना, जो भी चलता हो। दस मिनट का एक टुकड़ा लिख लें और अपने निकटतम मित्रों को बताएं, जो आपको प्रेम करते हैं। और उनसे पूछें यह किसी का पत्र आया है, थोड़ा समझ लें। आप एक आदमी न खोज सकेंगे पूरी जमीन पर, जो आपसे कहे कि यह आदमी ने, किसी ने, लिखा है जिसका दिमाग ठीक है। जो भी मिलेंगे वे कहेंगे किसी पागल ने लिखा है। क्या चल रहा है आपके भीतर? कोई संगति है वहां? एक अराजकता है। आप जैसे एक भीड़ हैं भीतर, जिसमें कुछ भी हो रहा हो। किसी तरह अपने को संभाले हुए बाहर प्रगट नहीं होने देते। वह भी मौके-बे-मौके निकल ही जाता है। कोई जरा जोर से धक्का मार दे, वह जो भीतर चल रहा है, बाहर निकल आता है। कोई जरा गाली दे दे तो उसने आपके भीतर छेद कर दिया, उसमें से आपके भीतर का पागलपन बहकर बाहर निकल आएगा।

क्रोध क्या है? अस्थायी पागलपन है। जरा देर के लिए आप पागल हो गए। फिर संभाल लेते हैं अपने को। बड़ी अच्छी बात है कि फिर संभाल लेते हैं। लेकिन वह घड़ी भर में जो प्रगट होता है, उसे आपने कभी ख्याल

किया है कि क्या होता है? यह जो विक्षिप्तता है, यह इस दृष्टि का परिणाम है कि जो कुछ किया जा सकता है, वह हम कर सकते हैं। हम जिन्दगी को बदल सकते हैं। हम जिंदगी जैसी बनाना चाहते हैं, वैसी जिंदगी बन सकती है। कोई नियति नहीं है। भविष्य मुक्त है और हमारे हाथों में है। मैं नहीं कहता यह गलत है, यह हो सकता है। पश्चिम ने करके देखा है। हमने भी बहुत बार करके देखा है। लेकिन इसका परिणाम यह होता है कि भविष्य तो हमारे हाथ में थोड़ा-बहुत चलने लगता है, लेकिन हम बिलकुल पटरी से उतर जाते हैं।

भविष्य को चलाने में आदमी अस्त-व्यस्त हो जाता है। यह बहुत बार के अनुभव के बाद भारत ने यह निर्णय लिया है कि भविष्य को छोड़ दो परमात्मा पर। वह अपरिहार्य है, इनएवीटेबिल है—जो होना है, वह होकर रहेगा। आप बीच में कुछ भी नहीं हैं। इसका चुकता परिणाम यह होता है कि आप तत्क्षण मुक्त हो गये भविष्य से। अब कोई चिन्ता न रही। सुख आएगा कि दुख आएगा, अच्छा होगा कि बुरा होगा, बचेंगे कि नहीं बचेंगे, अब आपके हाथ में कोई बात नहीं है। आप वर्तमान में जी सकते हैं, अभी और यहीं।

बहुत से शिक्षक हैं, कृष्णमूर्ति हैं, जो निरंतर कहते हैं—वर्तमान में जियो। लेकिन आदमी वर्तमान में जी नहीं सकता जब तक उसको यह ख्याल है कि भविष्य बनाया जा सकता है। कैसे जी सकता है! इसलिए शिक्षा ठीक होकर भी अधूरी है। कैसे जी सकता है जब तक उसे पता है कि मैं चाहूं तो कल और कुछ हो सकता है; और अगर मैं कुछ न करूं तो कुछ और होगा।

कल बदला जा सकता है, यह मेरे आज को तो परेशान करेगा ही। अगर कल बदला ही नहीं जा सकता और कल ऐसा ही है जैसे कोई उपन्यास मैं पढ़ रहा हूं, जिसकी कथा लिखी हुई है, या कोई फिल्म देख रहा हूं। तो मैं हाल में बैठकर कुछ भी करूं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला, फिर यह जो घटना घटने वाली है, यह घटकर ही रहेगी। फिल्म तो सिर्फ उघड़ रही है—सब नियत है। वह अगर शादी होनी है पात्र की तो हो ही जाएगी। पीछे बैंड-बाजा बजेगा, शहनाई बज जाएगी। नहीं होनी है, तो नहीं होगी।

जो होना है वह नियति है

और जो भी होना है, वह एक अर्थ में हो चुका है। फिल्म पर सिर्फ मुझे दिखाई पड़ना है। और मैं हाल में बैठकर करवटें बदल रहा हूं कि कोई उपाय करूं कि यह जो अभिनेता प्रेम कर रहा है, इसकी शादी हो जाय, तो मैं नाहक परेशान हो रहा हूं। कोई परेशान नहीं होता, लेकिन कुछ लोग परेशान फिल्म में भी होते हैं। कम से कम थोड़ी देर को तो भूल ही जाते हैं। फिल्म में भी सोचने लगते हैं कि ऐसा हो जाय तो अच्छा। ऐसा न हो तो बेचैनी होती है।

भारतीय दृष्टि यह है, और गीता की दृष्टि है यह, और बहुत लम्बे अनुभव के बाद इस नतीजे पर भारत पहुंचा कि भविष्य सिर्फ अनफोल्ड हो रहा है। मैं यह नहीं कह रहा हूं, यह सही है या गलत है। यह कुछ भी नहीं कह रहा हूं। यह सिर्फ एक डिवाइस, एक उपाय है।

एक उपाय है, अगर आपको वस्तुएं इकट्ठी करनी हैं तो भविष्य नियत नहीं है, मानकर चलें। आत्मा खो जाएगी। एक उपाय है कि भविष्य नियत है, चिन्ता न करें। आप अपनी आत्मा को सरलता से उपलब्ध कर सकेंगे।

इसलिए अर्जुन ने जो देखा है कृष्ण में, अभी योद्धा मरे नहीं हैं, समझिए अभी भीष्मपितामह जीवित हैं। अभी द्रोणाचार्य पूरी तरह जीवित हैं, अभी हारे भी नहीं हैं, अभी मिटे भी नहीं हैं। अभी तो युद्ध शुरू नहीं हुआ है। और उसने देखा, कृष्ण के दांतों में दबे हुए, पिसते हुए, मरते हुए, समाप्त होते हुए; जैसे फिल्म में उसने आगे झांक लिया, या उपन्यास के कुछ पन्ने उसने एकदम से उलट दिये और पीछे का निष्कर्ष पढ़ लिया। भविष्य उसे दिखाई पड़ा।

कृष्ण उसे यही कहना चाहते थे कि तू नाहक परेशान हो रहा है कि ऐसा करूं कि वैसा करूं—जो होना है, वह होगा। तेरी परेशानी अकारण है, असंगत है। कृष्ण उसे यही समझा रहे थे कि जो होना है, वह हो ही चुका है। तू चिन्ता छोड़। कहानी लिखी जा चुकी है, नाटक का अन्त तय हो चुका है। तू सिर्फ पात्र है। तू नाटक का रचयिता नहीं है। तू लेखक नहीं है। यह जो कथा है, वह तुझसे लिखे जाने वाली नहीं, तू लिखने वाला

नहीं है। लिखने वाला लिख चुका है, नतीजा तय हो चुका है। तुझे सिर्फ काम पूरा करना है। यह ऐसे ही जैसे एक रामायण खेल रहे हैं लोग—राम-लीला कर रहे हैं। अब उसमें कोई उपाय नहीं है।

एक गांव में ऐसा हो गया। एक गांव में एक ही आदमी हर बार रावण बनता था। रावण जैसा था शक्ल सूरत से। तो हर बार जब राम-लीला होती, वह रावण बनता। और गांव की एक सुन्दर स्त्री थी, वह सीता बनती थी। ऐसा हुआ धीरे-धीरे साथ-साथ काम करते-करते सच में ही रावण को सीता से प्रेम हो गया, उस लड़की से। और उसे बड़ा कष्ट होता था कि हर बार प्रेम तो उसका है और हर बार शादी राम के साथ होती है। कष्ट स्वाभाविक है।

एक बार ऐसा हुआ कि जब स्वयंवर रचा और रावण भी बैठा। तो कथा ऐसी है कि रावण के दूत आए और उन्होंने खबर दी कि लंका में आग लगी है, इसलिए वह लंका चला गया। उसी बीच राम ने धनुष तोड़ दिया, शादी हो गई। दूत आकर चिल्लाने लगे कि रावण तेरे राज्य में आग लगी है। रावण ने कहा, लगी रहने दे इस बार तो शादी करके ही जाएंगे। बहुत बार देख चुका, लगी रहने दे। और उसने आव देखा न ताव, उठाकर शिवज़ी का धनुष तोड़कर दो टुकड़े कर दिये। जनक घबड़ा गए। सीता भी घबड़ाई। राम भी परेशान हुए। वशिष्ट भी सोचने लगे होंगे कि अब क्या होगा। यह सारी कथा खराब हो गई। वह तो जनक कुशल आदमी था, गांव का बूढ़ा आदमी था। उसने कहा, भृत्यों यह तुम मेरे बच्चों के खेलने का धनुष उठा लाए! शिवजी का धनुष लाओ। परदा गिराकर रावण को अलग करके दूसरा आदमी रावण बनाना पड़ा।

कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि वह जो होने वाला है, वह तेरे हाथ में नहीं है। तू नाहक चिन्ता ले रहा है। वह लिखा जा चुका है। वह हो चुका है। वह नियत है। वह बंधा हुआ है। तू निश्चिंत हो जा। और तू अपना पात्र ऐसे कर ले जैसे एक अभिनय में कर रहा है। हो जाती है भूल। यह अभिनेता भूल गया कि मैं सिर्फ अभिनय कर रहा हूं, मुसीबत में पड़ा।

ऐसा मैंने सुना कि अभी निक्सन के इलेक्शन में हुआ अमरीका में। निक्सन के चुनाव में एक अभिनेता हालीवुड का निक्सन का प्रचार करने

गया। एक मंच पर खड़े होकर व्याख्यान दे रहा है। अभिनेता का व्याख्यान, वह तैयार करके लाया था जैसे फिल्म में देता है। वैसे सब तैयार था। सब हाथ का हिलाना, सिर का हिलाना सब तैयार था। जोर से भाषण दे रहा था। तभी एक आदमी, जो निक्सन के खिलाफ था, बीच में खड़े होकर गड़बड़ करने लगा। यह अभिनेता को भी जोश आ गया। उससे कहा, क्या गड़बड़ करते हो, अगर हो ताकत तो आ जाओ। दोनों कूद पड़े, कुश्मत-कुश्ती हो गई। उस आदमी ने दो चार हाथ जोर से जड़ दिये। अभिनेता ने कहा—अरे! यह क्या। तुमको अभिनय नहीं करने आता, तो इस तरह कहीं मारा जाता है। वह असली हाथ मारने लगा। वह बेचारा अभिनेता था। यह भूल ही गया कि यह सभा असली है। और यहां मारपीट असली हो जाएगी। वह समझा कि कोई फिल्म का दृश्य है तो यह सब हो रहा है, ठीक है।

आदमी के भूलने की संभावना है। हम भी जो असली नहीं है, उसे असली मान लेते हैं। जो असली है उसे नकली मान लेते हैं। तब जीवन में बड़ी असुविधा हो जाती है। तब जीवन में बड़ी उलझन हो जाती है।

कृष्ण का सूत्र ही यही है अर्जुन को कि तू बीच में मत आ। जो हो रहा है, उसे हो जाने दे। तू बाधा मत डाल। और तू निर्णय मत ले कि मैं क्या करूं। तुझसे कोई पूछ ही नहीं रहा है कि तू क्या करेगा। तू निमित्त मात्र है। अगर तू पूरा नहीं करेगा तो कोई और पूरा करेगा।

एक बहुत अदभुत घटना मुझे याद आती है। बंगाल में एक बहुत अनूठे संन्यासी हुए युक्तेश्वर गिरि। वे योगानन्द के गुरू थे। योगानन्द ने पश्चिम में फिर बहुत ख्याति पाई। गिरि अदभुत आदमी थे। ऐसा हुआ एक दिन कि गिरि का एक शिष्य गांव में गया। किसी शैतान आदमी ने उसको परेशान किया, पत्थर मारा, मारपीट भी कर दी। वह यह सोचकर महर्षि को क्या कहना, चुपचाप वापस लौट आया। और फिर उसने सोचा कि जो होने वाला है, वह हुआ होगा; मैं क्यों अकारण बीच में आऊं। तब उसने अपने को संभाल लिया। सिर पर चोट आ गयी थी। खून भी थोड़ा निकल आया था। खरोंच भी लग गयी थी। लेकिन यह मानकर कि जो होना है, होगा; जो होना था, वह हो गया है। वह भूल ही गया है।

जब वह वापस लौटा आश्रम कहीं से भिक्षा मांगकर तो वह भूल ही चुका था कि रास्ते में क्या हुआ। गिरि ने देखा कि उसके चेहरे पर चोट है, तो उन्होंने पूछा, यह चोट कहां लगी। तो एकदम से ख्याल ही नहीं आया उसे कि क्या हुआ है। फिर उसे ख्याल आया। उसने कहा, आपने अच्छी याद दिलाई। रास्ते में एक आदमी ने मुझे मारा। तो गिरि ने पूछा, लेकिन तू भूल गया इतनी जल्दी। तो उसने कहा कि मैंने सोचा कि जो होना था, वह हो गया। और जो होना ही था, वह हो गया; अब उसको याद भी क्या रखना।

अतीत भी निश्चितता से भर जाता है, भविष्य भी। लेकिन एक और बड़ी बात इस घटना में है आगे। गिरि ने उसको कहा, लेकिन तूने अपने को रोका तो नहीं था। जब वह तुझे मार रहा था, तूने क्या किया। तो उसने कहा कि एक क्षण को मुझे ख्याल आया था कि एक मैं भी लगा दूं। फिर मैंने अपने को रोका कि जो रहा है, होने दो। तो गिरि ने कहा कि फिर तूने ठीक नहीं किया—फिर तूने थोड़ा रोका—जो हो रहा था, वह पूरा नहीं होने दिया। तूने थोड़ी बाधा डाली।

उस आदमी के कर्म में तूने बाधा डाली, गिरि ने कहा। उसने कहा, मैंने बाधा डाली, मैंने उसको मारा नहीं और तो मैंने कुछ किया नहीं। क्या आप कहते हैं, मुझे मारना था। गिरि ने कहा, मैं यह कुछ नहीं कहता हूं। मैं कहता हूं कि जो होना था, वह होने देना था। और तू वापस जा। क्योंकि तू तो निमित्त था, कोई और उसको मार रहा होगा।

और बड़े मजे की बात है कि वह संन्यासी वापस गया। वह आदमी बाजार में पिट रहा था। लौटकर वह गिरि के पैरों में पड़ गया। उसने कहा कि यह क्या मामला है। गिरि ने कहा कि जो तू नहीं कर पाया, वह कोई और कर रहा है। तू क्या सोचता है, क्या तेरे बिना नाटक बन्द हो जाएगा। तू निमित्त था। बड़ी अजीब बात है यह। और सामान्य नीति के नियमों के बड़े पार चली जाती है।

कृष्ण अर्जुन को यही समझा रहे हैं। वे यह कह रहे हैं—जो होता है, तू होने दे। तू मत कह कि ऐसा करूं, वैसा करूं संन्यासी हो जाऊं, छोड़ जाऊं। कृष्ण उसको रोक नहीं रहे संन्यास लेने से। क्योंकि अगर संन्यास होना ही होगा तो कोई नहीं रोक सकता, वह हो जाएगा। इस बात

को ठीक से समझ लें। अगर संन्यास ही घटित होने को हो अर्जुन के लिए, तो कृष्ण रोकने वाले नहीं हैं। वे सिर्फ इतना कह रहे हैं कि तू चेष्टा करके कुछ मत कर। तू निश्चेष्ट भाव से, निमित्त मात्र हो जा। और जो होता है, वह हो जाने दे। अगर युद्ध हो तो ठीक है और अगर तू भाग जाय और संन्यास ले ले, तो वह भी ठीक है। तू बीच में मत आ। तू स्रष्टा मत बन। तू केवल निमित्त हो।

ऐसी अगर दृष्टि हो तो आप कैसे अशान्त हो सकेंगे। ऐसी अगर दृष्टि हो तो कौन आपको परेशान कर सकेगा। ऐसी अगर दृष्टि हो तो फिर चिन्ता आपके लिए नहीं है। और जो परेशान नहीं, चिन्तित नहीं, बेचैन नहीं उसके भीतर वे शान्ति के वर्तुल बन जाते हैं, जिनसे भीतर यात्रा होती है और परम स्रोत तक पहुंचना हो जाता है।

सृजन और विनाश का चक्र

एक और प्रश्न :

परम सत्ता को, परम चैतन्य और परम प्रज्ञा कहा गया है। लेकिन उसमें घटित सृजन, फिर विनाश, फिर सृजन, फिर विनाश के वर्तुल को देखकर बड़ा अजीब-सा लगता है। क्या आप समझा सकते हैं कि इस वर्तुल के पीछे कोई कारण, कोई अर्थ, कोई मीनिंग, कोई सार्थकता है?

इसको थोड़ा ख्याल में लेना जरूरी होगा, क्योंकि गीता को समझना बहुत आसान हो जाएगा। न केवल गीता को, बल्कि भारत की पूरी खोज को समझना आसान हो जाएगा। यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि क्या है कारण इन सबका कि आदमी का जन्म हो, मृत्यु हो...सृष्टि बनाओ, प्रलय करो! इधर ब्रह्मा बनाएं, उधर विष्णु संभालें, वहां शंकर विनष्ट करें! यह सब क्या उपद्रव है! और इसका क्या प्रयोजन है! यह बनने मिटाने का जो वर्तुल है, अगर यह गाड़ी के चाक की तरह घूमता ही रहता है, तो यह जा कहां रही है गाड़ी? यह जो चाक घूम रहा है, यह कहां ले जा रहा है? इसकी निष्पत्ति क्या होगी? अन्ततः क्या है लक्ष्य—इस सारे विराट् आयोजन का? इसके पीछे क्या राज है? यह सवाल गहरा है। और आदमी निरन्तर पूछता रहा है कि क्या है प्रयोजन इस जीवन का। इस विराट् आयोजन में निमित्त क्या है? क्यों यह सब हो रहा है?

इसके दो उत्तर हैं। और जो उत्तर भारत ने दिया है वह बड़ा अद्भुत है। एक उत्तर तो कोई प्रयोजन खोजना है। जैसे कुछ धर्म कहते हैं कि आत्मज्ञान को पाना इसका प्रयोजन है। जैसा जैन कहते हैं कि इस सारी यात्रा के पीछे इस सारे भव-जाल के पीछे आत्मसिद्धि, आत्मज्ञान, कैवल्य को पाना लक्ष्य है। या जैसे ईसाइयत कहती है कि परमात्मा का अनुभव—उसके राज्य में प्रवेश, किंगडम आफ गाड—उसके साथ उसके सान्निध्य में रहना, उसकी खोज, इसका प्रयोजन है।

लेकिन ये बातें बहुत गहरी जाती नहीं, क्योंकि पूछा जा सकता है कि अगर सिद्धि और आत्मज्ञान पाना ही इसका प्रयोजन है, तो इतनी बाधाएं खड़ी करने की क्या जरूरत है—सिद्धि और आत्मज्ञान में। और आत्मा तो मिली ही हुई है। तो इतनी लम्बी यात्रा, इतना कष्ट का जाल, इतना उपद्रव क्यों है? यह सीधा-साधा हो जाय। अगर कोई परमात्मा यही चाहता है कि हम आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाएं, तो वह हमें आशीर्वाद दे दे, हम आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाएं। वह प्रसाद बांट दे, हम आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाएं। उसके चाहने से घटना घट जाएगी। यह इतना जाल किसलिए, जन्मों-जन्मों का इतना कष्ट, यह किस लिए। अगर यह परमात्मा ही कर रहा है, तो परमात्मा बहुत विक्षिप्त मालूम पड़ता है। यही काम करना है कि सभी लोग सिद्ध हो जाएं, तो वह सभी लोगों को सिद्ध इसी क्षण कर सकता है।

इसलिए जैनों ने परमात्मा को नहीं माना। क्योंकि अगर परमात्मा को मानते तो बड़ी कठिनाई खड़ी होती। वह क्यों नहीं अभी तक लोगों को मुक्त कर देता है। तो जैनों ने कहा है कि संसार में कोई परमात्मा नहीं जो तुम्हें मुक्त कर सके, तुम्हीं को मुक्त होना है। मगर क्यों? यह अमुक्ति क्यों है? और आदमी अमुक्त क्यों हुआ है? इसका कोई उत्तर जैनों के पास नहीं है। वे कहते हैं—अनादि है। मगर क्यों? वे कहते हैं कि मुक्त होना है और मुक्त होने की सम्भावना है—मुक्त लोग हो गए हैं। लेकिन आदमी की आत्मा बन्धन में ही क्यों पड़ी है? इसका कोई उत्तर नहीं। वे कहते हैं निगोध से पड़ी है, अनन्त काल से पड़ी है। लेकिन क्यों पड़ी है? कितने ही काल से पड़ी हो, आदमी अमुक्त क्यों है? इसका कोई उत्तर नहीं है।

अगर ईश्वर के राज्य में पहुंचना ही लक्ष्य हो, तो ईश्वर ने हमें पटका क्यों है? वह हमें पहले से ही राज्य में बसा सकता था। अगर

ईसाइयत कहती है कि चूंकि आदमी ने बगावत की ईश्वर के खिलाफ, आदम ने आज्ञा नहीं मानी और आदमी को संसार में भटकाना पड़ा। क्योंकि बड़ी हैरानी की बात लगती है कि आदम अवज्ञा कर सका, इसका मतलब यह कि ईश्वर की ताकत आदम की ताकत से कम है। आदम बगावत कर सका—इसका मतलब यह होता है कि आदम जो है, वह ईश्वर से भी ज्यादा ताकत रखता है, बगावत कर सकता है, स्वतन्त्र हो सकता है। और बड़ी कठिनाई है कि आदम में यह बगावत का ख्याल किसने डाला?

क्योंकि ईसाइयत कहती है कि सभी कुछ का निर्माता ईश्वर है, तो इस आदमी को वह बगावत का ख्याल किसने डाला? वे कहते हैं, शैतान ने। लेकिन शैतान को कौन बनाता है? बड़ी मुसीबत है—धर्मों के लिये, जो उत्तर देते हैं, उससे और मुसीबत में पड़ते हैं। शैतान को भी ईश्वर ने बनाया। ईवलिश जो है, वह भी ईश्वर का बनाया हुआ है और उसी ने तो भड़काया है। तो ईश्वर को क्या इतना भी पता नहीं था कि ईवलिश को मैं बनाऊंगा, तो यह आदमी को भड़काएगा। और आदमी भड़केगा तो पतित होगा। पतित होगा तो संसार में जाएगा। और फिर ईसा मसीह को भेजो, साधु-संन्यासियों को भेजो, अवतारों को भेजो, मुक्त हो जाओ। यह सब उपद्रव! क्या उसे पता नहीं था इतना भी? क्या भविष्य उसे भी अज्ञात है? अगर भविष्य अज्ञात है तो वह भी आदमी जैसा अज्ञानी है। और अगर भविष्य उसे ज्ञात है, तो सारी जिम्मेदारी उसकी है। फिर यह उपद्रव क्यों है?

नहीं, हिन्दुओं के पास एक अनूठा उत्तर है, जो जमीन पर किसी ने नहीं खोजा—वह दूसरा उत्तर है। वे कहते हैं, इस जगत का कोई प्रयोजन नहीं है—यह लीला है। इसे थोड़ा समझ लें। वे कहते हैं, इसका कोई प्रयोजन नहीं, यह सिर्फ खेल है—जस्ट ए प्ले। यह बड़ा दूसरा उत्तर है, क्योंकि खेल में और काम में एक फर्क है। काम में प्रयोजन होता है, खेल में प्रयोजन नहीं होता।

आप सुबह मरीन ड्राइव से जा रहे हैं—घूमने। अगर कोई आपसे पूछे कि कहां जा रहे हैं, तो आप कहते हैं, सिर्फ घूमने जा रहे हैं। आप कोई लक्ष्य नहीं बता सकते कि कहां जा रहे हैं। आदमी से पूछें, क्या दिमाग खराब है, क्यों नाहक चल रहे हैं, जब कहीं जा ही नहीं रहे हैं। तो आप

कहते हैं, मैं घूम रहा हूं। घूमने का क्या मतलब है, जा कहां रहे हैं? आप कहेंगे, जा कहीं भी नहीं रहा हूं, मैं घूमने का आनन्द ले रहा हूं। बस यह जो पैरों का उठना और यह हवा की टक्कर और यह गहरी श्वास और यह होने का जो मजा है, बस यह ले रहा हूं—मैं कहीं जा नहीं रहा हूं। यह कहीं जाने के लिए निकला भी नहीं है, सिर्फ आनन्दित हो रहा है। यह घूमना एक खेल है। इसकी कोई मंजिल नहीं, कोई प्रयोजन नहीं।

फिर उसी रास्ते से आप दोपहर दफ्तर जा रहे हैं। रास्ता वही है, पैर वही हैं, आप वही हैं। लेकिन सब कुछ बदल गया। अब आप कहीं जा रहे हैं। दफ्तर जा रहे हैं। कहीं पहुंचना है, कोई लक्ष्य है। यह काम है। फर्क आप अनुभव कर लेंगे। सुबह आप उसी रास्ते पर उन्हीं पैरों से, वही आदमी घूमता है। और घूमने मे एक आनन्द होता है। और वही आदमी थोड़ी देर बाद, उसी रास्ते, उन्हीं पैरों से दफ्तर जाता है और दफ्तर जाने में कोई भी आनन्द नहीं होता। सिर्फ एक जबर्दस्ती, एक बोझ पूरा करना है। लक्ष्य है, उसे पूरा करना है।

सुबह इसी आदमी की पुलक दूसरी थी। इसकी आंखों की रौनक और थी। इसके चेहरे पर हंसी और थी। यही दफ्तर जब जा रहा है तब वह सब रौनक खो गई, वह हंसी खो गई। रास्ता वही है, आदमी वही, पैर वही हवाएं वही, सब कुछ वही; फर्क क्यों पड़ गया। इस आदमी के मन में एक लक्ष्य है अब। लक्ष्य से तनाव पैदा होता है। सुबह कोई लक्ष्य नहीं था, बिना लक्ष्य के कोई तनाव नहीं होता।

अब इस आदमी के मन में एक भविष्य है—कहीं पहुंचना है। भविष्य से तनाव पैदा होता है। सुबह कहीं पहुंचना नहीं था। चाहे बाएं गए, चाहे दाएं गए; चाहे इस तरफ गए, चाहे उस तरफ गए; चाहे यहां रुके, चाहे वहां रुके; कोई फर्क नहीं पड़ता था—कोई मंजिल न थी, चलना ही मंजिल थी। खेल बच्चे खेलते हैं। क्या कर रहे हैं वे? हमें लगता भी है, बड़ों को कभी-कभी, कि क्या बेकार के खेल में पड़े हो। हमें लगता है कि खेल में भी कोई कारण, कोई काम होना चाहिए, अन्यथा बेकार है।

हम तो अगर खेल भी खेलते हैं, बड़े अगर खेल भी खेलते हैं, तो खेल नहीं खेल पाते हैं—अगर वे ताश खेल रहे हैं तो थोड़े बहुत पैसे लगा लेंगे।

क्योंकि पैसे लगाने से प्रयोजन आ जाता है, नहीं तो बेकार है। बेकार ताश खींच रहे हैं, फेंक रहे हैं, उठा रहे हैं, क्या मतलब ! कुछ दांव लगा लो तो रस आ जाता है। क्यों ? क्योंकि तब खेल नहीं रह जाता, काम हो जाता है। तब उसमें उसे कुछ मिलेगा। तब खेल के बाहर कोई चीज पाने के लिए है, तो काम हो गई। जुआ काम है, खेल नहीं है। खेल का मतलब ही इतना होता है कि बाहर कोई लक्ष्य नहीं है—अपने में ही रसपूर्ण है।

जगत लीला है

भारत की गहरी खोज है कि परमात्मा के लिए सृष्टि कोई काम नहीं है, कोई परपज नहीं, कोई प्रयोजन नहीं है, खेल है; इसलिए हमने इसे लीला कहा है। लीला जैसा शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। लीला जैसा शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है, क्योंकि लीला का अर्थ यह होता है कि सारी सृष्टि एक निष्प्रयोजन खेल है—इसमें कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन परमात्मा आनन्दित हो रहा है—बस। जैसे सागर में लहरें उठ रही हैं, वृक्षों में फूल लग रहे हैं, आकाश में तारे चल रहे हैं, सुबह सूरज ऊग रहा है, सांझ तारों से आकाश भर जाता है—यह सब उसके होने का आनन्द है। वह आनन्दित है।

यह होना, इसमें कुछ पाना नहीं है उसे कि कल कोई सर्टिफिकेट उसे मिलेगा कि खूब अच्छा चलाया नाटक; कि कोई उसकी पीठ थपथपाएगा कि शाबाश ! उसके अलावा कोई नहीं है कि कोई ताली बजाएगा, अखबार में खबर छापेगा कि बड़ी अच्छी व्यवस्था रही तुम्हारी। कोई नहीं है उसके अलावा। वह अकेला है।

कभी आपने अकेले ताश के पत्ते खेले। अगर खेले हों तो थोड़ी देर के लिए ईश्वर होने का मजा आ सकता है। कुछ लोग ट्रेन में खेलते रहते हैं अकेले। कोई नहीं होता, तो दोनों बाजियां चल देते हैं, फिर उस तरफ से जवाब देते हैं, फिर इस तरफ से जवाब देते हैं। उसमें भी पूरा मजा आ जाता है—हार-जीत का। लीला का अर्थ है—वही है इस तरफ, वही है उस तरफ, दोनों बाजियां उसकी। हारेगा भी तो भी वही, जीतेगा तो भी वही। फिर भी मजा ले रहा है। 'हाइड एण्ड सीक', खुद को छिपा रहा है और खुद ही खोज रहा है।

कोई प्रयोजन नहीं है। हमें बहुत घबड़ाहट लगेगी। इसलिए भारत की यह धारणा दुनिया में बहुत लोगों तक प्रभाव नहीं छोड़ती—भारतीय के मन में भी प्रभाव नहीं छोड़ती। क्योंकि लगता है सब बेकार है। हमारे मन में भी कुछ मतलब तो निकलना चाहिए। इतनी दौड़-धूप, इतने उपद्रव, जन्म-जन्म की यात्रा, और मतलब कुछ भी नहीं। यह भी थोड़ा सोच लेने जैसा है।

अगर हम जिन्दगी को एक काम समझते हैं, तो हमारी जिन्दगी में एक बोझ होगा। और अगर जिन्दगी को हम खेल समझते हैं तो जिन्दगी निर्बोझ हो जाएगी। धार्मिक आदमी वह है, जिसके लिए सभी कुछ खेल हो गया। और अधार्मिक आदमी वह है जिसके लिए खेल भी खेल नहीं है। उसमें भी जब काम निकलता हो कुछ, तो ही। धार्मिक आदमी वह है जिसके लिए सब लीला हो गई। उसे कोई अड़चन नहीं है कि ऐसा क्यों हो रहा है, ऐसा क्यों नहीं हो रहा। यह बुरा आदमी क्यों है, यह भला आदमी क्यों है। निष्प्रयोजन लीला की दृष्टि से वह जो बुरे में छिपा है वह भी वही है, वह जो भले में छिपा है वह भी वही है। रावण में भी वही है, राम में भी वही है। दोनों तरफ से दांव चल रहा है। और वह अकेला है। अस्तित्व अकेला है। इस अस्तित्व के बाहर कोई लक्ष्य नहीं है।

इसलिए जो आदमी अपने जीवन में लक्ष्य छोड़ दे और वर्तमान के जीवन में ऐसा जीने लगे जैसे खेल रहा है, वह आदमी यहीं और अभी परमात्मा का अनुभव करने में सफल हो जाता है। लेकिन हम ऐसे लोग हैं कि परमात्मा पाने को भी एक धन्धा बना लेते हैं। एक धन्धा, उसको भी ऐसा व्यवस्था से चलाते हैं पाने के लिए कि छोड़ेंगे नहीं, पाकर ही रहेंगे। और उसको भी भविष्य में रखते हैं कि कहीं पाकर रहेंगे। और यह करेंगे, वह करेंगे, फिर ऐसा करेंगे, उपवास करेंगे, तप करेंगे, तपश्चर्या करेंगे—पूरा धन्धा, इतना गोरख-धंधा।

आपको पता है यह शब्द आया है—गोरखनाथ से। वह महान तांत्रिक गोरखनाथ हुआ। और उसकी साधना पद्धति जो गोरख की थी, पक्की धन्धे की थी। साधना पद्धतियां यह थीं, यह क्रिया करो, यह कर्म करो, और यह करो, वह करो। इतना उपद्रव था उसमें कि धीरे-धीरे उसकी साधना को लोग गोरख-धंधा ही कहने लगे। वह बड़ा उपद्रव है। आप

अपने साधु-संन्यासियों के पास जाएं, सब गोरखधंधे में लगे हैं। अलग-अलग गोरखधन्धे हैं। अलग-अलग ढंग के हैं। लेकिन बड़े धन्धे में लगे हैं।

लेकिन ईश्वर को पा पाता है वही आदमी, जो धन्धे में ही नहीं होता। जो धन्धे में भी हो तो भी खेल ही समझता है। दुकान पर बैठा है तो भी एक नाटक का एक पात्र है। हमने यहां तक हिम्मत की है कि अगर वह आदमी हत्यारा है, किसी की हत्या कर रहा है या चोर है और चोरी कर रहा है, अगर वहां भी वह आदमी सिर्फ अपने को नाटक का एक पात्र समझ रहा हो, तो चोरी भी नहीं छूती और हत्या भी नहीं छूती। मगर बड़ा कठिन है। बड़ा कठिन है अपने को निमित्त मात्र मान लेना कि जो हो रहा है, होने देना है हम कुछ न करेंगे—अपनी बुद्धि को बीच में न डालेंगे, अपने निर्णय न लेंगे—बहे चले जाएंगे इस प्रवाह में। ऐसा जो प्रयोजनहीन होकर जीता है बच्चों की भांति, वही है सन्त। वह क्या कर रहा है, इस पर निर्भर नहीं है। उसके करने में जो दृष्टि है, वह घूमने वाले की है, पहुंचने वाले की नहीं है। मौज ले रहा है। जो हो रहा है, उसमें भी मौज ले रहा है।

सारा खेल उसी का है

अब हम सूत्र को लें :

अर्जुन कह रहा है, "अथवा जैसे पतंग मोह के वश होकर नष्ट होने के लिए प्रज्वलित अग्नि में अति वेग से युक्त हुए प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे सब लोग भी अपने नाश के लिए आपके मुखों में अति वेग से युक्त हुए प्रवेश कर रहे हैं।"

जैसे दिया जल रहा हो और पतंगा चक्कर लगाता है दिये के और पास आता चला जाता है। उसके पंख भी जलने लगते हैं तो भी हटता नहीं, और पास आता चला जाता है। लपट उसे छूने लगती है तो और पास आता चला जाता है। अन्त में वह लपट में छलांग लगाकर जल जाता है। और ऐसा भी नहीं कि एक पतंगे को जलते देखकर दूसरे पतंगे कुछ समझ लें। वे भी चक्कर लगाते हैं और पतंगे और भी निकट आते जाते हैं प्रकाश के। जहां भी प्रकाश हो, पतंगे प्रकाश को खोजते हैं।

अर्जुन कह रहा है, मैं ऐसे ही देख रहा हूं इन सारे लोगों को आपके इस मृत्यु रूपी मुंह में जाते हुए। वे सब भाग रहे हैं अति वेग से। और एक

दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं कि कौन पहले पहुंच जाय। बड़ा वेग है। और जा कहां रहे हैं! आपके मुंह में जा रहे हैं जहां मौत के सिवाय और कुछ भी नहीं है। यह क्या हो रहा है! यह सब महाशूरवीर, महायोद्धा, बुद्धिमान, पंडित, ज्ञानी ये सब मृत्यु की तरफ जा रहे हैं। और इतनी साज-सजावट से जा रहे हैं कि ऐसा नहीं लगता कि इनको पता हो कि ये मृत्यु की तरफ जा रहे हैं—इतनी शान से जा रहे हैं। शोभा यात्रा बना रखी है इन्होंने अपनी गति को और जा रहे हैं, देखता हूं आपके मुंह में जहां मृत्यु घटित होगी। और आप उन सम्पूर्ण लोगों को प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रसन करते हुए सब ओर से चाट रहे हैं। और आप हैं एक कि आपकी अग्नि-लपटें सब तरफ से छू रही हैं लोगों को। और उनको लीले चली जा रही हैं।

"हे विष्णु! आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत को तेज के द्वारा परिपूर्ण करके तपायमान कर रहा है। सब तप रहे हैं, जल रहे हैं, भस्म हुए जा रहे हैं। हे भगवन्! कृपा करके मेरे प्रति कहिए कि आप उग्र रूप वाले कौन हैं?"

मानने का मन नहीं होता उसका कि यह आप जो रूप दिखला रहे हैं, यह सच में आपका ही रूप है। सोचता है, कोई भ्रम पैदा कर रहे होंगे। सोचता है कोई प्रतीक, सोचता है मुझे कोई धोखा दे रहे होंगे, डरवा रहे होंगे। सोचता है मेरी परीक्षा ले रहे होंगे। यह मानने का मन नहीं करता है कि यह आप ही हैं। तो वह कहता है, यह उग्र रूप वाला कौन है? यह आप नहीं मालूम पड़ते।

"देवों में श्रेष्ठ! आपको नमस्कार होवे। आप प्रसन्न होइए।"

वह घबड़ा भी रहा है। बेचैन हो रहा है और कह रहा है कि आप प्रसन्न होइए। आदि स्वरूप आपको मैं तत्त्व से जानना चाहता हूं, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति को मैं नहीं जानता। आप अपनी प्रवृत्तियां सिकोड़ लें, कि आप लोगों की मृत्यु बनते हैं, मुझे प्रयोजन नहीं; कि आप लोगों को लील जाते हैं, मुझे मतलब नहीं है; कि आप लोगों को बनाते हैं, मुझे मतलब नहीं। आपकी प्रवृत्ति को हटा लें। आप क्या करते हैं, इससे मुझे प्रयोजन नहीं। आप क्या हैं केन्द्र में, इसेन्स में, सार में, तत्त्व में, वही मैं जानना चाहता हूं।

हम सब भी परमात्मा को जानना चाहते हैं और उसकी प्रवृत्ति से बचना चाहते हैं। यह सारा संसार उसकी प्रवृत्ति है। यह सारा संसार उसका खेल है। हम इससे बचना चाहते हैं और उसे जानना चाहते हैं। वही अर्जुन कह रहा है। अर्जुन की आकांक्षा हमारी आकांक्षा है। हम भी कहते हैं, संसार से छुड़ाओ प्रभु अपने पास बुला लो; जैसे कि संसार में वह पास नहीं है। हम कहते हैं, हटाओ इस भवसागर से, इस बन्धन से और अपने गले लगा लो; जैसे इस बन्धन में उसने गले नहीं लगाया। हम कहते हैं, कब छूटेगी यह पत्नी, कब छूटेगा यह पति—यह छुटकारा कब होगा। हे प्रभु! पास बुलाओ; जैसे कि इस पति में और पत्नी में वही मौजूद नहीं है।

बुद्ध वापस आए जब वे बुद्ध हो गए। और उनकी पत्नी ने एक सवाल पूछा है। पता नहीं पूछा या नहीं। रवीन्द्रनाथ ने एक गीत लिखा है जिसमें पूछा है। रवीन्द्रनाथ ने एक गीत लिखा है। और रवीन्द्रनाथ बड़े आलोचक थे बुद्ध के, गहरे आलोचक थे। पर सवाल बड़ा कीमती है। न भी पूछा हो, तो बुद्ध की पत्नी को पूछना चाहिए था। बुद्ध वापस लौट आए हैं। यशोधरा पूछती हैं कि एक ही बात मुझे पूछनी है। जो तुम्हें वहां जंगल में जाकर मुझे छोड़कर मिला, क्या तुम हाथ रखकर छाती पर कह सकते हो, वह यहीं नहीं मिल सकता था—मेरे पास? बुद्ध निरुत्तर खड़े रह गए। पता नहीं वे खड़े रहे या नहीं। रवीन्द्रनाथ ने उनको निरुत्तर खड़े रखा है। और मैं भी मानता हूं कि उत्तर है नहीं। बुद्ध को चुप खड़े रह जाना ही पड़ा होगा, क्योंकि झूठ वे बोल नहीं सकते। और सच यही है कि जो उन्होंने जंगल में पाया है, वह यशोधरा के पास भी पाया जा सकता था, क्योंकि वह वहां भी मौजूद है। संसार से हटा ले प्रभु हमें। क्यों? वही संसार बना रहा है। आप प्रार्थना कर रहे हैं—हटा लो!

कृष्ण से यह कह रहा है, तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं, तुम्हारा तत्व। मैं तो तुम्हें सार भूत जानना चाहता हूं, तुम क्या करते हो, वह मुझे मतलब नहीं है। तुम क्या हो? तुम्हारा डूइंग नहीं, तुम्हारी बीइंग। मैं तुम्हारे उस केन्द्र को जानना चाहता हूं—जहां कोई गति नहीं है, जहां कोई कर्म नहीं है, जहां सब शान्त और मौन है। प्रवृत्ति को हटा लो। लेकिन वह कह जरूर रहा है, लेकिन उसे पता नहीं कि वह साथ ही अपना विरोध भी कर

रहा है। एक तरफ वह कहता है, हटा लो यह उग्र रूप और प्रसन्न हो जाओ। प्रसन्नता भी प्रवृत्ति है। और दूसरी तरफ वह कह रहा है कि प्रवृत्ति का मुझे कुछ पता नहीं, जानना भी नहीं चाहता, तत्व जानना चाहता हूं। प्रसन्नता भी कर्म है। जैसे उग्रता कर्म है, वैसे प्रसन्नता कर्म है। जैसे मृत्यु कर्म है, वैसे जीवन भी कर्म है।

लेकिन हम चुनाव करते ही चले जाते हैं। वह कहता है कि प्रसन्न, आनंदित हो जाइए। वह भी मानेगा कि शायद आनंदित होना ही तत्व है। वह भी तत्व नहीं है। तत्व तो शून्य है। और शून्य को देखने की क्षमता बड़ी मुश्किल है। हम प्रवृत्ति को ही देख पाते हैं, शून्य को हम कहां देख पाते हैं। शून्य जब प्रवृत्ति बनता है तभी हमारी पकड़ में आता है, नहीं तो कहां पकड़ में आता है। मैं यहां चुप बैठ जाऊं तो मेरा मौन आपको पकड़ में नहीं आएगा। जब मेरा मौन, शब्द बनता है तब आपको सुनाई पड़ता है। जो मैं कहना चाहता हूं, वह तो मेरे मौन में है। जब मैं उसे शब्द का रूप देता हूं तब वह आप तक पहुंचता है।

अगर आप मुझसे कहें कि ऐसा कुछ करिये जो मैं आपका मौन सुन पाऊं, तो बड़ी कठिन होगी बात; क्योंकि उसके लिए फिर आपके कान काम नहीं दे सकेंगे, वे सिर्फ शब्द सुनने को बने हैं। और उसके लिए आपकी बुद्धि भी काम नहीं देगी, क्योंकि वह भी सिर्फ शब्द पकड़ने को बनी है। फिर तो आपको भी शून्य में ही खड़ा होना पड़ेगा तो ही फिर मौन से सुना जा सकता है।

एक अद्भुत साधक कुछ समय पहले हुआ था, अनिर्वाण उस साधक का नाम था। बहुत कम लोग जानते हैं, क्योंकि कभी कोई, बहुत लोगों के पास नहीं आने दिया। एक फ्रेंच महिला अनिर्वाण के पास कोई पांच साल तक रही। बस वह अकेली एक किताब उसने लिखी है। वही जगत को जानकारी है—अनिर्वाण के सम्बन्ध में। पांच साल अनिर्वाण के पास चुपचाप बैठी रही। वे कुछ कहेंगे नहीं, या कुछ कहेंगे तो बहुत अल्प।

पांच साल बाद उसने अनिर्वाण से कहा, आपने कुछ मुझे कहा नहीं, हालांकि मैंने बहुत कुछ सुना। अनिर्वाण ने कहा, यही मेरी एकमात्र महत्वाकांक्षा थी। जब से मैं जन्मा हूं, जब से मुझे होश है तब से मेरी एक ही महत्वाकांक्षा थी कि किसी को मैं मौन से कुछ कह पाऊं। लेकिन

मौन होने के लिए कोई राजी नहीं होता। पांच साल चुप बैठी रही। दो साल निरंतर उनके पास चुप बैठ-बैठकर वह क्षमता आई जब उनका मौन थोड़ा-सा स्पर्श करने लगा। पांच साल होने पर सुनाई पड़ना शुरू हुआ। पांच साल पूरे होने पर जब उस महिला ने कहा कि अब मैं सुन पाती हूं जो आप मौन में कहते हैं, तो अनिर्वाण ने कहा कि बस अब तेरा काम पूरा हो गया। अब तू यहां से जा, क्योंकि अब तू कहीं भी हो तो सुन पाएगी, क्योंकि मौन के लिए कोई बाधा नहीं है; शब्द के लिए दूरी बाधा है। अब तू जा, तेरा काम पूरा हो गया है।

उस महिला ने लिखा है, अन्तिम क्षण विदा देते वक्त जब हाथ जोड़कर हम नमस्कार करके अलग हो गए तब मुझे ख्याल आया कि पांच साल हो गए मैंने उनके हाथ का भी स्पर्श नहीं किया। लेकिन पांच साल तक मुझे ख्याल नही आया कि मैंने अनिर्वाण के शरीर को छुआ तक नहीं है, हाथ का भी स्पर्श नहीं किया। यह विदा होने पर ख्याल आया। तब उसे लगा कि यह ख्याल ही इसलिए आया कि मौन में निकटता इतनी गहन थी कि और स्पर्श उससे ज्यादा क्या निकटता दे सकता है!

लेकिन अगर आप कहें मौन में सुनना है, तो फिर मौन होने की कला सीखनी पड़ेगी। वह अर्जुन कह रहा है कि मैं आपको देखना चाहता हूं आपके तत्व में। लेकिन तत्व में केवल वही देख सकता है जो स्वयं तत्व होने को राजी हो, शून्य होने को राजी हो। शून्य होने को जो राजी है, वह इस जगत के शून्य को देख लेगा। जब तक हम शून्य होने को राजी नहीं हैं तब तक हमें प्रवृत्ति ही दिखायी पड़ेगी। और जब तक प्रवृत्ति है तब तक चुनाव रहेगा। हम कहेंगे—उदासी हटाओ, उग्रता हटाओ, यह क्रूरता हटाओ, यह मृत्यु का उग्र रूप बन्द करो; मुस्कुराओ, प्रसन्न हो जाओ। हम चुनेंगे, हमारी पसन्द की प्रवृत्ति।

ध्यान रहे, इस सूत्र में थोड़ी एक बात ख्याल ले लेने जैसी है। संसार को अक्सर हम कहते हैं—प्रवृत्ति का जाल और संन्यासी को हम कहते हैं—निवृत्ति, प्रवृत्ति से हट जाना। लेकिन संसार प्रवृत्ति का जाल है, यह तो सच है और कोई कितना ही संसार से भागे संसार के बाहर नहीं जा सकता, यह भी ध्यान रखना। जहां भी जाएं वहीं संसार है, कहीं भी जाएं वहीं संसार है; क्योंकि सभी तरफ प्रवृत्ति है उसकी। कहीं बाजार की प्रवृत्ति

है, कहीं वृक्षों में पक्षियों की कलकलाहट है, कहीं नदी में पानी का शोर है, कहीं पहाड़ों का सन्नाटा; लेकिन सब उसकी ही प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति के बाहर जाने का कोई उपाय नहीं। प्रवृत्ति के बाहर जाने का एक ही उपाय है कि प्रवृत्ति में चुनना मत। यह मत कहना कि यह विकराल है—हटाओ, प्रसन्न को प्रकट करो। यह चुनाव बांधता है, प्रवृत्ति नहीं बांधती। और जो प्रवृत्ति में चुनाव नहीं करता, वह अचानक शून्य हो जाता है, क्योंकि चुनाव से ही भीतर का शून्य खंडित होता है। जो शून्य हो जाता है, वह उसे तत्व से जान लेता है।

अर्जुन कहता है, हे भगवन् कृपा करके मेरे प्रति कहिए कि आप उग्र रूप वाले कौन हैं? हे देवों में श्रेष्ठ! आपको नमस्कार होवे, आप प्रसन्न होइए। आदि स्वरूप आपको मैं तत्व से जानना चाहता हूं, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति को मैं जानता हूं। न आपकी प्रवृत्ति से मुझे कोई प्रयोजन है, आप क्या हैं—वही मैं जानना चाहता हूं।

●

गीता अध्याय ११ :

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ।
।३२।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम्
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।३३।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्
।३४।

•

नियति का दर्शन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, क्रास मैदान, बंबई, संध्या : दिनांक ९ जनवरी ७३

सातवां प्रवचन

परम सत्य : मिटने का विज्ञान

एक मित्र ने पूछा है, दिव्य दृष्टि को पाकर भी अर्जुन परमात्मा को उसकी समग्रता में स्वीकार करने में क्यों असफल हो रहा है, क्यों भयभीत है?

परमात्मा के साक्षात्कार में, उसकी पूर्ण स्वीकृति में, स्वयं को पूरा खोने की तैयारी चाहिए। परमात्मा का अनुभव अपनी पूर्ण मृत्यु का अनुभव है। जो मिटने को राजी है, वही उसे पूरी तरह स्वीकार कर पाता है। अगर मिटने में जरा-सा भी संकोच है तो अस्वीकार शुरू हो जाता है और भय भी। भय एक ही है कि कहीं मैं मिट न जाऊं। और यह भय अन्तिम बाधा है।

इसलिए जो जानते रहे हैं, उन्होंने कहा है; जैसे जीसस ने कि जो अपने को बचाएगा, वह खो देगा और जो अपने को खोने को तैयार है, वह प्रभु को पा लेगा। अपने को बचाना ही धर्म के मार्ग पर पाप है। अपने को बचाने की चेष्टा ही एक मात्र रुकावट है।

अर्जुन सामने खड़ा है। विराट के द्वार खुल गए हैं। लेकिन कहीं मैं मिट न जाऊं इसकी वह बात कर नहीं रहा है, यह भी समझ लेने जैसा है।

वह कह रहा है कि आपके दांतों में दबे हुए, पिसते हुए द्रोण को देखता हूं, भीष्म को देखता हूं, कर्ण को देखता हूं । आपका मुंह मृत्यु, महाकाल बन गया है । आपके मुंह से लपटें निकल रही हैं और विनाश की लीला हो रही है । और मैं बड़े-बड़े योद्धाओं को भी इस विनाश के मुंह की तरफ भागते हुए देखता हूं । जैसे पतंगे दीप-शिखा को तरफ भागते हों—अपनी ही मौत की तरफ । कहीं भी वह अपनी बात नहीं कह रहा है । लेकिन ध्यान रहे जब भी कोई दूसरा मरता है तो हमें अपने मरने की खबर मिलती है । और जब भी कहीं मृत्यु घटित होती है, तो किसी एक अर्थ में तत्काल हमें चोट भी लगती है कि मैं भी मरूंगा ।

जब अर्जुन यह देख रहा होगा सबको मिटते हुए कृष्ण के मुंह में, तो यह असम्भव है कि यह छाया की तरह चारों तरफ यह बात उसको न घेर ली हो कि मैं भी मिटूंगा—मैं भी ऐसे ही मरूंगा, और मैं भी पतंगे की तरह किसी ज्योति में जलने को इसी तरह भागा जा रहा हूं; जैसे यह सारा लोक । मैं भी इस लोक से अलग नहीं हूं । वह कह तो दूसरों की बात रहा है, लेकिन उसमें खुद स्वयं की बात भी गहरे में सम्मिलित है । वह भय पकड़ता है ।

बुद्ध अपने साधकों को कहते थे, इसके पहले कि तुम परम सत्य को जानने जाओ, तुम ऐसे हो जाओ जैसे मर गए हो—जीते जी मृत । अगर तुम जीते जी मृत नहीं हो गए हो, तो उस परम सत्य को तुम न झेल पाओगे । जो जीते जी मृत हो गया है, उसे फिर कोई भी भय नहीं है, फिर परमात्मा के सामने खड़े होकर मिटने की उसकी पहले से ही तैयारी है । यह तैयारी न हो तो अड़चन होगी ।

और जो लोग भी परमात्मा की खोज में जाते हैं, वे जीवन की खोज में जाते हैं, मृत्यु की खोज में नहीं । जो जीवन के पिपासु हैं, अभी वे उसे न पा सकेंगे । जो मिटने को राजी हैं, वे उसे पा लेंगे, परम जीवन भी उन्हें मिलेगा । लेकिन परम जीवन मिलता है पूर्ण मृत्यु की स्वीकृति से । अपने को मिटाने को जो तैयार है, उसे इस जगत में फिर कोई भी नहीं मिटा सकता । और अपने को बचाने को जो पागल है, वह मिटेगा ही । क्योंकि जो हमारे भीतर भयभीत है कि मिट न जाऊं, वह है अहंकार । वह मिटेगा ही, वह बनायी हुई चीज है । जो बनायी हुई चीज है, वह मिटनी ही है । हमारे भीतर जो मृत्यु से भी नहीं मिटती, वह है आत्मा ।

और जब तक हमें मृत्यु का भय है, उसका अर्थ हुआ कि हमें आत्मा का कोई भी पता नहीं, हमें सिर्फ अपने अहंकार का, अस्मिता का, 'मैं-भाव' का पता है । हमारे भीतर मरण-धर्मा है—अहंकार और अमृत है—आत्मा । हम सब को अपने 'मैं' का पता है, आत्मा का कोई पता नहीं है । इस 'मैं' को ही हम लिये जाते हैं परमात्मा के द्वार पर भी । यह भीतर प्रवेश न कर सकेगा । इसे मिटना होगा । इसे बाहर दरवाजे पर ही छोड़ना होगा ।

अर्जुन का भय भी उन सभी साधकों का भय है, जो आखिरी किनारे पर खड़े हो जाते हैं, और जहां सवाल उठता है कि क्या अब मैं अपने को खोने को राजी हूं । हम परमात्मा को भी पाना चाहते हैं—अपने में जोड़ने को । ध्यान रखना, वह भी हमारी सम्पत्ति होगी, वह भी हमारी मुट्ठी में हो, वह भी हमारे बैंक बैलेंस मे हो । हमारा अहंकार, उसके होने से और प्रगाढ़ होता हो कि मैंने परमात्मा को पा लिया । इसलिए हम उसकी भी खोज करते हैं ।

और धर्म बड़ी उल्टी व्यवस्था है । धर्म कहता है, जब तक तुम हो तब तक तुम उसे न पा सकोगे । कबीर ने कहा है, जब तक मैं था खोज-खोज कर, परेशान हो-हो कर मिट गया, उसे न पाया । और जब मैं मिट गया तो मैंने देखा कि वह सामने खड़ा हुआ है—वह दूर नहीं था । मैं था, इसलिए दूर था । मेरा होना ही एकमात्र अड़चन, बाधा, अवरोध है ।

अर्जुन भी उसी अन्तिम, आखिरी...ज्ञानियों ने कहा है, अहंकार अन्तिम बाधा है, सब छूट जाता है । धन छोड़ना आसान है, परिवार छोड़ना आसान है, शरीर छोड़ना आसान है, अहंकार छोड़ना सबसे कठिन है कि 'मैं हूं' । और जब तक 'मैं हूं' तब तक 'मैं हूं' केन्द्र । और अगर परमात्मा भी सामने खड़ा हो तो वह भी नम्बर दो है । जब तक मैं हूं तब तक वह नम्बर दो है, नम्बर एक तो मैं ही हूं । और जब तक परमात्मा को नम्बर एक पर रखने की तैयारी न हो तब तक बाधा रहेगी । जिस क्षण मैं कह सकता हूं कि अब तू ही है, अब मैं नहीं हूं तब बाधा गिर जायेगी ।

जार्ज गुर्जियफ ने आदमी की साधना के चार चरण कहे हैं । उसने कहा है, पहली स्थिति तो आदमी की है—बहुत 'मैं' मल्टी आईस । आपके भीतर एक 'मैं' भी नहीं है बहुत 'मैं' हैं । आपको ख्याल भी नहीं होगा कि

आप एक आदमी नहीं हैं। आपके भीतर कई ईगो, कई 'मैं' हैं। इसलिए सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ हो जाता है। सुबह एक बात का वचन देते हैं, दोपहर भूल जाते हैं। सांझ एक बात तय करते हैं, सुबह विस्मृत हो जाती है। आज तय किया था क्रोध नहीं करेंगे और क्रोध हो गया।

गुर्जियफ कहता है—जिस 'मैं' ने तय किया था कि क्रोध नहीं करूंगा, वह 'मैं' और है। और जिस 'मैं' ने क्रोध किया, वह 'मैं' और है। आपके भीतर भीड़ है, आपके भीतर एक 'मैं' नहीं है। इसलिए आपकी बात का कोई भरोसा नहीं है।

गुर्जियफ के पास कोई आता और वह कहता कि मैं आया हूं साधना करने, तो गुर्जियफ कहता कि तुम्हारी बात का भरोसा कर सकता हूं? तुम अभी साधना करने आए हो, सुबह, कल सुबह भी साधना करने के लिए तत्पर रहोगे? तुम्हें पक्का है कि तुमने तय किया था कि क्रोध नहीं करूंगा तो फिर नहीं ही किया? तब वह आदमी डगमगा जाएगा। वह कहेगा कि तय तो बहुत बार किया कि क्रोध न करूंगा, लेकिन हो नहीं पाता है।

एक बूढ़े आदमी ने मुझे एकांत में कहा, बड़े प्रतिष्ठित आदमी थे मुल्क के, मैं ब्रह्मचर्य का व्रत जीवन में चार बार ले चुका हूं। अब ब्रह्मचर्य का व्रत एक ही बार लिया जा सकता है। चार बार ब्रह्मचर्य के व्रत का क्या मतलब होता है। जो मेरे साथ सज्जन थे वे बहुत प्रभावित हुए। उनके ख्याल में ही न आया, उनकी बुद्धि में प्रवेश न हुआ कि चार बार ब्रह्मचर्य के व्रत का क्या मतलब होगा। मैंने उन बूढ़े सज्जन से पूछा कि फिर पांचवीं बार आपने क्यों नहीं लिया, तो उन्होंने कहा, मैं घर गया बार बार और फिर मैंने लेना ही छोड़ दिया—व्रत लेना छोड़ दिया।

आप व्रत लेते हैं, लेकिन आपका व्रत टिक नहीं सकता।

गुर्जियफ कहता है, आपके भीतर कई 'मैं' हैं। एक 'मैं' नहीं है आपके भीतर, मल्टी आईस, पालीसाइकिक। महावीर ने ठीक शब्द उपयोग किया है—बहुचित्तवान है। एक आदमी के भीतर बहुत से चित्त हैं। और महावीर के ये बहुचित्तवान की स्वीकृति अभी पश्चिम के मनोविज्ञान ने देनी शुरू की है। मनोविज्ञान भी कहता है—मल्टीसाइकिक, बहुत मन हैं आदमी के पास, एक मन नहीं है।

यह पहली अवस्था है—भीड़। इस आदमी का कोई भरोसा नहीं। इसका भरोसा करने का कोई सवाल नहीं है। इससे वचन भी लेने का कोई मतलब नहीं है। इसके वचन की कोई पूर्ति नहीं होने वाली है।

दूसरी अवस्था गुर्जियफ ने कही है—एक 'मैं'। यह सारी भीड़ को नष्ट करके जो व्यक्ति अपने भीतर एक स्वर पैदा कर लेता है, इसके वचन का अर्थ है, जो कुछ कहेगा वह पूरा करेगा—जो टिकेगा अपनी बात पर, अपने व्रत पर। उसके भीतर एक 'मैं' है। सुबह हो कि सांझ फर्क नहीं पड़ेगा। उसने प्रेम किया है तो प्रेम ही करेगा, फिर घृणा नहीं कर सकेगा। आपके प्रेम का भरोसा नहीं है। अभी प्रेम है, क्षण भर में घृणा हो जाए, फिर घृणा प्रेम हो जाय। अभी क्रोध है, फिर शांति हो जाय, फिर क्रोध हो जाय, अभी पछता रहे थे, और अभी फिर हत्या करने को राजी हो जाएं। आपकी बात का कोई भी भरोसा नहीं। आपको दोष देने का भी कोई कारण नहीं। आपके भीतर एक आदमी नहीं, कई आदमी हैं। जैसे एक मकान के कई मालिक हों। और किसी की बात का कोई भरोसा न हो। कैसे हो सकता है!

गुर्जियफ कहता है दूसरी स्थिति है एक 'मैं' की—यूनीटरी आई—एक स्वर रह जाय। साधना, आपकी भीड़ को काटती है और एक का निर्माण करती है। लेकिन वह दूसरी अवस्था है।

तीसरी अवस्था गुर्जियफ कहता है, 'न मैं की'—'नो आई'—जबकि 'मैं' न रह जाय। अनुभव होने लगे कि 'मैं नहीं हूं'—यह तीसरी अवस्था है। दूसरी अवस्था वाले आदमी को ही तीसरी मिल सकती है। जिसके पास पक्का है कि 'मैं हूं' वही हिम्मत कर सकता है 'मैं' को खोने की। जो आपके पास नहीं है, उसको खोइएगा कैसे? जो आपके पास है, उसे आप छोड़ सकते हैं। जो आपके पास है ही नहीं, उसको छोड़ियेगा कैसे? आपके पास अभी 'मैं' भी नहीं है, अहंकार भी नहीं है पूरा, मजबूत एक, जिसका आप त्याग कर दें। और त्याग कौन करेगा? एक त्याग करेगा, दूसरा पकड़े रहेगा। फिर आप क्या करिएगा? आप एक भीड़ हैं!

गुर्जियफ कहता है, जिसको दूसरी अवस्था प्राप्त हो जाय एक 'मैं' की, वह फिर तीसरी अवस्था में भी छलांग लगा सकता है। वह कहता है, छोड़ता हूं इसे। तब वह 'न मैं'—'मैं नहीं हूं'—इस भाव को उपलब्ध होता

है। गुर्जियफ कहता है, इस तीसरे के बाद चौथी अवस्था है, जब कि 'मैं नहीं हूं'—इसका भी पता नहीं चलता; क्योंकि इसका भी पता चलना थोड़े से 'मैं' का पता चलना है। 'मैं नहीं हूं' तो भी लगता तो है कि 'मैं हूं'। कौन कह रहा है कि मैं नहीं हूं ? किस को पता चल रहा है कि मैं नहीं हू ? यह कौन है, जो बोलता है कि मैं नहीं हू ? यह है। तो गुर्जियफ कहता है—चौथी अवस्था इसका भी विसर्जन है।

पहले एक भीड़ है 'मैं' की—एक क्राउड। फिर एक 'मैं' का जन्म है, फिर एक 'मैं' का त्याग है। 'न मैं' का जन्म है, फिर 'न मैं' का भी विसर्जन है। इस शून्य अवस्था में जो आदमी खड़ा होगा, वह परमात्मा को पूरा का पूरा स्वीकार करता है। इसके पहले परमात्मा को पूरा स्वीकार नहीं किया जा सकता। हम उसमें भी चुनाव करेंगे। हमें अभी डर है मिटने का। अभी मैं हूं, तो मुझे भय है। यही तकलीफ अर्जुन की है, यही तकलीफ सभी साधकों की है।

परमात्मा : मौन यात्रा

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आपने समझाया कि परमात्मा के विराट स्वरूप को साक्षात्कार के लिए मनुष्य की इन्द्रियां सक्षम नहीं हैं। अपरिपक्व साधक यदि किसी प्रकार विराट स्वरूप की झलक पा ले, तो पागल भी हो सकता है। तो समझाएं कि परमात्म-ऊर्जा की झलक या साक्षात् तक पहुंचने के लिए साधक क्या तैयारी करे ?

मरने की तैयारी करे, मिटने की तैयारी करे, 'न होने' की तैयारी करे। 'नहीं हूं', ऐसा जीने लगे। कर सकते हैं। गहन से गहन साधना वही है। मगर हम तो सभी तरफ से 'मैं' को मजबूत करने की साधना करते हैं। अगर आप मन्दिर भी जा रहे हैं, तो आप देखते हैं कि लोग देख रहे हैं कि नहीं कि मैं मन्दिर जा रहा हूं। मन्दिर में भी हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं, तो भगवान की तरफ ध्यान कम रहता है। ख्याल रहता है कि आसपास के लोग ठीक से देख रहे हैं—कोई फोटोग्राफर आया कि नहीं—कोई अखबार खबर छापेगा कि नहीं कि आज मैं प्रार्थना कर रहा था, लीन हो गया था। मन में लगा है कि कोई देख ले कि मैं प्रार्थना कर रहा हूं—कोई जान ले कि मैं प्रार्थना करने वाला हूं, कि मैं रोज मन्दिर जाता हूं, कि मैं धार्मिक हूं। धार्मिक होने की उतनी चिन्ता नहीं है, लोगों को पता हो कि मैं धार्मिक

हूं—इसकी ज्यादा चिन्ता है। क्यों ? वह मन्दिर से भी अहंकार ही भर रहा है। उससे भी मैं कुछ हूं। मैं पापी नहीं हूं, पुण्यात्मा हूं। अधार्मिक नहीं हूं, धार्मिक हूं। इनमें मजा है, मैं इकट्ठा कर रहा है।

आदमी उपवास करता है तो चुपचाप नहीं करता। करना चाहिए चुपचाप, क्योंकि किसी को बताने की क्या जरूरत कि आपने उपवास किया है। लेकिन ढोल-मंजीरा पीटकर खबर करनी पड़ती है कि उपवास पर हो गए हैं। फिर उपवास पूरा हो तो जुलूस निकालना पड़ता है कि उपवास पूरा हो गया है, कि दस दिन उपवास किया, कि अठारह दिन उपवास किया। उपवास का शोरगुल करने की क्या जरूरत है ? यह तो आपकी निजी बात थी। आपके और परमात्मा के बीच इसकी खबर काफी थी। और उसको खबर मिल जाएगी, आपके बैंड बाजे की कोई भी जरूरत नहीं है।

कबीर ने कहा है—वह तुम्हारा परमात्मा क्या बहरा है, जो तुम इतना शोरगुल मचा रहे हो ? लेकिन परमात्मा से किसी को प्रयोजन भी नहीं और उसका पक्का पता भी नहीं कि वह है भी या नहीं। और यह भी पक्का नहीं कि आपके उपवास से प्रसन्न हो रहा है कि दुखी हो रहा है, यह कुछ पता नहीं। आपके उपवास की उसको खबर भी हो रही, यह भी पता नहीं। लेकिन लोगों को तो कम से कम खबर हो जाय—वह जो अठारह दिन आदमी उपवास में तड़पता रहा है, ये लोग उसका जुलूस निकालें इसमें उसका रस है।

आदमी जरा-सा तप करे, साधना करे तो उत्सुकता होती है कि दूसरों को खबर जाय। हम छोटे बच्चों की तरह हैं। अनुभव से हमें सम्बन्ध नहीं है, खबर से सम्बन्ध है। और यह सारा हमारा जगत खबर से जी रहा है। आप मानते हैं, फलां आदमी बहुत बड़ा महात्मा है। मानने का कारण ? क्योंकि वह आदमी ठीक से आपको खबर पहुंचा सका है। कोई छिपा हो, न हो उसका पता, तो आपको पता चलने वाला नहीं है। आपके सामने अगर कृष्ण भी आकर खड़े हो जाएं और पहले से ठीक से आपको खबर न की गई हो, तो आप पहचानने वाले नहीं हैं। या हो सकता है आप समझें कि कोई नाटक का पात्र आ गया है, ये क्या—कलगी, बांसुरी वगैरह लिए आदमी चला आ रहा है ! या हो सकता है कि पुलिस को खबर करें कि यहां एक गड़बड़ आदमी दिखाई पड़ रहा है। इसको पकड़कर ले जाएं।

आप जीते ही हैं—शब्दों से, खबर से, प्रचार से। तो आदमी, धार्मिक आदमी भी अगर प्रचार करके ही जी रहा हो कि कितना रस मिल रहा है उसकी तपश्चर्या से; तपश्चर्या से नहीं, तपश्चर्या की खबर से—लोगों की आंखों में कितनी प्रशंसा मिल रही है, तो अहंकार ही भर रहा है। हम सब तरह से अपने अहंकार को भरते हैं। बुरे अहंकार भी हैं।

अगर आप जेलखाने में जाएं तो वहां भी जो बड़ा हत्यारा है, उसकी ज्यादा इज्जत होती है कैदियों में। जो दस-पांच दफा जेल में आ चुका है, उसकी ज्यादा प्रतिष्ठा होती है। वह नेता है। जो नया-नया आया है उसको लोग कहते हैं कि अभी सिक्खड़ है। क्या है? किया क्या था? वह कहता है, जेब काट ली। वह कहता है—चुप भी रह, इसका भी कोई मतलब है, कोई मूल्य है। अभी सीख।

मैंने सुना है कि एक जेलखाने में ऐसा हुआ—एक कोठरी में एक आदमी पहले से था। फिर दूसरा आदमी भी जेलखाने में आया और उसको भी उसी कोठरी में डाला गया। तो उस दूसरे आदमी ने पूछा कि कितने दिन की सजा हुई? उसने कहा चालीस साल की। उसने कहा, सिर्फ चालीस साल की! तो दरवाजे के किनारे अपना बिस्तर लगा, मुझे सत्तर साल की हुई है। तुझे पहले निकलना पड़ेगा, दरवाजे के पास ही अपना बिस्तर रख। सिर्फ चालीस साल की ही सजा हुई है, तो दरवाजे के पास ही टिक; तुझे पहले निकलने का मौका आएगा। उसको सत्तर साल की हुई है। सत्तर साल का मजा और है। वह भीतर जमकर बैठा है।

आदमी पाप में भी अहंकार को भरता है—छोटे-बड़े पापी होते हैं। आदमी पुण्य में भी अहंकार को भरता है—छोटे-बड़े पुण्यात्मा होते हैं। अगर आप साधु-महात्माओं के पास जाएं तो भी इस पर निर्भर करता है कि वे आपसे कहेंगे आइए, बैठिए; या कहेंगे, कुछ भी न कहेंगे—इस पर निर्भर करता है कि आपकी कितनी प्रतिष्ठा उनकी आंखों में है। दान किया हो, उपवास किया हो, तप किया हो, इस पर निर्भर करेगा।

मैं एक महात्मा का प्रवचन सुन रहा था। मैं बहुत हैरान हुआ। वे कुछ कहते, दो वचन मुश्किल से बोलते फिर पूछते, सेठ कालीदास समझ में आया! बहुत लोग बैठे थे, कौन सेठ कालीदास है। सेठ कालीदास एक बिल्कुल बुद्धू की शक्ल के एक आदमी सामने बैठे हुए थे। वे सिर हिलाते

कि जी महाराज। फिर वे पूछते सेठ माणिकलाल समझ में आया। फिर एक दूसरे सेठ वहीं सामने पगड़ी बांधे बैठे थे, वे भी सिर हिलाते समझ में आया। मैंने बाद में पूछा कि बात क्या है? क्या ये दो ही आदमी यहां समझने वाले हैं इतने लोगों में कोई। और ये नाम लेने की, पूछने की बात क्या है? तो पता चला कि दोनों ने काफी दान किया है। तो जिसने दान किया उसी के पास समझ भी हो सकती है। और फिर कालीदास को जो मजा आ रहा है कि महात्मा बार-बार पूछते हैं कालीदास समझ में आया, तो इतने लाखों लोगों में समझते हैं कि एक कालीदास समझदार है।

हमारा सारा ढंग अहंकार के आसपास चलता है—उसी के पास जीता है। तो अच्छे पापी, बुरे पापी। बुरे पापी वे हैं, जो बुराई से अहंकार को भर रहे हैं। अच्छे पापी वे हैं, जो अच्छाई से अहंकार को भर रहे हैं। अहंकार पाप है। धर्म की गहन दृष्टि में अहंकार पाप है। साधक का एक ही काम है कि वह ऐसे जिए जैसे है नहीं। क्या करें? जहां भी उसे लगे मेरा 'मैं' उठ रहा है, वहीं साक्षी हो जाय और उसे कोई सहयोग न दे। रास्ते से चले, उठे, बैठे, गुजरे ऐसे जैसे कि हवा आती हो, जाती हो। भीतर कहीं भी मौका न दे कि मैं निर्मित हो रहा हूं, मैं बन रहा हूं, मजबूत हो रहा हूं। इसकी सतत स्थिति बनी रहे जागरण की, तो ही एक घड़ी आती है कि जब 'मैं' मिट जाता है और साधक शून्य हो जाता है। उसी शून्य में अवतरण होता है।

उसी 'न कुछ' में सब जगह खाली हो जाती है, तो साधक अतिथिग्रह बन जाता है प्रभु के निवास का। फिर प्रभु उतर सकता है। प्रभु उतर आए फिर कोई ध्यान रखने की जरूरत नहीं है। फिर तो ध्यान रखना भी बाधा है। फिर तो इसकी भी फिक्र करने की कोई जरूरत नहीं कि मैं हूं या नहीं हूं। वह उतर आया उसके बाद वह जाने। लेकिन जब तक वह नहीं उतरा है तब तक साधक को अत्यन्त सचेष्ट भाव से जीने की जरूरत है कि उसके भीतर कहीं भी 'मैं' मजबूत न होता हो। इसलिए यह एक बात ख्याल में रहे और आदमी अपने को सिफर करता जाय, शून्य करता जाय। एक घड़ी आ जाय कि भीतर कोई 'मैं' का भाव न उठता हो, उसी घड़ी में मिलन हो जाएगा—उसी क्षण आप नहीं और परमात्मा हो जाता है।

सब निष्प्रयोजन खेल है

एक और मित्र ने पूछा है कि फूल खिलते हैं मौसम में, चांद ऊगता है समय से, पानी भाप बनता है सौ डिग्री पर। अगर सारा जगत प्रयोजन-हीन है, तो इतनी नियमितता कैसे? सारी क्रिया, गतिशीलता, अगर लीला ही, आनन्द ही है; तो इतनी प्रगाढ़ नियमबद्धता क्यों है?

ध्यान रहे, जहां खेल हो, वहां नियमों का बहुत ध्यान रखना पड़ता है। खेल टिकता ही नियम पर है, क्योंकि और तो टिकने की कोई जगह नहीं होती सिर्फ नियम ही होता है। दो आदमी ताश खेल रहे हैं। तो रूल्स होते हैं, नियम होते हैं जिनसे चलना पड़ता है; क्योंकि खेल में और तो कुछ है ही नहीं, सिर्फ नियम के आधार पर तो सारा मामला है। अगर दो ताश के खेलने वाले एक नियम को न मानते हों, खेल बन्द हो जाएगा। खेल टिकता ही नियम पर है।

इसलिए आप ख्याल रखें, अगर आप अपने काम-धंधे में बेईमानी करते हैं, तो कोई आपकी इतनी निन्दा नहीं करेगा, लेकिन अगर आप ताश खेलते वक्त बेईमानी करें और नियम का उल्लंघन करें, तो सभी आपकी निन्दा करेंगे। खेल में अगर कोई बेईमानी करे, तो बहुत निन्दित हो जाता है; क्योंकि वह तो खेल का आधार ही खींच रहा है। खेल का आधार ही नियम है। इस जगत में इतनी नियमबद्धता इसीलिए है कि यह परमात्मा का खेल है। और चूंकि उसी का खेल है, उसी को नियम पालने हैं। अपना खेल वह बन्द भी कर सकता है। अगर वह नियम नहीं मानता है तो खेल अभी बन्द हो जाता है।

मगर उसके अलावा कोई है भी नहीं अपने ही नियम हैं, अपना ही मानना है, इसलिए इतनी नियमबद्धता है। नियमबद्धता का कारण यह नहीं है कि जगत में कोई प्रयोजन है। जहां प्रयोजन हो वहां तो बिना नियम के भी चल सकता है; क्योंकि प्रयोजन ही काम करवा लेगा, लेकिन जहां प्रयोजन ही न हो वहां तो नियम ही सब कुछ है। क्योंकि भविष्य तो कुछ भी नहीं है, आगे तो कुछ भी नहीं है पाने को; नियम ही एकमात्र आधार है।

छोटे बच्चे भी खेल खेलते हैं तो नियम बना लेते हैं। सारे खेल नियम पर खड़े होते हैं। नियम के बिना खेल असम्भव है। ये सारे खेल जो हम

चारों तरफ देख रहे हैं, नियम पर खड़े हैं, इसलिए विज्ञान नियम की खोज कर पाता है। इसे थोड़ा समझ लें।

विज्ञान तो खड़ा ही नियम पर है। अगर जगत में नियम न हो तो विज्ञान बिलकुल खड़ा नहीं हो सकता। विज्ञान नियम की खोज कर लेता है कि सौ डिग्री पर पानी भाप बनता है। यह नियम की खोज है। अगर कभी निन्यानबे पर बनता हो और कभी डेढ़ सौ पर बनता हो और कभी बनता ही न तो फिर विज्ञान खड़ा नहीं हो सकता।

विज्ञान ने नियम का तो पता लगा लिया है, लेकिन वैज्ञानिक से पूछें कि प्रयोजन क्या है, तो वैज्ञानिक कहता है, प्रयोजन का तो पता नहीं चलता। इसलिए विज्ञान कहता है प्रयोजन का हमें कोई भी पता नहीं है। हम इतना ही बता सकते हैं कि ऐसा है। क्यों है? किसलिए है? इसका कोई उत्तर नहीं। हमसे यह मत पूछो। हमसे व्हाई—क्यों—मत पूछो। हमसे सिर्फ व्हाट—क्या है—इतना ही पूछो। हम बता सकते हैं सौ डिग्री पर पानी गर्म होता है। लेकिन क्यों सौ डिग्री पर गरम होता है? निन्यानबे पर होने में क्या अड़चन है? और निन्यानबे पर होता तो दुनिया में कौन-सी खराबी हो जाती? या एक सौ एक डिग्री पर होता तो दुनिया में कौन-सी विकृति आने वाली है? और सौ डिग्री पर ही होता है, इसका क्या लक्ष्य है? यह भी विज्ञान कहता है, हम कुछ नहीं कह सकते। कोई लक्ष्य नहीं दिखाई पड़ता। कोई प्रयोजन नहीं दिखाई पड़ता। एक नियम वर्तुलता दिखाई पड़ती है कि नियम आवर्तित होता रहता है।

धर्म कहता है, कोई प्रयोजन नहीं है। हमें बहुत घबड़ाहट लगती है इस बात से कि कोई प्रयोजन नहीं है; क्योंकि तब सब बातें फिजूल मालूम पड़ती हैं। अगर कोई प्रयोजन नहीं तो सब बात फिजूल मालूम पड़ती है। लेकिन आप समझें थोड़ा। आपको फिजूल इसीलिए मालूम पड़ती है कि आप अब तक प्रयोजन से ही जीते रहे हैं। प्रयोजन के कारण ही, प्रयोजन की धारणा के कारण ही फिजूल मालूम पड़ती है। अगर कोई प्रयोजन है ही नहीं तो कोई चीज फिजूल भी नहीं है। प्रयोजन हो तो कोई चीज फिजूल हो सकती है। प्रयोजन हो ही न जगत में तो फिर कोई चीज यूजलेस नहीं है—कोई चीज फिजूल नहीं है; क्योंकि फिजूल को जांचिएगा कैसे?

अगर सभी प्रयोजन रहित है तो फिर कोई चीज व्यर्थ नहीं है। न कोई चीज सार्थक है, न कोई चीज व्यर्थ है। बस चीजें हैं। ऐसा जो स्वीकार कर लेता है, उसके जीवन से अशांति के सारे कारण विदा हो जाते हैं। ऐसा जो मान लेता है, समझ लेता है, गहरे में इसकी प्रतीति हो जाय—उसके जीवन में कोई बेचैनी नहीं रह जाती। कोई बेचैनी नहीं रह जाती, बेचैनी का उपाय ही नहीं रह जाता। **परम शांति और परम विश्राम में उतरने का मार्ग : इस अनुभव को पा लेना कि सब खेल है।**

आप रात सपना देखते हैं। कोई आपकी चोरी करके ले जा रहा है, किसी ने आपकी पत्नी की हत्या कर दी है। आप बड़े बेचैन होते हैं, बड़े परेशान होते हैं। रोते हैं सपने में, घबड़ाहट में नींद खुल जाती है, तो देखते हैं कि आंख से आंसू बह रहे हैं, छाती जोर से धड़क रही है; ब्लड प्रेशर बढ़ गया होगा। लेकिन नींद खुलते ही आप हंसने लगते हैं; क्योंकि आपको पता चलता है, जो था, वह स्वप्न था। तब फिर आप यह नहीं पूछते कि इस आदमी ने मेरी पत्नी की हत्या क्यों की। फिर आप यह नहीं पूछते कि वह एक आदमी चोरी करके ले गया है, उसने पाप किया है। फिर आप यह सवाल ही नहीं पूछते। आप इतना ही जानकर कि वह स्वप्न था—एक खेल था मन का, शान्त हो जाते हैं। फिर हृदय की धड़कन अपनी जगह लौट आती है, खून ठीक चलने लगता है, पसीना बन्द हो जाता है, आंसू सूख जाते हैं। आप फिर विश्राम में नींद में प्रवेश कर जाते हैं। स्वप्न मे क्या तकलीफ आ गई थी, क्योंकि तब स्वप्न वास्तविक मालूम पड़ता था, इसलिए घबड़ा गए थे। जैसे ही पता चला स्वप्न है, घबड़ाहट खो गई. शान्त हो गए।

जब तक जगत में आपको प्रयोजन मालूम पड़ता है तब तक आप परेशान रहेंगे। जिस क्षण आपको लगेगा जगत लीला है, स्वप्नवत एक खेल है, कोई प्रयोजन नहीं, उसी क्षण आप स्वप्न के बाहर हो जाएंगे। यह गहनतम आधार भूमि है जिसके सहारे आदमी विराट को अपने में उतार पा सकता है। जब तक आपको लग रहा है सब तरफ वास्तविकता है, रियलिटी है, जब तक आपको लग रहा है, ऐसा होना ही चाहिए, इसके बिना जीवन बेकार हो जाएगा, तब तक आप बेचैन और परेशान होंगे और जीवन को बेकार कर लेंगे। क्योंकि परेशानी और बेचैनी में नष्ट हो जाएगी ऊर्जा। यह ऊर्जा अगर ठहर जाय, शान्त हो जाय तो इस शान्त ऊर्जा से जो झील बन जाती है—मौन की, तरंग रहित, उसी झील में सम्पर्क हो जाता है अनन्त से, विराट से, प्रभु से।

नियति का खेल :
जो, जो हो सकता है, वही हो सकता है

एक और मित्र ने पूछा है कि अगर आपकी बात हम मान लें और समझ लें कि सब नियति का खेल है, तो जगत में आलस्य छा जायगा।

तो छा जाने दें। ऐसे आपको क्या तकलीफ हो रही है। आपको पता है आलसियों ने क्या बुरा किया है जगत का। हिटलर कोई आलसी नहीं है, चंगेज खां कोई आलसी नहीं है, तैमूरलंग कोई आलसी नहीं है। दुनिया के जितने उपद्रवी हैं, कोई भी आलसी नहीं हैं। आप एक-आध आलसी का नाम बता सकते हैं जिसने दुनिया को कोई नुकसान पहुंचाया है। नुकसान पहुंचाने के लिए भी तो आलस्य नहीं चाहिए न।

दुनिया के पूरे इतिहास में एक आदमी नहीं है जिसको हम दोष दे सकें, जो आलसी रहा हो, जिसने किसी को कोई हानि पहुंचाई हो। आलसी न चोर हो सकता है, न राजनीतिज्ञ हो सकता है, न गुंडा हो सकता है, न हत्यारा हो सकता है।

आलसी से क्या तकलीफ है आपको ? आलसी के ऊपर दोष ही क्या है ? सब दोष तो कर्मठ लोगों के ऊपर है। सब उपद्रव का जाल तो कर्मठ लोगों के ऊपर है। दुनिया में थोड़ा कर्म कम हो तो हानि नहीं होगी। फिर आपको पता नहीं, जो आलसी हो सकता है, वह आलसी होता ही है—जो नहीं हो सकता, उसके होने का कोई उपाय नहीं है।

नियति का अर्थ यह है कि जो, जो हो सकता है, वही हो सकता है। जो कर्मठ हो सकता है, वह कर्मठ रहेगा ही। उसको अगर आप कोठरी में भी बन्द कर दें तो भी वह कुछ न कुछ कर्म करेगा। वह बच नहीं सकता।

तिलक, लोकमान्य तिलक बन्द थे कारागृह में। तो लिखने का कोई सामान नहीं था, तो कोयले से दीवाल पर लिखते रहे। गीता रहस्य उन्होंने कोयले से लिख-लिख कर शुरू किया है। आपके सामने कोई सब कलम, कागज, एयर कंडीशन दफ्तर भी रख दे, तो भी आप कुछ लिखेंगे, जरूरी नहीं है। जो लिख सकता है, वह जेलखाने में कोयले से भी लिखेगा। जो नहीं

लिख सकता है, उसके लिखने का सब सामान भी हो, तो सामान ही देखकर उसके प्राण और शान्त हो जाएंगे और कुछ नहीं। आप जो कर सकते हैं, वह करते हैं। आपको एक कहानी कहूं।

जापान के एक राजा की मौज थी। वह आलसियों का बड़ा प्रेमी था। वह कहता था—आलसी बड़ा अनूठा आदमी है। तो उसने कहा कि और फिर आलसी का कोई कसूर नहीं। भगवान ने किसी को आलसी पैदा किया तो उसका क्या कसूर? तो उस राजा ने सारे जापान में एक डोंडी पिटवाई। उसने कहा कि जितने भी आलसी हों, उनको सरकार की तरफ से पेंशन मिलेगी, क्योंकि भगवान ने उनको आलसी बनाया। वे कर भी क्या सकते हैं और भगवान की वजह से वे परेशान हों!

उसके मंत्री बहुत हैरान हुए कि यह तो बड़ा उपद्रव का काम है। इसमें तो पूरा मुल्क आलसी हो जाएगा और यह खजाना लुट जाएगा अलग। खजाना आलसी तो भरते नहीं, कर्मठ भरते हैं। और आलसी पेंशन पाने लगें मुफ्त, तो सभी आलसी हो जाएंगे। पर राजा का हुक्म था, तो उन्होंने कोई तरकीब निकाली फिर। उन्होंने राजा से कहा, यह तो ठीक है; लेकिन असली आलसी कौन है, इसका कैसे पता चलेगा? राजा ने कहा यह भी कोई पता लगाना कठिन है, पता चल जाएगा। तुम खबर कर दो कि जो लोग भी पेंशन को उत्सुक हैं, राजमहल में इकट्ठे हो जाएं। राजधानी से कोई दस हजार आदमी इकट्ठे हो गए। सम्राट ने सबके लिए घास की झोपड़ियां बनवाईं। उन सबको ठहरा दिया।

रात सम्राट ने कहा, झोपड़ियों में आग लगवा दो। जो आदमी झोपड़ी से बाहर न भागे उनको पेंशन देना। चार आदमी नहीं भागे। जब झोपड़ी में आग लग गई तो उन्होंने अपने कम्बल ओढ़ लिए। उनके पड़ोस के लोगों ने कहा भी कि आग लगी है, उन्होंने कहा कि अगर कोई हमें ले जाए बाहर, तो ले जाए, बाकी यह अपने बस की बात नहीं है।

जो आलसी है, उसको आप कर्मठ बना भी कहां पाते हैं। जो कर्मठ है उसे आलसी बनाने का कोई उपाय नहीं है। जिन्दगी में हर आदमी जैसा है, वैसा है, यह नियति की धारणा है। इससे आप परेशान न हों कि लोग आलसी हो जाएंगे।

जिन मित्र ने पूछा है, लगता है वह आलसी टाइप हैं। लोग हो जाएंगे, इसका तो क्या डर है। उनको डर होगा अपना। वह होंगे आलसी, समझा-बुझा के कर्म में लगे होंगे। धक्का दे रहा होगा पिता, पत्नी। कोई धक्का दे रहा होगा कि लगो कर्म में। तो वे लगे होंगे अपने को समझाने। सुनकर उन्हें घबड़ाहट हुई होगी कि यह तो बात गड़बड़ है। संसार आलसी हो जाएगा। संसार नहीं हो जाएगा।

लेकिन अगर आप आलसी हो सकते हैं, तो देर मत करें, हो जाएं। किसी की मत सुनें चुपचाप हो जाएं, क्योंकि वही आपका स्वभाव है—वही आपका स्वधर्म है। फिर डरें मत तब। ध्यान रहे, इसका मतलब क्या होता है? इसका मतलब यह होता है कि फिर आलसी होने से जो परिणाम भोगना पड़ें, वह भोगें। पत्नी गाली देगी, पिता डंडा लेकर खड़ा हो जाएगा, पास-पड़ोसी निन्दा करेंगे, सब जगह बदनामी होगी, उसको शान्ति से सुनना कि वे लोग बदनामी करने में बंधे हैं, बदनामी कर रहे हैं। मैं आलसी हूं, मैं आलसी हूं—अगर आप इतना भी कर पाएं तो आपका आलस्य ही आपकी साधना हो जाएगी। कर्म भी साधना बन जाता है, अगर हम उसे स्वीकार कर लें। आलस्य भी साधना बन जाता है, अगर हम उसे स्वीकार कर लें। अपने स्वभाव को स्वीकार करके जो निष्ठापूर्वक जीता है, परमात्मा उससे दूर नहीं है। वह स्वभाव कुछ भी हो।

एक दूसरे मित्र ने भी यही पूछा है। उनको डर यह है कि अगर यह बात मान ली जाय कि नियति ठीक है तो फिर चोर चोरी करता रहेगा, पापी पाप करेगा, हत्या करने वाला हत्या करेगा। फिर तो दुनिया बिल्कुल विकृत हो जाएगी। फिर दुनिया का क्या होगा?

दुनिया का इतना डर क्या है? आपसे दुनिया चल रही है। डर सदा अपना है। अगर हत्यारा सुनेगा कि नियति है सब भगवान ने पहले से किया हुआ है। जिनको मारना है, अर्जुन से वे कह रहे हैं, उनको मैं पहले मार चुका। हत्यारा सोचेगा बिलकुल ठीक जिसको मुझे मारना है भगवान उसको पहले से मार चुके हैं। मैं तो निमित्त मात्र हूं। यह हत्यारों का ही डर है उसके भीतर।

लेकिन अच्छा है अगर नियति की बात सोच कर आपके भीतर की असलियत बाहर आती हो, तो यह आत्म निरीक्षण के लिए बड़ी कीमती है।

अगर आपको ऐसा लगता हो कि स्वीकार कर लो सब और पहला ख्याल यह आता हो—लेकर तिजोरी पड़ोसी की नदारद हो जाओ, तो यह आत्म-निरीक्षण के लिए बड़ा उपयोगी है—इससे आपके भीतर जो छिपा है, वह प्रकट होता है। आप अभी तक अपने को समझ रहे हों कि साधु हैं, आप हैं चोर। नियति के विचार ने आपको जाहिर कर दिया, उजागर कर दिया आपके सामने, नग्न रख दिया।

आप अब तक सोचते हों बड़ा शान्तिवादी हूं और अब पता चला कि दो-चार की हत्या करने में हर्ज क्या है। वे, कृष्ण तो पहले ही हत्या कर चुके हैं, मैं तो अर्जुन मात्र हूं—निमित्त। तो मैं कर दूं। तो आपको पता चला कि साधुता वगैरह सब ओछी-थोथी, ऊपर-ऊपर थी। भीतर यह असली रूप छिपा है।

नियति का विचार भी आपको आत्म-निरीक्षण का कारण बन जाएगा, एक। और दूसरी बात, नियति के विचार की पूरी शृङ्खला को समझ लेना जरूरी है। आप सोचते हों कि मैं किसी का सिर खोल दूं, क्योंकि यह तो नियति है। लेकिन वह भी आपका सिर खोलेगा तब, तब भी नियति ही मानना। तब नाराज मत हो जाना, तब चिन्तित मत होना। जब आप किसी की तिजोरी लेकर जाएं, वह तो ठीक है, लेकिन जब कोई आपकी तिजोरी लेकर चला जाय, या चार आदमी रास्ते में मिलकर आपकी तिजोरी छीन लें तब! तब वह भी ठीक होगा।

मैंने सुना है एक चोर पर मुकदमा चला। तीसरी बार मुकदमा चला। और मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि तुम तीसरी बार पकड़े गए हो। दो बार भी तुम्हारे खिलाफ कोई गवाही नहीं मिल सकी, कोई चश्मदीद गवाह नहीं मिला, जिसने तुम्हें चोरी करते देखा हो। अब तुम तीसरी दफे भी पकड़े गए हो, लेकिन कोई गवाह नहीं। तुम क्या अकेले ही चोरी करते हो, कोई साझीदार, कोई पार्टनर नहीं रखते? उस चोर ने कहा—कि दुनिया इतनी बेईमान हो गई कि किसी से साझेदारी करना ठीक नहीं है। चोर भी सोचते हैं कि ईमानदार से साझेदारी करो, कि दुनिया इतनी बेईमान हो गई कि साझेदारी चलती ही नहीं। अकेले ही करना है, जो करना है, किसी का भरोसा नहीं है। चोर भी चाहता है कि कोई भरोसे वाला आदमी मिले।

ध्यान रखना आप जब किसी का सिर खोल दें, तभी नियति नहीं है; जब वह लौट कर आपका सिर खोल दे तब भी नियति है। अगर दोनों की स्वीकृति हो तो आप जाएं और सिर खोल दें, देर मत करें। अगर यह दोनों की स्वीकृति हो कि जब आप किसी की चोरी करें तब भी और जब कोई आपका सब छीन कर ले जाय, तब भी। नियति का मतलब यह नहीं है कि आपके पक्ष में जो है, वह नियति है। नियति के दोनों पहलू हैं।

ध्यान रहे, जो आदमी नियति को स्वीकार कर लेता है, उसका जीवन इतना शांत, इतना मौन हो जाता है कि अगर परमात्मा ही चाहे तो ही उससे चोरी हो। इसे समझ लें ठीक से। कोई इतना मौन और शान्त हो जाता है सब स्वीकार करके कि अगर परमात्मा ही चाहे तो ही उससे हत्या हो। आप, परमात्मा चाहे कि न हो हत्या, तो भी कर रहे हैं। आप, परमात्मा चाहे कि न हो चोरी, तो भी कर रहे हैं। आप अपने लिये हिसाब लगाकर जी रहे हैं। इस जगत के विराट योजना में आपकी अलग ही दुनिया है। आपका अलग अपना ढांचा है। अलग पटरियां हैं, उन पर दौड़ रहे हैं।

नियति मानने वाले का अर्थ यह है कि जो भी है उसे समग्रता में स्वीकार है, जो भी परिणाम हो। वह यह नहीं कहेगा कि यह बुरा हुआ मेरे साथ। अगर कल आप पकड़ गए चोरी में और अदालत ने आपको सजा दी, तो आप क्या कहेंगे फिर। क्या आप यह कहेंगे कि मेरे साथ बुरा हुआ, मैं तो नियति का ही काम कर रहा था। मजिस्ट्रेट भी नियति का ही काम कर रहा है। और वह जो पुलिसवाला आपको हथकड़ियां डाले हुए खड़ा है, वह भी नियति का ही काम कर रहा है। नियति की स्वीकृति का अर्थ है—इस जगत में अब मुझे कोई भी शिकायत नहीं। इसे ठीक से समझ लें।

नियति की स्वीकृति का अर्थ है कि कोई शिकायत नहीं मुझे जगत में। जो भी हो रहा है उसकी मर्जी। फिर मैं आपसे कहता हूं कि अगर इतनी हिम्मत हो आपकी सब स्वीकार करने की, तो मैं आपको हक देता हूं कि चोरी, हत्या जो भी करना हो करना; लेकिन इतनी स्वीकृति पहले आ जाय। अब तक ऐसा हुआ नहीं।

जब इतनी स्वीकृति आ जाती है तो आदमी अपने को तो छोड़ ही देता है। आप हत्या करते हैं इसलिए कि आप अहंकार से जीते हैं। किसी

ने जरा-सी चोट पहुंचा दी, मिटा डालूंगा उसको। किसी ने जरा सी गाली दे दी, तो आप आग से भर जाते हैं। वह आग आपके अहंकार से आती है।

जो आदमी नियति को मान लेता है, उसका अहंकार तो समाप्त हो गया—वह कहता है—मैं तो हूं ही नहीं, अब जो भी हो। इस हालत में जो भी होगा उसका जुम्मा परमात्मा का है, आपका जुम्मा नहीं है। और यह दुनिया, हमें डर लगता है कि कहीं बिगड़ न जाय। जैसे कि दुनिया बहुत अच्छी हालत में है और बिगड़ने का और कोई उपाय भी है।

लोग मेरे पास निरन्तर आते हैं, वे इसी फिक्र में रहते हैं दुनिया बिगड़ जाएगी; जैसे कि अभी कुछ बचा है बिगड़ने को! क्या बचा है बिगड़ने को? क्या डर है अब खोने के लिए? हमारी हालत ऐसी है कि जैसे नंगा नहा रहा है और सोच रहा है कि कपड़े कहां सुखाएंगे। कपड़े हों तो भी! तो यह चिन्ता में ही पड़ा है। वे नहा भी नहीं रहे हैं इसी डर से कि कपड़े कहां सुखाएंगे।

दुनिया इससे बुरी हालत में और क्या हो सकती है—जिस हालत में है। और इतनी बुरी हालत में किस कारण से है? इसलिए नहीं कि हमने नियति को मान लिया है, इसलिए इतनी बुरी हालत में है; इसलिए कि हम सब कोशिश में लगे हैं कि इसे और अच्छा बना लें। हमने इसे स्वीकार नहीं किया है। हम सब कोशिश में लगे हैं इसे बनाने की। हम सब इसे अच्छा करने की कोशिश में लगे हैं अपने-अपने ढंग से—अपने-अपने इरादे अपनी-अपनी छोटी-छोटी दुनिया सबने बांट रखी है, उसको अच्छा कर रहे हैं।

एक चोर भी अगर चोरी कर रहा है तो किसलिए, कि बच्चों को शिक्षा दे सके, कि उसकी पत्नी के पास भी एक हीरे का हार हो जाय, कि उसके पास भी एक छोटा मकान हो, अपनी बगिया हो, कि अपनी एक गाड़ी हो। वह भी अपने कोने में अपनी दुनिया को अच्छा बनाने में, हीरे से जड़ने में, बगीचे से बसाने में लगा हुआ है। जो भी हम इस दुनिया में कर रहे हैं, उस सब में हम कुछ अपनी नजर से अच्छा करने की कोशिश में लगे हैं। अच्छा करने के लिए हम सोचते हैं, थोड़ा बुरा भी करना पड़े तो हर्ज क्या है, कर लो। हम सोचते हैं, इतना अच्छा करेंगे तो इसमें थोड़ी सी बुराई भी हुई तो क्षम्य है।

नियति का अर्थ है—कि हम दुनिया को बनाने की चिन्ता में नहीं लगे हैं—दुनिया जैसी है उसको उसके हाल पर छोड़कर, हम जहां हैं वहां चुपचाप जी रहे हैं—हम दुनिया को छू भी नहीं रहे हैं कि इसको अच्छा बनाएंगे।

ऐसी अगर संभावना बढ़ जाय जगत में तो दुनिया इससे लाख गुना बेहतर होगी। दुनिया को सुधारने वाले लोगों ने जितना उपद्रव खड़ा किया है उतना किसी ने भी खड़ा नहीं किया, वे मिस्चीफ मेकर्स हैं। उनकी बातों से ऐसा लगता है कि सारी दुनिया अच्छी करने में वे लगे हैं, लेकिन वे चीजों को विकृत करते चले जाते हैं। क्यों? क्योंकि वे परमात्मा के हाथ से, नियति के हाथ से यन्त्र अपने हाथ में ले लेते हैं—कर्ता स्वयं हो जाते हैं।

ये हमें बहुत उल्टा लगेगा, क्योंकि हमारे सोचने का सारा ढांचा इस पर निर्भर है कि हम कुछ करें—कुछ करके दिखाएं। बाप अपने बेटे को समझा रहा है, कुछ करके दिखाओ दुनिया में आए हो तो। इतना ही काफी होगा कि दुनिया को तुम्हारे होने का पता ही न चले--इससे बड़ी और कोई बात तुम नहीं कर सकते। तुम ऐसे रह जाओ कि पता ही न चले कि तुम थे। तुम्हारे जाने पर कहीं कोई शोर-शराबा न हो, कहीं कोई पत्ता भी न हिले। तो तुम परमात्मा ने जैसा चाहा, उस ढंग से जिये।

लेकिन कुछ करके दिखाओ—उसका मतलब है अहंकार को कुछ प्रकट करके दिखाओ। यह जो हमारे सोचने का ढंग है—कर्मवादी, वह नियति के बिल्कुल प्रतिकूल है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जो नियति को स्वीकार कर लेगा, वह कुछ करेगा ही नहीं। इसका यह मतलब नहीं है कि कुछ करेगा ही नहीं। हमारे तर्क बड़े अजीब हैं। एक मित्र कहता है कि वह कुछ करेगा ही नहीं और एक मित्र कहता है वह हत्या करेगा, चोरी करेगा। या तो करेगा तो बुरा करेगा नियति को स्वीकार करने वाला। और या फिर कुछ करेगा ही नहीं। यह तो हमारी धारणा है।

नहीं, नियति को स्वीकार करनेवाला कर्त्ता नहीं रहेगा, परमात्मा जो करवा रहा है, करता रहेगा। अपनी तरफ से कुछ करना नहीं जोड़ेगा, बहेगा, तैरेगा नहीं। उसकी धारा में बहता चला जाएगा। और बुरा, बुरा तो हम करते ही तब हैं जब अहंकार हममें गहन होता है। सब बुराई की जड़ में 'मैं' है। अब जिसके पास 'मैं' नहीं है उससे कुछ बुरा नहीं होने वाला

है। और अगर बुरा हमें दिखाई भी पड़े, तो परमात्मा की कोई मर्जी होगी, उस बुरे से कुछ भला होता होगा।

अब हम सूत्र को लें :

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर कृष्ण बोले, "हे अर्जुन ! मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूं। इस समय इन लोगों को नष्ट करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूं। इसलिए जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित हुए योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करने से भी इन सबका नाश हो जायेगा। इससे तू खड़ा हो और यश को प्राप्त कर तथा शत्रुओं को जीत कर धन-धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग। ये सब शूर-वीर पहले से ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं। हे सव्यसाचिन् ! तू तो केवल निमित्त मात्र हो जा।

तथा इन द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह, जयद्रथ और कर्ण तथा और बहुत से मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओं को तू युद्ध में मार और भय मत कर। निःसन्देह तू युद्ध में बैरियों को जीतेगा, इसलिए युद्ध कर।"

यह नियति की धारणा की पूरी व्याख्या इस सूत्र में है, "हे अर्जुन ! इस क्षण तू जो मेरा भयंकर रूप देख रहा है, विकराल, इस क्षण तू जो देख रहा मेरे मुंह से मृत्यु, इस क्षण तू जो देख रहा है अग्नि की लपटें मेरे मुंह से निकलती हुई, योद्धाओं को दौड़ता हुआ मृत्यु में मेरे मुंह में, उसका कारण है। मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूं। इस क्षण में, मैं एक महानाश के लिए उपस्थित हुआ हूं। इस क्षण एक विराट विनाश होने को है। और उस विराट विनाश के लिए मेरा मुंह मृत्यु बन गया है। मैं इस समय महाकाल हूं। यह मेरा एक पहलू है विध्वंस का। यह मेरा एक रूप है। एक रूप है मेरे सृजन का, एक रूप है मेरे विध्वंस का। अभी मैं विध्वंस के लिए उपस्थित हूं। यह तेरे सामने जो युद्ध के लिए तत्पर शूरवीर खड़े हैं मैं इन्हें लेने आया हूं। ये मेरी तरफ दौड़ रहे हैं ऐसा ही नहीं, मैं इन्हें लेने आया हूं। ये पतंगों की तरह दौड़ते दीये की तरफ जो योद्धा हैं, ये अपने आप दौड़ रहे हैं, ऐसा नहीं, मैं इन्हें निमंत्रण दिया हूं। ये थोड़ी ही देर में मेरे मुंह में समा जाएंगे। तूने भविष्य में झांक कर देख लिया। मेरे मुंह में तू अभी जो देख रहा है, वह थोड़ी बाद हो जाने वाली घटना है।"

भविष्य इसी क्षण मौजूद है

इस समय हम, इस संबंध में थोड़ी-सी समय की बात समझ लें। भविष्य वही है, जो हमें दिखाई नहीं पड़ता। नहीं दिखाई पड़ता इसलिए सोचते हैं नहीं है; क्योंकि जो हमें दिखाई पड़ता है सोचते हैं—है। जो नहीं दिखाई पड़ता, सोचते हैं—नहीं है। भविष्य हमें दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए सोचते हैं—नहीं है। लेकिन जो नहीं है, वह हो कैसे जाएगा ? जो नहीं है, वह आ कैसे जाएगा ? शून्य से तो कुछ आता नहीं है। जो किसी गहरे अर्थ में आ ही न गया हो, वह आएगा भी कैसे।

एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक दिलाबार प्रयोगशाला में, आक्सफोर्ड में, फूलों के चित्र ले रहा था। और एक दिन बहुत चकित हुआ। उसने एक बहुत ही संवेदनशील नई खोजी गई फिल्म पर एक गुलाब की कली का चित्र लिया। लेकिन वह चकित हो गया। कली तो थी बाहर और चित्र आया फूल का, तो घबड़ा गया। यह हुआ कैसे ? पर उसने प्रतीक्षा की और हैरानी तो तब उसकी बढ़ गई कि जब वह कली खिलकर फूल बनी, तो वह ठीक वही फूल थी जिसका चित्र आ गया था। दिलाबार प्रयोगशाला एक अनूठी प्रयोगशाला है दुनिया में। और वहां वे प्रयोग करते हैं इस बात के कि अगर फूल थोड़ी देर बाद खिलने वाला है, तो किसी गहरे सूक्ष्म तल पर अभी भी पंखुड़ियां खिल गई होंगी। जब यह घटना घटी थी, आज से कोई दस साल पहले, तब तक वैज्ञानिकों के पास कोई व्याख्या नहीं थी कि यह फूल का फोटो कैसे आया। जो फूल अभी है नहीं, थोड़ी देर बाद होगा। अभी तो कली है, फूल का चित्र आने का अर्थ क्या हुआ ?

लेकिन, फिर रूस में, एक दूसरे विचारक और वैज्ञानिक जो कि फोटोग्राफी पर काम कर रहा है गहन—पिछले तीस वर्षों से, उसने राज खोज निकाला। उसने हजारों चित्र लिए हैं भविष्य के—थोड़ी देर बाद के। और उसने जो आधार खोज निकाला है, वह यह है कि जब फूल की कली खिलती है तो खिलने के पहले अभी फूल तो बन्द है, खिलने के पहले फूल के आसपास का जो प्रकाश-आभा है, प्रकाश-वर्तुल है फूल की पत्तियों से जो किरणें निकल रही हैं—वे खिल जाती हैं पहले। वे रास्ता बनाती हैं, पंखु-ड़ियों के खिलने का, वे पहले खिल जाती हैं। प्रकाश की सूक्ष्म किरणें पहले खिल जाती हैं, ताकि रास्ता बन जाय। फिर उन्हीं के आधार पर, उन्हीं

प्रकाश की किरणों के आधार पर फूल की पंखुड़ियां खिलती हैं। तो वह जो चित्र आया था धुंधला, वह उन प्रकाश की पत्तियों का था जो असली हमारी आंख में दिखाई पड़ने वाली पत्तियों के पहले खिलती हैं।

इस रूसी वैज्ञानिक का कहना है कि हम बहुत शीघ्र आदमी की मृत्यु का चित्र ले सकेंगे, क्योंकि मरने के पहले प्रकाश के जगत में उसकी मृत्यु भर जाती है। हम तो बहुत दिन से मानते हैं कि छः महीने पहले, मरने के छः महीने पहले आदमी की जो आभा है, उसका जो प्रकाश मण्डल है, वह शून्य हो जाता है। और प्रकाश मण्डल की किरणें जो बाहर जा रही थीं, वे लौटकर वापस अपने में गिरने लगती हैं; जैसे पंखुड़ी बन्द हो जाती है।

इस रूसी वैज्ञानिक का कहना है कि अब हम चित्र ले सकते हैं। एक और अनूठी घटना उसको खुद घटी। वह प्रयोग कर रहा था कुछ फूलों के चित्र ले रहा था। वह चकित हुआ कि हाथ में फूल लिए हुए उसने एक चित्र लिया, तो उसके हाथ का जो चित्र आया, वह बहुत अजीब था, ऐसा कभी नहीं आया था। हाथ का उसका चित्र कई बार आया था फूल के साथ, लेकिन इस बार, इस हाथ की हालत बड़ी अजीब थी। जैसे हाथ अस्त-व्यस्त था। और हाथ में जो किरणें दिखाई पड़ रही थीं, वे एक दूसरे से लड़ रही थीं। लेकिन हाथ ठीक वैसे ही था कोई तकलीफ न थी, कोई अड़चन न थी, कोई बीमारी न थी।

तीन महीने बाद बीमार पड़ा वह और उसके हाथ में फोड़े-फुन्सी आए और उसके हाथ की चमड़ी पर रोग फैल गया। तब उसने जो चित्र लिया हाथ का तब उसे पता चला कि वह ठीक जो तीन महीने पहले झलक मिली थी, वही झलक गहरी हो गई है। फिर उसने स्वस्थ हाथों के चित्र लिए। उनमें किरणों की झलक अलग है, हारमोनियस है। सब किरणें लय-बद्ध हैं। बीमार लय टूट जाती है।

उसका कहना है कि अगर हाथ में कोई बीमारी आ रही हो, तो तीन महीने पहले हाथ की किरणों की लय टूट जाती है। उसका कहना यह भी है कि बहुत शीघ्र हम अस्पतालों में इसकी व्यवस्था कर सकेंगे कि आदमी बीमार होने के पहले सूचित किया जा सके कि तुम फलां बीमारी से, इतने

महीने बाद परेशान हो जाओगे। अभी इलाज कर लो ताकि वह बीमारी न आ सके।

भविष्य का अर्थ है कि हमें दिखाई नहीं पड़ रहा। ऐसा समझें कि मैं एक बहुत लम्बे वृक्ष के नीचे बैठा हूं, आप वृक्ष के ऊपर बैठे हैं। एक बैलगाड़ी रास्ते से आती है मुझे दिखाई नहीं पड़ रही। रास्ता लम्बा है मुझे दिखाई नहीं पड़ रही। मेरे लिए बैलगाड़ी अभी नहीं है, भविष्य में है। आप झाड़ के ऊपर बैठे हैं, आपको बैलगाड़ी दिखाई पड़ती है। आप कहते हैं, एक बैलगाड़ी रास्ते पर आ रही है। मैं कहता हूं, झूठ। बैलगाड़ी रास्ते पर नहीं है। आप कहते हैं थोड़ी देर में दिखाई पड़ेगी। तुम्हारे लिए अभी भविष्य में है, मेरे लिए वर्तमान में, क्योंकि मुझे दूर तक दिखाई पड़ रहा है। फिर बैलगाड़ी आती है और मैं कहता हूं, आपकी भविष्यवाणी सच है। कोई भविष्यवाणी न थी, सिर्फ दूर तक दिखाई पड़ रहा था। फिर बैलगाड़ी चलती हुई आगे निकल जाती है। थोड़ी देर बाद मुझे दिखाई नहीं पड़ती है। मैं कहता हूं, बैलगाड़ी फिर खो गई। आप वृक्ष के ऊपर से कहते हैं अभी भी नहीं खोई, बैलगाड़ी अभी भी रास्ते पर है; क्योंकि मुझे दिखाई पड़ रही है।

जैसे जमीन पर बैठकर अलग दिखाई पड़ता है, वृक्ष पर बैठकर ज्यादा दिखाई पड़ता है। ठीक चेतना की भी अवस्थाएं हैं। जहां हम खड़े हैं—जैसे मैंने चार अवस्थाएं कहीं आपसे। पहली, जहां 'मैं' की भीड़, वहां से हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। जब तक ठीक हमारी आंख के सामने न आ जाय, हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। फिर एक 'मैं' रह जाता है। हमारी दृष्टि बढ़ जाती है। हम ऊंचे तल पर आ गए। भीड़ से ऊपर उठ गए। एक बड़े वृक्ष पर बैठे हुए हैं। हमें दूर तक दिखाई पड़ने लगता है। कोई चीज आती है उसके पहले दिखाई पड़ने लगती है। फिर तीसरा और ऊंचा तल है, जहां कि मुझे पता चल गया कि 'मैं नहीं हूं' यह बड़ो ऊंचाई आ गई है। इस ऊंचाई से वे चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं जो बहुत दूर हैं, कभी होंगी।

फिर एक और ऊंचाई है जहां कि 'मैं नहीं हूं,' यह भी नहीं बचा। यह आखिरी ऊंचाई है। इससे ऊपर जाने का कोई उपाय नहीं है। यहां से सब दिखाई पड़ने लगता है। ऐसी अवस्था के व्यक्ति को हमने सर्वज्ञ कहा

है। इसके लिए फिर कुछ भी भविष्य नहीं रह जाता है। इसके लिए सभी कुछ वर्तमान हो जाता है।

यह जो कृष्ण को दिखाई पड़ा, कृष्ण में अर्जुन को दिखाई पड़ा—योद्धाओं का समा जाना और वह घबड़ाकर पूछने लगा। कृष्ण उससे कह रहे हैं कि तू भयभीत न हो अर्जुन, मैं इन युद्ध के लिए इकट्ठे हुए वीरों का अन्त करने के लिए आया हूं। मैं इस समय महाकाल हूं। उसकी ही झलक तूने देख ली। जो थोड़ी देर बाद होने वाला है, उसका प्रिव्यू, उसकी पूर्व झलक तुझे दिखाई पड़ गई है।

घटना में केवल तू निमित्त है

इससे तू खड़ा हो, यश को प्राप्त कर, शत्रुओं को जीत। ये शूरवीर पहले से ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं। तू यह चिन्ता भी मत कर कि तू इन्हें मारेगा। तू यह ध्यान भी मत रख कि तू इनके मारने का कारण है। तू कारण नहीं है, तू निमित्त है। निमित्त और कारण में थोड़ा फर्क समझ लेना चाहिए।

कारण का तो अर्थ होता है—जिसके बिना घटना न घट सकेगी। निमित्त का अर्थ होता है—जिसके बिना भी घटना घट सकेगी। आप, पानी गर्म करते हैं। गरम करने में आग कारण है। अगर आग न हो तो फिर पानी गर्म नहीं हो सकेगा। कोई उपाय नहीं है। लेकिन जिस बर्तन में रखकर आप गर्म कर रहे हैं वह कारण नहीं है, वह निमित्त है। इस बर्तन के न होने पर कोई दूसरा बर्तन होगा, कोई तीसरा बर्तन होगा।

बर्तन न होगा तो कोई और उपाय भी हो सकता है। जिस चूल्हे पर आप गर्म कर रहे हैं, यह चूल्हा न होगा तो कुछ और होगा, कोई सिगड़ी होगी, कोई स्टोव होगा, कोई बिजली का यन्त्र होगा, कोई और उपाय हो सकता है। गर्मी तो कारण है। लेकिन ये सब निमित्त हैं। आप गर्म कर रहे हैं, ये एक निमित्त है। कोई और गर्म कर सकता है—कोई पुरुष, कोई स्त्री, कोई बच्चा, कोई बूढ़ा, कोई जवान। आप भी नहीं होंगे तो कोई गर्म नहीं होगा पानी, ऐसा नहीं। एक बात, आग चाहिए। वह कारण है। बाकी सब निमित्त हैं। निमित्त बदले जा सकते हैं, कारण नहीं बदला जा सकता।

कृष्ण यह कह रहे हैं, कारण तो मैं हूं, तू निमित्त है। अगर तू नहीं मारेगा, कोई और मारेगा। इनकी मृत्यु होने वाली है। इनकी मृत्यु आ चुकी है। इनकी मृत्यु एक अर्थ में घटित हो चुकी है। मैं इन्हें मार ही चुका हूं अर्जुन। अब तू तो सिर्फ मुर्दों को मारने के काम में लगाया जा रहा है।

मुल्ला नसरुद्दीन की मुझे एक घटना याद आती है। मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक योद्धा आया। और वह योद्धा काफी हाऊस में बैठकर अपनी बहादुरी की बड़ी चर्चा करने लगा। और उसने कहा, आज युद्ध बड़ा घमासान था। और मैंने न मालूम कितने लोगों की गर्दनें साफ कर दीं, गिनती भी नहीं है। कितने लोगों को मैंने काटकर गिरा दिया; जैसे कोई घास काट रहा हो।

नसरुद्दीन भी बैठा था। उससे नहीं रहा गया। उसने कहा यह कुछ भी नहीं। एक दफा मेरे जीवन में भी ऐसा मौका आया था। युद्ध में मैं भी गया था। और गिनती तो नहीं की लेकिन फिर भी अन्दाज से कहता हूं, कम से कम पचास आदमियों की टांगें मैंने ऐसे काट डालीं जैसे घास काटा हो।

उस योद्धा ने कहा—टांगें! हमने कभी सुना नहीं कि टांगें भी युद्ध में काटी जाती हैं, सिर काटने चाहिए। तो नसरुद्दीन ने कहा, सिर तो कोई पहले ही काट चुका था। वह मौका मुझे नहीं मिला। मैं तो गया देखा कि सिर तो कटे पड़े थे, मैंने कहा, क्यों चूकना; मैंने टांगें काट डालीं। कोई गिनती नहीं है।

ये कृष्ण, अर्जुन से यही कह रहे हैं कि तू बहुत परेशान मत हो; जिनको तू मारने का सोच रहा है, उनको मैं पहले ही काट चुका हूं। टांगें ही काटने का तेरे ऊपर जुम्मा है, सिर कट चुके हैं। और ये टांगें काटने के कारण अकारण ही तू यश को प्राप्त हो जाएगा, धन को, राज्य को प्राप्त कर लेगा। वह तेरी मुफ्त की उपलब्धि होगी, सिर्फ निमित्त होने के कारण। जिन्हें तू सोचता है कि इन्हें मारने से हिंसा लगेगी, वे मर चुके हैं, वे मृत हैं। तू सिर्फ मुर्दों को आखिरी धक्का दे रहा है; जैसे ऊंट पर कोई आखिरी तिनका रखे और ऊंट बैठ जाय। बस तू आखिरी तिनका रख रहा है और ऊंट बैठने के ही करीब है। तू नहीं सहारा देगा तो कोई और यह तिनका रख देगा। यह पैर काटने का काम दूसरा भी कर सकता है, क्योंकि गर्दन

काटने का असली काम हो चुका है। नियति उन्हें काट चुकी है। इसका क्या अर्थ है ?

इसका अर्थ है कि दुर्योधन जहां खड़ा है, उसके साथी जहां खड़े हैं, उसके मित्रों की फौज जहां खड़ी है, वे जो कुछ भी कर चुके हैं—घड़ा भर चुका है, फूटने के करीब है। तू मुफ्त ही यज्ञ का भागी हो जाएगा। तू यह मौका मत छोड़। और ध्यान रखना कि तू निमित्त ही था इसलिए किसी अहंकार को बनाने की चेष्टा मत करना कि मैं जीत गया, कि मैंने मार डाला। इसमें दोहरी बातें हैं।

एक तो कृष्ण यह कह रहे हैं, तू नियति को स्वीकार कर ले—जो हो रहा है उसे हो जाने दे। और दूसरी उससे भी महत्वपूर्ण जो बात है, वह यह कह रहे हैं कि अगर तू जीत जाएगा। और जीत जाएगा, क्योंकि मैं तुझसे कहता हूं, जीत निश्चित है—जीत हो ही गई है। तू जैसा है, उसके कारण तू जीत गया है; तू जो करेगा, उसके कारण नहीं। तू जैसा है, उसके कारण तू जीत गया है।

राम और रावण को युद्ध पर खड़े देखकर कहा जा सकता है कि राम जीत जाएंगे। जिसको जीवन की गहराइयों का पता है, जिसे सूत्र पढ़ने आते हैं, वह कह सकता है कि राम जीत जाएंगे। राम जीत ही गए, क्योंकि रावण जो भी कर रहा है—वे हारने के ही उपाय हैं। बुराई हारने का उपाय है। राम कुछ भी बुरा नहीं कर रहे हैं। वे जीतते जा रहे हैं। वह जो अच्छा करता है, वह जीतने का उपाय है। तो हारने के पहले भी कहा जा सकता है कि रावण हार जाएगा। हारने के पहले कहा जा सकता है कि दुर्योधन, उसके साथी हार जाएंगे। उन्होंने जो भी किया है वह पाप पूर्ण है। उन्होंने जो भी किया है वह बुरा है। सबसे बड़ी बुराई उन्होंने क्या की है। सबसे बड़ी बुराई उन्होंने यह की है कि जगत की सत्ता से अपने को तोड़कर वे निरे अहंकारी हो गए हैं। उन्होंने प्रवाह से अपने को तोड़ लिया है।

ऐसा समझें। हमें दिखाई नहीं पड़ता इसलिए समझना मुश्किल होता है। एक नदी में हम दो लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े डाल दें। और एक टुकड़ा चेष्टा करने लगे नदी के विपरीत धारा में बहने की। करेगा नहीं,

क्योंकि लकड़ी के टुकड़े इतने नासमझ नहीं होते, जितने आदमी होते हैं। मगर मान लें कि आदमी जैसे हों लकड़ी के टुकड़े, आदमियों की बीमारी उनको लग गई, आदमियों के साथ रहने से इन्फेक्शन हो गया; और एक टुकड़ा नदी की तरफ ऊपर बहने लगा।

क्योंकि आदमी को हमेशा धारा के विपरीत बहने में मजा आता है। धारा में बहने में क्या रखा है, कोई भी बह जाता है। कुछ उल्टा करो! चौगड्डे पर आप शीर्षासन लगाकर खड़े हो जाएं, भीड़ लग जाएगी; पैर पर खड़े रहें, कोई देखने नहीं आएगा। क्या! मामला क्या है? सिर के बल जो आदमी खड़ा है, उल्टा कुछ कर रहा है। यह आकर्षित करता है। आदमी उल्टा करने में उत्सुक है। क्यों? क्योंकि उल्टे से अहंकार सिद्ध होता है। सीधे से कोई अहंकार सिद्ध होता नहीं।

अगर आप किसी को रास्ते में से चलते में गिर रहा हो कोई संभाल ले, अखबार में कोई खबर नहीं छपेगी। रास्ते में कोई चल रहा हो, धक्का दे के गिरा दे, दूसरे दिन खबर छप जाएगी। कुछ अच्छा करिए दुनिया में किसी को पता नहीं चलेगा, कुछ बुरा करिए फौरन पता चल जाएगा। अखबार उठाकर देखते हैं आप। पहली लकीर से लेकर आखिरी लकीर तक सारी लकीर उन लोगों के बावत है, जो कुछ उल्टा कर रहे हैं। कहीं कोई दंगा-फसाद हो रहा हो, कहीं कोई हड़ताल हो रही हो, कहीं कोई चोरी, कहीं डाका, कहीं कोई चेरीयट आया हो, कहीं कुछ उपद्रव हुआ हो तो अखबार में खबर बनती है।

आदमी उल्टे में उत्सुक है तो हो सकता है लकड़ी का टुकड़ा उल्टा बहे। जो टुकड़ा उल्टा बहेगा, हम पहले से ही कह सकते हैं किनारे खड़े हुए कि यह हारेगा। इसमें कोई बड़ी बुद्धिमता की जरूरत नहीं है, क्योंकि धारा के विपरीत लकड़ी का टुकड़ा बहने की कोशिश कर रहा है। जो नदी की धारा के साथ बह रहा है, हम कह सकते हैं, इसको हराने का कोई उपाय नहीं है। तो हराइएगा कैसे? इसने कभी जीतने की कोई कोशिश ही नहीं की। इसको हराइयेगा कैसे? यह तो नदी की धारा में पहले से ही बह रहा है, स्वीकार करके। यह तो कहता है, धारा ही मेरा जीवन है—जहां ले जाए, जाऊंगा। कहीं और मुझे जाना नहीं। राम नदी की धारा में बहते

हुए थे। इसलिए पहले से ही कहा जा सकता है, वे जीतेंगे। रावण हारेगा वह धारा के विपरीत बह रहा है।

ये, कृष्ण अर्जुन से जो कह रहे हैं, किसी पक्षपात के कारण नहीं कि मैं तेरे पक्ष में हूं, तेरा मित्र हूं इसलिए तू जीतेगा। इसका गहन कारण यह है कि कृष्ण देख सकते हैं कि अर्जुन जिस पक्ष में खड़ा है, वह धारा के अनुकूल बहता रहा है। और अर्जुन के विपरीत जो लोग खड़े हैं, वे धारा के प्रतिकूल बहते रहे हैं उनकी हार निश्चित है। ये हारेंगे, पराजित होंगे। इसलिए तू नाहक ही अड़चन में पड़ रहा है। और तेरी अड़चन ही तुझे धारा के विपरीत बहने की संभावना जुटाए दे रही है। तू है क्षत्रिय। तेरी सहज धारा, तेरा स्वधर्म यही है कि तू लड़। और लड़ने में निमित्त मात्र हो जा। तू संन्यास की बातें कर रहा है, वह उल्टी बातें हैं।

अर्जुन अगर संन्यासी हो जाय तो प्रभावित बहुत लोगों को करेगा। प्रभावशाली व्यक्ति था। लेकिन हो नहीं पाएगा संन्यासी। और अगर संन्यास में यह बैठ भी जाए कहीं जंगल में ध्यान वगैरह करने, तो ज्यादा देर नहीं चलेगा ध्यान वगैरह उसका। एक हरिण दिखाई पड़ जाएगा और उसके हाथ धनुष-बाण खोजने लगेंगे। और एक कौआ ऊपर से बीट कर देगा, तो पत्थर उठाकर उसका वह वहीं फैसला कर देगा।

वह जो उसका होना है, जो स्वधर्म है उसका—वह योद्धा है। उसमें कहीं भी कोई व्यवस्था नहीं है, जिससे कि वह संन्यासी हो सके। तो कृष्ण उससे कह रहे हैं कि तू नदी में उल्टे बहने की कोशिश कर रहा है, अगर तू सोचता है कि मैं ऐसा करूं, वैसा करूं, यह ठीक नहीं है, वह ठीक है। कृष्ण उससे कह रहे हैं कि सिर्फ बह जा, नियति के हाथ में छोड़ दे। तू निमित्त हो जा, उनकी हार निश्चित है। और विपक्ष में खड़े योद्धा मेरे मुंह में जा रहे हैं—मृत्यु में। यह निश्चित है, वे पहले ही मारे जा चुके हैं। ये द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, ये जयद्रथ और कर्ण, जो महाप्रतापी हैं, महावीर हैं—इन सभी से भय मत कर। क्योंकि जिनके साथ ये खड़े हैं, वे गलत लोग हैं। उनके साथ ये पहले ही डूब चुके।

भीष्मपितामह भले आदमी हैं, लेकिन गलत लोगों के साथ खड़े हैं। अक्सर भले आदमी कमजोर होते हैं। और अक्सर भले आदमी कई दफा

चुपचाप बुराई को सह लेते हैं। और बुराई के साथ खड़े हो जाते हैं। ये जो खड़े हैं बुराई के साथ, ये कितने ही भले हों और इनके पास कितनी ही शक्ति हो, तेरी शक्ति से ये नहीं कटेंगे, विराट की शक्ति के विपरीत होने से ये कट गए हैं। इस अर्थ को ठीक से समझ ले। तू इन्हें नहीं मार पाएगा अर्जुन। और कर्ण से सीधा मुकाबला हो सकता था और कुछ तय करना मुश्किल है कि कौन जीतेगा। वे एक ही मां के बेटे हैं। और कर्ण रत्ती भर भी कम नहीं है। डर तो यह है कि वह ज्यादा भी साबित हो सकता है। लेकिन हारेगा, कोई ताकत के कारण ही नहीं, हारेगा इसलिए कि विराट की शक्ति के विपरीत खड़ा है। जो विराट चाहता है, उसके विपरीत खड़ा है। विराट के विपरीत खड़ा होना खतरनाक है। फिर कभी छोटा आदमी भी हरा सकता है।

जापान में जुजुत्सु एक जूडो की कला होती है, उसमें छोटा बच्चा भी पहलवान को हरा देता है। स्त्री भी पुरुष को हरा देती है। अभी तो पश्चिम में, चूंकि स्त्रियों का आंदोलन चलता है—लिब-मूवमेन्ट—स्वतन्त्रता का, वे सभी स्त्रियां जुजुत्सु सीख रही हैं। क्योंकि पुरुषों से अगर टक्कर लेनी पड़े, तो क्या उपाय है; क्योंकि पुरुष शरीर से तो ज्यादा ताकतवर है। इसलिए अमरीका में नगर-नगर में जुजुत्सु के स्कूल खुलते जा रहे हैं। स्त्रियां ट्रेनिंग ले रहीं और थोड़े सावधान रहना आदमी, कल यहां भी लेंगी। अगर जुजुत्सु की ट्रेनिंग ठीक से ले ली हो तो बड़े से बड़ा ताकतवर पुरुष साधारण कमनीय स्त्री से हार जाता है। कला क्या है? कला यही है, जो कृष्ण कह रहे हैं। जुजुत्सु की कला यह है कि विराट के साथ रहना। इस आदमी की फिक्र मत करना, विराट की फिक्र करना। इस आदमी से सीधे मत लड़ना। तुम तो विराट के साथ सहयोग करना। फिर यह आदमी नहीं जीत सकेगा। उससे सहयोग का पूरे का पूरा प्रशिक्षण है, पूरी साधना है कि विराट से कैसे सहयोग करना। तो जुजुत्सु का पहला नियम है कि जुजुत्सु का साधक जब खड़ा होगा, तो यह नहीं कहता कि मैं लड़ रहा हूं। वह अपने को पहले समर्पित कर देता है—विराट को कि मैं परमात्मा को समर्पित हूं। अगर तेरी मरजी हो, तो जो हो। फिर वह लड़ता है। फिर लड़ने में वह हमला नहीं करता। जुजुत्सु का साधक हमला नहीं करता, सिर्फ हमला सहता है। वह कहता है, तुम मुझे मारो मैं सहूंगा, क्योंकि परमात्मा मेरे साथ है।

आप जानकर हैरान होंगे कि अगर कोई व्यक्ति बिलकुल शान्त, सहने को राजी हो और आप घूंसा मार दें उसको और वह जरा भी विरोध न करे, अचेतन विरोध भी न करे, साधना यही है। क्योंकि अचेतन अगर कोई घूंसा आपको मारने आता है, तो आप कड़े हो जाते हैं—आपने विरोध शुरू कर दिया—आपकी हड्डियां कड़ी हो जाती हैं।

जुजुत्सु की कला कहती है कि आपकी हड्डियां अगर कड़ी हो गई और किसी ने चोट मारी, तो कड़े होने की वजह से टूट जाती हैं, उसकी चोट से नहीं टूटतीं। अगर आप नर्म रहे, और आपने जरा भी रेजिस्ट नहीं किया, आप सहने को राजी रहे कि तुम घूंसा मारो, हम तुम्हारे घूंसे को पी जाएंगे, क्योंकि विराट हमारे साथ खड़ा है—उसका हाथ टूट जाएगा—हाथ में फ्रेक्चर हो जाएगा। और यह वैज्ञानिक है।

इसको आप ऐसा भी देख सकते हैं। एक बैलगाड़ी में आप बैठे हैं और एक शराबी बैठा है। बैलगाड़ी उलट जाए, आपको फ्रेक्चर हो जाएगा, शराबी को बिल्कुल नहीं होगा। शराबी रोज गिर रहा है सड़क पर, कम से कम इतना तो सीखो उससे कि चोट नहीं खाता। रोज सुबह देखो फिर ताजे हैं। नहा-धोकर फिर चले जा रहे हैं कहीं न कहीं। रोज गिर रहे हैं, इनको चोट क्यों नहीं लगती? शराबी अपने को अलग नहीं रखता। जब शराब पी लेता है तो बेहोश हो गया—वह प्रकृति का हिस्सा हो गया। अब उसको कोई होश नहीं कि मैं हूं। अब वह गिरता है, तो कड़ा नहीं हो पाता। बैलगाड़ी उलट रही, आप भी उलट रहे हैं, वह भी उलट रहा है आपके साथ। आप संभल गए, बचने लगे, आपका अहंकार आ गया कि मैं बचूं। और शराबी का कोई अहंकार नहीं आया, वह लुढ़क गया। जैसे ही बैलगाड़ी लुढ़की, उसके साथ लुढ़क गया, उसका कोई विरोध नहीं है, कोई प्रतिरोध नहीं है, कोआपरेशन है, सहयोग है। उसको चोट नहीं लगेगी।

छोटे बच्चे गिरते हैं तो चोट नहीं लगती है। जैसे-जैसे बड़े होने लगते हैं, चोट लगने लगती है। जिस दिन से आपके बच्चे को चोट लगने लगे, समझना कि अहंकार निर्मित हो गया। जब तक उसको चोट नहीं लग रही तब तक अहंकार नहीं है। वह गिरता है तो गिरने के साथ होता है, रोकता नहीं कि अरे, मैं गिर रहा हूं। अभी कोई है नहीं जो गिरने से रोके

अपने को—वह गिर जाता है, गिर कर उठ जाता है, कहीं कोई चोट लगती नहीं।

यह जो कृष्ण का कहना है कि तू जीता ही हुआ है, वह इसीलिए कि तू इस पक्ष में है, जो बुराई के साथ नहीं है। तू विपरीत नहीं जा रहा है। तू साथ बह रहा है। और ये हारे ही हुए हैं, ये विपरीत बह रहे हैं। ये नियति तय हो गई है अर्जुन, इसलिए तू व्यर्थ चिन्तित न हो, निःसन्देह तू जीतेगा, युद्ध कर!

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ।३५।
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवंति सर्वे नमस्यंति च सिद्धसंघाः ।३६।
कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनंत देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ।३७।
त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनंतरूप ।३८।
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ।३९।
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वतः एव सर्व ।
अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ।४०।

विराट का दर्शन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, क्रास मैदान, बंबई, संध्या : दिनांक १० जनवरी ७३

आठवां प्रवचन

नियति की स्वीकृति में ही शांति

एक मित्र ने पूछा है कि जीवन में छोटे-बड़े दुख के कारण कभी-कभी मन अशांत, निराश और बेचैन बन जाता है। तो संसार में ही रहकर मन सदा शान्त, प्रसन्न और उत्साही कैसे रखें ?

नियति की जो बात हम कह रहे हैं, उसे अगर ठीक से समझ लें तो मन शांत हो जाएगा। और कोई भी उपाय मन को शांत करने का नहीं है, और सब उपाय ऊपरी-ऊपरी हैं। उनसे थोड़ी बहुत राहत मिल सकती है, लेकिन मन शान्त नहीं हो सकता। लेकिन नियति की बात थोड़ी कठिन है, समझ में थोड़ी मुश्किल से पड़ती है। मन अशांत होता है, नियति का विचार कहेगा, उस अशांति को स्वीकार कर लें—उसके विपरीत शांत होने की कोशिश मत करें। मन उदास है, नियति का विचार कहेगा, उदासी को स्वीकार कर लें, प्रफुल्लित होने की चेष्टा न करें।

क्योंकि असली अशांति, अशांति के कारण नहीं, अशांति को दूर हटाने के विचार से पैदा होती है। असली उदासी, उदासी से नहीं, कैसे मैं प्रफुल्लित हो जाऊं—इस धारणा से, इस विचार से, इस आकांक्षा से पैदा होती है। उदासी को स्वीकार कर लें और आप पाएंगे शीघ्र ही कि उदासी विलीन हो गई है। उसकी स्वीकृति में ही उसका अन्त है। कैसे दुखी न हों, यह न पूछें। दुखी हैं, दुख को स्वीकार कर लें। वह भाग्य, वह नियति, वह

है। उससे लड़ें मत, उससे सब लड़ाई छोड़ दें। उसके पार जाने की आकांक्षा भी छोड़ दें। उससे विपरीत की मांग भी छोड़ दें। उसे स्वीकार कर लें कि यह मेरी नियति, यह मेरा भाग्य है। मैं दुखी हूं, बात यहां पूरी हो गई।

दुख से राजी हो जाएं और फिर देखें कि दुख कैसे टिक सकता है। अशांति को स्वीकार कर लें और आप शांत हो जाएंगे। हमारी अशांति, अशांति नहीं है। हमारी अशांति, शांति की चाह से पैदा होती है। इसलिए जो लोग शांति के लिए बहुत आकांक्षी हो जाते हैं, उनसे ज्यादा अशांत कोई भी नहीं होता।

मैं रोज न मालूम कितने लोगों को इस सम्बन्ध में, इस ऊलझन में पड़ा हुआ देखता हूं। जिस दिन से आपको ख्याल हो जाता है कि शांत कैसे होऊं, उस दिन से आपकी अशांति बढ़ेगी। क्योंकि अशांति तो है ही, अब एक नयी अशांति भी शुरू हो गई कि शांत कैसे होऊं। और अशांत आदमी कैसे शांत हो सकता है! और अशांत आदमी पूजा भी करेगा, तो उसकी अशांति ही होगी उसकी पूजा में प्रगट। और अशांत आदमी ध्यान भी करेगा, तो उसका ध्यान भी उसकी अशांति से ही निकलेगा। अशांत आदमी मंदिर भी जाएगा, तो अपनी बेचैनी को साथ ले जायेगा। अशांत गीता भी पढ़ेगा, तो करेगा क्या? अशांति से अशांति ही निकल सकती है। इसलिए आप कुछ भी करें, करेगा कौन? वह, जो अशांत है, वही कुछ करेगा।

ध्यान रहे, एक बहुत मनोवैज्ञानिक आधारभूत नियम है कि अगर आप अशांत हैं, तो आप जो भी करेंगे, उससे अशांति बढ़ेगी। कौन करेगा? अशांत आदमी कुछ करेगा! वह और अशांति को दुगनी कर लेगा, तीन गुनी कर लेगा।

ऐसा समझें कि एक आदमी पागल है और वह अब ठीक होने की कोशिश कर रहा है, खुद ही। वह क्या करेगा? वह थोड़ा ज्यादा पागल हो सकता है और कुछ भी नहीं कर सकता। उसकी कोशिश भी पागलपन से ही निकलेगी। छोड़ें पागल से शायद हमारा मन राजी न हो। और एक लोभी आदमी, वह लोभ छोड़ने की कोशिश कर रहा है। वह करेगा क्या? वह लोभ छोड़ने की कोशिश भी लोभ से ही निकलेगी। वह आदमी लोभी है। तो अगर कोई उसको विश्वास दिला दे कि अगर वह इतना दान करता

है, तो स्वर्ग में उसे भगवान के मकान के बिल्कुल पास मकान मिल जाएगा। अगर यह पक्का हो जाय, तो वह दान कर सकता है। मगर यह दान लोभ से निकलेगा। स्वर्ग में जगह बिल्कुल निश्चित हो जाय, यह लोभ, तो दान कर सकता है। मगर यह दान लोभ के विपरीत नहीं है, लोभ का हिस्सा है।

इसलिए जिनको आप दान करते देखते हैं, यह मत समझना कि वे लोभ से मुक्त हो गए। सौ में निन्यानबे मौके पर तो यही हालत है कि यह उनका नया लोभ है। इस जमीन पर उनके लोभ का अन्त नहीं हो रहा है, परलोक तक जा रहा है! वह यहां भी नहीं इन्तजाम कर लेना चाहते हैं, मरने के बाद भी उनका लोभ फैल गया है। वे वहां भी इन्तजाम कर लेना चाहते हैं। लोभी आदमी क्या करेगा? जो भी करेगा वह लोभ के कारण ही कर सकता है। क्रोधी आदमी क्या करेगा? वह जो भी करेगा क्रोध के कारण कर सकता है।

आप जो हैं, उसके रहते आप जो भी करेंगे, वह आपसे ही निकलेगा। और अगर नीम से पत्ता निकलेगा, तो वह कड़वा होगा। और आपसे जो पत्ता निकलेगा, वह आपका ही स्वाद वाला होगा। नियति का विचार यह कहता है कि आप कुछ करें मत। आप कर नहीं सकते कुछ, आप सिर्फ राजी हो जाएं। इसका प्रयोग करके देखें। अशांति आई है बहुत बार और आपने शांत होने की कोशिश की और अब तक हो नहीं पाए।

इस दूसरे प्रयोग को करके देखें। अशांति आए स्वीकार कर लें कि मैं अशांत हूं। मैं आदमी ऐसा हूं कि मुझे अशांति मिलेगी। मैंने ऐसा कर्म किया होगा कि मुझे अशांति मिल रही है। नियति में मेरी अशांति का ही पात्र हूं मैं, इसे स्वीकार कर लें। इस अशांति से रत्ती मात्र संघर्ष न करें। क्या होगा?

जैसे ही आप स्वीकार करते हैं, अशांति तिरोहित होनी शुरू हो जाती है; क्योंकि स्वीकार का भाव ही उसकी मृत्यु बन जाता है। जिस दुख के लिए हम राजी हो गए, वह दुख कहां रहा? हम तो ऐसे लोग हैं कि सुख के लिए भी राजी नहीं हो पाते! दुख के लिए राजी होना बहुत मुश्किल है। लेकिन जिस बात के लिए हम राजी हो गये...।

अभी कुछ ही दिन पहले एक महिला मेरे पास आई। उसके पति मर गए। स्वाभाविक है दुखी हो। अभी युवा है, कोई तीस-बत्तीस साल की

उम्र है। अभी शादी हुए ही दो-चार साल हुए थे। योग्य है, पढ़ी-लिखी है, सुशिक्षित है, किसी युनिवर्सिटी में प्रोफेसर है। तो समझदारी के कारण वह रोई भी नहीं। अपने को समझाया, रोका, संयम किया। लोगों ने बड़ी प्रशंसा की। जिन्होंने भी देखा—उसके धैर्य की, दृढ़ता की, सबने प्रशंसा की। तीन महीने पति को मरे हो गए। अब उसको हिस्टोरिक फिट आने शुरू हो गए। अब उसको चक्कर आकर बेहोशी आ जाती है। मैं सारी बात समझा। मैंने उससे कहा कि तू पति के मरने पर रोई नहीं, वही उपद्रव हो गया है। पति के होने का सुख तूने जाना, तो दुख कौन जानेगा और पति के प्रेम में तू आनन्दित थी, तो पति के विरह में दुखी कोई और होगा! वह नियति का हिस्सा है।

जिसके साथ हमने सुख पाया, उसके अभाव में दुख पाएगा कौन? तुझे ही पाना होगा। इसमें बंटवारा नहीं हो सकता कि सुख तो मैं पा लूं और दुख न पाऊं। वह तो चुन लिया तूने जिस दिन पति के साथ रहकर सुख पाया था, उसी दिन यह दुख भी निर्धारित हो गया। यह दुख कौन पाएगा? तू रो, छाती पीट। उसने कहा—आप ऐसी सलाह देते हैं। मुझे तो जितने बुद्धिमान आदमी मिले सब प्रशंसा करते हैं। मैंने कहा, वे ही तेरे हिस्टीरिया के जन्मदाता हैं, ये बुद्धिमान आदमी जो तुझे मिले! जब तू पति के पास सुखी हो रही थी तब उन बुद्धिमानों ने तुझे नहीं कहा था कि सुखी मत हो। अगर तूने सुख रोक लिया होता उस वक्त, तो अभी दुख भी न होता। लेकिन एक कदम उठा लिया तो दूसरा उठाना ही पड़ेगा। तू दुखी हो ले, नहीं तो तू पागल हो जाएगी।

वह मेरी बातें सुनते समय ही फूट पड़ी। उसके आंख से आंसू बहने लगे, उसने रोना शुरू कर दिया। वह आयी थी तब एक पहाड़ का बोझ उसके मन पर था, लौटते वक्त वह हल्की हो गयी थी। उसने मुझसे कहा—तो मैं हृदय भर के रो सकती हूं? रोना ही चाहिए। हृदय भर कर रो ले और लड़ मत। दुख आया है, उसे स्वीकार कर ले और ठीक से दुखी हो ले, ताकि दुख निकल जाय। उसकी अभी मुझे खबर मिली है कि वह हल्की हो गई, फिट बन्द हो गए। उसने रो लिया, हृदय भर कर दुखी हो ली। उसने स्वीकार कर लिया—दुख मेरी नियति है।

जिस चीज को हम स्वीकार कर लेते हैं, उसके हम पार हो जाते हैं। अशांत हैं, अशांति को स्वीकार कर लें। लड़ें मत। फिर देखें क्या होता है।

स्वीकृति क्रांतिकारी तत्व है। और जिस बात को हम स्वीकार कर लेते हैं, उससे छुटकारा उसी क्षण शुरू हो जाता है। हमारा उपद्रव क्या है? सुख को हम पकड़ते हैं, दुख को हम पकड़ते नहीं हैं। दुख से हम बचना चाहते हैं, सुख कहीं छूट न जाय, इस कोशिश में होते हैं; और हमें पता नहीं कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जब हम सुख को पकड़ते हैं, तब हमने दुख को पकड़ लिया, वह उसी का छिपा हुआ पहलू है। तो हम उल्टा काम कर रहे हैं, सुख को पकड़ना चाहते हैं, दुख को हटाना चाहते हैं। यह नहीं होगा।

या तो दोनों को छोड़ दें, या दोनों के लिए राजी हो जाएं। दोनों हालत में आपके जीवन में क्रान्ति हो जायगी। लेकिन सुख-दुख तो हमारी समझ में आ जाते हैं। जब कोई आ जाता है, तो कहता है—शांति, अशांति, तो लगता है यह कोई दूसरी बात कर रहा है। बात वही है। वही के वही सिक्के हैं, नाम बदल गए हैं। आप शांति चाहते हैं। इसलिए आपको अशांत होना पड़ेगा, क्योंकि वह दूसरा हिस्सा कौन स्वीकार करेगा। आप शांति पा लेंगे, तो अशांति कौन पाएगा? आधा हिस्सा कहां जाएगा? और सिक्के के दो पहलू अलग नहीं किए जा सकते। आप अशांति को भी राजी हो जाएं। अगर शांति चाहते हैं, तो दोनों से राजी हो जाएं। दोनों के राजी होने में ही क्रान्ति घट जाती है; क्योंकि साधारणतया मन दोनों के लिए राजी नहीं होता, एक के लिए राजी होता है। मन की तरकीब यह है कि आधे को पकड़ो, आधे को छोड़ो—यही मन का द्वन्द्व है, यही उसका कष्ट है। जब आप दोनों के लिए राजी हो गए, आप मन के पार हो गए। या दोनों को छोड़ दें, या दोनों को पकड़ लें—दोनों एक ही बात है।

सहज योग

इसलिए जगत में दो उपाय हैं, दो विधियां हैं। परम अनुभूति के पाने की दो विधियां हैं। एक, दोनों को छोड़ दें—यह संन्यासी का मार्ग है। दोनों को पकड़ लें—यह गृहस्थ का मार्ग है। दोनों का परिणाम एक है, क्योंकि मन की तरकीब है—एक को पकड़ना और एक को छोड़ना। दोनों को छोड़ें तो भी मन छूट जाता है, दोनों को पकड़ लें तो भी मन छूट जाता है, क्योंकि मन आधे के साथ जी सकता है। ये दो उपाय हैं। या तो दोनों

छोड़ दें—सुख भी, दुख भी; शांति भी, अशांति भी। फिर आपको कोई अशांत न कर सकेगा। या दोनों पकड़ लें। दोनों पकड़ना सहज योग है।

इन मित्र ने यही पूछा है कि घर में, संसार में रहते हुए कैसे शांति पाऊं? पहली बात शांति पाने की कोशिश मत करें। अशांति को स्वीकार कर लें। आप शांत हो जाएंगे। फिर दुनिया में कोई आपको अशांत नहीं कर सकता। अगर मैं अशांति के लिए राजी हूं, तो मुझे कौन अशांत कर सकेगा। अगर मैं गाली के लिए राजी हूं, तो कौन मेरा अपमान कर सकता है। मैं गाली के लिए राजी नहीं हूं, इसलिए कोई मेरा अपमान कर सकता है। मैं अशांति के लिए राजी नहीं हूं, इसलिए कोई भी अशांत कर सकता है। और जितना हम शांत होने की कोशिश करते हैं उतने हम संवेदनशील हो जाते हैं। आप देखें अक्सर घरों में यह हो जाता है। घर में अगर एकाध धार्मिक आदमी भूल-चूक से पैदा हो जाय, तो घर भर में उपद्रव हो जाता है। क्योंकि वह प्रार्थना कर रहा है, तो कोई अशांति खड़ी नहीं कर सकता। बच्चे खेल नहीं सकते, कोई शोर-गुल नहीं कर सकता। जरा कुछ खटपट हुई कि वह आदमी उपद्रव मचाएगा। वह बैठा है शांत होने को, बैठा है पूजा, प्रार्थना, ध्यान करने को। लेकिन यह बड़ी अजीब बात है कि ध्यान करने वाला आदमी इतना परेशान क्यों होता है। गैर-ध्यान करने वाले इतने परेशान नहीं होते। यह ज्यादा आतुर होकर शांति को पकड़ने की कोशिश कर रहा है। जितनी आतुरता से शांति की मांग कर रहा है उतनी अशांति बढ़ रही है। छोटा-सा बच्चा फिर हिल नहीं सकता, बर्तन गिर जाय, आवाज हो जाय तो उपद्रव हो जाता है। एक आदमी घर में धार्मिक हो जाय, पूरे घर को अशांत कर देगा। कठिनाई क्या हो रही है? वह समझ नहीं पा रहा है कि वह मांग क्या कर रहा है। वह जो मांग रहा है, वह असंभव है।

अगर हम ठीक से मन की प्रक्रिया को समझ लें, तो मन की प्रक्रिया को समझ कर जीवन बदला जाता है। प्रक्रिया यह है कि मन हमेशा चीजों को दो में तोड़ लेता है—मान-अपमान, सुख-दुख, शान्ति-अशान्ति, संसार-मोक्ष। दो में तोड़ लेता है और कहता है, एक नहीं चाहिए अरुचिकर है और एक चाहिए वह रुचिकर है। बस यह मन का खेल है। इस मन से बचने के दो उपाय हैं, या तो दोनों के लिए राजी हो जाएं, मन मर जाएगा।

या दोनों को छोड़ दें, तो भी मन मर जाएगा। जो आपके लिए अनुकूल पड़े वैसा कर लें; अन्यथा आपके शान्त होने का फिर कोई उपाय नहीं है।

जब तक आप शान्त होना चाहते हैं, तब तक शान्त न हो सकेंगे। जब तक आप सुखी होना चाहते हैं, दुख आपका भाग्य होगा। और जब तक आप मोक्ष के लिए पागल हैं, संसार आपकी परिक्रमा होगी। दोनों के लिए राजी हो जाएं। मांग ही छोड़ दें। कह दें जो होता है, मैं राजी हूं।

लाओत्से ने कहा है—हवाएं पूर्व की तरफ ले जाती हैं—सूखे पत्ते को, तो पत्ता पूर्व चला जाता है। और हवाएं बदल जाती हैं—पश्चिम की तरफ बहने लगती हैं, तो सूखा पत्ता पश्चिम की तरफ चला जाता है। हवाएं शान्त हो जाती हैं, पत्ता जमीन पर गिर जाता है। हवाएं तूफान उठाती हैं, पत्ता आकाश में उड़ जाता है। लाओत्से ने कहा है कि मैं उस दिन शांत हो गया, जिस दिन मैं सूखे पत्ते की तरह हो गया। मैंने जगत को कहा—जहां तू ले जाय, हम राजी हैं, सूखे पत्त की तरह। दुख में ले जाओ, चलेंगे; नर्क में ले जाओ, चलेंगे। अगर आप नर्क में जाने को राजी हैं, तो आपके लिए फिर नर्क हो ही नहीं सकता। फिर जहां भी आप हैं, वहां स्वर्ग है। और जो आदमी स्वर्ग के लिए दीवाना है, वह स्वर्ग में भी पहुंच जाय, तो नर्क में ही रहेगा।

मन की पकड़—वह जो आकांक्षा, जो वासना, यह चाहिए। हम जब कहते हैं, मुझे यह चाहिए तभी हम जगत के खिलाफ खड़े हो गए। और जब हम कहते हैं, जो मिल जाय।

ऐसा समझें, दुखी आदमी का लक्षण है—वह कहता है, ऐसा हो तो मैं सुखी होऊंगा—उसकी कंडीशन है। दुखी आदमी की शर्त है। वह कहता है, यह शर्त पूरी हो जाए, तो मैं सुखी हो जाऊंगा। सुखी आदमी बेशर्त है। वह कहता है कुछ भी हो, मैं खुशी रहूंगा। मैं चाहता नहीं हूं कि ऐसा हो, जो भी होगा, उसको मैं चाहूंगा। इस फर्क को समझ लें। एक तो है कि मैं चाहता हूं कि ऐसा हो, यह दुखी होने का उपाय है। एक यह है कि जो हो जाय, वही मेरी चाह है। जो हो जाय, वही मैं चाहूंगा। अगर परमात्मा दुख दे रहा है, तो वही मेरी चाह है—वही मैंने मांगा है—वही मुझे मिला है। मैं राजी हूं।

इसका थोड़ा प्रयोग करके देखें--चौबीस घंटे, ज्यादा नहीं। लड़ने का प्रयोग तो आप हजारों जन्मों से कर रहे हैं। एक चौबीस घंटे तय कर लें कि आज सुबह छः बजे से कल सुबह छः बजे तक, जो भी होगा, उसको मैं स्वीकार कर लूंगा। जहां भी हो विरोध द्वंद्व खड़ा नहीं करूंगा। देखें चौबीस घंटे में आपकी जिन्दगी में एक नई हवा का प्रवेश हो जाएगा। जैसे कोई झरोखा अचानक खुल गया और ताजी हवा आपकी जिन्दगी में आनी शुरू हो गई। फिर ये चौबीस घंटे कभी खत्म न होंगे। एक दफा इसका अनुभव हो जाय, फिर आप इसमें गहरे उतर जायेंगे।

कोई विधि नहीं है शान्त होने की—शान्त होना जीवन-दृष्टि है—कोई मैथड नहीं होता कि भगवान का नाम जप लिया और शांत हो गए। नहीं होंगे आप शान्त। आपकी यह चेष्टा—भगवान का स्मरण भी आपकी अशांति ही होगी। वह भी आप अशांत मन से ही जपते रहेंगे। वह भी आप की बेचैनी और बुखार का सबूत होगा और कुछ भी नहीं। शान्त हो जाएं। कैसे? अशान्ति को स्वीकार कर लें। दुख को स्वीकार कर लें। मृत्यु को स्वीकार कर लें। फिर आपकी कोई मृत्यु नहीं है। जिसे हम स्वीकार कर लेते हैं, उसके हम पार हो जाते हैं।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि मनुष्य यदि भविष्य को निर्माण करने की कोशिश करे तो विक्षिप्त हो जाता है, और अगर नियति को स्वीकार कर ले तो शांत हो जाता है। सवाल यह उठता है कि क्या इन दोनों के बीच कोई मध्य मार्ग, कोई समझौता, कोई कम्प्रोमाइज नहीं है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आदमी अपने भविष्य निर्माण करने की यथाशक्ति चेष्टा करे, फिर परिणाम नियति के ऊपर छोड़ दे।

ऐसा ही हो ऐसा दुराग्रह न रखे, तब भविष्य भी थोड़ा बहुत निर्माण होगा और व्यक्ति विक्षिप्त भी नहीं होगा। यही मन हमेशा बांटता है। जो मन कह रहा है कि भविष्य निर्माण करने की चेष्टा करो, वह मन राजी नहीं होगा, कोई भी परिणाम आए उसके लिए। और जो मन किसी भी परिणाम के लिए राजी हो सकता है, वह मन भविष्य निर्माण की चेष्टा के लिए व्याकुल नहीं होगा। जब आप सोचते हैं कि भविष्य का निर्माण कर सकता हूं तभी आप कर्ता हो गए, फिर परिणाम कोई भी आएगा तो कैसे राजी होंगे? फिर परिणाम अगर अनुकूल न आएगा, तो आपको यह विचार उठेगा

कि मैं ठीक से नहीं कर पाया, जैसा करना था वैसा नहीं कर पाया। जो होना था, वह नहीं हुआ। यह दुनिया मेरे विपरीत है, या शत्रु मेरे पीछे पड़े हैं, आप फिर स्वीकार नहीं कर पायेंगे परिणाम को सहजता से। चेष्टा जो आपने की है पाने की कुछ, उस चेष्टा में ही छिपा है वह तत्व, जो आपको परिणाम स्वीकार नहीं करने देगा। और अगर आप परिणाम स्वीकार करने की क्षमता रखते हैं, तो चेष्टा भी आप क्यों करेंगे? परमात्मा जो करवा रहा है, उसके लिए राजी हो जाएंगे।

नहीं! कोई समझौता नहीं है। जगत में सत्य के साथ कोई समझौता नहीं होता। सब समझौते झूठे होते हैं। हमारी मन की तरकीब होती है, हमारा मन यह कहता है कि दोनों हाथ लड्डू। यह समझौते का मतलब यह है, इसका मतलब यह है कि भाग्य के ऊपर छोड़ दें तो शांत हो सकते हैं। शांत भी हमें होना है। अगर भाग्य के ऊपर छोड़ दें, तो भविष्य निर्माण करना हमारे हाथ में नहीं रह जाता। निर्माण भी हमें करना है। वह मजा भी लेना है निर्माण करने का। और शांत होने का मजा भी लेना है। तो हम कहते हैं तरकीब निकाली जा सकती है। कर्म अपने हाथ में रखें और परिणाम जब हुआ तब कह देंगे कि ठीक, प्रभु की जो मरजी। आधे में आप होंगे, आधे में प्रभु! या तो पूरे में प्रभु होगा, या पूरे में आप। यह आधा-आधा नहीं चल सकता। यह दो नावों पर सवार होकर चलने का कोई उपाय नहीं; क्योंकि दोनों नाव बिल्कुल विपरीत दिशा में जा रही हैं। इनमें बुरी तरह फसेंगे और त्रिशंकु हो जाएंगे। एक टांग एक नाव पर, दूसरी टांग दूसरी नाव पर और दोनों विपरीत जा रही हैं। क्योंकि एक नियति का विचार कहता है—सब उसका है, इसलिए मेरे हाथ में कोई उपाय नहीं है, जो वह करवाएगा मैं करूंगा, जो वह देगा मैं ले लूंगा, जो वह नहीं देगा, नहीं देगा, वही है सब। करने वाला भी वही, पाने वाला भी वही, देने वाला भी वही। तब आप शांत हो जाएंगे। आप सोचते हैं कि नहीं, थोड़ा देर तक अपनी कोशिश भी कर लें—कुछ अपने करने से मिल जाय, वह भी ले लें; और न मिले तो अशांति भी ग्रहण कर लें, क्योंकि उसकी मरजी। ये दोनों बातें नहीं हो सकतीं। वह कुछ करने की जो वृत्ति है, वही अशांति ले आएगी। समझौता नहीं हो सकता।

वे मित्र कहते हैं कि यथाशक्ति चेष्टा करने से कुछ तो निर्माण होगा और विक्षिप्तता से भी बच जाएंगे। नहीं, जिस मात्रा में निर्माण होगा उसी

मात्रा में बिक्षिप्त भी हो जाएंगे। वही मात्रा होगी। कुछ निर्माण होगा, कुछ विक्षिप्त भी होंगे। हम कर क्या लेंगे? क्या, कर क्या पाते हैं? हमसे पहले जर्मान पर कितने लोग रहे हैं, अरबों-खरबों लोग रहे हैं। जिस जगह आप बैठे हैं, वैज्ञानिक कहते हैं, उस जगह—हर आदमी जहां खड़ा हो सकता है, उतनी जगह में—कम से कम दस आदमियों की कब्र बन चुकी है। जहां आप बैठे हैं वहां दस आदमी गड़े हुए हैं। जमीन पर एक इन्च जमीन नहीं है, जहां कब्र नहीं बन चुकी है। सब मिट्टी शरीरों में घूम चुकी है। सब मिट्टी देह बन चुकी है। उन शरीरों ने भी न मालूम क्या-क्या करने के इरादे किए थे। उन सबके करने के इरादे का क्या परिणाम है? और क्या अर्थ है आज? उनका किया हुआ वैसा ही मिट जाता है, जैसे बच्चे रेत पर घर बनाते हैं और बना भी नहीं पाते और मिट जाते हैं। थोड़ी देर लगती है हमारे घरों के मिटने में—थोड़ा समय लगता है, इससे भ्रम पैदा होता है। लेकिन सब मिट जाता है। क्या कर लेंगे आप? क्या बना लेंगे? बन भी जायगा, तो क्या होगा? वह जो नियति का विचार है, वह यह कहता है कि आदमी कर भी ले तो क्या होगा? करने में अपनी शक्ति, अपना समय, अपना अवसर खो देगा।

इसका यह मतलब नहीं कि आदमी कुछ भी न करे। आदमी कुछ किए बिना नहीं रह सकता, कुछ करेगा। लेकिन स्वयं को कर्ता मान कर न करे, छोड़ दे उस पर। वह जो करवाये, कर ले। फिर वह जो दे दे, ले ले। जब हम छोड़ेंगे कर्म उस पर तभी फल भी उस पर छूटेगा। कर्म रखेंगे अपने हाथ में, फल छोड़ेंगे उसके ऊपर—यह बेईमानी शुरू हो गई—हमने ईश्वर को भी धोखा देना शुरू कर दिया। इसका यह मतलब नहीं कि आपसे कर्म छीन लिया जाता है; सिर्फ कर्ता छीना जा रहा है—कर्म नहीं छीना जाता। और मजा तो यह है कि जिसका कर्ता शांत हो जाता है, वह इतना कर्म कर पाता है जितना आप कभी भी न कर पाएंगे। क्योंकि आपको कर्ता को भी ढोना पड़ता है, उसके पास सिर्फ कर्म रह जाता है। वह शुद्ध उसकी ऊर्जा कर्म बन जाती है। आपको तो अहंकार और कर्ता और 'मैं' इसको काफी ढोना पड़ता है, इसमें ज्यादा शक्ति तो इसी में व्यय होती है। कर्म तो आपसे होगा, लेकिन आप उसके करने वाले नहीं होंगे।

नदियां बह रही हैं। अगर किसी नदी को यह ख्याल आ जाय कि मुझे तो फलां जगह जाकर सागर में गिरना है, वह नदी पागल हो जाएगी। वह बह रही है, कहीं कोई फिक्र नहीं है कि कहां गिरे—पूर्व में गिरे कि पश्चिम में, कि अरब की खाड़ी मे गिरे कि बंगाल की खाड़ी में; कहां गिरे—हिन्द महासागर में, कि पैसफिक में। नदी को कोई चिन्ता नहीं है। नदी बही जा रही है अपने स्वभाव से। पहाड़ आएंगे, काटेगी; रास्तों में अड़चनें होंगी, किनारा काट कर गुजरेगी; और एक दिन सागर में गिर जाएगी। नदी बेचैन नहीं है। लम्बी यात्रा है, लेकिन कोई बेचैनी नहीं है।

जो व्यक्ति सब कुछ परमात्मा पर छोड़ देता है, वह भी ऐसे ही यात्रा करता है। कर्म तो बहुत होता है उससे, लेकिन कर्ता नहीं होता। फिर सागर जहां उसे गिरा देता है, वहीं गिरने को राजी हो जाता है। उसका कोई आग्रह नहीं होता। आग्रह हो तो ही चेष्टा हो सकती है। आग्रह न हो तो चेष्टा नहीं होती कर्म होता है—कर्तारहित होता है, प्रयास, धक्का, जबर्दस्ती नहीं होती।

पर हमारा मन ऐसा है कि हमारे पास दो ही तरह के उपाय हैं—आम तौर से। एक रास्ता अपने रास्ते पर गिरता हो, एक आदमी जानवरों को हकेल कर ले जाता है, तो पीछे से डंडा मारता है। एक रास्ता यह है कि कोई पीछे से हमें धक्का दिए जाय, तो हम चलते हैं। एक रास्ता यह है कि अगर होशियार हो कोई, तो आगे घास का गट्ठर ले के चलने लगे, तो भी जानवर उसके पीछे चलता है; क्योंकि आगे आशा दिखाई पड़ती है कि वह घास मिलने वाला है।

तो, या तो भविष्य में परिणाम की आशा हो, या परिस्थिति में जबर्दस्ती का धक्का हो। इन दो से हम चलते हैं। कर्ता के चलने का यह ही उपाय है। तो आपको अगर आशा न हो परिणाम की, तो कर्म करने का मन नहीं होता। अगर घास का गट्ठर न दिखता हो तो फिर क्यों चलें—फिर चलने की कोई जरूरत नहीं। और या फिर पीछे पत्नी, बच्चे, परिस्थिति धक्का न दे रही हो कि करो, तो भी मन चलने को नहीं होता कि क्या सार, किसके लिए चलें! लोगों को बच्चे पैदा हो जाते हैं तो बहुत दौड़-धूप करते हैं, क्योंकि बच्चों के लिए जी रहे हैं। उनको पता नहीं कि बच्चे धक्के दे रहे हैं पीछे से कि चलो, अब रुक नहीं सकते। अब उनको लगता है कि जीने में कोई कारण आ गया। अब यह करना है, अब कर्तव्य है। ये दो उपाय हमें साधारणतः दिखाई पड़ते हैं।

अहंकार पशु है। वह पशु की भाषा समझता है। एक ओर अहंकार से ऊपर जीने का उपाय है, वह आत्मिक जीवन है। वहां न आगे परिणाम का कोई सवाल है, न पीछे किसी धक्के का कोई सवाल है। आप जीवित हैं। जीवित होना, जैसे फूल खिला है, उससे सुगन्ध गिर रही है, इसलिए नहीं कि कोई रास्ते से गुजरेगा उसके लिए, कि कोई बहुत बड़े सुगन्ध के पारखी आ रहे हैं, उनके लिए। रास्तों से कोई न भी गुजरे तो फूल की सुगन्ध गिरती रहेगी, क्योंकि फूल का अर्थ ही सुगन्ध का होना है। जीवन का अर्थ कर्म है—न पीछे कोई आकांक्षा है, न आगे कोई सवाल है।

आप जीवित हैं, जीवित होने का अर्थ कर्म है। इस कर्म का होना आगे पीछे से नहीं आ रहा, भीतर से आ रहा है। भीतर से जब आता है तो परमात्मा से आता है। पीछे से जब आता है तब संसार के धक्के से आता है। आगे से जब आता है तब मन की वासना, इच्छा से आता है। जब भीतर से आता है—सहज, अभी और यहीं; जैसे नदी बह रही है, फूल खिल रहा है और सुगन्ध बरस रही है—ठीक ऐसे जब आपके भीतर से आने लगता है।

नियति का अर्थ है—जीवन को इस क्षण में भीतर से जीने का उपाय। अपने को छोड़ कर परमात्मा की जो अनंतता अभी मौजूद है, उस अनन्तता में अभी खिल जाने की व्यवस्था—अभी, यहीं, आगे पीछे का कोई सवाल नहीं। बहुत कर्म घटित होता है ऐसे आदमी से, लेकिन कर्म का बोझ नहीं होता ऐसे आदमी पर। ऐसा आदमी बहुत करता है, लेकिन कभी भी 'मैं कर रहा हूं'—ऐसी अस्मिता इकट्ठी नहीं होती। ऐसा आदमी जानता है—प्रभु ने जो करवाया, वो करवाया; जो नहीं करवाया, नहीं करवाया। जो उसकी मर्जी, यह उसका आखिरी भाव बना रहता है। समझौता नहीं है, सत्य के जगत में कभी कोई समझौता नहीं है। मन के जगत में सब समझौता है। मन हमेशा कोशिश करता है, सबको संभाल लो; और सबको साधने में एक भी नहीं सध पाता है। पर एक के साधने से सब सध जाता है।

एक प्रश्न और, और फिर मैं सूत्र लूं।

इस प्रश्न को मैं रोके हुआ हूं इतने दिन से, वह रोज पूछा जाता है। मैंने सोचा था, जिस दिन नहीं पूछेंगे उस दिन जवाब दे दूंगा। आज नहीं

पूछा है। एक सज्जन रोज ही पूछे चले जाते हैं कि क्या आप भगवान हैं? इसका साफ-साफ उत्तर दें।

सब भगवान है

मेरे लिए भगवान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अगर कोई कहे कि मैं भगवान नहीं हूं, तो वह असत्य बोल रहा है—मेरे लिए। मैं भगवान हूं, उतना ही जितने आप भगवान हैं। भगवान के होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। आपको पता हो या न पता हो। तो वे मित्र रोज लिख कर पूछे चले जाते हैं कि क्या आप भगवान हैं? अगर आप नहीं हैं तो आप जाहिर करें और अपने शिष्यों को समझा दें कि वे आपको भगवान न कहें?

उन्होंने नाम नहीं लिखा है, नहीं तो मैं अपने शिष्यों को कहूं कि उनको भी भगवान कहें। मेरी कोशिश यह है कि आपकी समझ में आ जाय कि आप भगवान हैं, उनकी कोशिश यह है कि मेरी समझ में डाल दें कि मैं भगवान नहीं हूं।

सारी चेष्टा धर्म की यह है कि आपको ख्याल में आ जाए कि आप भगवान हैं। और जब तक यह ख्याल में न आ जाय, तब तक जीवन में परेशानी होगी, दुख होगा, पीड़ा होगी। इससे कम में काम नहीं चलेगा। इससे कम में कोई तृप्ति भी नहीं है। इसके पहले कोई मंजिल भी नहीं है। इसके पहले उपद्रव ही है। यही है मुकाम। लेकिन हमें तकलीफ होती है। हमें तकलीफ होती है। ये तकलीफ क्या होती है? क्योंकि भगवान की हमने कुछ धारणा बना रखी है।

वे मित्र बार-बार लिखते हैं कि भगवान ने तो सृष्टि बनाई है, आपने सृष्टि बनाई?

स्वभावतः भगवान की हमारी धारणा है, जिसने सृष्टि बनाई। लेकिन हमारी यह कल्पना में भी नहीं है कि सृष्टि भी भगवान अपने भीतर, अपने में से ही बनाएगा; और उसके बाहर से कुछ लाने को है नहीं। भगवान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, कोई मैटीरियल भी नहीं है, जिससे वह सृष्टि बना ले। अगर वह सृष्टि भी बनाएगा तो वैसे ही, जैसे मकड़ी अपने ही भीतर से जाला बुनती है। वह मकड़ी का उतना ही हिस्सा है।

सृष्टि भगवान से कुछ अलग नहीं है। क्योंकि उससे अलग कुछ है नहीं, जिसको वह बना दे, जिसके आधार पर वह सृष्टि को खड़ी कर दे। सृष्टि उसके ही भीतर से फैलाव है। तो सृष्टि, सृष्टा का ही हिस्सा है, और एक पत्थर भी, जो रास्ते के किनारे पड़ा है, वह उतना ही भगवान है, जितना बनाने वाला भगवान है। जो बनाया गया है, वह भी भगवान है। जो बनाने वाला है, वह भी भगवान है। और यह बनाने वाला, और बनाया गया का जो शब्द है हमारा—यह हमारी भाषा की भूल है। इसलिए मैं निरन्तर कहता रहता हूं कि भगवान को कभी कुम्हार की तरह मत सोचना कि वह घड़े को बना रहा है; क्योंकि कुम्हार मर जाय तो भी घड़ा रहेगा। घड़ा तो कुम्हार से अलग हो गया, कुम्हार के मरने से घड़ा नहीं मर जायेगा। लेकिन अगर भगवान न हो, तो यह जगत किसी भी क्षण विलीन हो जायेगा। इसलिए घड़ा और कुम्हार की बात ठीक नहीं है। यहां बनाने वाला जो बनाता है, उसमें समाया हुआ है, अलग नहीं है। इसलिए मैं निरन्तर कहता हूं कि भगवान है नर्तक की तरह—नटराज!

एक नाच रहा है आदमी। तो नृत्य है और नृत्यकार है, लेकिन अलग-अलग नहीं। अगर नृत्यकार चला जाय, तो नर्तन बचेगा? नहीं, पीछे वह भी उसी के साथ चला जायेगा। आप नृत्य को अलग नहीं कर सकते नृत्यकार से।

इसलिए हमने परमात्मा की नटराज की मूर्ति बनायी है। वह बहुत अर्थ की है। कुम्हार और घड़े वाली बात तो बचकानी है। जिनके पास बुद्धि कम है, उनके काम की है। नटराज का अर्थ यह है कि यह जो नृत्य है विराट, यह उससे अलग नहीं है। यह सारा का सारा नृत्य, नृत्यकार ही है, नर्तक ही है। तो मैं आपसे कहता हूं कि इस सृष्टि को बनाने में मेरा उतना ही हाथ है—जितना आपका, जितना एक पक्षी का, जितना एक पौधे का, जितना राम का, कृष्ण का, बुद्ध का। हम इस विराट के उतने ही हिस्से हैं, जितना कोई और।

आप सृष्टा भी हैं, सृष्टि भी। आप नर्तक भी हैं, नृत्य भी और जब तक आप समझते हैं कि आप सिर्फ नृत्य हैं, नर्तक नहीं तब तक आप भूल में हैं; क्योंकि नृत्य हो ही नहीं सकता नर्तक के बिना। सृष्टि हो ही नहीं सकती सृष्टा के बिना। अगर सृष्टा उसके भीतर मौजूद है, वह आपके भीतर भी मौजूद है। आपको उसकी खबर नहीं है, इसलिए परेशान हैं।

वे मित्र पूछते हैं कि राम को हम भगवान कहते हैं, कृष्ण को हम भगवान कहते हैं, बुद्ध को, महावीर को कहते हैं; लेकिन उन्होंने खुद अपने को भगवान नहीं कहा और यहां ऐसा मालूम पड़ता है कि आप लोगों से अपने को भगवान कहला रहे हैं। तो उन्हें कुछ पता नहीं है।

कृष्ण तो बहुत स्पष्ट अर्जुन से कहते हैं—'सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज', सब छोड़, और मेरी शरण में आ। कृष्ण तो कहते हैं, मैं ही परापर ब्रह्म हूं।

बुद्ध ने तो कहा है, मैंने वह पा लिया है जो अन्तिम है। अब मैं मनुष्य नहीं हूं, अब मैं बुद्ध हो गया हूं।

महावीर ने तो कहा है, आत्मा जो शुद्ध हो जाती है, तो उसी का नाम परमात्मा है और मैं परिपूर्ण शुद्ध हो गया हूं।

इन मित्र का ख्याल ऐसा है कि महावीर, बुद्ध, कृष्ण के अनुयायियों ने उनको भगवान कह दिया, उन्होंने नहीं कहा। अगर वो थे, तो कहने में डर क्या है? और अगर वो नहीं थे, या कहने में कुछ संकोच करते थे, तो अनुयायियों के कहने से भी नहीं हो जायेंगे। सीधी घोषणा है उनकी और उन्होंने यही नहीं कहा कि वे भगवान हैं, उन्होंने समझाने की कोशिश की कि आप भी भगवान हैं। और जिसको इतना भी बल न हो कहने का कि मैं भगवान हूं, वह आपसे क्या कहेगा कि आप भगवान हैं!

उस मित्र ने एक बात और पूछी है—कि कृष्ण भगवान थे, तो उन्होंने अर्जुन को तो विराट का दर्शन कराया, आप करवा सकते हैं?

मैं वायदा करता हूं कि मैं करवा सकता हूं, लेकिन अर्जुन होने की तैयारी चाहिए। हम कभी सोचते नहीं कि क्या पूछ रहे हैं। मेरी तरफ से वायदा पक्का है। जिसको भी विराट के दर्शन करने हों, मैं करवाऊंगा, लेकिन आने के पहले छाती पर हाथ रख कर इतना भर सोच लेना कि अर्जुन जैसी तैयारी है। फिर कोई बाधा नहीं है, फिर मेरे बिना भी दर्शन हो सकता है। कोई मेरी जरूरत नहीं है, आपकी अर्जुन जैसी तैयारी हो, तो परमात्मा आपको कहीं भी उपलब्ध हो जायेगा। वह अर्जुन की तैयारी जब होती है, तो वह सब जगह उपलब्ध है। और जब अर्जुन की तैयारी नहीं होती, तो वह आपके सामने भी खड़ा हो, तो आप पूछते रहेंगे कि आप भगवान हैं।

जीवन को सदा इस दृष्टि से सोचें और सदा इस दृष्टि से पूछें कि उस पूछने से आपके लिए क्या हो सकेगा। मैं भगवान हूं या नहीं हूं, इससे आपको क्या हो सकेगा? इससे क्या परिणाम होगा? आपकी जिन्दगी कैसे इससे बदलेगी? सदा अगर कोई इतना ख्याल रख सके, तो उसकी जिज्ञासा सार्थक, अर्थपूर्ण हो जाती है—उपयोगी हो जाती है। अकारण कुछ मत पूछते रहें। इतना तो ख्याल निश्चित ही रखें कि इसके उत्तर से आपको क्या होगा। आप इस उत्तर का क्या उपयोग करेंगे। आपकी जिन्दगी को ये कहां तक बदलेगा। आपकी जिन्दगी में किस तरह औषधि बन सकेगा। वही प्रश्न पूछें जो आपके लिए औषधि बन जाए, अन्यथा प्रश्नों का कोई अर्थ नहीं।

इसलिये इस प्रश्न को मैं टाल रहा था इतने दिन तक और सोच रखा था कि जिस दिन नहीं पूछेंगे मित्र उस दिन जवाब दे दूंगा। क्यों ऐसा सोच रखा था कि नहीं पूछेंगे उस दिन जवाब दे दूंगा, इसलिए कि शायद इतने दिन सुनके बुद्धि थोड़ी आ जाय और न पूछें। और इतनी भी बुद्धि न आए, तो उत्तर भी समझ में न आएगा, इसलिए रुक गया था। आज उन्होंने नहीं पूछा, मान लेता हूं। डर तो यह है कि शायद वे न भी आए हों। लेकिन मान लेता हूं कि उन्हें थोड़ी समझ आई होगी कि इन बातों के पूछने का कोई अर्थ नहीं है। कौन भगवान है, कौन नहीं है—इससे क्या लेना-देना।

एक बात का पता लगाइये कि आप भगवान हैं या नहीं। बस उसकी फिकर में लग जाइये और जिस दिन आपको पता चल जाए कि आप भगवान हैं, उस दिन डरिये मत, छिपाइये मत, खबर करिये। हो सकता है आपकी खबर से किसी के कान में भनक पड़ जाय और उसे भी ख्याल आने लगे कि यह आदमी भगवान हो सकता है, तो मुझ में ऐसी क्या अड़चन है—मैं भी थोड़ी चेष्टा करूं। शायद आपके गीत को सुन कर किसी और को भी गीत गाने का ख्याल आ जाए—शायद कोई और भी गुनगुनाने लगे। शायद आपको नाचता देखकर किसी के पैरों में थिरकन आ जाय, शायद कोई और भी नाचने लगे।

अब हम सूत्र को लें:

"इसके उपरान्त संजय बोला कि हे राजन! केशव भगवान के इस वचन को सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़े हुए कांपता हुआ, नमस्कार करके, फिर भी भयभीत हुआ, प्रणाम करके भगवान कृष्ण के प्रति गद्गद् वाणी से बोला।"

विराट की झलक

कंप रहा है अर्जुन। जो देखा है, उससे उसका रोआं-रोआं कंप गया है। भविष्य की झलक बड़ी खतरनाक हो सकती है। शायद इसीलिए प्रकृति हमें भविष्य के प्रति अन्धा बनाती है, नहीं तो जीना बहुत मुश्किल हो जाय। आप देखते हैं—तांगे में जुता हुआ घोड़ा चलता है, उसकी आंखों पर दोनों तरफ से पट्टी लगी होती है। अगर वह पट्टी न लगी हो तो घोड़ा सीधा नहीं चल पाता। वह पट्टी खुली हो तो दोनों तरफ उसे दिखाई पड़ता है, उसकी वजह से अड़चन खड़ी होती है, फिर वह सीधा नहीं चल पाता। तो दोनों तरफ से उसकी आंखें हम अन्धी कर देते हैं। तो सिर्फ वह आगे देख पाता है—दो कदम। बस एक सीधी रेखा में चलता रहता है।

ठीक हम भी अन्धे आदमी हैं। हमें भविष्य दिखायी नहीं पड़ता। भविष्य दिखाई पड़े तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ जायें। आप किसी स्त्री को प्रेम कर रहे हैं और उससे कह रहे हैं कि तेरे बिना मैं जी न सकूंगा; और आपको दिखाई भी पड़ रहा है कि दो दिन बाद यह मर जाएगी और न केवल मैं जीऊंगा, दूसरी शादी भी करूंगा, अगर यह भी आपको दिखाई पड़ रहा हो, तो किस मुंह से कह सकियेगा कि तेरे बिना जी न सकूंगा। मुश्किल पड़ जाय, जब दिख रहा हो कि दो दिन बाद यह स्त्री मरेगी और मैं जीऊंगा; और न केवल जीऊंगा, कोई और स्त्री से शादी करूंगा। और उस स्त्री से भी मैं यही कहूंगा कि तेरे बिना कभी न जी सकूंगा।

आपको भविष्य दिखता नहीं है। बच्चा पैदा हो और उसको उसका पूरा भविष्य दिख जाय, कैसी मुश्किल हो जाय? जीना बिल्कुल असम्भव हो जाय, एक-एक कदम चलना मुश्किल हो जाय। आपको पता नहीं है, इसलिए अन्धे की तरह शान से चले जाते हैं। क्या कर रहे हैं, कोई फिक्र नहीं है। क्या हो रहा है, कोई फिक्र नहीं है; क्या परिणाम होगा, कोई फिक्र नहीं है। अतीत भूलता चला जाता है, भविष्य दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए आप जी पाते हैं। अतीत भूले न, भविष्य दिखाई पड़ने लगे, आप यहीं ठप्प हो जाएं, इंच भर हिलने का उपाय न रह जाय। आपको दिखाई पड़ जाय कि आप मरने वाले हैं, चाहे सत्तर साल बाद सही। साफ दिखाई

पड़ जाय कि फलां तिथि को मरने वाले हैं, सत्तर साल बाद। लेकिन ये बीच के सत्तर साल बेकार हो गए। अब आप जी न सकेंगे। अब आप किस इरादे से मकान बनाएंगे—किसी और के रहने के लिए? किस इरादे से बैंक में धन इकट्ठा करेंगे—किसी और के भोग के लिए? किस इरादे से लड़ेंगे किसी से? अब कोई इरादा नहीं रह जायगा। मौत सारे इरादों को काट देगी और जीना तो पड़ेगा। अगर आपको यह भी पता हो कि सत्तर साल जीना ही पड़ेगा, मौत उसी तरह होगी, जैसे होने वाली है—बीच में आत्महत्या भी करने का कोई उपाय नहीं है—भविष्य नहीं है, भविष्य तो मरने का है खाट पर; फिर हाथ-पैर कंपते रहेंगे, पूरे जीवन आप कंपते रहेंगे। जो बहुत विचारशील लोग हैं, उनके कम्पन का कारण यही है।

स्वेन्कीगाग—डेनिस विचारक—ने लिखा है, कि जिस दिन से मुझे होश आया मैं कंप रहा हूं, तब से मेरा कम्पन नहीं रुकता। रात सो नहीं सकता हूं, क्योंकि मुझे पता है कि कल मौत है और मैं हैरान हूं कि सारी दुनिया क्यों मजे से चली जा रही है; शायद इन्हें पता नहीं है कि कल मौत है।

भविष्य नहीं दिखाई पड़ता इसलिए हम बड़े निश्चिन्त हैं, दिखाई पड़े तो बड़ी अड़चन हो जाय। अर्जुन को दिखाई पड़ा है। तभी उसने देखा, एक झलक उसे मिली है। वह कंप रहा है, वह भयभीत हो रहा है।

संजय कहता है—कांपता हुआ, हाथ जोड़े हुए, नमस्कार करता है, भयभीत हुआ प्रणाम करता है। गद्गद् भी हो रहा है। उसकी स्थिति बड़ी दुविधा की है। जो दिखाई पड़ा है, वह उसकी विजय है। जो दिखाई पड़ा है, उसमें वह जीतेगा। इसलिए आनंदित भी हो रहा है। जो दिखाई पड़ा है, वह विराट की झलक है। यह सौभाग्य है, यह कृपा है, यह प्रसाद है। वह गद्गद भी हो रहा है। और जो दिखाई पड़ा है, वह मृत्यु भी है। वह भयभीत भी हो रहा है। और एक अर्थ से और भी भयभीत हो रहा है, क्योंकि जो विजय सुनिश्चित हो, उसमें भी मजा चला जाता है। अगर आप एक खेल खेल रहे हैं किसी के साथ, जिसमें आपकी जीत निश्चित है, खेल का मजा चला जाता है। खेल का तो मजा इसी में है कि जीत अनिश्चित है। आप जीत भी सकते हैं और हार भी सकते हैं। जिस खेल में आपको जीतना ही है, जिसमें कोई उपाय ही नहीं है हार का—वह खेल खत्म हो गया, वह

तो एक बन्धन हो गया। इसे थोड़ा समझ लें। थोड़ा बारीक है। अगर आपको पक्का ही है और कोई उपाय जगत में नहीं है कि आप हार सकें, आप जीतेंगे ही; तो मजा ही जीत का चला गया। और जीत से भी भय पैदा होगा। यह जीत भी एक जबर्दस्ती मालूम पड़ेगी। इसमें अहंकार को रस तो रह नहीं गया।

अर्जुन ने देखा है कि वह जीतेगा। उसके योद्धा विपरीत जो खड़े हैं, वे मृत्यु में विलीन हो रहे हैं। उसकी जीत सुनिश्चित है, नियति है, भाग्य है। अगर जीत नियति है, तो फिर अहंकार को उससे कुछ भी रस नहीं मिलेगा। फिर मैं नहीं जीतता हूं, जीतना था इसलिए जीतता हूं। फिर दुर्योधन नहीं हारता है, हारना था बेचारे को, इसलिए हारता है। तब न तो कोई रस है अपने अहंकार में और न दुर्योधन की हार में कोई रस है। तब तो हम पात्र हो गए, खिलौने हो गए। तब तो हम गुड्डे-गुड़ियों की तरह नाच रहे हैं। कोई भीतर से तार खींच रहा है। किसी को जिताना है, वह जीत जाता है। किसी को हराना है, वह हार जाता है। किसका गौरव! किसका अपयश! अगर यह सच है कि मेरी जीत निश्चित है, तो अर्जुन कंप गया होगा इससे भी; क्योंकि तब तो मजा ही चला गया—तब किस मुंह से वह कहेगा कि दुर्योधन को मैंने हराया, कि कौरव हारे पांडव से। तब इसका कोई अर्थ नहीं रह गया। कौरव हारे, क्योंकि नियति उनको हारने की थी। पांडव जीते, क्योंकि नियति उन्हें जिता रही थी। और नियति दोनों के हाथ के बाहर है। यह भी बहुत भय देने वाली बात है। तो मजा ही चला गया।

एक तो मृत्यु को देखा, उससे कंपित हो रहा है। दूसरा सुनिश्चित विजय को देखा, उससे भी, उससे भी वह भयभीत हो रहा है। अर्जुन योद्धा था। फेयर नहीं है अब लड़ाई, अब जो युद्ध है, वह न्यायपूर्वक नहीं है। अब तो हारने वाले हारेंगे, जीतने वाला जीतेगा। और कृष्ण कहते हैं, मैं पहले ही काट चुका हूं इनको, तू सिर्फ निमित्त है, यह भी कंपित कर देगा। क्षत्रिय का सारा मजा ही चला गया। अब यह युद्ध हो रहा है, जैसे हो या न हो बराबर है। एक झूठा युद्ध रह गया, एक सूडो, मिथ्या, भ्रामक! जिसमें सब बातें पहले से ही तय हों, उसमें क्या सार है? एक अर्थ में गद्गद् है कि कृष्ण ने अनुभव का मौका दिया, एक द्वार खोला अनन्त का, और एक लिहाज से भयभीत है। दोनों बातें एक साथ हैं।

संजय कहता है, "ऐसा भयभीत, साथ ही गद्‌गद्‌ हुआ प्रणाम करके अर्जुन कहने लगा, हे अन्तर्यामी ! यह योग्य ही है कि जो आपके नाम और प्रभाव के कीर्तन से जगत अति हर्षित होता है और अनुराग को भी प्राप्त होता है, तथा भयभीत हुए राक्षस लोग दिशाओं में भागते हैं और सब सिद्ध-गणों के समुदाय नमस्कार करते हैं—यह योग्य ही है।"

यह दोनों बातें ही योग्य हैं कि कोई आपके नाम से हर्षित होता है और कोई आपके नाम से भयभीत होता है। ये दोनों बातें ठीक ही हैं, क्योंकि जो मिटने जा रहा है आपको देखकर, आप जिसके लिये विनाश बन जाते हैं—उसका भयभीत होना; और वह जो आपको देखकर आनन्द को, परम अवस्था को उपलब्ध होने जा रहा है, जिसके भीतर नए का सृजन हो रहा है—उसका हर्षित होना; दोनों ही ठीक हैं। लेकिन, अर्जुन को दोनों हो रहे हैं और आपको भी दोनों होंगे; क्योंकि इस जमीन पर देवता को अलग और राक्षस को अलग खोजना बहुत मुश्किल है। वे दोनों ही मिले-जुले हैं। वह हर आदमी में है। वह आदमी के दो पहलू हैं। मन दो के बिना होता ही नहीं इसलिए आप ऐसा देवता पुरुष भी नहीं खोज सकते, जिसका कोई हिस्सा राक्षसी न हो। और आप ऐसा कोई राक्षस भी नहीं खोज सकते, जिसका कोई हिस्सा देवता जैसा हो। रावण के भीतर भी एक कोना राम का होगा और राम के भीतर भी एक कोना रावण का होगा; अन्यथा उनका संसार में होने का कोई उपाय नहीं है।

इस जगत में प्रकट होने का उपाय है—मन और मन है द्वंद्व। इसलिए अच्छे से अच्छे आदमी में थोड़ी-सी कालिख कहीं न कहीं लगी होगी। बुरे से बुरे आदमी में भी एक चमकदार रेखा होगी। वही इन दोनों को आदमी बनाती है, नहीं तो वे आदमी नहीं रह जाएंगे, नहीं तो उनके आदमी होने का कोई उपाय नहीं रह जायेगा। यहां तो हर आदमी दोनों हैं। इसलिए जब परम अनुभव का द्वार खुलता है तो दोनों बातें एक साथ घटती हैं। वह जो आपके भीतर राक्षस है, वह भयभीत होने लगता है। और वह जो आपके भीतर दिव्य है, वह आनन्दित होने लगता है।

परमात्मा के सामने दोनों बातें एक साथ घट जाती हैं। यह तो तोड़ कर कहा है, ताकि समझ में आ सके।

अर्जुन कहता है—लोग अनुराग को उपलब्ध होते हैं, हर्षित होते हैं, आपके कीर्तन, आपके नाम को सुनकर। और ऐसे लोग भी हैं, जो भागते हैं

दसों दिशाओं में। और देखता हूं सिद्ध-गणों को भी पैर झुकाए, घुटने टेके आपको नमस्कार कर रहे हैं। यह ठीक ही है अन्तर्यामी।

आज अर्जुन को लगा कि ऐसा क्यों है। ऐसा क्यों है कि कोई भगवान का नाम सुनते ही पीड़ित और दुखी हो जाता है? और कोई भगवान का नाम सुनते ही आनंदित, प्रफुल्लित क्यों हो जाता है? जब आप भगवान का नाम सुनकर दुखी होते हैं, तो आप खबर दे रहे हैं कि भगवान आपके लिए कहीं न कहीं मृत्यु से जुड़ा हुआ है। कुछ आप कर रहे हैं, जो भगवान में टूटेगा और नष्ट होगा। कुछ आप कर रहे हैं, जो धारा के विपरीत है—जो निःसर्ग के प्रतिकूल है। और जब भगवान का नाम सुनकर आप आनंदित होते हैं, तब इसका अर्थ है कि आपके भीतर कोई धारा है, जो भगवान के साथ बह रही है। वह नाम भी सुनकर आप प्रफुल्लित हो जाते हैं।

रामकृष्ण के सामने कोई नाम भी ले दे भगवान का, तो वे तत्काल समाधिस्थ हो जाते। नाम लेना मुश्किल हो गया, क्योंकि फिर वे छः-छः घंटे, बारह-बारह घंटे समाधि में रह जाते थे। सड़क से गुजर गए हैं तो उनके भक्तों को उन्हें संभाल कर ले जाना पड़ता था कि कहीं कोई जयराम जी ही न कर दे, नहीं तो वहीं नाचने लगते, वहीं सड़क पर गिर जाते, होश खो देते। कई बार तो कई-कई दिन लग जाते उनका वापस होश आने में। वे इतने आनंदित हो जाते कि यह जगत विसर्जित हो जाता, वे अपने में लीन हो जाते। उनको संभाल कर ले जाना पड़ता था कि कहीं कोई असमय में नाम न ले ले—कोई अकारण ऐसे सहज नाम न ले ले। फिर उन्हें दिनों तक पानी पिलाना पड़ता, दूध देना पड़ता; क्योंकि उन्हें शरीर की कोई सुध न रह जाती। और जब उन्हें होश आता तब वे छाती पीटकर रोने लगते, कि क्या तू नाराज है, इतनी जल्दी वापिस भेज दिया! क्या तू नाराज है कि अपने से इतनी जल्दी दूर कर दिया! वापिस बुला ले! उनकी आंख से आंसू बहते, वापिस बुला ले। कोई नाम ले दे, तो क्या था? रामकृष्ण बड़ी, जिसको हम कहें—शुद्धतम देह। शरीर—जैसे पवित्रतम, जैसे रोआं-रोआं इतना पवित्र कि नाम भी भगवान का पर्याप्त कि रोआं-रोआं कंपित होकर भीतर लीन हो जाय। शरीर—जैसे इतना संवेदनशील!

पुजारी थे रामकृष्ण दक्षिणेश्वर के मंदिर में। पूजा करने जाते थे तो पूजा का थाल गिर जाता हाथ से। क्योंकि देखते महाकाली की मूर्ति, वह

देखते ही थाल गिर जाता, दिये बुझ जाते। वे नीचे गिर जाते, पूजा न हो पाती। पूजा करने के लिए भी बड़ा कठोर मन चाहिए। पूजा करने के लिए इतना तो मन चाहिए कि डटे रहें। रामकृष्ण से पूजा ही न हो पाती, क्योंकि थाल हाथ से छूट जाता। देखते आंखों में काली को और सुध-बुध खो देते। फिर बाद के दिनों में तो उन्हें कोई मंदिर में नहीं ले जाते थे। पूजा कोई और कर लेता था, क्योंकि मंदिर में जाना खतरनाक था।

और जिस दिन रामकृष्ण को अनुभव हुआ उस दिन वे दक्षिणेश्वर की छत पर चढ़ गए—छप्पर पर और जोर-जोर से चिल्लाने लगे कि जिसकी मुझे खोज थी, वह मिल गया। अब जिसको चाहिए, वह जल्दी आओ। कहां हैं वे लोग जिन्हें मैं बांट दूं? आओ, जल्दी, दूर-दूर से जहां भी जिसको आकांक्षा हो जल्दी आ जाये; क्योंकि जो मुझे चाहिए था, वह मिल गया। क्या मिल गया? एक संगति, एक संगीत, एक लयबद्धता, उस परमात्म और अपने बीच एक स्वर का तालमेल मिल गया। अब, जैसे ही वह स्वर का तालमेल बैठ जाता है वैसे ही रामकृष्ण नहीं रह जाते, भगवान हो जाते हैं, परमात्मा हो जाते हैं।

कीर्तन का मतलब ही केवल इतना है कि एक सुर-ताल बैठ जाय; और वह जो आदमी होने का होश है, वह खो जाए, और वह जो परमात्मा होने का होश है, वह आ जाय। यह रामकृष्ण की जो बेहोशी है, यह सिर्फ एक तरफ से बेहोशी है—आदमी की तरफ से। दूसरे, भीतर की तरफ से तो परम होश है।

रामकृष्ण कहते थे, कि तुम सोचते हो कि मैं बेहोश हो गया, तुम उल्टा सोचते हो। जब मैं होश में आता हूं तुम्हारे सामने तब मैं बेहोश हो जाता हूं। मैं जिसको भीतर देखता था, वह फिर मुझे दिखाई नहीं पड़ता। तुम जिसे बेहोशी कहते हो, वह होश है मेरे लिए। और तुम जिसे होश कहते हो, वह बेहोशी है। जब मेरी आंख संसार की तरफ होश से भर जाती तब मैं वहां को भूल जाता हूं। अगर यहां मेरा पर्दा गिर जाता है तो मैं वहां हो जाता हूं।

कीर्तन का इतना ही अर्थ है अध्यात्म में कि उससे हम एक नाम के सहारे, एक शब्द के सहारे, एक गीत के सहारे, एक धुन के सहारे, एक नृत्य

की गति के सहारे वह जो मनुष्य होने का होश है, वह खो दें और वह जो परमात्मा होने का होश है, उसकी तरफ जायं।

एक मित्र ने पूछा है कि गीता के सम्बन्ध में उन्हें कुछ भी नहीं पूछना, लेकिन यहां जो कीर्तन होता है, उस सम्बन्ध में उन्हें बड़ी अड़चन है। गीता के सम्बन्ध में नहीं पूछना, क्योंकि गीता समझ चुके हैं वे। यहां किसलिए आते हैं पता नहीं। यहां आने का कोई प्रयोजन नहीं है। गीता समझ ही गए हों, तो यहां आने का क्या प्रयोजन है? चढ़ जाएं किसी मंदिर पर और चिल्ला दें कि आ जाओ, जिनको पाना हो; मुझे मिल गया। कीर्तन के सम्बन्ध में उन्हें अड़चन है। किया है कभी कीर्तन? अगर किया है तो अड़चन नहीं हो सकती। और नहीं किया है तो सवाल नहीं उठाना चाहिए। जो नहीं किया है, उसके बाबत नहीं पूछना चाहिए। अड़चन यही होगी कि यह क्या है, लोग नाचने लगते हैं, होश खो देते हैं! अड़चन यही है कि स्त्री-पुरुष साथ-साथ नाच रहे हैं। अगर इतनी भी बेहोशी न हो कि स्त्री-पुरुष भी न भूलें, तो क्या खाक कुछ भूलेगा! यह भी होश बना रहा कि मैं पुरुष हूं, वह पास में खड़ी स्त्री है! आप कीर्तन कर रहे हैं? इतना भी होश न भूलें, तो क्या खाक कीर्तन होगा!

कीर्तन तो पागलों का रास्ता है—वह जो भूलने को तैयार है बाहर को। फिर क्या होता है, इसे करने का थोड़ी सवाल है। कीर्तन कुछ किया थोड़ा जाता है। कीर्तन तो अपने को धारा में छोड़ना है, फिर जो हो जाय। पर देखने वाले को अड़चन होगी। देखने वाले को सदा ही अड़चन होगी, क्योंकि देखने वाला बाहर खड़ा है। करके देखें, थोड़ी देर के लिए होश खोकर देखें। थोड़ी देर के लिए दूसरे जगत में प्रवेश करें, दूसरा होश उपलब्ध करें। थोड़ी देर के लिए बह जाएं बाहर से और भीतर हो जाएं और होने दें जो हो रहा है—छोड़ दें परमात्मा में। पूरे चौबीस घंटे छोड़ना शायद मुश्किल होगा, क्योंकि आपको ख्याल है दुकान आप चलाते हैं—आपको ख्याल है आप नहीं होंगे, तो संसार का क्या होगा—आपके बिना कुछ चलेगा नहीं। शायद पूरे समय छोड़ना मुश्किल हो, पर घड़ी, आधी घड़ी तो......कीर्तन सिर्फ एक व्यवस्था है, जिसे थोड़ी देर को हम छोड़ देते हैं। हम अपने से नहीं चलाते, हम सिर्फ छोड़ देते हैं, टु बी लेट गो—अपने को ढीला छोड़ देते हैं, धुन के ऊपर और धीरे-धीरे भीतर जहां ले

जाना चाहता है, ले जाने लगता है। फिर पैर थिरकने लगते हैं, हाथ-पैर मुद्राएं बनाने लगते हैं, आंखें बन्द सी हो जाती हैं, किसी दूसरे लोक में प्रवेश हो जाता है। फिर फिक्र छोड़ें कि कौन बाहर खड़ा है। उसकी थोड़ी फिक्र करनी है। उसकी फिक्र करिएगा तो भीतर नहीं जा सकते।

कीर्तन की कला खो गई, क्योंकि हम अति बुद्धिमान हो गए हैं। यह बुद्धिमानों का काम नहीं है। जिन मित्र ने पूछा है, बुद्धिमान आदमी हैं। यह बुद्धिमानों का काम नहीं है। इसलिये वे कहते हैं, गीता के संबंध में कुछ नहीं पूछना, क्योंकि गीता तो बुद्धिमानी से खुद ही समझ लेंगे, कीर्तन से अड़चन है। यह बुद्धिमानों का काम नहीं है, बुद्धिमानी का काम संसार है। यहां तो बुद्धि छोड़कर, बुद्धि फेंककर कोई प्रवेश करता है। और यह जो मैं इतनी बातें आपसे बुद्धि की कर रहा हूं, वह सिर्फ इसी आशा में कि किसी दिन आप ऊब जाएंगे इस बुद्धि से। इसे छोड़कर, उतारकर बाहर इससे निकलने की कोशिश करेंगे।

अगर बुद्धिमानी से इतनी बात भी समझ में आ जाय कि बुद्धि काफी नहीं है, तो बुद्धि का काम पूरा हो गया। अगर बुद्धिमानी इतना समझा दे कि इसको छोड़कर पार जाना है, कहीं दूर—इससे हटना है, इसके बंधन और सीमाओं के पार; तो बुद्धिमानी का काम पूरा हो गया। बुद्धिमान आदमी हम उसको कहते हैं, जो बुद्धिमानी को छोड़ने की भी क्षमता रखता है। यह कीर्तन तो बुद्धि को छोड़ने की बात है।

वह, अर्जुन कह रहा है कि आज मैं समझ पाता हूं कि आपके प्रभाव से, आपके प्रभाव के कीर्तन से जगत हर्षित होता है अनुराग से भर जाता है। पर कोई हैं जो घबड़ाते हैं भागते हैं, भयभीत होते हैं, और देखता हूं कि सिद्धों के समुदाय भी कंपित आपको नमस्कार कर रहे हैं।

हे महात्मन्! ब्रह्मा के भी आदि कर्ता और सबसे बड़े आपके लिए वे कैसे नमस्कार न करें, क्योंकि हे अनंत, हे देवेश, हे जगन्निवास जो सत, असत् और उनसे परे अक्षर, अर्थात सच्चिदानंद परम ब्रह्म हैं, वह आप ही हैं। और हे प्रभु आप आदि देव और सनातन पुरुष हैं और आप इस जगत के परम आश्रय और जानने वाले तथा जानने योग्य और परम धाम हैं। हे अनन्त रूप! आपसे यह सब जगत व्याप्त और परिपूर्ण है और आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा तथा प्रजा के स्वामी, ब्रह्मा, ब्रह्मा के भी

पिता हैं। आपके लिये हजारों बार, हजारों बार नमस्कार। आपके लिये बार-बार नमस्कार। और हे अनन्त सामर्थ्य वाले! आपके लिए आगे से, पीछे से सब तरफ से नमस्कार। हे सर्वात्मन्! आपके लिए सब ओर से नमस्कार होवे। क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली हैं आप, संसार को व्याप्त किये हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं''—ये सारे वचन परमात्मा के प्रति एक धन्य भाव के वचन हैं, एक अहोभाव के।

अर्जुन भयभीत हुआ है, लेकिन धन्यभागी भी हुआ है। यह अनूठा, अद्वितीय अवसर उसे मिला है कि एक झलक मिली है विराट में, जहां सब सीमाएं टूट जाती हैं—जहां जानने वाला और जाना जाने वाला एक हो जाते हैं—और जहां सृष्टि और सृष्टि का निर्माता, वे भी पीछे छूट जाते हैं और मूल आश्रय और परम धाम का अनुभव होता है। वह धन्यभागी हुआ है। वह अपने धन्य भाव को प्रकट कर रहा है। उसकी वाणी बड़ी अजीब-सी लगेगी। वह कहता है—नमस्कार, बार-बार नमस्कार, हजार बार नमस्कार, आगे से नमस्कार, पीछे से नमस्कार। लगेगा क्या कह रहा है यह! नमस्कार एक दफा कहने से काम चल जाएगा, लेकिन उसका मन नहीं भरता है। वह सब तरफ से नमस्कार कर रहा है, फिर भी उसे लगता है कि जो मुझे मिला है, उसका अनुग्रह मैं मान भी न पाऊंगा। उससे उऋण होने की तो व्यवस्था नहीं है, उसका अनुग्रह भी न मान पाऊंगा।

कहा जाता है, कठिन है पिता के ऋण से मुक्त होना, कठिन है मां के ऋण से मुक्त होना, लेकिन असंभव नहीं। गुरु के ऋण से मुक्त होना असंभव है। और गुरु के ऋण से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जो अनुभव गुरु के माध्यम से उपलब्ध होता है, यह जो कृष्ण के माध्यम से अर्जुन को हुआ, अब इस अनुभव के लिए कोई भी तो मूल्य नहीं चुकाया जा सकता—कुछ भी नहीं दिया जा सकता। सच तो यह है कि देने वाला भी कहां बचा अब, क्या दे। अब जो भी दे सब छोटा है, व्यर्थ है। सिर्फ नमस्कार रह जाता है, सिर्फ नमन रह जाता है।

गुरु का हमने जो इतना आदर किया है, वह किसी और कारण से नहीं; क्योंकि कुछ और करने का उपाय ही नहीं है। उसे हम कुछ दे भी नहीं सकते। कुछ दें तो व्यर्थ है। जो हम देंगे, वह संसार का कुछ हिस्सा होगा और वह हमें संसार के पार ले गया। उस संसार के पार ले जाने

वाले अनुभव के लिए संसार का कुछ भी दें, पूरा संसार भी दें तो बेमानी है। अब हम क्या कर सकते हैं ? सिर्फ एक अनुग्रह का भाव रह जाता है।

इसलिए अर्जुन कह रहा है—नमस्कार ! नमस्कार !! हजार बार नमस्कार !!! कई बहाने खोज रहा है कि आप देवों के देव, आप परमात्मा, आप ब्रह्मा के भी पिता, वह कुछ भी कह रहा है, वह बच्चों जैसी बात है। वह जो कुछ भी कह रहा है, एक ही बात है; वह हर तरफ से कोशिश कर रहा है कि परमात्मा को नमस्कार कर सके।

एक बहुत मजे की बात है। सिर्फ भारत अकेला मुल्क है, जहां गुरु के चरणों में झुकने की लम्बी धारा है। और अगर कहीं भी यह बात गई है तो वह भारत से गई है। दुनिया में कहीं भी गुरु के चरणों में सिर रख कर अपने को सब भांति समर्पित करने की कोई धारणा नहीं है।

इसलिए पश्चिम से जब लोग आते हैं, तो उन्हें जो सबसे बात मुश्किल खटकती है, वह गुरु के प्रति इतनी अनन्य श्रद्धा खटकती है। इतनी श्रद्धा उनको अन्धापन मालूम पड़ती है। और उनको मालूम पड़ना ठीक ही है, क्योंकि किसी के चरणों में सिर रखना और किसी के प्रति इस तरह सब समर्पित कर देना अजीब-सा मालूम पड़ता है। और लगता है यह तो एक तरह की मानव प्रतिष्ठा हो गई, यह तो मनुष्य की पूजा हो गई। और उनको लगना ठीक है, क्योंकि उन्हें जो दिखाई पड़ रहा है, वह मनुष्य ही है।

लेकिन, अगर किसी शिष्य को विराट की थोड़ी-सी भी किरण मिली हो किसी के द्वारा, तो अब वह क्या करे ? वह कहां जाय ? वह कैसे अपने भार को हलका करे ? उसके पास एक ही उपाय है कि वह सब तरह से झुक जाय। और यह झुकना बड़ा अद्भुत है। यह झुकना दोहरे अर्थों में अद्भुत है। जो मिला है, उसका अनुग्रह इससे प्रगट होता है। और इस झुकने में और मिलने की संभावना सघन हो जाती है। जो बिल्कुल झुकना जानता है, उसे सब मिल जाएगा। यह सवाल नहीं है कि वह कहां झुकता है—झुकने की कला जिसे आती हो।

हम तो कई लोग ऐसे हैं जो नदी में खड़े, पैर पानी में डूबे; लेकिन झुक नहीं सकते इसलिए प्यासे मर रहे हैं। क्योंकि जब झुकें, चुल्लू बनाएं, पानी को भरें तब प्यास बुझ सके। खड़े हैं नदी में लेकिन अकड़े हैं, झुक

नहीं सकते। वह घड़ा भी जब पानी में जाय, न झुके, आड़ा न हो, अकड़ा रहे तो भर नहीं सकता। हम नदी में खड़े हैं, परमात्मा चारों तरफ बह रहा है, मगर झुक नहीं सकते। कैसे झुकें ! वह जो झुकने का डर है, वह हमें अटका देता है।

धर्म की खोज झुकने की कला है। और जो झुककर चुल्लू भर लेता है, उसे पता चल गया फिर तो वह पूरा झुककर पानी में डुबकी भी मार ले सकता है। फिर तो वह जानता है कि अगर सिर को मैं बिल्कुल झुका दूं, पानी के नीचे चला जाऊं, तो मैं पूरा ही नहा जाऊंगा।

अर्जुन कह रहा है कि जो मैंने जाना, जाना कि तुम्हीं हो सब कुछ। इसलिए हम गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश, क्या-क्या नहीं कहते रहे। जिन्होंने कहा होगा, हमें लगता है, कैसे लोग रहे होंगे ! लेकिन जिन्होंने कहा है, उन्होंने किसी कारण से कहा है। अगर हम बिना कारण के कह रहे हैं, तो जरूर हमें अजीब-सी बात लगती है कि गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु, गुरु ही सब कुछ।

यही अर्जुन कह रहा है कि तुम्हीं सब कुछ हो। परापर ब्रह्म तुम्हीं हो। उसने देखा। गुरु झरोखा बन गया। उसके द्वार से उसने पहली दफा झांका। सारी सीमाएं हट गईं, अनन्त सामने आ गया। उस अनन्त की छाया उस पर पड़ी। पहली दफा जो स्वप्न था, वह टूटा और सत्य उद्घाटित हुआ है। उसका अनुग्रह स्वाभाविक है।

गीता अध्याय ११ :

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ।४१।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ।४२।

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ।४३

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ।४४

•

क्षमा योग का दर्शन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, क्रास मैदान, बंबई, संध्या : दिनांक ११ जनवरी ७३

नवमां प्रवचन

एक मित्र ने पूछा है—प्रभु से प्रार्थना करते हैं तो कहते हैं कि सारे दुख मेरे मिटा दे, सुख ही सुख शेष रह जायं। और आपने कहा कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो प्रभु से हम क्या मांगें, क्या प्रार्थना करें?

प्रार्थना मांग नहीं है

जहां तक मांग है, वहां तक प्रभु से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। प्रार्थना मांग नहीं है। ज्यादा उचित हो कि कहें प्रार्थना धन्यवाद है, मांग नहीं। जो नहीं मिला है, उसकी मांग नहीं है प्रार्थना; जो मिला है, उसके अनुग्रह का धन्यवाद है--थैंक्स गिविंग। कुछ मांगें मत। आपकी मांग ही आपके, परमात्मा के बीच बाधा बन जाएगी।

क्योंकि जब भी हम कुछ मांगते हैं, तो उसका अर्थ क्या होता है? उसका अर्थ होता है—जो हम मांग रहे हैं, वह परमात्मा से भी बड़ा है। एक आदमी परमात्मा से धन मांग रहा है। उसका अर्थ हुआ कि लक्ष्य धन है, परमात्मा तो केवल साधन है। एक आदमी सुख मांग रहा है, उसका अर्थ हुआ कि सुख बड़ा है। परमात्मा से मिल सकता है, इसलिए परमात्मा से मांग रहे हैं। लेकिन परमात्मा केवल माध्यम हो गया, परमात्मा केवल साधन हो गया। हम परमात्मा से भी सेवा ले रहे हैं।

जब भी हम कुछ मांगते हैं तो जो मांगते हैं, वह महत्वपूर्ण है। जिससे हम मांगते हैं, वह महत्वपूर्ण नहीं है। वह अगर महत्वपूर्ण मालूम होता है तो सिर्फ इसलिए कि जो हम चाहते हैं वह उससे मिल सकता है। लेकिन उसका महत्व द्वितीय है—दोयम्, नम्बर दो है।

परमात्मा से कुछ भी मांगा नहीं जा सकता। और जो मांगते हैं, उनका परमात्मा से कोई सम्बन्ध नहीं। परमात्मा को तो जो मिला है, उसके लिए धन्यवाद दिया जा सकता है। और जो मिला है, वह बहुत है—असीम। लेकिन जो मिला है, उसके लिए हम धन्यवाद नहीं देते। जो नहीं मिला है, उसके लिए हम मांग करते हैं—शिकायत करते हैं।

अभाव ही हमारा मन देखता है। जो हमारे पास है, जो हमें मिला है—अकारण जीवन, अस्तित्व, जो खिलावट हमें मिली है—उसके लिए कोई अनुग्रह नहीं है। प्रार्थना अनुग्रह का भाव है।

ऐसा हुआ कि रामकृष्ण के पास जब विवेकानन्द आए, तो उनके घर की हालत बड़ी बुरी थी। पिता मर गए थे। और पिता मौजी आदमी थे—कोई सम्पत्ति तो छोड़ नहीं गए थे, उल्टा कर्ज छोड़ गए थे। और विवेकानंद को कुछ भी न सूझता था कि कर्ज कैसे चुके। घर में खाने को भी रोटी नहीं थी। और ऐसा अक्सर हो जाता था कि घर में इतना थोड़ा-बहुत अन्न जुट पाता कि मां और बेटे दोनों थे, तो एक का ही भोजन हो सकता था। विवेकानन्द मां को कहते कि मैं घर आज भोजन नहीं करूंगा, किसी मित्र के घर निमंत्रण है। मां भोजन कर ले इसलिए घर से बाहर चले जाते। कहीं भी गली-कूचों में चक्कर लगाकर—कोई मित्र का निमंत्रण नहीं होता—वापिस खुशी-खुशी लौट आते कि बहुत अच्छा भोजन मिला, ताकि मां भोजन कर ले।

रामकृष्ण को पता लगा तो उन्होंने कहा, तू भी पागल है, तू जाकर मां से क्यों नहीं मांग लेता! तू रोज यहां आता है। जा मंदिर में और मां से मांग ले, क्या तुझे चाहिए। रामकृष्ण ने कहा तो विवेकानन्द को जाना पड़ा। रामकृष्ण बाहर बैठे रहे। आधी घड़ी बीती, एक घड़ी बीती, घंटा बीतने लगा। तब उन्होंने भीतर झांककर देखा, विवेकानन्द आंख बन्द किए खड़े हैं, आंख से आनन्द के आंसू बह रहे हैं, सारे शरीर में रोमांच है।

फिर जब विवेकानन्द बाहर आए तो रामकृष्ण ने कहा, मांग लिया मां से? विवेकानन्द ने कहा, वह तो मैं भूल ही गया। जो मिला है वह इतना ज्यादा है कि मैं तो सिर्फ अनुग्रह के आनन्द में डूब गया। अब दोबारा जब जाऊंगा तब मांग लूंगा। दूसरे दिन भी यही हुआ, तीसरे दिन भी यही हुआ। रामकृष्ण ने कहा, पागल तू मांगता क्यों नहीं है! तो विवेकानन्द ने कहा, आप नाहक ही मेरी परीक्षा ले रहे हैं। भीतर जाता हूं तो यह भूल ही जाता हूं कि वे क्षुद्र जरूरतें, जो मुझे घेरे हैं, वे भी हैं, उनका कोई अस्तित्व है। जब मां के सामने होता हूं तो विराट के सामने होता हूं, तो क्षुद्र की सारी बात भूल जाती है। यह मुझसे नहीं हो सकेगा।

रामकृष्ण ने अपने शिष्यों को कहा कि इसीलिए इसे भेजता था कि अगर इसकी प्रार्थना अभी भी मांग बन सकती है, तो इसे प्रार्थना की कला नहीं आई। अगर यह अब भी मांग सकता है प्रार्थना के क्षण में, तो इसका मन संसार में ही उलझा है, परमात्मा की तरफ उठा नहीं है।

आप पूछते हैं कि क्या मांगें। मांगें मत। मांग संसार है। और जो मांगना छोड़ देता है, वही केवल परमात्मा में प्रवेश करता है। तो कुछ भी न मांगें, सुख नहीं, कुछ भी मत मांगें। मोक्ष भी मत मांगें, मुक्ति भी मत मांगें; क्योंकि मांग ही उपद्रव है—मांग ही बाधा है। वह जो मांगने वाला मन है, वह प्रार्थना में हो ही नहीं पाता।

साधारणतः हमने सारी प्रार्थना को मांग बना लिया है। मांगना चाहते हैं तभी हम प्रार्थना करते हैं। प्रार्थी का मतलब ही हो गया—मांगने वाला, अन्यथा हम प्रार्थना ही नहीं करते। जब मांगना होता है तभी प्रार्थना करते हैं। जब नहीं मांगना होता है तो प्रार्थना भी खो जाती है। हमारी सारी प्रार्थना भिक्षु की, मांगने वाले की प्रार्थना है। हम भिक्षा-पात्र लेकर ही परमात्मा के सामने खड़े होते हैं। यह ढंग उचित नहीं है। यह प्रार्थना का ढंग ही नहीं है। फिर प्रार्थना क्या है?

साधारणतः लोग समझते हैं कि प्रार्थना कुछ करने की चीज है। क्या आपने जाकर स्तुति की, कि गुणगान किया, कि भगवान की बड़ी प्रशंसा की! कुछ करने की चीज है? प्रार्थना न तो मांग है और न कुछ करने की चीज है। प्रार्थना एक मनोदशा है। उचित होगा कहना कि प्रार्थना को नहीं

जाती। आप प्रार्थना में हो सकते हैं—यू कैन नाट डू प्रेयर, यू कैन बी इन इट। प्रार्थना में हो सकते हैं, प्रार्थना की नहीं जा सकती। वह कोई कृत्य नहीं है कि आपने कुछ किया, घंटा बजाया, नाम लिया, वे सब बाह्य उपकरण हैं।

प्रार्थना भीतर की एक मनोदशा है—ए स्टेट आफ माइंड। दो तरह की मनोदशाएं हैं—मांग, डिजायर, वासना। वासना कहती है—यह चाहिए। मन की एक दशा है कि यह चाहिए, यह चाहिए, यह चाहिए। चौबीस घंटे हम वासना में—यह चाहिए, यह चाहिए, यह चाहिए। एक क्षण ऐसा नहीं है जब वासना न हो—कुछ न कुछ चाहिए। चाह धुएं की तरह चारों तरफ घेरे रहती है।

एक स्थिति है—वासना। अगर आप मांग लेंगे, प्रार्थना कर रहे हैं तो वासना बनी हुई है, स्थिति बदली ही नहीं। वहां आप फिर कुछ मांग रहे हैं। बाजार में कुछ मांग रहे थे, पत्नी से कुछ मांग रहे थे, पति से कुछ मांग रहे थे, बेटे से, बाप से कुछ मांग रहे थे, समाज से कुछ मांग रहे थे, राज्य से कुछ मांग रहे थे, संसार से कुछ मांग रहे थे, अब परमात्मा से मांग रहे हैं। जिससे मांग रहे थे, वह बदल गया; लेकिन मांगने वाला मन, वह भिखारी वासना मौजूद है। कभी इससे मांगा, कभी उससे मांगा। जब कहीं भी न मिल सका तो लोग भगवान से मांगने लगते हैं, सोचते हैं जो कहीं से नहीं मिला, वह भगवान से मिल जाएगा। मांगते लेकिन जरूर हैं। यह वासना है।

प्रार्थना बिल्कुल उल्टी अवस्था है। वासना है—दौड़, कुछ जो नहीं है, उसके लिए। प्रार्थना—जो है, उसका आनन्द भाव। प्रार्थना है ठहर जाना, वासना है दौड़। वासना है भविष्य में, प्रार्थना है अभी और यहीं। प्रार्थनापूर्ण चित्त का अर्थ है—मिट गया अतीत, मिट गया भविष्य, यह क्षण सब कुछ है। खड़े हैं परमात्मा की प्रतिमा के सामने और, और यह प्रतिमा कहीं भी हो सकती है—एक वृक्ष में हो सकती है, एक नदी में हो सकती है, एक व्यक्ति में हो सकती है, आपके बेटे में हो सकती है, आपकी पत्नी की आंखों में हो सकती है, पत्थर में हो सकती है, आकार में, निराकार में, कहीं भी हो सकती है।

जहां भी आप ऐसा क्षण खोज लें कि आप में अब कोई दौड़ नहीं है मन की, मन ठहर गया है; जैसे धारा रुक गई हो, कोई गति नहीं है। इस क्षण में जो आनन्द भाव उत्पन्न हो जाता है, और जो थिरक फैल जाती है, इस क्षण में जो पुलकित हो उठते हैं प्राण के कण-कण, भीतर तक, केन्द्र तक, जो भनक सुनाई पड़ने लगती है अनन्त के स्वर की, वह प्रार्थना है। इस प्रार्थना से भी नृत्य पैदा हो जाता है। क्योंकि जब प्राण आनन्दित होते हैं तो पैर भी नाचने लगते हैं। इस आनन्द से स्वर भी फूट पड़ता है। जब भीतर की वीणा बजती है, तो गीत भी फूट पड़ता है। यही फर्क है।

आप भी जाकर मंदिर में गीत गा सकते हैं मीरा का। लेकिन आप गा रहे हैं कुछ पाने के लिए। मीरा ने भी गाया था। गाया था, कुछ भीतर मिल गया था, उसकी भनक शरीर तक दौड़ गई थी। मीरा नाचने लगी, गाने लगी। इस गाने-नाचने में प्रार्थना नहीं है। ये तो प्रार्थना के परिणाम हैं, यह तो प्रार्थना की बाईप्राडक्ट है। यह तो जैसे गेहूं ऊगता है तो उसके साथ भूसा भी ऊग आता है। जब भीतर प्रार्थना होती है, तो यह आनन्द बाहर भी प्रकट होने लगता है। पर हम तो मीरा को बाहर से देखते हैं, तो हमें लगता है मीरा गीत गा रही है, नाच रही है। शायद हम भी नाचें और गीत गाएं ऐसा हो, तो जो मीरा को भीतर हुआ वह हमें भी हो जाय। यही तर्क की भूल हो जाती है। यही भूल हो जाती है।

मीरा को जो भीतर हो रहा है, उसके कारण नृत्य पैदा हो रहा है। नृत्य के कारण भीतर कुछ होता, होता, तो सभी नर्तकियां मीरा हो जातीं। और गीत के कारण अगर भीतर कुछ होता होता, तो सभी गायक कभी के वहां पहुंच गए होते। आप कितना अच्छा गा पाएंगे! कुशल गायक हैं, उनमें आप क्या जीत पाएंगे! कुशल नर्तक हैं, आप क्या नाच पाएंगे!

नहीं, मीरा को जो हुआ है, यह गान में और नृत्य में उसकी प्रतिध्वनि भर सुनाई पड़ रही है। वह जो हुआ है, वह इसके बाहर है। इसलिए जरूरी नहीं है कि गान और नृत्य पैदा हों ही, क्योंकि महावीर को हमने नाचते नहीं देखा, बुद्ध को हमने गाते नहीं देखा। तो कोई ऐसा भी जरूरी नहीं है कि वह धुन बाहर इस भांति आए, वह अनेक रूपों में आ सकती है—व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करेगी।

बुद्ध के बाहर वह नाचकर नहीं आती। बुद्ध के बाहर वह प्रशान्त, घनी शान्त बन कर आती है। बुद्ध का व्यक्तित्व अलग है। भीतर तो वही घटता है, जो मीरा को घटता है। भीतर बुद्ध के भी वही घटता है। लेकिन मीरा स्त्री है, और मीरा के पैर में जो है, वह बुद्ध के पैरों में नहीं है। वह मीरा की वाणी में जो है, वह बुद्ध की वाणी में नहीं है। बुद्ध का व्यक्तित्व और है।

तो वही घटना भीतर घटती है, लेकिन जिससे छनकर आती है, वह व्यक्तित्व अलग है। तो बुद्ध के बाहर वह प्रगाढ़ शान्ति हो जाती है। जिसने बुद्ध को देखा है, वह सोच ही नहीं सकता कि वह परम अनुभव नृत्य कैसे बनेगा! क्योंकि बुद्ध को तो देखा है, वह बिल्कुल शान्त हो गए, कुछ भी कम्पन नहीं होता बाहर, पत्थर की मूर्ति हो गए। जिन्होंने मीरा को देखा है, वे भरोसा नहीं कर सकते कि शान्त, इस तरह की शान्त स्थिति कैसे बनेगी; क्योंकि मीरा को हमने बावली होते देखा, पागल होते देखा। उसका शरीर नृत्य से भर गया है। ये व्यक्तियों के भेद हैं।

लेकिन आप चाहें तो बुद्ध जैसे मूर्ति बनकर भी बैठ जा सकते हैं, तो भी भीतर की घटना नहीं घटेगी; क्योंकि भीतर की घटना प्राथमिक है, बाहर जो घटता है—वह गौण है, वह उसका परिणाम है, उसका फल है। बाहर से भीतर की तरफ जाने का कोई उपाय नहीं है। भीतर से ही बाहर की तरफ आने का उपाय है।

प्रार्थना—ठहरा हुआ क्षण है मन का। वासना—भागता हुआ क्षण है मन का। वासना है दौड़, प्रार्थना है ठहराव। अगर आप विश्राम के क्षण में किसी वृक्ष के पास बैठ गए, तो वह वृक्ष आपके लिए थोड़ी देर में परमात्मा हो जाएगा। जहां भी हम विश्राम के क्षण में हो जाते हैं, वहीं परमात्मा प्रकट हो जाता है।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, राम—ये भगवान थे? ये भगवान नहीं थे, क्योंकि भगवान तो निराकार है और ये सब तो साकार थे।

निराकार ही है सब

तो हो सकता है उनको भगवान की अनुभूति हुई हो, लेकिन वे भगवान नहीं थे। आकार क्या है? किसे हम आकार कहते हैं? इस जगत में कुछ भी है, जो साकार है? इस जगत में सभी कुछ निराकार है। लेकिन हमारे पास देखने वाली आंखें सीमित हैं। इसलिए निराकार भी हमें आकार दिखाई पड़ता है। आप अपनी खिड़की से आकाश को देखते हैं तो खिड़की के बराबर चौखटे में ही आकाश दिखाई पड़ता है। आप अपने नीले चश्मे से जगत को देखते हैं तो जगत नीला दिखाई पड़ता है। आपकी देखने की क्षमता के कारण आकार निर्मित होता है, अन्यथा आकार कहीं भी नहीं है।

आप कहेंगे यह तो बात कुछ जंचती नहीं। हमारे शरीर का तो कम से कम आकार है। वहां भी आकार नहीं है। कहां आपका शरीर समाप्त होता है, आपको पता है? अगर सूरज ठंडा हो जाय, दस करोड़ मील दूर है, अगर ठंडा हो जाय, तो आपके शरीर का आपको पता है क्या होगा? उसी वक्त ठंडा हो जाय। तो आपका शरीर आपकी चमड़ी पर नहीं समाप्त होता। वह दस करोड़ मील दूर जो सूरज है, वह भी आपके शरीर का हिस्सा है; क्योंकि उसके बिना आप जी नहीं सकते। वह जो दस करोड़ मील दूर सूरज है, वह भी आपके शरीर का हिस्सा है, क्योंकि आपका शरीर उसके बिना जी नहीं सकता। शरीर जुड़ा है उससे। कहां आपका शरीर खत्म होता है? आपके ऊपर? अगर आपके पिता न होते तो आप हो सकते थे? पीछे लौटें। तब आपको पता चलेगा अरबों-खरबों वर्षों का जो इतिहास है, उससे आपका शरीर निर्मित हुआ है। करोड़ों-करोड़ों वर्ष से जीवाणु चल रहा है, वह आपका शरीर बना है। अगर उस शृङ्खला में एक जीवाणु अलग हो जाय तो आप नहीं होंगे। तो समय में पूरा इतिहास आप में समाया हुआ है। अभी, इस क्षण सारा जगत आपमें समाया हुआ है। अगर इस जगत में जरा भी फर्क हो जाय आप नहीं होंगे। तो आपका शरीर अनन्त-अनन्त शक्तियों का एक मेल है। आपको जितना दिखाई पड़ता है, उसको आप शरीर मान लेते हैं। और अगर यह सच है कि अनन्त इतिहास आप में समाया हुआ है, तो अनन्त भविष्य भी आपमें समाया हुआ है। वह आपसे ही पैदा होगा।

आप कहां शुरू होते हैं? कहां समाप्त होते हैं? आपने अपने जन्म-दिन को अपना जन्म-दिन समझ लिया है, यह आपकी समझ की सीमा है। कब आप पैदा हुए? आपका जीवाणु चल रहा है अरबों-अरबों, खरबों वर्षों से। जब आप पैदा नहीं हुए थे तो वह आपकी मां में था, आपके पिता में था। और जब आपके मां-बाप भी पैदा नहीं हुए थे तब वह किसी और में

था, लेकिन वह चल रहा है। आप थे अनन्त काल से और जब आप नहीं होंगे तब भी वह चलता रहेगा अनन्त काल तक। कहां आपका शरीर समाप्त होता है? कहां शुरू होता है? कहां है सीमा उसकी? अभी इस क्षण में ही कहां है उसकी सीमा? किस जगह हम मानें कि यहां मेरा शरीर समाप्त हुआ। सूरज को हम अपने शरीर का हिस्सा मानें कि न मानें—यह बड़ा सवाल है। वैज्ञानिक पूछते हैं कि कहां हम समाप्त करें शरीर को? वहां सूरज पर जरा-सी हलचल होती है और आपमें फर्क हो जाता है, आपको पता नहीं है। पिछले बीस वर्षों में सूरज और आदमी के शरीर पर गहन अध्ययन हुए हैं।

अमरीका के एक रुग्ण चिकित्सालय में, वे बड़े हैरान थे कि किसी-किसी दिन विक्षिप्त लोगों का जो हिस्सा था, उसमें किसी-किसी दिन पागल ज्यादा पागल मालूम पड़ते थे। और कभी-कभी बहुत शान्त मालूम पड़ते थे और कभी-कभी बहुत पागल मालूम पड़ते थे। और जब यह पागलपन का दौर आता था तो किसी एक पागल को नहीं आता था, ये सारे पागलों को आता था। ऐसा लगता था कि पीरियाडिकल सर्किल है, जैसे समुद्र में बाढ़ आती है उतर जाती है, ज्वार चढ़ता है भाटा आ जाता है।

तो तीन वर्ष तक निरन्तर उन पागलों के रिकार्ड को रखा गया कि किस दिन, कब, क्यों, कोई कारण नहीं मिलता था। क्योंकि भोजन में कोई फर्क पड़ा, नहीं पड़ा। कोई अधिकारी बदले गए, नहीं बदले गए। कोई चिकित्सा बदली गई, नहीं बदली गई। कोई फर्क नहीं है, जैसी व्यवस्था है, रुटीन है वैसा सब चल रहा है। अचानक एक दिन सारे पागल ज्यादा पागल हो जाते हैं। एक दिन सारे पागल ज्यादा शान्त हो जाते हैं। सब तरह की खोजबीन के बाद जो नतीजा हाथ में आया, वह कि सूरज से सम्बन्ध है।

सूरज पर तूफान जब उठने हैं, तब वे पागल ज्यादा पागल हो जाते हैं। और जब सूरज का तूफान शान्त हो जाता है, तो वे पागल शान्त हो जाते हैं। और अब तो एक पूरा विज्ञान खड़ा हो रहा है कि सूरज पर जो कुछ घटता है, उसका ठीक अध्ययन किए बिना आदमी के जीवन में क्या घटता है, नहीं कहा जा सकता। हर नब्बे साल में सूरज पर बड़ी क्रान्ति घटित होती है। और जमीन पर जो भी उपद्रव होते हैं, वे हर नब्बे साल के पीरियड में होते हैं। हर ग्यारह साल में सूरज पर छोटा तूफान आता है। जमीन पर जो युद्ध होते हैं, उनका पीरियाडिकल जो वर्तुल है, वह ग्यारह साल है।

अमरीका में ऐसा अध्ययन हो तो समझ में आता है। रूस में भी इस तरफ अध्ययन हुए और रूस के मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक भी चकित हो गए हैं। और रूस में तो मानना बहुत मुश्किल है कि उन्नीस सौ सत्तरह (१९१७) की जो क्रान्ति है—वह लेनिन, ट्राटिस्की और कम्यूनिज्म के कारण नहीं हुई, बल्कि चांद या सूरज पर कोई उपद्रव हुआ, उसके कारण हुई। तब रूस भी क्या करेगा! आज का सारा अध्ययन यह बता रहा है कि सूरज पर जो भी घटित होता है, आदमी उससे तत्क्षण प्रभावित होता है—तत्क्षण! और आदमी के जगत में जो भी घटित होता है, वह सूरज से तारों से जुड़ा है। कहां आप समाप्त होते हैं? कहां आपकी सीमा है? आपकी भी सीमा नहीं है, राम की तो फिक्र छोड़ें, कृष्ण की तो फिक्र छोड़ें, आप भी असीम हैं। यहां प्रत्येक बिन्दु विराट है और यहां प्रत्येक बूंद सागर है। हमें बूंद दिखाई पड़ती है, क्योंकि देखने की हमारी क्षमता सीमित है। तो जैसे-जैसे क्षमता बढ़ती है, वैसे-वैसे आकार छूटने लगता है, निराकार दिखाई पड़ने लगता है। जैसे-जैसे क्षमता विराट होने लगती है, बड़ी होने लगती है, विराट प्रकट होने लगता है। जिस दिन हमारे पास देखने का कोई ढांचा नहीं रह जाता, दृष्टि पूरी मुक्त और शून्य हो जाती है—उस दिन हम विराट के सामने खड़े हो जाते हैं।

राम को आप देखते तो आप तो आदमी ही कहते, क्योंकि आप आदमी के सिवाय राम में भी कुछ नहीं देख सकते। आप कृष्ण को देखते तो उनको भी आदमी कहते हैं। क्योंकि आपके देखने का ढंग है। लेकिन कुछ और तरह के देखने वाले लोग भी हैं। उन्होंने कृष्ण में देख लिया भगवान को, उन्होंने राम में देख लिया भगवान को।

लोग मुझसे पूछते हैं कि राम हुए, कृष्ण हुए, बुद्ध-महावीर हुए, जीसस हुए, लाओत्से हुए—ये सब बहुत पहले हुए, अब क्यों नहीं होते? अब भी होते हैं। लेकिन पहले उन्हें पहिचानने वाले ज्यादा लोग थे, अब उन्हें पहचानने वाले कम लोग हैं, बस उतना ही फर्क है। और आप इस फिक्र में न पड़ें। अगर आप बुद्ध के समय भी होते तो आप बुद्ध को पहचान नहीं

सकते थे। और आप थे, यह कहना ठीक नहीं कि होते, आप थे। और नहीं पहचान पाए इसलिए आप अभी भी हैं, नहीं तो अभी तक तिरोहित हो गए होते। अगर पहचान गए होते तो वह रास्ता आपको दिख गया होता, आप अभी तक वाष्पीभूत होकर दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते। हम हैं इसलिए, तभी तक हम हैं जब तक हम नहीं पहचान पाते, जब तक हमें नहीं दिखाई पड़ पाता। एक व्यक्ति में भी हमें झलक मिल जाय विराट की, तो फिर सब में मिलने लगेगी। वह तो शुरुआत है। कोई राम और कृष्ण अन्त थोड़े ही हैं, शुरुआत हैं। उनमें दिखाई पड़ जाय, तो फिर कहीं भी दिखाई पड़ने लगेगी। फिर हमारा अनुभव हो गया।

इसलिए हमने पत्थर की भी मूर्तियां बनाईं। जिन्होंने पत्थर की मूर्तियां बनाईं, बड़े होशियार लोग थे। क्योंकि उन्हें एक दफा दिखाई पड़ गया, तो फिर पत्थर में भी दिखाई पड़ने लगा। एक दफा दिखाई पड़ गया, तो कहीं भी दिखाई पड़ेगा। फिर पत्थर में भी वही दिखाई पड़ेगा। फिर कोई कारण नहीं है, फिर कहीं कोई बाधा नहीं है। फिर कोई रुकावट रोक नहीं सकती। जो मुझे दिख गया एक दफा, वह फिर मैं कहीं भी देख लूंगा। लेकिन देखने के लिए बड़ी बात यह नहीं है कि राम भगवान हैं या नहीं, यह बड़ा सवाल नहीं है, यह असंगत है। बड़ा सवाल यह है कि मेरे पास भगवान को देखने की आंख है या नहीं।

बुद्ध के पिछले जन्म की घटना है कि—बुद्ध पिछले जन्म में, जब वे अज्ञानी थे और बुद्ध नहीं हुए थे। अज्ञान का एक ही मतलब है हमारे मुल्क में कि जब तक उनको पता नहीं चला था कि मैं भगवान हूं—जब तक वे जानते थे कि मैं आदमी हूं। तब जब वे अज्ञानी थे, उनके गांव में एक बुद्ध पुरुष का आगमन हुआ। तो बुद्ध उनका दर्शन करने गए। उनके चरणों में गिरकर नमस्कार किया और जब वे नमस्कार करके खड़े हुए तो बहुत चकित हो गये—समझ में नहीं पड़ा कि क्या हो गया। वे जो बुद्ध पुरुष थे, उन्होंने बुद्ध के चरणों में सिर रख कर नमस्कार किया। तो बुद्ध घबड़ा गये, उन्होंने कहा, आप यह क्या करते हैं। इससे मुझे पाप होगा। मैं आपके पैर छूऊं, यह उचित है, क्योंकि आप पा चुके हैं, मैं अभी भटक रहा हूं; आप मंजिल हैं, मैं अभी रास्ता हूं! मैं आपके चरणों में झुकूं, यह ठीक है। अभी मेरी खोज बाकी है, आपकी खोज पूरी हो गई। आप क्यों मेरे चरणों में झुकते हैं?

तो उन 'बुद्ध पुरुष' ने बुद्ध को कहा, तुझे वही दिखाई पड़ता है अभी जो तू देख सकता है। मैं तेरे भीतर उसको भी देखता हूं, जो तुझे दिखाई नहीं पड़ता। मैंने जिसे पा लिया है, वह मुझे तेरे भीतर भी दिखाई पड़ता है। मैं तेरे चरण नहीं छू रहा हूं, मैं उसके चरण छू रहा हूं। और एक दिन तुझे भी वह दिखाई पड़ जायगा, यह समय का भर फासला है। चरणों में कोई फर्क नहीं है, समय का भर फासला है। जो आज तुझे दिखाई नहीं पड़ रहा है, मुझे दिखाई पड़ रहा है, वह कल तुझे भी दिखाई पड़ जायगा।

और जब बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो उन्होंने पहला स्मरण अपने पिछले जन्म के उस 'बुद्ध-पुरुष' का किया। उन्होंने कहा कि आज मैं समझ पाया कि उन्हें क्या दिखाई पड़ा होगा। आज मुझे भी दिखाई पड़ रहा है, लेकिन यह सदा मेरे साथ था और मुझमें दिखाई नहीं पड़ा। नजर न हो, तो आपके पास भी रखी हो सम्पदा तो भी दिखाई नहीं पड़ेगी। अन्धे के पास दिया जल रहा हो, क्या अर्थ है? और बहरे के पास वीणा बज रही हो, क्या अर्थ है? कोई अर्थ नहीं, क्योंकि वह घटना घट ही नहीं रही। जब तक आपके पास संवेदना की इन्द्रिय न हो तब तक कुछ भी नहीं है।

अगर आपको भगवान दिखाई न पड़ता हो राम में, तो इसकी फिक्र में मत पड़ना कि राम भगवान हैं या नहीं? इसका आपके पास निर्णय करने का कोई उपाय नहीं है। कोई मापदंड कोई तराजू नहीं है जिस पर नाप सकें कि कौन आदमी भगवान है और कौन नहीं। इस फिक्र में भी मत पड़ना, यह व्यर्थ की कोशिश है। अगर आपको राम में, कृष्ण में, बुद्ध में कहीं भगवान न दिखाई पड़ते हों, तो आप इस फिक्र में पड़ना कि मेरे पास आंख भगवान को देखने की है या नहीं—उसकी खोज में लग जाना। जिस दिन वह आंख आपके पास होगी, उस दिन राम में ही नहीं, रावण में भी भगवान दिखाई पड़ेंगे। उस दिन फिर कोई जगह ही न बचेगी, जहां वे न हों।

नानक गए मक्का, रात थके थे तो सो गए। पुजारी बहुत चिन्तित हुए, क्योंकि नानक ने पैर कर लिये थे मक्का के पवित्र मन्दिर की तरफ। तो पुजारियों ने कहा कि नासमझ अपने को बड़ा ज्ञानी समझता है; और इतनी भी तुझे अक्ल नहीं कि पवित्र मंदिर की तरफ पैर किए हुए है। तो नानक ने कहा कि तुम मेरे पैर वहां कर दो जहां उसका पवित्र मन्दिर न

हो। मैं भी बड़ी चिन्ता में हूं, तुम आ गए अच्छा हुआ। मैंने भी बहुत सोचा कि पैर कहां करूं, क्योंकि वह सब जगह मौजूद है। और कहीं तो पैर करूंगा। सोना है मुझे, थका-मांदा हूं। अब तुम आ गए, तुम हल कर दो। तुम मेरे पैर पकड़ो और उस तरफ कर दो, जहां वह न हो।

कहानी बड़ी मीठी है। और यह कि पुजारियों ने उनके पैर सब तरफ करने की कोशिश की और बड़ी मुश्किल में पड़ गए। जहां पैर किए, वहीं मक्का हट गया। मक्का हटा कि नहीं यह बड़ा सवाल नहीं है। बड़ा सवाल यही है कि सच में ही कहां पैर करियेगा जहां भगवान नहीं है। नानक को अगर एक बार दिखाई पड़ गया है उसका होना, तो अब कोई जगह नहीं है, जहां वह न हो। अब वह सब जगह है। अब तो कहीं भी पैर करो, कहीं भी सिर रखो; पैर भी उस पर पड़ेंगे, सिर भी उस पर पड़ेगा। उठो-बैठो तो उसके भीतर, चलो तो उसके भीतर, अब वही है और कुछ भी नहीं है।

देखने की क्षमता हो, नानक की आंख हो, तो फिर सब जगह है। और हमारी आंख हो, तो फिर कहीं भी नहीं है, फिर हमको चिन्ता इसकी भी होती है कि राम में भी शक होता है, बुद्ध में भी शक होता है। और आप ऐसा मत समझना कि आपको ही शक होता है। उस दिन भी जो लोग थे, उनको भी शक था। कोई सारे लोगों ने बुद्ध को मान लिया था, ऐसा नहीं है, कोई सारे लोगों ने महावीर को मान लिया ऐसा भी नहीं है, कि सारे लोगों ने कृष्ण को मान लिया था ऐसा भी नहीं है। बहुत थोड़े से लोग पहचान पाते हैं। तो जो पहचान ले, वह धन्यभागी है। इस पहचानने से कोई कृष्ण को फायदा होता है, ऐसा नहीं है; इस पहचानने से वह जो पहचान लेता है, उसको ही फायदा हो जाता है। एक में भी दिख जाय, तो देखने की कला आ जाती है, फिर सब में देखा जा सकता है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि कीर्तन के समय हम मन के सामने कौन-सी छबि रखें, जिससे मन केन्द्रित हो जाय?

मन का विसर्जन है सूत्र

मन को केन्द्रित नहीं करना है, मन को विसर्जित करना है। इन दोनों में फर्क है। मन केन्द्रित भी हो जाय, तो भी मन रहेगा। कोई छवि मन में बना ली, तो छवि पर मन केन्द्रित हो जाएगा; लेकिन छवि रहेगी, मन भी रहेगा, दो बने रहेंगे। कीर्तन का अन्तिम लक्ष्य, ध्यान का अन्तिम लक्ष्य, प्रार्थना का, पूजा का अन्तिम लक्ष्य एक बच रहे, छबि कोई न रहे। तो जब आप कीर्तन कर रहे हैं, तो छबि की फिक्र न करें, छबि आ जाय तो हटाने की भी फिक्र मत करें, छबि न आए तो लाने की भी फिक्र न करें। आप तो सिर्फ लीन होने की, डूबने की फिक्र करें, मिटने की फिक्र करें। जब आप एकाग्र करने की चेष्टा करते हैं, तो मन पर तनाव पड़ता है। तनाव बेचैनी पैदा करेगा। एकाग्र करने की चेष्टा ही मत करें, खोने की चेष्टा करें। जैसे बूंद सागर में डूब रही है, ऐसे आप विराट में डूब रहे हैं, निराकार में खो रहे हैं। जैसे दीये को कोई फूंककर बुझा दे और वह खो जाय शून्य में, ऐसे आप भी खो रहे हैं। लीन होने की चिन्ता करें, डूबने की चिन्ता करें, मिटने की चिन्ता करें। एकाग्र करने की चेष्टा मत करें, विसर्जित होने की करें—मेल्टिंग, जैसे बर्फ पिघल रही है।

एक ख्याल कर लें, जैसे बर्फ हो गए आप और पिघल रहे हैं और बहते जा रहे हैं और नदी में लीन होते जा रहे हैं। पिघलने की, खोने की, डूबने की—यह भाव-दशा अगर आपके कीर्तन में बनी रही. धीरे-धीरे नृत्य गहन होने लगेगा, धीरे-धीरे आवाज प्रगाढ़ होने लगेगी और धीरे-धीरे नृत्य के साथ आपके भीतर बहुत कुछ टूटने लगेगा, समाप्त होने लगेगा, वह जो अहंकार था वह गिरने लगेगा। कोई क्या कहेगा, कोई क्या सोचेगा, मैं क्या पागलपन कर रहा हूं—वह सब समाप्त होने लगेगा। धीरे, धीरे-धीरे आप भूल जाएंगे कि आप हैं, भूल जाएंगे कि जगत है। और जब यह विस्मरण का क्षण आ जाय कि न समझ में आए कि मैं कौन हूं, न समझ में आए कि चारों तरफ कौन हैं, तो समझना कि यह विस्मृति की शुरुआत हुई।

इस विस्मरण में, जगत की तरफ से इस विस्मरण में भीतर का स्मरण आना शुरू हो जाता है, तो जब जगत भूलने लगता है, तो परमात्मा याद आने लगता है। परमात्मा के याद आने का मतलब यह नहीं है कि कोई छबि याद आने लगती हो, परमात्मा के याद आने का मतलब यह है कि वह जो, जिसको विलियम जेम्स ने 'ओशनिक फीलिंग', कहा है समुद्र होने की भाव-दशा, पूर्ण होने का भाव नहीं, समुद्र होने का भाव होने लगता है। फिर आप विराट हो जाते हैं। और फिर हवाएं चलती हैं, तो ऐसा नहीं

कि आपके बाहर चल रही हैं, आपके भीतर चलती हैं। वृक्ष हिलते हैं तो आपके बाहर नहीं, आपके भीतर हिलते हैं। चांद-तारे आपके भीतर चलते हैं। आपके आसपास जो लोग नाच रहे हैं और कीर्तन कर रहे हैं, वे भी आपके बाहर नहीं रह जाते, आपके भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं। आप फैलकर बड़े हो जाते हैं। और आपके भीतर सब होने लगता है।

छबि की बहुत फिक्र न करें, आ जाय तो हटाने की भी चेष्टा मत करें, क्योंकि हटाने में भी फिर चेष्टा शुरू हो जाती है। आ जाय तो राजी, न आए तो राजी। अगर आप किसी छबि को प्रेम करते रहे हैं, तो वह आ जाएगी। अगर कृष्ण से आपका लगाव है, तो जब आप मस्त होंगे, तो पहली घटना यही घटेगी कि कृष्ण आपको दिखाई पड़ने लगेंगे। अगर आपका क्राइस्ट से प्रेम है, तो आपके मस्त होते ही पहली घटना—क्राइस्ट के पास आप पहुंच जाएंगे।

मजे से उनको रहने दें, उनको हटाने की भी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन उन पर एकाग्र होने की भी कोई जरूरत नहीं है। धीरे-धीरे वे भी खो जाएंगे। और जब वे भी खो जाएंगे तब निराकार प्रकट होता है—जहां राम भी खो जाते हैं, कृष्ण भी खो जाते हैं, बुद्ध भी, क्राइस्ट भी, क्योंकि वे हमारे अन्तिम पड़ाव हैं। इसे ठीक से समझ लें। जहां संसार समाप्त होता है, वहां वे खड़े हैं। क्राइस्ट, बुद्ध, कृष्ण, उनकी प्रतिमाएं आखिरी तख्ती हैं, जहां संसार समाप्त होता है वहां वे खड़े हैं। जब उनका भाव आता है, तो उसका अर्थ है कि अब हम किनारे आ गए। लेकिन उन तख्तियों को पकड़कर रुक नहीं जाना है। देखते रहना है और आगे, और आगे, और आगे, जहां वे भी खो जाएंगे, वहां लीन हो जाना है। देखते-देखते आनन्द से धीरे-धीरे सब छोड़ देना है। यह छोड़ने की घटना शरीर को छोड़ने से शुरू होती है। कीर्तन की यही मौज और आनन्द है कि आप शरीर को छोड़ दिए हैं।

लोग मुझसे पूछते हैं कि कोई व्यवस्था होनी चाहिए, कोई ढंग से नृत्य, कोई ताल, लय, यह सब व्यवस्था होनी चाहिए। व्यवस्था से कीर्तन का कोई सम्बन्ध नहीं है। सच तो यह है कि कीर्तन व्यवस्था तोड़ने का एक उपाय है कि आपके भीतर अब कोई व्यवस्था करने की चेष्टा नहीं है। आपने छोड़ दिया शरीर को, जैसा हो रहा है, आप होने दे रहे हैं। अब

आप, आप बीच-बीच में नहीं आ रहे कि कैसा पैर उठाऊं, कैसा न पैर उठाऊं। अब जो हो रहा है, होने दे रहे हैं। और यह, यह छोड़ना शरीर का—पहला अनुभव है विसर्जन का। फिर मन को भी छोड़ देना है, जो हो रहा है होने देना है। धीरे-धीरे शरीर और मन अपने आप गति करने लगेंगे और आप सिर्फ साक्षी रह जाएंगे—अपने ही शरीर, अपने ही मन के।

मैं पढ़ रहा था, रूसी अन्तरिक्ष यात्री पैंकोफ जब पहली दफा छत्तीस घंटे जमीन की परिधि में परिक्रमा किया, तो उसने अपने संस्मरण लिखे लौट कर। उसने अपनी डायरी में लिखा है—क्योंकि जैसे ही जमीन का गुरुत्वाकर्षण समाप्त होता है, तो हाथ-पैर निर्भार हो जाते हैं। अन्तरिक्ष में कोई वजन तो नहीं है, वजन तो आप में भी नहीं है। जमीन की कशिश की वजह से वजन मालूम पड़ता है। दो सौ मील, जमीन के पार जाने के बाद वजन समाप्त हो जाता है, आप निर्भार हो जाते हैं।

तो पैंकोफ ने लिखा है कि जब मैं सोने लगा, तो बड़ी मुसीबत मालूम पड़ी। क्योंकि मेरा पूरा शरीर तो बेल्ट से बंधा था, लेकिन मेरे दोनों हाथ अधर में टंग जाते थे। मैं उनको खींचकर नीचे कर लेता। खींचकर नीचे कर लेता तब तो ठीक, लेकिन जैसे ही झपकी आनी शुरू होती, मेरा खिंचाव बन्द हो जाता, हाथ दोनों फिर अधर में टंग जाते। उसने लिखा है कि बीच आधी रात में नींद खुली, अपने दोनों हाथ ऐसे टंगे हुए देखकर मुझे पहली दफे साक्षी भाव हुआ— कि मेरा शरीर, अपना ही शरीर अपने बस के बाहर ऐसा अधर मे टंगा हुआ!

कीर्तन की गहराई में जब शरीर को आप बिलकुल छोड़ देते हैं—उन्मुक्त, और जो होता है होने देते हैं, तत्क्षण आपको भीतर लगता है कि मैं शरीर से अलग हूं। अब शरीर अपनी गति से चल रहा है। शरीर अपनी गति कर रहा है, मैं देख रहा हूं। जैसा पेकोफ को हुआ होगा—ऐसा कीर्तन में आपको सहज ही हो सकता है।

और बड़े मजे की बात है कि आज नहीं कल अन्तरिक्ष यात्रा को हम आत्म-साधना के लिए उपयोग में ला सकेंगे। और अतीत में साधकों को जो काम वर्षों तक करके हल होता था, वह अंतरिक्ष में साधक को घंटों में भी हो जा सकता है। क्योंकि जमीन पर रहकर 'मैं शरीर नहीं हूं'—इस भाव

का अनुभव करने में वर्षों लग जाते हैं; क्योंकि जमीन पूरे वक्त ख्याल दिलाती है कि तुम शरीर हो। इसलिए हमारा साधक हिमालय के पहाड़ पर दूर जाता था, ऊंचाई पर। जितनी ऊंचाई पर जाता था, जमीन से जितना दूर, उतना निर्भार होना आसान हो जाता था। इसलिए हमने कैलाश खोजा था। लेकिन अब कैलाश छोटी-मोटी जगह है। अब हम अंतरिक्ष में जमीन को बिल्कुल छोड़ सकते हैं। और जब अंतरिक्ष यान में किसी साधक का शरीर हवा में ऐसे उड़ रहा हो, जैसे कि गुब्बारा गैस का भरा हुआ हवा में होता है, तब यह अनुभव करना बिल्कुल आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूं।

कीर्तन आपको निर्भार कर जाता है, शरीर को आप छोड़ देते हैं, बच्चे की तरह। कभी-कभी तो नृत्य बड़ा क्रांतिकारी काम कर देता है। सूफियों में दरवेश नृत्य की व्यवस्था है। दरवेश नृत्य वैसा होता है, जैसे बच्चे चक्कर लगाते हैं, एक ही जगह खड़े होकर फिरकनी करते हैं। तो दरवेश नृत्य में एक ही जगह खड़े होकर फिरकनी की तरह चक्कर लगाया जाता है। जब आप जोर से एक ही जगह खड़े होकर चक्कर लगाते हैं, सिर घूमने लगता है, चक्कर मालूम होता है, लगता है गिर जाऊंगा, गिर जाऊंगा। लेकिन अगर आप गिरें न और लगाये चले जाएं, तो थोड़ी देर में आपको पता लगेगा कि शरीर चक्कर लगा रहा है और आप खड़े हो गए। छोटे बच्चों को बहुत मजा आता है। मां-बाप रोकते हैं, मत करो चक्कर आ जाएगा। मत रोकना, क्योंकि छोटे बच्चों को जो मजा आता है फिरकनी मारने में—वह मजा थोड़े से आत्मा के सुख का ही है। क्योंकि फिरकनी मारने में हमको लगता है कि मैं शरीर नहीं हूं। शरीर घूमने लगता है, यन्त्र की तरह, और बीच में वो खड़े हो जाते हैं। बच्चे निर्दोष हैं, उनको यह जल्दी हो जाता है।

नृत्य भी आपको बचपन में ले जाता है। कीर्तन आपको बच्चे की तरह सरल कर देता है। जो हो रहा है, होने देना है। और भीतर सजग शांत देखते रहना है। यह साक्षी भाव बना रहे और अपने को विसर्जित करने की धारणा बनी रहे तो आपका कीर्तन सफल हो जाता है।

अब हम सूत्र को लें।

"हे परमेश्वर ! सखा ऐसा मानकर, आपके इस प्रभाव को न जानते हुए, मेरे द्वारा प्रेम से अथवा प्रमाद से भी, हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! इस प्रकार जो कुछ हठपूर्वक कहा गया है। और हे अच्युत ! जो आप हंसी के लिए विहार, शैय्या, आसन और भोजनादि को ले अकेले अथवा सखाओं के सामने भी अपमानित किए गए हैं, वे सब अपराध, अप्रमेह स्वरूप ! आपसे मैं क्षमा कराता हूं।"

क्षमा योग

यह बड़ी मधुर बात है—बहुत मीठी, अत्यन्त आन्तरिक। जिस दिन अर्जुन को दिखाई पड़ा है कृष्ण का विराट होना, उनका परमात्मा होना, उस दिन स्वाभाविक है कि उनका मन अनेक-अनेक पीड़ाओं, अनेक-अनेक शरमों, अपराध के भाव से भर जाए। क्योंकि इन्हीं कृष्ण को अनेक बार कंधे पर हाथ रखकर उसने कहा है, हे यादव, हे मित्र, हे सखा, इस विराट को मित्र की तरह व्यवहार किया है। आज सोचकर भी भय लगता है। आज सोचकर भी उसे लगता है कि मैंने क्या किया, क्या समझा मैंने उन्हें अब तक और मैंने कैसा व्यवहार किया। काश ! मुझे पता होता कि क्या छिपा है उनके भीतर, तो ऐसा व्यवहार मैं कभी न करता। लेकिन बडे मजे की बात है कि यह अर्जुन को भी लगता हो—ऐसा नहीं है। अगर आप पत्नी हैं, या अगर आप पति हैं, या पिता हैं, या बेटा हैं, जिस दिन आपको परमात्मा का अनुभव होगा, उस दिन आपको भी लगेगा कि पत्नी के साथ मैंने कल तक कैसे व्यवहार किया। क्योंकि तब आपको पत्नी में भी वही दिखाई पड़ जायगा। तब आपको लगेगा मैंने नौकर के साथ कैसा व्यवहार किया, क्योंकि तब आपको नौकर में भी वही दिखाई पड़ जाएगा। तब आपको लगेगा अब तक जो भी मैंने किया, वह नासमझी थी; क्योंकि जिसको मैं जो समझ रहा था वह, वह है ही नहीं। यह तो प्रतीक है अर्जुन का यह कहना, यह सभी अनुभवियों को अनुभव होगा।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि जब उनकी गीतांजलि प्रकाशित हुई और उन्हें नोबेल प्राइज मिली। नोबेल प्राइज जब तक न मिली थी तब तक तो कोई फिक्र उनकी करता नहीं था। जब नोबेल प्राइज मिली तो स्वागत-समारोह शुरू हो गए। सारे कलकत्ते ने स्वागत किया। विरोधी भी मित्र बन गए। लेकिन एक बूढ़ा उनके पड़ोस में था, जो नोबेल प्राइज से जरा भी न डरा। और वह बूढ़ा उन्हें बड़ा परेशान किए हुए था कि जब उनकी कविताएं छपती थीं, तो वह बूढ़ा अक्सर उनको रास्ते में मिल जाता आते-

जाते, और कहता कि सुन, परमात्मा का अनुभव हुआ है। क्योंकि वे परमात्मा के बाबत कविताएं लिख रहे थे। ऐसा उनसे कोई भी नहीं पूछता था। कविता ठीक है या नहीं, यह अलग बात है। लेकिन ऐसा उनसे कोई भी नहीं पूछता था कि परमात्मा का अनुभव हुआ हो। बूढ़ा ऐसे ही तेज आंख से देखता था कि रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि उस आदमी से जितना मैं डरता था किसी से भी नहीं डरता था। और हिम्मत भी नहीं पड़ती थी कहने की कि अनुभव हुआ है, क्योंकि अनुभव हुआ भी नहीं था। और उससे कहने में कोई सार भी नहीं था, उसकी आंख ही डरा देती थी।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि मैंने बड़े प्रेम के गीत गाए, बड़ी मित्रता के। लेकिन मेरे मन में उस बूढ़े के प्रति कोई सद्‌भाव कभी नहीं जन्मा। मैं सारे जगत के प्रति प्रेम का गीत गा सकता था, उस बूढ़े को छोड़कर। वह जो बूढ़ा था, वह पड़ोस में ही रहता था। और उसका जो व्यवहार था, वह ऐसा था कि बड़ा कठोर था। रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि लेकिन एक दिन सारी बात बदल गई। जा रहा था समुद्र के किनारे, वर्षा हुई थी थोड़ी, और रास्ते के किनारे डबरों में पानी भर गया था। सांझ उतर गई। चांद आ गया। पूरे चांद की रात थी। डबरों में, गन्दे डबरों में सड़क के किनारे चांद की छबि बनने लगी, बड़ी प्यारी! फिर सागर के किनारे जाकर देखा चांद को। फिर अचानक एक ख्याल आया कि चांद तो चांद ही है। चाहे सागर का स्वच्छ जल हो और चाहे सड़क के किनारे बने गन्दे डबरे का गन्दा जल हो, चांद के प्रतिबिम्ब में तो कोई गन्दगी नहीं होती, चाहे वह गन्दे डबरे में बन रहा हो और चाहे स्वच्छ जल में बन रहा हो। प्रतिबिम्ब तो गन्दा नहीं होता, गन्दे जल के कारण। इस ख्याल के आते ही समाधि लग गई। यह ख्याल अनूठा है। इसका मतलब हुआ कि सीमाएं सब टूट गईं और प्रतिबिम्ब कहीं भी बन रहा हो उसका, चाहे राम में चाहे रावण में, बराबर हो गया। समाधि लग गई, आनन्द से हृदय भर गया, नाचता हुआ घर की तरफ लौटने लगा। रास्ते पर वह आदमी मिला। आज मुझे डरा नहीं पाया। आज उसे देखकर भी मैं आनंदित हुआ। उसे मैंने गले लगा लिया। आज उसने मेरी आंख में झांककर देखा, लेकिन मुझसे कहा नहीं कि क्या ईश्वर का अनुभव हुआ है। उसने कहा, तो अच्छा हो गया! मालूम होता है हो गया। रवीन्द्रनाथ ने कहा, उस दिन के बाद तीन दिन तक ऐसी दशा बनी रही कि जो भी मिल जाय तो लगे कि उसे गले लगा लूं—

मित्र हो कि शत्रु हो, परिचित-अपरिचित, नौकर, मित्र कोई भी हो। फिर आदमी चुक गये तो गाय, घोड़े, उनके भी गले मिलना होने लगा। फिर वे भी चुक गये तो वृक्ष, पत्थर, दीवार; और रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि दीवार से मिलकर भी वही अनुभव होने लगा, जो अपनी प्रेयसी से मिल कर हो।

लेकिन उस दिन लगा कि अब तक जो मैंने लोगों से व्यवहार किया है, वह बड़ा बुरा था। जाकर क्षमा मांगने गया उस बूढ़े से कि मुझे माफ कर दो, मैं तुम्हें पहचान ही न पाया कि तुम कौन हो। आज पहचान पाया हूं, तो सबसे क्षमा मांगने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। जिस दिन आपको भी थोड़ी-सी झलक मिलेगी, सिवाय क्षमा मांगने के और कोई उपाय नहीं रह जाएगा; क्योंकि चारों तरफ वही विराट मौजूद है और हम उसके साथ जो व्यवहार कर रहे हैं, वह बड़ा ओछा है। पर होगा ही व्यवहार ओछा, क्योंकि दृष्टि ओछी है, क्योंकि वह विराट तो कहीं दिखता ही नहीं है।

ऐसा मैंने सुना है, एक सूफी कथा है। एक सम्राट अपने बेटे पर नाराज हो गया, क्योंकि बेटा कुछ उपद्रवी, हठधर्मी था, उच्छृङ्खल था। नाराज इतना हो गया कि एक दिन उसने बेटे को राज्य का निकाला दे दिया। उसे कहा कि तू राज्य को छोड़कर चला जा। एक ही बेटा था। बड़ा कष्ट था, लेकिन छोड़ना पड़ा। बाप की भी जिद थी, बेटा भी जिद्दी था, बाप का ही बेटा था, एक से ही ढंग थे। दोनों अहंकारी थे। बेटे ने भी छोड़ दिया। राज्य की सीमा में मत टिकना, तो राज्य की सीमा में न टिककर दूसरे राज्य में चला गया। राजा का बेटा था। कभी जमीन पर पैदल भी नहीं चला था, कभी कोई काम भी नहीं किया था। तो सिवाय भीख मांगने के कोई उपाय नहीं रहा। थोड़ा बहुत तम्बूरा बजाना जानता था, थोड़ा गीत-वीत का शौक था तो गीत गाकर, तम्बूरा बजाकर भीख मांगने लगा।

दस वर्ष बीत गए। बाप बूढ़ा हुआ, मरने के करीब आया, तो अब उसे लगा कि क्या करें उस बेटे को खोजा जाय। तो वजीरों को भेजा कि कहीं भी मिले शीघ्र ले आओ। मौत मेरी करीब है, वही मालिक है, जैसा भी है। उस दिन जब उस छोटे से गांव में जहां एक चाय की दूकान के सामने

वह भावी सम्राट भीख मांग रहा था। गर्मी के दिन थे और आग बरस रही थी और रास्ते तप रहे थे। उन पर पैदल नंगे चलना मुश्किल था। उसके जूते नहीं थे। तो वह भीख मांग रहा था एक छोटे से बर्तन में, और लोगों से कह रहा था कि जूते के लिए मुझे पैसे चाहिए। होटल में जो लोग चाय-वाय पी रहे थे गरीब-गुरबे वे भी उसको पैसे दे जाते, थोड़ी बहुत चिल्लर उसके बर्तन में थी। वजीर का रथ आकर रुका। वजीर ने देखा, पहचान गया, वस्त्र अब भी वही थे, दस साल पहले पहनकर जो घर से निकला था। फट गए थे, चीथड़े हो गये थे, गन्दे हो गए थे। पहचानना मुश्किल था कि ये सम्राट के वस्त्र हैं। लेकिन पहचान गया मन्त्री। आंखें वही थीं, चेहरा काला पड़ गया था, शरीर सूख गया था। हाथ में भिक्षा-पात्र था, पैर में फफोले थे। मंत्री नीचे उतरा। वह भिक्षा-पात्र फैलाए हुए था, पास में रथ आकर रुका है—राजकुमार ने सोचा कि भिक्षा-पात्र इस तरफ करूं—देखा मंत्री है, हाथ से भिक्षा-पात्र छूट गया। एक क्षण में दस साल मिट गए। मंत्री चरण पर गिर पड़ा और कहा कि महाराज वापिस चलें। भीड़ इकट्ठी हो गई, गांव सब आ गया पास, लोग पैरों पर गिरने लगे। वे, जिनके सामने वह भीख मांग रहा था, जो अभी भीख देने से कतरा रहे थे, वे उसके पैरों पर गिरने लगे, कहने लगे माफ कर देना, हमें क्या पता था। एक क्षण में सब बदल गया, सारे गांव का रुख। एक क्षण में बदल गया राजकुमार का रुख भी। अभी वह भिखारी था, एक क्षण में सम्राट हो गया। कपड़े वही रहे, शरीर वही रहा, आँखें बदल गईं, रौनक और हो गई।

जिन्दगी, जैसा हम उसे देख रहे हैं, हमारी आंख, जो दिखाई पड़ रही है जिन्दगी, हमारी आंख के कारण। आंख बदल जाय, सारी जिन्दगी बदल जाय। और तब सिवाय क्षमा मांगने के कुछ भी न रह जाएगा। वह पूरा गांव पैरों पर गिरने लगा कि क्षमा कर देना, बहुत भूलें हुई होंगी हमसे। निश्चित हुई हैं। हमने तुम्हें भिखारी समझा यही बड़ी भूल थी।

अर्जुन यही कह रहा है कि हमने तुम्हें मित्र समझा, यही बड़ी भूल थी। और मित्र समझ कर हमने वे बातें कही होंगी जो मित्रता में कह दी जाती हैं। और मित्र एक दूसरे को गाली भी दे देते हैं। सच तो यह है कि जब तक गाली देने का सम्बन्ध न हो लोग मित्रता ही नहीं समझते। जब तक एक दूसरे को गाली न देने लगें तब तक समझते हैं अभी पराए हैं, अभी

कोई अपनापन नहीं है। तो मित्र समझा है। कभी कहा होगा—ए कृष्ण! कभी कहा होगा—ए यादव! कभी कहा होगा—ए मित्र! क्षमा कर देना। हठपूर्वक बहुत-सी बातें कही होंगी। हठपूर्वक अपनी बातें मनवानी चाही होंगी। तुम्हारी बात झुठलायी होगी, विवाद किया होगा, तुम गलत हो—ऐसा भी कहा होगा। तुम गलत हो—ऐसा सिद्ध भी किया होगा। अवहेलना की होगी, ठुकराया होगा तुम्हारे विचार को, और हे अच्युत! हंसी के लिए ही सही, तुमसे वे बातें कही होंगी जो नहीं कहनी चाहिए थीं। विहार में, शैय्या पर, आसन में, भोजन करते वक्त, मित्रों के साथ, भीड़ में, एकान्त में, दूसरों के सामने; न मालूम क्या-क्या कहा होगा, न मालूम किस-किस भांति आपको अपमाषित किया होगा, या दूसरे अपमानित कर रहे होंगे तो सहमति भरी होगी, विरोध न किया होगा। यह सब अपराध अप्रमेह स्वरूप, अन्यान्य प्रभाव वाले, आपसे मैं क्षमा कराता हूं। आपको अब जैसा देख रहा हूं और अब तक जैसा आपको देखा, इन दोनों के बीच जमीन-आसमान का भेद पड़ गया है। तो जो व्यवहार मैंने आपसे किए थे अनजान में, न जानते हुए आपको, न पहचानते हुए आपको—उन सबके लिए मुझे माफ कर देना।

इस जगत से भी हम माफी मांगेंगे, क्योंकि जगत परमात्मा है। और हम जो व्यवहार उससे कर रहे हैं, वह परमात्मा के साथ किया गया व्यवहार नहीं है। अगर मानकर भी चलें आप, अभी आपको पता भी नहीं है, सिर्फ मानकर चलें कि यह जगत परमात्मा है और चौबीस घंटे के लिए प्रत्येक व्यक्ति से ऐसा व्यवहार करने लगें जैसे वह परमात्मा है, तो आप पाएंगे कि आप बदलना शुरू हो गए, आप दूसरे आदमी हो गए, आपके भीतर गुण-धर्म बदल जाएगा।

सूफियों की एक परम्परा है, एक साधना की विधि है कि जो भी दिखाई पड़े—उसे परमात्मा को मानकर ही चलना। अनुभव न हो तो भी, कल्पना करनी पड़े तो भी; क्योंकि वह कल्पना एक न एक दिन सत्य सिद्ध होगी। और जिस दिन सत्य सिद्ध होगी उस दिन किसी से क्षमा नहीं मांगनी पड़ेगी।

मंसूर ने कहा है कि अगर परमात्मा भी मुझे मिल जाय, तो मुझे क्षमा नहीं मांगनी पड़ेगी; क्योंकि मैंने उसके सिवाय किसी में और कुछ देखा ही नहीं है।

अर्जुन को मांगनी पड़ रही है, क्योंकि अब तक उसने परमात्मा में भी कृष्ण को देखा है, एक मित्र को देखा है, एक सखा को देखा है। फिर मित्र के साथ जो सम्बन्ध है, ध्यान रहे, मित्रता कितनी ही गहरी हो उसमें शत्रुता मौजूद रहती है। और मित्रता चाहे कितनी ही निकट की हो उसमें एक दूरी तो रहती ही है। मन का जो द्वंद्व है वह सब पहलुओं पर प्रवेश करता है। आप किसी को शत्रु नहीं बना सकते सीधा। शत्रु बनाना हो तो पहले मित्र बनाना जरूरी है। या कि आप किसी को सीधा शत्रु बना सकते हैं? सीधा शत्रु बनाने का कोई उपाय नहीं है। शत्रुता भी आती है तो मित्रता के द्वार से ही आती है। असल में शत्रुता मित्रता में ही छिपी रहती है। इसलिए बुद्धिमानों ने कहा है, जिनको शत्रु न बनाने हों, उनको मित्र बनाने से बचना चाहिए। अगर आप मित्र बनाएंगे तो शत्रु भी बनेंगे ही। क्योंकि मित्र और शत्रु कोई दो चीजें नहीं हैं, शायद एक ही घटना के दो छोर हैं, दो सघनताएं हैं एक ही तरंग की।

तो अर्जुन यह कह रहा है कि मित्रता में बहुत बार शत्रुता भी की है, और मित्रता में बहुत समय ऐसे वचन भी कहे हैं, जो शत्रु से भी नहीं कहने चाहिए। उन सबकी मैं क्षमा चाहता हूं।

"हे विश्वेश्वर! आप इस चराचर जगत के पिता और गुरु से भी बड़े गुरु एवम् अति पूजनीय हैं। हे अतिशय प्रभाव वाले, तीनों लोकों में आपके समान दूसरा कोई भी नहीं है, अधिक तो होवे कैसे। इससे हे प्रभो! मैं शरीर को अच्छी प्रकार चरणों में रखकर और प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करता हूं। हे देव! पिता जैसे पुत्र के, और सखा जैसे सखा के, और पति जैसे प्रिय स्त्री के—वैसे ही आप भी मेरे अपराध को सहन करने के लिए योग्य हैं।"

"मैं जानता हूं कि आप क्षमा कर देंगे। और मैं जानता हूं कि आप बुरा न लेंगे—अतीत में जो हुआ है। मैं जानता हूं कि आप महा क्षमावान हैं और जैसे प्रियजन को कोई क्षमा कर दे, आप मुझे कर देंगे। फिर भी मैं क्षमा मांगता हूं, शरीर को ठीक से चरणों में रखकर"—इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

हमें ख्याल नहीं है कि शरीर की प्रत्येक अवस्था, मन की अवस्था से जुड़ी है। शरीर और मन ऐसी दो चीजें नहीं हैं। इसलिए आज तो विज्ञान

'बाडी एण्ड माइंड'—शरीर और मन—ऐसा न कहकर 'साइको-सोमेटिक' —मनोशरीर या शरीरमन—ऐसा एक ही शब्द का प्रयोग करने लगा है। और ठीक है, क्योंकि शरीर और मन एक साथ हैं और प्रत्येक में कुछ भी घटित हो दूसरे में प्रभावित होता है। जैसे कभी सोचें।

पश्चिम में दो विचारक हुए—लेंगे और विलियम जेम्स। उन्होंने एक सिद्धांत विकसित किया था—जेम्सलेंगे-सिद्धांत। वह उल्टी बात कहता है सिद्धांत, लेकिन बड़ी महत्वपूर्ण। आम तौर से हम समझते हैं कि आदमी भयभीत होता है इसलिए भागता है। जेम्सलेंगे कहते हैं, भागता है इसलिए भयभीत होता है। आमतौर से हम समझते हैं आदमी प्रसन्न होता है इसलिए हंसता है। जेम्सलेंगे कहते हैं कि हंसता है इसलिए प्रसन्न होता है। और उनका कहना है कि अगर यह बात ठीक नहीं है, तो आप बिना हंसे प्रसन्न होकर बता दीजिये; या बिना भागे भयभीत होकर बता दीजिए। उनकी बात भी सच है। आधी सच है, आधी आम आदमी की बात भी सच है। असल में भय और भागना दो चीजें नहीं हैं। भय मन है और भागना शरीर है। प्रसन्नता और हंसी दो चीजें नहीं हैं। प्रसन्नता मन है और हंसी शरीर है। और शरीर और मन एक दूसरे को तत्क्षण प्रभावित करते हैं, नहीं तो शराब पीकर आपका मन बेहोश नहीं होगा। शराब तो जाती है शरीर में मन कैसे बेहोश होगा! शराब मजे से पीते रहिये। शरीर को नुकसान होगा तो होगा, मन को कोई नुकसान नहीं होगा; लेकिन मन तत्क्षण बेहोश हो जाता है। और जब आपका मन दुखी होता है तो शरीर भी रुग्ण हो जाता है।

अब तो शरीर-शास्त्री कहते हैं कि जब मन दुखी होता है तो शरीर की रेजिस्टेंस—प्रतिरोधक शक्ति—कम हो जाती है। अगर मलेरिया के कीटाणु फैले हुए हैं, तो जो आदमी मन में दुखी हो, उसको जल्दी पकड़ लेंगे; और जो मन में प्रसन्न हो, उसको नहीं पकड़ेंगे। आप जानकर हैरान होंगे कि प्लेग फैली हुई है, सबको पकड़ रही है और डाक्टर दिन-रात प्लेग में काम कर रहा है, उसको नहीं पकड़ रही। कारण क्या है? डाक्टर अति प्रसन्न है अपने काम से। वह जो सेवा कर रहा है उससे आनन्दित है। उसे प्लेग कोई बीमारी नहीं है, एक प्रयोग है। उसे प्लेग जो है, वह कोई खतरा नहीं है, बल्कि एक चुनौती है, एक संघर्ष है। जिसमें वह जूझ रहा है। वह प्रसन्नचित्त है, वह आनन्दित है, वह बीमार नहीं पड़ेगा।

क्यों ? क्योंकि शरीर की प्रतिरोधक शक्ति, रेजिस्टेंस, जब आप प्रसन्न होते हैं तब ज्यादा होती है, जब आप दीन, दुखी, पीड़ित होते हैं भीतर, तो कम हो जाती है। कीटाणु भी बीमारियों के आप पर तब तक हमला नहीं कर सकते जब तक आप दरवाजा न दें कि आओ, मैं तैयार हूं। और जब आप इतने प्रसन्नता से भरे होते हैं तो चारों तरफ आपके एक आभा होती है जिसमें कीटाणु प्रवेश नहीं कर सकते। चौबीस घंटे में बीमारी पकड़ने के घंटे अलग हैं। और अब आदमी के भीतर की जो खोज होती है, उससे पता चलता है कि चौबीस घंटे में कुछ समय के लिए आप पीक अवर में होते हैं, शिखर पर होते हैं अपनी प्रसन्नता के। कोई क्षण में, चौबीस घंटे में एक दफा आप बिलकुल नादिर, नीचे, आखिरी अवस्था में होते हैं। उस आखिरी अवस्था में बीमारी आसानी से पकड़ती है और उस शिखर पर बीमारी कभी नहीं पकड़ती। वह जो शिखर का क्षण है आपके भीतर प्रसन्नता का, वह शरीर और मन का एक ही है, वह जो खाई का क्षण है, वह भी एक ही है। शरीर और मन जुड़े हैं। आप जब किसी के प्रति क्रोध से भरते हैं तो आपकी मुट्ठियां भिचने लगती हैं, और दांत बन्द होने लगते हैं, और आंखें सुर्ख हो जाती हैं, और आपके शरीर में एड्रिनल और दूसरे तत्व फैलने लगते हैं खून में, जो जहर का काम करते हैं—जो आपको पागलपन से भरते हैं। अब आपका शरीर तैयार हो रहा है। आपको पता है कि क्यों मुट्ठियां भिचने लगती हैं ? क्यों दांत कसमाने लगते हैं ?

आदमी भी जानवर रहा है। और जानवर जब क्रोध से भरता है तो नाखून से चीर-फाड़ डालता है, दांतों से काट डालता है। आदमी भी जानवर रहा है। उसके शरीर का ढंग तो अब भी जानवर का ही है। इसलिए दांत भिचने लगते हैं, हाथ बंधने लगते हैं और शरीर काम शुरू कर देता है, जहर उनमें फैल जाता है कि अब आप किसी की हत्या कर सकते हैं। आपको पता है क्रोध में आप इतना बड़ा पत्थर उठा सकते हैं, जो आप शान्ति में कभी नहीं उठा सकते, क्योंकि आप पागल हैं। इस वक्त आप होश में नहीं हैं, इस वक्त कुछ भी हो सकता है।

जब क्रोध में ऐसा होता है तो प्रेम में इससे उलटा होता है। जब आप प्रेम से भरते हैं तब आपको पता है, आप बिलकुल रिलेक्स्ड हो जाते हैं, सारा शरीर शिथिल हो जाता है, जैसे शरीर को अब कोई भय नहीं है।

क्रोध में शरीर तन जाता है, प्रेम में शिथिल हो जाता है। जब आप किसी के आलिंगन में होते हैं प्रेम से भरे हुए, तो आप छोटे बच्चे की तरह हो जाते हैं; जैसे वह अपनी मां की छाती से लगा हो—बिलकुल शिथिल, लुन्ज-पुन्ज। अब आपके शरीर में जैसे कोई तनाव नहीं है कहीं। मन, शरीर एक साथ बदलते चले जाते हैं। आप कभी तने रहकर प्रेम करने की कोशिश करें तब आपको पता चल जाएगा, असम्भव है। या कभी ढीले होकर क्रोध करने की कोशिश करें तो पता चल जाएगा, असम्भव है।

कभी आपने ख्याल किया है कि जब आप किसी को अपमानित करना चाहते हैं, तो आपका मन होता है—निकालूं जूता और दे दूं सिर पर। मगर क्यों ऐसा होता है ? और ऐसा एक मुल्क में नहीं होता है, सारी दुनिया में होता है। एक जाति में नहीं होता, सब जातियों में होता है। एक धर्म में नहीं होता, सब धर्मों में होता है। दुनिया के किसी कोने में कितने ही सांस्कृतिक फर्क हों, लेकिन जब आप किसी को अपमानित करना चाहते हैं, तो अपना जूता उसके सिर पर रखना चाहते हैं।

असल में जूता तो केवल सिम्बल है, आप अपना पैर रखना चाहते हैं; लेकिन वह जरा अड़चन का काम है। किसी के सिर पर पैर रखना जरा उपद्रव का काम है, उसके लिए काफी जिमनास्टिक, योगासन इत्यादि का अभ्यास चाहिए। एकदम से रखना आसान नहीं होगा, उसके लिए सर्कस का अनुभव चाहिए। तो फिर सिम्बल का काम करते हैं, जूता सिम्बल का काम करता है कि हम जूते को सिर पर मार देते हैं। हम उससे यह कह रहे हैं कि तुम्हारा सिर, हमारे पैर। लेकिन क्या इसका मतलब है ? सारी दुनिया में यह भाव एकसा है।

इससे विपरीत श्रद्धा है—जब हम किसी के चरणों में सिर रख देना चाहते हैं। यह बड़े मजे की बात है कि सारी दुनिया में अपमान करने के लिए सिर पर पैर रखने की भावना है। लेकिन सम्मान करने के लिए सिर्फ भारत में पैर पर सिर रखने की धारणा है। इस लिहाज से भारत की पकड़ गहरी है आदमी के मन के बाबत। इसका यह मतलब हुआ कि सारी दुनिया में अपमान करने की व्यवस्था तो हमने खोज ली है, सम्मान करने की व्यवस्था नहीं खोज पाए। और अगर यह बात सच है कि हर मुल्क में हर आदमी को अपमान की हालत में ऐसा भाव उठता है, तो दूसरी बात भी

सच होनी चाहिए कि श्रद्धा के क्षण में सिर किसी के पैर पर रख देने का भाव। यह भीतर जो घटना घटेगी, तभी।

इसका यह मतलब हुआ कि श्रद्धा को जितना हमने अनुभव किया है, संभवतः दुनिया में कोई मुल्क ने अनुभव नहीं किया है। अगर अनुभव करता तो यह प्रक्रिया घटित होती। क्योंकि अगर अनुभव करता तो कोई उपाय खोजना पड़ता जिससे श्रद्धा प्रकट हो सके। तो एक तो श्रद्धा की यह अभिव्यक्ति, क्षमा याचना के लिए। अर्जुन कह रहा है कि सब भांति आपके चरणों में अपने शरीर को रखकर मांगता हूं माफी, मुझे माफ कर दें।

लेकिन इतनी ही बात नहीं है, थोड़ा भीतर प्रवेश करें, तो सिर जब किसी के चरणों में रखा जाता है ...अभी जब बाडी इलेक्ट्रिसिटी पर काफी काम हो गया है, तो यह बात समझ में आ सकती है। आपको शायद अन्दाज न हो, लेकिन उपयोगी होगा समझना। और इस सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी देनी आपके फायदे की होगी। हर शरीर की गतिविधि विद्युत से चल रही है। आपका शरीर एक विद्युत यन्त्र है। उसमें विद्युत की तरंगें दौड़ रही हैं। आप एक बैटरी हैं, जिसमें विद्युत चल रही है—बहुत लो-वोल्टेज की, बहुत कम शक्ति की। लेकिन बड़ा अद्भुत यन्त्र है कि उतने लो वोल्टेज से सारा काम चल रहा है।

अभी इंग्लैंड में एक वैज्ञानिक ने कुछ तांबे की जालियां विकसित की हैं, वे काम की हैं। वह तांबे की जालियां आपके शरीर के नीचे रख देता है और आपके हाथों में और आपके पैरों में तांबे के तार बांध देता है। और आपके शरीर की ऋण विद्युत को आपके शरीर की धन विद्युत से जोड़ देता है। आपके भीतर जो निगेटिव, पाजिटिव पोल हैं विद्युत के—उनको जोड़ देता है। उनके जोड़ने से आप एकदम शांत होने लगते हैं, अब तो इसका अस्पतालों में इंग्लैंड के उपयोग हो रहा है। उसको जोड़ते ही आप शांत होने लगते हैं। कितना ही अशांत आदमी हो, तीस मिनट में एकदम गहरी नींद में खो जाएगा; क्योंकि उसकी दोनों विद्युत शक्तियां एक दूसरे को शांत करने लगती हैं। अगर उल्टे तार जोड़ दिये जाएं, तो शान्त आदमी अशांत होने लगता है—उसके भीतर की विद्युत अस्त-व्यस्त होने लगती है और यह एक आदमी का ही नहीं। अगर इसको और गहरा प्रयोग करना हो, तो एक स्त्री को एक जाली पर लिटा दिया जाय, एक जाली पर पुरुष को और

उनके ऋण-धन को जोड़ दिया जाय तो और भी शीघ्रता से शान्ति होने लगती है।

आपको अपनी पत्नी या प्रेयसी के पास बैठकर जो शान्ति मिलती है, उसमें अध्यात्म बहुत कम, बिजली ही ज्यादा है। आपके ऋण, धन विद्युत जुड़ जाते हैं। और अगर प्रेम गहरा हो तो ज्यादा जुड़ जाती है, क्योंकि आप एक-दूसरे को ज्यादा से ज्यादा निकट लाना चाहते हैं। अगर प्रेम ज्यादा न हो, तो आप भले ही निकट हों—अपने को दूर रखना चाहते हैं। एक तरह का बचाव बना रहता है, वह बाधा बन जाती है। यह तो दस-पच्चीस लोगों के ग्रुप में भी प्रयोग किया जाता है। दस-पच्चीस लोगों को इकट्ठा जोड़ दिया जाता है एक शृङ्खला में, तब और भी जल्दी परिणाम होते हैं।

भारत इस रहस्य को किसी दूसरे कोने से सदा से जानता रहा है। गुरु के चरणों में सिर रखना, गुरु के साथ उसकी विद्युत का जोड़ है। उसके चरणों में सिर रखते ही गुरु की जो विद्युत धारा है, वह शिष्य में प्रवाहित होनी शुरू हो जाती है। और ध्यान रहे विद्युत को प्रवाहित होने के लिए दो ही जगहें हैं, या तो हाथ या पैर की अंगुलियां। नुकीला कोना चाहिए जहां से विद्युत बाहर जा सके। और जहां से विद्युत भीतर लेनी हो उसके लिए सिर से अच्छी कोई जगह नहीं है। उसके लिए गोल जगह चाहिए जहां से विद्युत ग्रहण की जा सके। रिसेप्टिविटी के लिए सिर बहुत अच्छा है, दान के लिए अंगुलियां बहुत अच्छी हैं। व्यवस्था पूरी यह थी, वह भी तो उन्होंने इंग्लैंड में अभी विद्युत यन्त्र बनाए और उसका फायदा लिया। हम हजारों साल से ले रहे हैं। व्यवस्था यह थी कि गुरु के चरणों में ठीक से सिर रख दें। सिर का मतलब है—रिसेप्टिव हिस्सा, ग्राहक हिस्सा और चरणों का अर्थ है—दान देने वाला हिस्सा। और गुरु अपने हाथों को सिर के ऊपर रख दे, आशीर्वाद दे। तो गुरु दोनों तरफ से—पैर की अंगुलियों से, हाथ की अंगुलियों से दायक हो जाता है। और जो नीचे झुका है, उसकी तरफ आसानी से विद्युत बह सकती है। इसलिए शिष्य नीचे है, गुरु ऊपर है। अगर आपको सच में श्रद्धा का भाव जन्मा है, तो आप फौरन अनुभव करेंगे कि आपके सिर में अलग तरह की तरंगें गुरु के चरणों से प्रवाहित होनी शुरू हो गई हैं। और आपका सिर शांत हुआ जा रहा है। कोई चीज उसमें बह रही है और शान्त हो रही है।

मनुष्य का शरीर विद्युत यन्त्र है। अब तो विद्युत के छोटे यन्त्र भी बनाए गए हैं, जो आपके मस्तिष्क में लगा दिए जायं, तो वे धीमी गति से आपके मस्तिष्क में विद्युत की तरंगें फेंकेंगे। उन तरंगों से आप शान्त होने लगेंगे। नींद के लिए रूस ने ट्रेन्कोलाइजर करीब-करीब बन्द कर दिये हैं। उन्होंने विद्युत यन्त्रों का उपयोग शुरू कर दिया है। क्योंकि वे कहते हैं, ट्रेन्कोलाइजर तो भीतर जाकर शरीर को अस्त-व्यस्त भी करता है, विद्युत यन्त्र किसी तरह अस्त-व्यस्त नहीं करता और मनुष्य के शरीर में ही नहीं, पशुओं के शरीर में भी मस्तिष्क से अगर विद्युत डाली जाय, वे भी शान्त हो जाते हैं।

अभी एक अमरीकन विचारक साल्टर प्रयोग कर रहा था अपनी बिल्ली के ऊपर। मैं बहुत चकित हुआ। वह अपनी बिल्ली के मस्तिष्क में विद्युत की तरंगें फेंक रहा था और वैसी अवस्था पैदा कर रहा था, जिसको वैज्ञानिक अल्फा वेव्ज कहते हैं। मस्तिष्क में चार तरह की तरंगें हैं विद्युत की। एक तो वे तरंगें हैं, जो आप सामान्यतः सोच विचार में लगे होते हैं, तब चलती हैं, उनको नापने का उपाय है; क्योंकि प्रति सेकंड उनकी खास फ्रिक्वेंसी होती है। फिर उनसे बाद की तरंगें हैं, अल्फा उनका नाम है। जब आप शान्त सोये होते हैं, रिलैक्स्ड होते हैं, या ध्यान में होते हैं, तब अल्फा होती हैं। फिर उसके बाद की भी तरंगें हैं, जब आप बिलकुल प्रगाढ़ निद्रा में होते हैं, जहां स्वप्न भी नहीं होता। और उसके बाद की भी तरंगें हैं, जिनके बाबत अभी पश्चिम में कोई समझ पैदा नहीं हो सकी कि वह किसकी खबर देती हैं। ये तीन का तो पता चलता है। तो अब तो आप ध्यान में हैं या नहीं, इसको यन्त्र से नापा जा सकता है। यन्त्र बता देता है कि अल्फा तरंगें चल रही हैं, तो ध्यान में हैं।

तो साल्टर यह प्रयोग कर रहा था कि आदमी ही ध्यान में हो सकते हैं या जानवर भी ध्यान में पहुंचाए जा सकते हैं। तो एक बिल्ली को विद्युत की तरंगें देकर अल्फा की हालत में लाकर और बिल्ली को भूखा रखता था और जब उसमें अल्फा तरंगें आ जाती थीं, यन्त्र बताता कि अल्फा तरंगें आ गईं, तब उसको दूध, मिठाई देता था। तो बिल्ली तरकीब सीख गई कि जब अल्फा तरंगें मिलती हैं तभी उसको दूध, मिठाई मिलती है। जब उसको भूख लगती तो बिल्ली चुपचाप शान्त खड़े होकर आंख बन्द करके ध्यान

करने लगती। जब उसको भूख लगती, क्योंकि उसको पता चल गया भीतर कि कब मन की कैसी हालत होती है तब मुझे दूध मिलता है, तो वह आंख बन्द करके खड़ी हो जाती और बिल्ली अल्फा तरंगें पैदा करने लगती बिना विद्युत की सहायता के। मुझे तो बहुत आशापूर्ण मालूम पड़ा, अगर बिल्ली कर सकती है, आप भी कर सकते हैं। ऐसी क्या मुश्किल है?

अर्जुन कह रहा है कि चरणों में सिर रखकर आपसे प्रसन्न होने की प्रार्थना करता हूं, मुझे क्षमा कर दें और मैं जानता हूं कि आप तो क्षमा कर ही देंगे। लेकिन जो मैंने किया है अतीत में, वह मेरे ऊपर बोझ—उस बोझ से मुझे मुक्त हो जाना जरूरी है उसके लिए चरणों में सब छोड़ देता हूं।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ।४५।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ।४६।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ।४७।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ।४८।

सनातन द्वन्द्व का दर्शन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, क्रास मैदान, बंबई, संध्या : दिनांक १२ जनवरी ७३

दसवां प्रवचन

एक मित्र ने पूछा है—भगवान कृष्ण के विकराल स्वरूप में अर्जुन देवताओं को कंपित होते हुए देखता है। अन्यों को मृत्यु की ओर जाते हुए देखता है। लेकिन क्या उसने अपने आपको इस विकराल रूप में नहीं देखा, मृत्यु के मुंह में जाते नहीं देखा ? और अगर अपने आपको भी देखा तो उसका उल्लेख क्यों नहीं किया गया, और अगर नहीं देखा तो क्यों ?

मृत्यु का दर्शन

यह प्रश्न कीमती है। और बहुत सोचने योग्य। कोई भी व्यक्ति अपनी मृत्यु नहीं देख सकता। मृत्यु सदा दूसरे की ही देखी जा सकती है। क्योंकि मृत्यु बाहर घटित होती है, भीतर तो घटित होती ही नहीं।

समझें; आपने जब भी मृत्यु देखी है तो किसी और की देखी है। आपकी मृत्यु की जो धारणा है, वह दूसरों को मरते देखकर बनी है। ऐसा नहीं है कि आप बहुत बार नहीं मरे। आप बहुत बार मरे हैं। लेकिन जो भी आपकी मृत्यु की धारणा है, वह दूसरे को मरते हुए देखकर आपने बनाई है। जब दूसरा मरता है, तो आप बाहर होते हैं। शरीर निस्पन्द हो जाता है, श्वास बन्द हो जाती है, हृदय की धड़कन समाप्त हो जाती है, खून चलता

नहीं, आदमी बोल नहीं सकता, निष्प्राण हो जाता है। लेकिन भीतर जो था वह तो कभी मरता नहीं। और आदमी अपनी मौत कैसे देख सकता है!

इसलिए भीतर जो मर रहा है, वह नहीं देख सकता कि मैं मर रहा हूं, वह तो अब भी पाएगा कि मैं जी रहा हूं। अगर होश में है तो उसे दिखाई पड़ेगा कि मैं जी रहा हूं। अगर बेहोश है तो ख्याल में नहीं रहेगा। हम बहुत बार मरे हैं, लेकिन बेहोशी में मरे हैं। इसलिए हमें कोई ख्याल नहीं है। हमें कुछ पता नहीं है कि मृत्यु में क्या घटा! अगर एक बार भी हम होश में मर जाएं तो हम अमृत हो गए। क्योंकि तब हम जान लेंगे कि बाहर ही सब मरता है। जो मेरा समझा था वह टूट गया, बिखर गया, शरीर नष्ट हो गया। लेकिन मैं, मैं अब भी हूं।

कोई व्यक्ति ने कभी स्वयं की मृत्यु का अनुभव नहीं किया है। जो लोग बेहोश मरते हैं उन्हें तो पता ही नहीं चलता कि क्या हुआ। जो लोग होश से मरते हैं उन्हें पता चलता है कि मैं जीवित हूं। जो मरा वह शरीर था मैं नहीं हूं। इसलिए ऐसा सोचें और तरह से। अगर आप कल्पना भी करें अपने मरने की तो कल्पना भी नहीं कर सकते। अनुभव को छोड़ दें। कल्पना तो झूठ की भी हो सकती है। और आपने सुना होगा कल्पना तो किसी भी चीज की हो सकती है, कल्पना ही है। लेकिन आप अपने मरने की कल्पना करें तब आपको पता चलेगा। वह नहीं हो सकती। आप कुछ भी उपाय करें अपने शरीर को मरा हुआ देख लेंगे लेकिन आप देखने वाले बाहर जिन्दा खड़े रहेंगे। कल्पना में भी नहीं मर सकते। क्योंकि वह जो सोच रहा है, वह जो देख रहा है, कल्पना जिसे दिखाई पड़ रही है, वह साक्षी बना हुआ जिन्दा रहेगा। असली में तो मरना मुश्किल है, कल्पना में भी मरना मुश्किल है। लोग कहते हैं कल्पना असीम है, कल्पना असीम नहीं है। आप मृत्यु की कल्पना करें, आपको पता चल जाएगा, कल्पना की भी सीमा है।

इसलिए अर्जुन सबको तो देखता है मृत्यु के मुंह में जाते, स्वयं को नहीं देखता। स्वयं को कोई भी नहीं देख सकता। अगर अर्जुन स्वयं को भी मृत्यु में जाते देखे तो देखेगा कौन, फिर जो मृत्यु में जा रहा है वह अलग हो जाएगा और जो देख रहा है वह अलग हो जाएगा। अगर अर्जुन देख रहा है मृत्यु में जाते तो अर्जुन का शरीर भले ही चला जाय मृत्यु में, अर्जुन नहीं जा

सकता, वह बाहर खड़ा रहेगा। वह देखने वाला है। वह जो आत्मा है उसे हमने इसलिए दृष्टा कहा है। वह सब देखता है। वह मृत्यु को भी देख लेता है।

इसलिए अर्जुन को ख्याल नहीं आया। आने का कोई उपाय भी नहीं है। वह बाहर है, वह देखने वाला है। और सब मर रहे हैं, मित्र भी, शत्रु भी, बड़े-बड़े योद्धा। लेकिन अर्जुन को ख्याल भी नहीं आ रहा कि मैं मर रहा हूं, या मैं मर जाऊंगा।

इसलिए बड़े मजे की बात है आप रोज लोगों को मरते देखते हैं। आपको भय भी पकड़ता है। लेकिन आप विचार करें, कभी भीतर यह बात मजबूती से नहीं बैठती है कि मैं मर जाऊंगा। ऊपर-ऊपर कितना ही भयभीत हो जाएं कि मरना पड़ेगा, लेकिन भीतर यह बात घुसती नहीं कि मैं मर जाऊंगा। भीतर यह भरोसा बना ही रहता है कि और लोग ही मरेंगे, मैं नहीं मरूंगा। यह भरोसा प्रतिफलन है, उस गहरे आंतरिक केन्द्र का जहां मृत्यु कभी प्रवेश नहीं करती। उसके बाहर-बाहर ही मृत्यु घटित होती है। आपका घर आपसे छीना जाता है बहुत बार। आपके वस्त्र आपसे छीने जाते हैं बहुत बार। जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, व्यर्थ हो जाते हैं, नए वस्त्र मिल जाते हैं। लेकिन आप, आप कभी भी नष्ट नहीं होते।

इसलिए अपनी मृत्यु की कल्पना असम्भव है। अपनी मृत्यु का दर्शन भी असम्भव है। और जो अपनी मृत्यु का दर्शन करने की कोशिश कर लेता है, वह अमृत का अनुभव कर लेता है।

समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं अपनी मृत्यु का अनुभव करने की कोशिश है। सब प्रक्रियाएं योग की सारी चेष्टा इस बात की है कि आप होशपूर्वक अपने को मरता हुआ देख लें। क्या होगा? सब मर जाएगा आप बच जाएंगे।

रमन को ऐसा हुआ कि उन्हें लगा कि उनकी मृत्यु आ रही है। वे बीमार हैं, उनकी मृत्यु आ रही है। और जब मृत्यु आ ही रही है तो उससे लड़ना क्या, हाथ पैर ढीले छोड़कर वे लेट गए। उन्होंने कहा ठीक है, जब मृत्यु आ रही है तो आ जाय, मैं मृत्यु को भी देख लूं कि मृत्यु क्या है! सब शरीर ठंडा हो गया। ऐसा लगने लगा कि शरीर अलग हो गया। लेकिन

सब शरीर मरा हुआ मालूम पड़ रहा है फिर भी रमण को लग रहा है मैं तो जिन्दा हूं ! वही अनुभव उनके जीवन में क्रांति बन गया। उसके पहले वह रमन थे, उसके बाद वे भगवान हो गए। उसके पहले तक उन्होंने जाना था कि मैं यह शरीर हूं जो मरेगा, इसके बाद उन्होंने जाना कि यह शरीर मैं नहीं हूं, जो नहीं मरेगा वह मैं हूं। सारा तादात्म्य बदल गया, सारी दृष्टि बदल गयी। एक नये जन्म की, अमृत, एक नए जीवन की शुरुआत हो गई।

योग की सारी प्रक्रियाएं आपको स्वेच्छा से मरने की कला सिखाने की हैं। पुराने शास्त्रों में कहा है—आचार्य, गुरु—मृत्यु है। क्योंकि जिस गुरु के पास आपको मृत्यु का अनुभव न हो पाए, वह गुरु ही क्या। लेकिन मृत्यु का अनुभव बड़ा विरोधाभासी है। एक तरफ जो भी आपने अपने को समझा था—नाम, धाम, पता-ठिकाना, शरीर—सब मर जाता है। और जो आपने कभी नहीं सोचा था आपके भीतर एक ऐसे केन्द्र का आविर्भाव हो जाता है, जिसकी मृत्यु का कोई उपाय नहीं, जो अमृत है।

अर्जुन को इसलिए अनुभव नहीं हुआ। और उसको भी तभी तक मृत्यु का भय है, जब तक आपने अनुभव नहीं किया है। आपके भीतर क्या मरणधर्मा है और क्या अमृत है, इसका भेद ही ज्ञान है। आपके भीतर क्या-क्या मर जाने वाला है और क्या-क्या नहीं मरने वाला है, इसकी भेद-रेखा को खींच लेना ही ज्ञान है। समाधि में वही भेद-रेखा खिच जाती है। आप दो हिस्सों में साफ हो जाते हैं।

एक आपकी खोल है, जो मरेगी, क्योंकि वह जन्मी है, जो जन्मा है वह मरेगा। और एक आपके भीतर की गिरी है जो नहीं मरेगी क्योंकि वह जन्मी भी नहीं है। शरीर का जन्म है, आपका कोई जन्म नहीं। शरीर का जन्म है, शरीर की मृत्यु है। जो आपको मां-बाप से मिला है शरीर वह मरेगा। लेकिन जो आप हैं, उसके मरने का कोई उपाय नहीं, लेकिन ऐसा विश्वास करके मत बैठे रहना। विश्वास करने की हमारी बड़ी जल्दी होती है। और मतलब की बात हो, इच्छा के अनुकूल हो—हम जल्दी विश्वास कर लेते हैं। हम सब चाहते हैं कि न मरें। इसलिए आत्मा अमर है इसमें विश्वास करने के लिए हमें बहुत तर्क की जरूरत नहीं पड़ती। हमारा धैर्य काफी तर्क हो जाता है। कोई भी हमसे कहे आत्मा अमर है, हमारा दिल बड़ा खुश होता है कि चलो मरेंगे नहीं। इस पर विश्वास कर लेने में जल्दी

कर लेते हैं लोग। जल्दी मत करना, विश्वास से कुछ हल न होगा। अनुभव ही एकमात्र हल है। मैं कहता हूं इससे मान मत लेना। कृष्ण कहते हैं इससे मत मान लेना। बुद्ध कहते हैं इससे मत मान लेना। उनके कहने से सिर्फ प्रयोग करने के लिए तैयार होना है, मान मत लेना। इतना ही समझना कि कहते हैं ये लोग—प्रयोग करके हम भी देख लें। और अगर अनुभव मिल जाय तो ही मानना अन्यथा मत मानना। नहीं तो हमारी हालत ऐसी है कि बिना अनुभव के हम माने चले जाते हैं। बिना अनुभव के जो मान्यता है वह ऊपर-ऊपर होगी, थोथी होगी। जरा सी वर्षा होगी और बह जाएगी, टिकने वाली नहीं है। ऊपर-ऊपर की जो मान्यता है वह मृत्यु में आपको सजग न रख पाएगी, आप बेहोश हो जाएंगे।

डाक्टर तो अब एनस्थेसिया का प्रयोग करते हैं, बड़ा आपरेशन करना हो तो। लेकिन मृत्यु सबसे बड़ा आपरेशन है। क्योंकि आपका समस्त शरीर संस्थान आपसे अलग किया जाता है। इसलिए प्रकृति भी उसे होश में नहीं कर सकती। प्रकृति भी आपको बेहोश कर देती है, मरने के पहले आप बेहोश हो जाते हैं। वह इतना बड़ा आपरेशन है, उससे बड़ा कोई आपरेशन नहीं है। कोई डाक्टर एक हड्डी अलग करता है, कोई डाक्टर दो हड्डी अलग करता है। कोई हृदय को बदलता है। लेकिन पूरा संस्थान, आपका पूरा शरीर, मृत्यु अलग करती है आपसे। वह गहरे से गहरी सर्जरी है। उसमें आपका बेहोश कर देना एकदम जरूरी है।

इसलिए मौत के पहले आप बेहोश हो जाते हैं। अगर मौत में होश रख पाएं तो आपको पता चल जाएगा कि आपकी ये कोई मृत्यु नहीं है।

ध्यान जो साधता है, वह धीरे-धीरे मौत में भी होश रख पाता है; क्योंकि मरने के पहले बहुत बार वह अपने को शरीर से अलग करके देख लेता है। कठिन नहीं है। अगर प्रयोग करें तो सरल है। अगर मानते ही रहें तो बहुत कठिन है। अगर प्रयोग करें तो बहुत सरल है, क्योंकि आप अलग हैं ही। सिर्फ थोड़े से होश को बढ़ाने की जरूरत है भीतर। आंख बंद करके भीतर देखने की क्षमता विकसित करने की जरूरत है। लेकिन मौत तो बहुत दूर है; आप अपनी नींद को भी नहीं देख पाते तो मौत को कैसे देख पाएंगे ! आप रोज सोते हैं सांझ। जिन्दगी में साठ साल जियेंगे, तो बीस साल सोने में बितायेंगे। छोटा-मोटा काम नहीं है नींद। एक तिहाई

जिन्दगी उसमें जाती हैं। बीस साल आप सोते हैं, अगर साठ साल जिन्दा रहते हैं।

लेकिन आपको पता है कि नींद क्या है? कभी आपने होशपूर्वक नींद को देखा है कि नींद उतर रही मेरे ऊपर, छा रही, सब तरफ से मुझे घेर रही, शरीर सुस्त हुआ जा रहा, नींद प्रवेश करती जा रही और मैं देख रहा हूं। आप नींद को भी नहीं देख पाते तो मौत को कैसे देखियेगा? मौत तो बहुत गहरी मूर्च्छा है। नींद तो बहुत छोटी मूर्च्छा है। जरा-सा बर्तन गिर जाता है तो खुल जाती है, इससे ज्यादा गहराई नहीं है। एक मच्छर काट जाय तो खुल जाती है, बहुत गहरी नहीं है। लेकिन इतनी उथली चीज में भी आप होश नहीं रख पाते, तो मौत में कैसे रख पाएंगे?

प्रयोग अगर करेंगे तो जिसको भी मृत्यु के सम्बन्ध में जागना है उसे नींद से प्रयोग शुरू करना चाहिए। रात जब बिस्तर पर पड़ेंगे तो आंख बन्द करके एक ही ख्याल रखें कि मैं जागा हूं। शरीर को ढीला होने दें, होश को सजग रखें। और ख्याल रखें कि मैं देख लूं, नींद कब आती है। कब मेरा शरीर जागने से नींद में प्रवेश करता है, कब गेयर बदलता है, कब मैं नींद की दुनिया में प्रवेश करता हूं—उसे देखूं। बस चुपचाप देखते रहें। पता नहीं चलेगा कब नींद लग गई और देखने का ख्याल भूल जाएगा। सुबह होश आएगा कि देखने की कोशिश की थी, लेकिन देख नहीं पाए, नींद आ गई और देखना खो गया। लेकिन सतत लगे रहें। अगर तीन महीने निरंतर बिना किसी विघ्न-बाधा के आप नींद के साथ जागने की कोशिश करते रहें, तो किसी भी दिन यह घटना घट जाएगी कि नींद उतरेगी आपके ऊपर, जैसे सांझ उतरती है—अन्धेरा छा जाता है और आप भीतर जागे रहेंगे। आप देख पाएंगे कि नींद यह है।

जिस दिन आपने नींद देख ली उस दिन आपने बहुत बड़ा कदम उठा लिया, बहुत बड़ा कदम उठा लिया। फिर दूसरा प्रयोग है कि नींद रात लगी रहे, लगी रहे, लगी रहे, लेकिन भीतर एक कोने में होश भी बना रहे कि मैं सो रहा हूं, करवट बदल रहा हूं, मच्छर काट रहा है, हाथ-पैर ढीले पड़ गये हैं, अब जागने का क्षण करीब आ रहा है, अब मैं जग रहा हूं। जिस दिन आप सांझ से लेकर सुबह तक, शरीर सोया रहे और आप जागे रहें, अब कोई कठिनाई नहीं—अब आप मृत्यु में प्रवेश कर सकते हैं। तब बहुत आसान है।

तीसरी बात, इतना अगर सध जाय, इसमें वर्षों लग सकते हैं। लेकिन इतना सध जाय तो आप दूसरे आदमी हो जाएंगे, एक नये आदमी हो जाएंगे। आपने अपनी नींद पर विजय पा ली। और जिसने अपनी नींद पर विजय पा ली, उसको मृत्यु पर विजय पाने में कोई कठिनाई नहीं, क्योंकि मृत्यु एक और बड़ी नींद है, और गहन मूर्च्छा है। अगर आप नींद में जग पाते हैं, तो आपको तत्क्षण पता चलने लगेगा कि आप अलग हैं और शरीर अलग है, क्योंकि शरीर सोएगा और आप जागेंगे।

ध्यान रहे, आपको तब तक शरीर के और आत्मा के अलग होने का पता नहीं चलेगा जब तक आप कोई ऐसा प्रयोग न करें, जिस प्रयोग में दोनों की क्रियायें अलग हों। अभी आपको भूख लगती है, तो आपके शरीर को भी लगती है, आपको भी लगती है। बहुत मुश्किल है तय करना कि शरीर को भूख लगी कि आपको लगी। अभी आप जो भी कर रहे हैं उसमें आपकी क्रियाओं में तालमेल है, शरीर और आप में तालमेल है। आपको कोई न कोई ऐसा अभ्यास करना पड़े, जिसमें आपको कुछ और हो रहा है, शरीर को कुछ और हो रहा है; बल्कि शरीर को विपरीत हो रहा है, आपको विपरीत हो रहा है।

लोगों ने भूख के साथ भी प्रयोग किया है। उपवास वही है। वह इस बात का प्रयोग है कि शरीर को भूख लगेगी और मैं स्वयं को भूख न लगने दूंगा। भूखे मरने का नाम उपवास नहीं है। अधिक लोग उपवास करते हैं, वे सिर्फ भूखे मरते हैं। क्योंकि शरीर को भी लगती है भूख, उनको भी लगती है। बल्कि सच तो यह है कि भोजन करने में उनकी आत्मा को जितनी भूख का पता नहीं चला था, उतना उपवास में पता चलता है। भोजन करने में तो पता चलता नहीं, जरूरत के पहले ही शरीर को भोजन मिल जाता है। भूख भीतर तक प्रवेश नहीं करती। उपवास कर लिया, उस दिन, दिन भर भूख लगी रहती है। खाते वक्त तो दो दफे लगती होगी। दिन में, तीन दफा लगती होगी; न खाएं तो दिन भर लगती है, भूख पीछा करती है। शरीर तो भूखा होता ही है, आत्मा भी भीतर भूख से भर जाती है। उपवास का प्रयोग इसी तरह का प्रयोग है, जैसा नींद का प्रयोग है। शरीर को भूख लगे और आप भीतर बिना भूख के रहें, तो दोनों क्रियाएं अलग हो जाएंगी।

जिस दिन आपको साफ हो जाएगा शरीर को भूख लगी और मैं तृप्त भीतर खड़ा हूं, कोई भूख नहीं, उस दिन आपको भेद का पता चल जाएगा। शरीर सो गया, आप जागे हुए हैं, भेद का पता चल जाएगा। और जब भेद का पता चलेगा तभी, जब मृत्यु होगी, शरीर मरेगा, आप नहीं मरेंगे। तब आपको उस भेद का भी पता चल जाएगा। नींद से शुरू करें धीरे-धीरे, धीरे-धीरे भीतर भेद साफ होने लगता है, रोशनी भीतर बढ़ने लगती है। रोशनी हमारे पास है, हम उसे बाहर उपयोग कर रहे हैं, भीतर कभी ले नहीं जाते। तो सारी दुनिया को देखते हैं, अपने भर को छोड़ जाते हैं।

इसलिए अर्जुन को दिखाई नहीं पड़ा। क्योंकि मृत्यु तो किसी को भी दिखाई नहीं पड़ती है अपनी, सिर्फ दूसरे की दिखाई पड़ती है। इसलिए दूसरे के संबंध में जो भी आपको दिखाई पड़ता है, उसको बहुत मानना मत, वह झूठा है, ऊपर-ऊपर है। अपने सम्बन्ध में भीतर जो दिखाई पड़े, वही सत्य है—वही गहरा है। और जब आपको अपना सत्य दिखाई पड़ेगा, तभी आपको दूसरे का सत्य भी दिखाई पड़ेगा। जिस दिन आपको पता चल जाएगा, मैं नहीं मरूंगा, उस दिन फिर कोई भी नहीं मरेगा आपके लिए। फिर आप कहेंगे कि वस्त्र बदल लिए।

रामकृष्ण की मृत्यु हुई तो पता चल गया था कि तीन दिन के भीतर वे मर जाने वाले हैं। जो लोग भी जाग जाते हैं, वे अपनी मौत की घोषणा कर सकते हैं, क्योंकि शरीर संबंध छोड़ने लगता है। कोई एकदम से तो छूटता नहीं, कोई छः महीने लगता है शरीर को संबंध छोड़ने में। इसलिए मरने के छः महीने पहले जिसका होश साफ है, वह अपनी तारीख कह सकता है कि इस तारीख को इस घड़ी में मर जाऊंगा। तीन दिन पहले तो बिल्कुल संबंध टूट जाता है, बस आखिरी धागा जुड़ा रह जाता है। वह दिखाई पड़ने लगता है कि बस एक धागा रह गया है, यह किसी भी क्षण टूट जाएगा।

रामकृष्ण को तीन दिन पहले पता हो गया था कि उनकी मृत्यु आ रही है, तो उनकी पत्नी शारदा रोती थी, चिल्लाती थी। रामकृष्ण उसको कहते थे कि पागल तू रोती-चिल्लाती क्यों है, क्योंकि मैं नहीं मरूंगा। लेकिन शारदा कहती थी, सब डाक्टर कहते हैं, सब प्रियजन कहते हैं कि आपकी मृत्यु करीब

है। और वे कहते थे कि तू उनकी मानती है या मेरी—मेरी मानती है या उनकी। मैं नहीं मरूंगा। मैं रहूंगा यहीं। लेकिन शारदा को कैसे भरोसा आए। रामकृष्ण का यह कहना उनके अपने भीतर के अनुभव की बात है। वे कह रहे हैं कि मैं नहीं मरूंगा।

रामकृष्ण को कैंसर हुआ था। कठिन कैंसर था, गले में था और भोजन पानी सब बन्द हो गया। बोलना भी मुश्किल हो गया। पर रामकृष्ण ने कहा है कि देख तुझसे मैं कहता हूं, जिसको कैंसर हुआ था, वही मरेगा। मुझे कैंसर भी नहीं हुआ था। यह गला बंध गया है, यह गला बन्द हो गया है, यह गला सड़ गया है, यह कैंसर से मर गया है, लेकिन मैं देख रहा हूं कि मैं यह गला नहीं हूं। तो गला मर जाएगा, यह शरीर गल जाएगा, मिट जाएगा, लेकिन मैं नहीं मरूंगा। पर हमें कैसे भरोसा आए, क्योंकि हमें अनुभव न हो। हम तो मानते हैं कि हम शरीर हैं। तो जब शरीर मरता है, तो हम मानते हैं कि हम भी मर गए। हमारे जीवन की भ्रांति हमारी मृत्यु की भी भ्रांति बन जाती है।

अर्जुन को दिखाई नहीं पड़ा, आपको भी दिखाई नहीं पड़ेगा। जिस दिन मृत्यु के द्वार पर आप खड़े हो जाएंगे और देखेंगे कि मर रहा है सब कुछ, तब भी एक आप बाहर खड़े रहेंगे। आप नहीं मर रहे हैं, आपके मरने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए अर्जुन बात नहीं कर रहा है अपनी मृत्यु की।

एक और मित्र ने भी बहुत गहरा सवाल पूछा है। उन्होंने पूछा है कि हम सब भगवान हैं, सब भगवान के अंश हैं, यह तो समझ में आ सकता है; लेकिन अंश पूर्ण नहीं हो सकता, अंश तो अंश ही होगा। तो हम भगवान के अंश हैं, यह तो समझ में आ जाता है लेकिन भगवान हैं यह समझ में नहीं आता। तो इतना ही कहना उचित है कि हम भगवान के अंश हैं लेकिन भगवान हैं, यह कहना उचित नहीं है।

अखंड सत्ता का दर्शन

यह सवाल महत्वपूर्ण है और जो लोग गणित को समझते हैं, उन्हें बिल्कुल ठीक, साफ समझ में आ जाएगा कि ऐसा ही होना चाहिए, अंश कभी अंशी नहीं हो सकता। टुकड़ा पूर्ण कैसे हो सकता है! टुकड़ा, टुकड़ा

है ! हम एक सागर से एक चुल्लू भर पानी ले लें, तो वह सागर नहीं है, सागर का अंश हो सकता है। यह सीधा गणित है।

स्वभावतः एक रुपये का नोट, एक रुपये का नोट है वह सौ का नहीं हो सकता, सौ का एक हिस्सा हो सकता है, सौवां हिस्सा हो सकता है। यह सीधा गणित है और जहां तक गणित जाता है, वहां तक बिल्कुल ठीक है।

लेकिन धर्म गणित से आगे जाता है। और धर्म बड़ा उल्टा गणित है। उसे थोड़ा समझने के लिए चेष्टा करनी पड़ेगी। क्योंकि सामान्य गणित तो हम रोज उपयोग करते हैं हमें पता है। धर्म का गणित हमें बिल्कुल पता नहीं। धर्म के गणित का पहला सूत्र यह है कि वहां अंशी और अंश एक है।

आपने ईशाबास्य का पहला सूत्र सुना है—उस पूर्ण से पूर्ण निकल आता है और पीछे भी पूर्ण शेष रह जाता है। आप किसी सौ रुपये में से एक रुपये का नोट बाहर निकालें, पीछे निन्यानबे शेष रहेंगे, सौ शेष नहीं रहेंगे। लेकिन यह सूत्र तो बड़ी गजब की बात कहता है, यह कहता है कि सौ में से सौ भी बाहर निकालो तो भी सौ ही पीछे शेष रह जाता है। पूर्ण से पूर्ण भी निकाल लो, तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। इसका क्या मतलब हुआ ? यह तो हमारे सारे गणित की व्यवस्था गड़बड़ हो जाती है। अगर यह उपनिषद् का सूत्र सही है, तो हमारा सारा गणित गलत है। अध्यात्म के जगत में गणित गलत है, उसके कारण हैं। उसे हम दो-तीन तरह से समझें तो ख्याल में आ जाय।

पहली तो बात यह, कि जो निराकार है उसमें से हम अंश को बाहर नहीं निकाल सकते, कोई उपाय नहीं है। आप सागर में से चुल्लू भर के पानी बाहर निकाल लेते हैं, क्योंकि सागर के बाहर भी जगह है। इसलिए आप पानी भर लेते हैं चुल्लू में। ऐसा समझें कि सागर ही सागर है और सागर के बाहर कोई जगह नहीं, फिर आप चुल्लू भी भर लें, तो आपकी चुल्लू में अंश नहीं होगा, पूरा सागर ही होगा। बाहर तो हम इसलिए निकाल लेते हैं कि बाहर सुविधा है, सागर में से चुल्लू भर पानी बाहर निकाल लेते हैं। परमात्मा से चुल्लू भर निकालना मुश्किल है, क्योंकि परमात्मा के बाहर कोई जगह नहीं है—सिर्फ वही है। उसके बाहर निकालिएगा कैसे ? कौन निकालेगा ? कहां निकालेगा ? उसके बाहर

निकालने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए परमात्मा को खंड-खंड करने का भी कोई उपाय नहीं है। आप अखंड परमात्मा हो, टुकड़े-टुकड़े नहीं हो। टुकड़ा हो नहीं सकता उसका। और अगर परमात्मा का टुकड़ा हो जाय, तो हमने बड़ा भारी काम कर लिया, मार ही डाला न उसको। उसके टुकड़े नहीं हो सकते—कि आप एक टुकड़ा हो, मैं एक टुकड़ा हूं और तीसरा आदमी, तीसरा टुकड़ा है। ऐसे उसके कोई टुकड़े नहीं हो सकते, क्योंकि टुकड़ा होगा उसका, जिसके बाहर भी कोई जगह हो। परमात्मा का कोई टुकड़ा नहीं हो सकता।

इसलिए जो लोग कहते हैं, हम परमात्मा का अंश हैं, बिल्कुल गलत कहते हैं; क्योंकि अंश का मतलब है—आप टुकड़ा हो गए, आप अलग हो गए। आप परमात्मा में हैं पूरे के पूरे और पूरा का पूरा परमात्मा आप में है। इसमें कोई बटाव के उपाय नहीं हैं, काटने की कोई सुविधा नहीं है, डिवीजन नहीं हो सकते; क्योंकि वह अकेला ही है। कैसे बांटिएगा ? कौन बांटे ? कहां बांटे ? कहां है जगह, जिसमें हम बांट लें ? और दो टुकड़ों के बीच तो फासला हो जाता है। आपके और परमात्मा के बीच जरा भी फासला नहीं है, इसलिए आपको टुकड़ा नहीं कहा जा सकता। आप एक फल के दो टुकड़े कर लेते हैं दोनों में फासला हो जाता है।

आपके और परमात्मा के बीच इन्च भर भी फासला नहीं है। आप को टुकड़ा नहीं कहा जा सकता, आपको अंश नहीं कहा जा सकता। या तो आप पूरे के पूरे परमात्मा हैं और या बिल्कुल परमात्मा नहीं हैं। इन दो के बीच तीसरा कोई उपाय नहीं है। मगर हमारी बुद्धि समझौते के लिए तैयार रहती है। वह सोचती है कि पूरा परमात्मा कहना जरा जरूरत से ज्यादा हो जाएगा। और बिल्कुल परमात्मा नहीं हैं, तो भी बड़ी मन को दीनता मालूम पड़ती है इसलिए ऐसा कहो कि थोड़े-थोड़े परमात्मा हैं, जरा-जरा। लेकिन जरा-जरा परमात्मा का क्या अर्थ होता है ? थोड़े-थोड़े परमात्मा का क्या मतलब होता है ? थोड़ा परमात्मा पूरे परमात्मा से कम होगा ? तो वह परमात्मा ही नहीं होगा। थोड़े परमात्मा का क्या मतलब होगा !

ऐसा समझें कि एक आदमी आपसे कहता है कि थोड़ा-थोड़ा आपसे प्रेम है, थोड़ा-थोड़ा। क्या मतलब होता है थोड़ा-थोड़ा प्रेम का। या तो प्रेम

होता है या नहीं होता। थोड़ा-थोड़ा प्रेम जैसी कोई चीज नहीं होती, हो भी नहीं सकती। आप कहते हैं कि मैं थोड़ा-थोड़ा चोर हूं। थोड़ा-थोड़ा कोई चोर होता है ! या तो आप चोर हैं या चोर नहीं हैं। थोड़ा-थोड़ा आप क्यों कहते हैं ? कहते हैं मैं लाख की चोरी नहीं करता, पैसे दो पैसे चुराता हूं। इसलिए थोड़ा-थोड़ा चोर हूं।

लेकिन एक पैसे की चोरी भी उतनी ही चोरी है, जितनी लाख रुपये की चोरी। या लाख और एक का फासला चोरी का फासला नहीं है, चोरी करने की जो चित्त-दशा है, वह एक पैसे में भी उतनी ही है जितनी करोड़ में। इसलिए करोड़ की चोरी बड़ी और एक पैसे की चोरी छोटी, ये सिर्फ नासमझ कहेंगे, जिनको सिर्फ गणित आता है, जिनको गणित के पार कुछ दिखाई नहीं पड़ता। चोरी बराबर होती हैं। एक पैसे की चोरी में भी आप पूरे चोर होते हैं, पूरे चोर होते हैं। और एक करोड़ की चोरी में भी उतने ही चोर होते हैं, पूरे चोर होते हैं। क्या आप चुराते हैं, इससे चोर होने में फर्क नहीं पड़ता। या तो आप चोर हैं, या चोर नहीं हैं। इन दोनों के बीच बटाव नहीं है।

ठीक ऐसे ही या तो आप परमात्मा हैं—पूरे के पूरे और या बिलकुल नहीं हैं। बीच में थोड़े-थोड़े परमात्मा, ऐसा समझौता हमारा गणित करने वाला जो मन है, वह करता है। उससे हमें राहत भी मिलती है, लेकिन वह सत्य नहीं है। असीम को खंडों में नहीं बांटा जा सकता है।

आस्पेन्स्की ने, रूस के एक बहुत बड़े गणितज्ञ ने एक किताब लिखी है—'टरशियम आरगानम'। गणित के ऊपर लिखी गई मनुष्य के इतिहास में श्रेष्ठतम पुस्तकों में से एक है। खुद आस्पेन्स्की का भी दावा है कि तीन ही किताबें दुनिया में हैं, जिनमें वह एक है। और उसके दावे में जरा भी दम्भ नहीं है, दावा बिलकुल सही है। तर्क के ऊपर पहली तर्क और गणित के सिद्धान्त पर पहली किताब लिखी है अरस्तू ने। उस किताब का नाम है—'आरगानम'। आरगानम का मतलब है—पहला सिद्धान्त। फिर दूसरी किताब लिखी है बेकन ने, उस किताब का नाम है—'नोवम् आरगानम'—नया सिद्धान्त। और आस्पेन्स्की ने तीसरी किताब लिखी है—'टरशियम आरगानम'—तीसरा सिद्धान्त, गणित का तीसरा सिद्धान्त। और आस्पेन्स्की ने अपनी किताब में जो ऊपर ही घोषणा की है, वह बड़ी मजेदार है। वह

यह है कि दोनों सिद्धांतों के पहले भी मेरा सिद्धान्त मौजूद था। ये दोनों किताबें लिखी गईं, इसके पहले भी मेरा सिद्धान्त मौजूद था।

उन दोनों किताबों में, जो प्रश्न आपने पूछा है, उसी गणित का विस्तार है--कि अंश कभी भी अंशी के बराबर नही हो सकता—खंड कभी अखंड के बराबर नहीं हो सकता। और आस्पेन्स्की ने लिखा है—कि खंड, अखंड के बराबर है—टुकड़ा पूरे के बराबर है। क्यों ? क्योंकि असीम के गणित में खंड हो ही नहीं सकता। इसलिए ईशावास्य का सूत्र बड़ा कीमती है—कि पूर्ण से पूर्ण को निकाल लें, तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। क्यों शेष रह जाता है ? क्योंकि आप निकाल ही नहीं सकते, तरकीब यह है। आप निकाल ही नहीं सकते। पूर्ण से पूर्ण को निकाला नहीं जा सकता। आप सिर्फ वहम में पड़ते हैं कि निकाल लिया, इसलिए पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। वह सिर्फ आपका धोखा था कि मैंने निकाला। निकालने का कोई उपाय नहीं है। आपको लगता है कि आप अंश हैं, यह धोखा है। अंश होने का कोई उपाय नहीं है। आप पूरे के पूरे परमात्मा हैं, अभी और यहीं। ऐसा भी नहीं कहता हूं कि कल हो जाएंगे; क्योंकि जो आप नहीं हैं वह कल भी नहीं हो पाएंगे और जो आप नहीं हैं, वह होने का कोई उपाय नहीं है। कल हो सकता है आपको पता चले, लेकिन हैं आप अभी और यहीं। जितनी भी आपको देरी लगानी है, वह आप पता लगाने में कर सकते हैं, होने में कोई फर्क नहीं पड़ता।

बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तो बुद्ध से पूछा गया कि तुम्हें क्या मिला। तो बुद्ध ने कहा कि मिला मुझे कुछ भी नहीं, सिर्फ मैंने उल्टा खोया। पूछने वाला चकित हुआ होगा, क्योंकि हम सोचते हैं ज्ञान में मिलना चाहिए। हम तो लोभ से जीते हैं। हमारा तो गणित फैलाव का है। और बुद्ध कहते हैं कि मिला मुझे कुछ भी नहीं, उल्टा खो गया। क्या खो गया ? तो बुद्ध ने कहा, मेरा अज्ञान खो गया। और जो मुझे मिला है, वह मैं जानता हूं कि मुझे सदा ही मिला हुआ है—वह मैंने कभी खोया ही नही था, सिर्फ मुझे पता नहीं था। जो मेरी ही सम्पदा थी, वह मेरी ही आंख से ओझल थी। जिस जमीन पर मैं सदा से खड़ा था, उसको ही मैं देख नहीं रहा था और सारी तरफ खोज रहा था। अपने को छोड़ कर सब तरफ भटक रहा था और मैं सदा से था। जो मुझे मिला है, वह उपलब्धि नहीं है, आविष्कार है—सिर्फ मैंने उघाड़कर देख लिया है।

धारणा का विज्ञान

आप परमात्मा हैं अभी और यहीं। लेकिन हमें यह मानने में तकलीफ होगी। क्या कारण है? क्या-क्या तकलीफें हैं हमारे मन में मानने में कि हम अपने को परमात्मा मान लें। बड़ी तकलीफें हैं, क्योंकि परमात्मा मानते ही आप जैसे हैं वैसे ही जी न सकेंगे। तब चोरी करने को हाथ बढ़ेगा और आप अपने को परमात्मा मानते हैं, बड़ी घबड़ाहट होगी कि यह मैं क्या कर रहा हूं। तब किसी की जेब काटने को हाथ बढ़ेगा और परेशानी कि यह मैं क्या कर रहा हूं। आपका यह ख्याल भी, विचार भी कि परमात्मा हूं आपकी जिन्दगी को बदल देगा, आप वही आदमी नहीं रह जाएंगे जो आप हैं। एक चौबीस घंटे परमात्मा की तरह मानकर जी के देखें। कल्पना ही सही, एक्ट ही करना पड़े कोई हर्ज नहीं। एक चौबीस घंटे ऐसे जी कर देखें जैसे मैं परमात्मा हूं, आपकी जिन्दगी दूसरी हो जाएगी। इससे घबड़ाहट है। हम अपने चोर को, बेईमान को, बदमाश को बचाना चाहते हैं, तो कोई हमसे कह दे शैतान हो, तो हमें कोई एतराज नहीं होता। कोई हमसे कह दे भगवान हो, तो हमें बेचैनी शुरू होती है, क्योंकि वह झंझट की बात कह रहा है। अगर मान लें तो फिर जो हम हैं वही हम न रह पाएंगे। उसमें बदलाहट करनी पड़ेगी। और उसमें बदलाहट नहीं करना चाहते हैं, तो फिर उचित यही है कि हम न मानें। लेकिन बिल्कुल इंकार करने की भी हिम्मत नहीं होती, क्योंकि हर आदमी गहरे में तो चाहता है कि परमात्मा हो। वह चाह स्वाभाविक है। वह चाह वैसे ही है, जैसे बीज चाहता है कि वृक्ष हो—जैसे कि बीज चाहता है कि खिलें, फूल बनें, आकाश में सुगन्ध बिखराएं। यह सब बीज चाहता है कि ऊपर उठें, सूरज को चूमें, आकाश में खिलें।

वैसे ही आपके भीतर भी जो असलियत छिपी है, वह प्रकट होना चाहती है, इसलिए वह कहती है—बहो, फैलो, विस्तीर्ण हो जाओ। और विस्तीर्ण होने का अन्तिम आयाम भगवान है। वही विस्तीर्णता का आखिरी रूप है और जब तक आदमी भगवान न हो जाय तब तक कोई तृप्ति नहीं है। क्योंकि जब तक जो आपके भीतर छिपा है, वह पूरी तरह खुल न जाय, प्रगट न हो जाय, उसकी पंखुड़ी-पंखुड़ी खिल न जाय तब तक कोई चैन नहीं है।

इसलिए आदमी इंकार भी नहीं कर पाता, स्वीकार भी नहीं कर पाता, ऐसी दुविधा में जीता है। लेकिन आपसे कहता हूं कि उसके कोई खंड नहीं हुए, यह अखंड है और यह अखंड की तरह ही आप में मौजूद है। उसे स्वीकार करें। और उसके साथ जीने की कोशिश शुरू करें। यह विचार भी आपके जीवन में क्रांति बन जाएगी। यह विचार का बीज भी भीतर पड़ जाय, तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे चारों तरफ आपका सब कुछ बदलने लगेगा।

हमारे विचार भी क्षुद्र हैं। हम विराट विचार तक को स्वीकार करने में घबड़ाते हैं। हम क्षुद्र विचार में जीते हैं, क्योंकि हमारा व्यक्तित्व उसके आसपास आसानी से रह पाता है। विराट को जगह दें थोड़ी, अभी ख्याल ही सही कोई बात नहीं, क्योंकि जो आज विचार है, वह कल व्यक्तित्व बन जाएगा। और जो आज छिपा हुआ बीज है, वह कल वृक्ष हो जाएगा। जो आज सोचा है, वह कल हो जाएगा।

बुद्ध ने कहा है, तुम जो भी हो गए हो, तुम्हारे पिछले विचारों का परिणाम है। और तुम जो विचार आज कर रहे हो, वह तुम कल हो जाओगे। इसलिए विचार में थोड़ी बुद्धिमानी बरतना। लेकिन एक आदमी के मन में अगर यह विचार बैठ जाय कि मैं परमात्मा हूं, तो एक बात पक्की है कि उसके शैतान को सुविधा मिलनी मुश्किल हो जाएगी। और एक आदमी को यह विचार बैठ जाय कि मैं शैतान हूं, तो उसके शैतान को बहुत सुविधा मिलनी शुरू हो जाएगी।

मनस्विद् कहते हैं कि आप वही हो जाते हैं, जिसका स्वप्न आपमें पैदा हो जाता है। अभी तो मनस्विद् कहते हैं कि स्कूल में किसी बच्चे को गधा, मूर्ख नहीं कहना चाहिए; क्योंकि अगर यह धारणा मजबूत हो जाय, तो वही हो जाएगा जो उसके शिक्षक कह रहे हैं। और दुनिया में इतने जो गधे दिखाई पड़ते हैं, इसमें नब्बे परसेन्ट शिक्षकों का हाथ है। ये बेचारे गधे थे नहीं। इनको गधे कहने वाले लोग मिल गए। और उन्होंने धारणा इतनी मजबूत बिठा दी कि अब ये भी मानते हैं, अब ये स्वीकार करते हैं।

मनस्विद् कहते हैं, किसी को ऐसा कहना गलत है। किसी को बीमार कहना गलत है। अभी तो मनस्विद् कहते हैं कि चिकित्सक के पास

जब कोई बीमार आए, तो उसे ऐसे व्यवहार करना चाहिए जैसे वह बीमार नहीं है। दवा भले ही दें लेकिन व्यवहार ऐसा करें कि जैसे वह बीमार नहीं है, क्योंकि उसका व्यवहार दवा से ज्यादा मूल्यवान है। क्योंकि व्यवहार उसके मन में चला जाएगा, दवा केवल शरीर में जाएगी। लेकिन जो विवेक डाक्टर हैं, धोखे-धड़े वाले डाक्टर हैं, वे आपको देखकर ऐसी घबड़ाहट पैदा करते हैं, जैसे आप बिल्कुल मरणासन्न हैं। क्योंकि आप मरे आ गए हैं तो आप बच नहीं सकते—कि उनके पास आ गए अब बच जाएंगे, नहीं तो बच नहीं सकते। छोटी-सी फुन्सी आपको हो, तो वह कैंसर जैसी घबड़ाहट पैदा करते हैं, क्योंकि तभी आपका शोषण किया जा सकता है। और फुन्सी भी कैंसर हो सकती है अगर भरोसा आ जाय। भरोसा बड़ी चीज है। बहुत बड़ी चीज है, क्योंकि भरोसा काम करना शुरू कर देता है। आपके भीतर एक ख्याल बैठ गया कि मैं बीमार हूं, तो आप बीमार हो जाएंगे।

मेरे एक शिक्षक थे मेरी बात मानने से राजी नहीं थे। मैं उनसे कहता था, जो आदमी मान ले धीरे-धीरे हो जाता है। वे कहते थे, यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि कोई कितना ही मान ले कि मैं नेपोलियन हूं, नेपोलियन तो नहीं हो जाएगा, पागल हो जाएगा। जिस युनिवर्सिटी में मैं पढ़ता था वे वहीं शिक्षक थे, मेरे शिक्षक थे। जहां हमारा डिपार्टमेन्ट था वहां से कोई एक मील के फासले पर वे नीचे युनिवर्सिटी के कैम्पस में ही रहते थे। फिर मैंने एक दिन योजना बनाई, कोई पन्द्रह दिन बाद जब मुझसे यह बात हुई थी।

पन्द्रह दिन बाद मैं उनके घर गया और उनकी पत्नी को मैंने कहा कि मेरी प्रार्थना है, स्वीकार कर लें। एक प्रयोग में लगा हूं किसी को कहना मत। सुबह उठते ही अपने पति को कहना कि आज तबीयत कुछ खराब है क्या? पीला चेहरा मालूम पड़ता है। रात सोये नहीं क्या? आंख लाल-लाल दिखाई पड़ती है। उनकी पत्नी ने कहा, लेकिन वे बिल्कुल ठीक हैं। मैंने कहा, इसकी फिक्र न करें. छोटा प्रयोग कर रहा हूं आप सिर्फ इतना करें और वह जो भी कहें, यह कागज की एक पट्टी दे जाता हूं इस पर ठीक उन्हीं के शब्द लिख देना, वे जो भी वक्तव्य दें इसके उत्तर में। फिर उनके नौकर को कहा, बाहर बगीचे के माली को कहा कि जब वे बाहर आएं, तो कृपा करके इतना ही पूछना कि आपके पैर कुछ डांवाडोल मालूम पड़ते हैं। तबीयत ठीक नहीं है क्या? वे जो कहें इस कागज पर लिख

देना। फिर रास्ते में एक पोस्ट-आफिस पड़ता था, उसके पोस्ट-मास्टर को जाकर कहा कि जब वे यहां से निकलें कृपा करके तुम बाहर रहना। इतना उनसे पूछ लेना कि क्या बात है, बहुत दिन बाद दिखाई पड़े, तबीयत खराब हो गई थी क्या? ऐसा रास्ते में कोई दस जगह मैं लोगों को चिट्ठियां देकर आया। डिपार्टमेन्ट का जो चपरासी था, उससे मैंने कहा कि तू एकदम उठकर उनको संभाल लेना कि आप बिल्कुल गिरे पड़ते हैं। वह बोला. लेकिन वे नाराज होंगे, ऐसा कैसा करूंगा! मैंने कहा, तू बिल्कुल फिक्र मत करना, जुम्मा मेरा है। तू एकदम संभाल लेना; कुर्सी पर बिठा देना कि आपकी हालत तो खराब हो गई है।

पत्नी के प्रश्न करने पर उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि कौन कहता है कि मेरी हालत खराब है, मैं बिल्कुल ठीक हूं, रात अच्छी तरह सोया। पट्टी पर पत्नी के लिखा हुआ था कि मैं बिल्कुल ठीक हूं, रात अच्छी तरह सोया, तुम्हें कोई वहम पैदा हो गया, तेरी आँख में कुछ भूल है। लेकिन इतनी ताकत, जब बाहर माली ने उनसे पूछा कि मालिक तबीयत कुछ खराब है, उनके उत्तर में नहीं थी। माली की चिट्ठी पर लिखा हुआ था—हां, रात से कुछ ढीला-ढीला अनुभव कर रहा हूं। अभी सिर्फ कमरे और बाहर का फर्क पड़ा। और जब पोस्ट-मास्टर ने उनसे पूछा कि क्या बात है बहुत दिन से दिखाई नहीं पड़े, तबीयत कुछ खराब है, तो उन्होंने कहा कि रात से कुछ थोड़ा-सा बुखार है। और जब कमरे के चपरासी ने आकर उनको संभाला, कुर्सी पर बिठाला, तो उन्होंने चपरासी से कहा, तू पूछताछ मत कर, जाकर किसी और प्रोफेसर की गाड़ी ले आ, मुझे घर पहुंचा दे; मेरा शरीर तप रहा है और हालत मेरी ठीक नहीं है। और जब मैंने ये दसों चिट्ठियां उनके सामने रात को जाकर रखीं, तो उन्हें एक सौ तीन डिग्री बुखार था। मैंने कहा, ये चिट्ठियां पढ़िये और बिस्तर के बाहर निकल आइये।

यह बुखार झूठा है या सच? यह बुखार सच है, क्योंकि थर्मामीटर पकड़ता है, उसको झूठा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सचाई का और उपाय क्या है, थर्मामीटर पकड़ लें तो चीज सत्य होगी। मैंने कहा, यह बुखार सच है; लेकिन सिर्फ एक धारणा का परिणाम है। सुबह से मैं आपके चारों तरफ प्रचार कर रहा हूं कि आप बीमार हैं। और यह बीमारी का ख्याल आपको पकड़ गया है।

आदमी, आदमी नहीं है। आदमी सिर्फ एक संभावना है। और अगर पश्चिम में डार्विन ने लोगों को समझा दिया है कि आदमी बन्दर की औलाद है और आदमी को अगर भरोसा हो गया, तो पता नहीं आदमी बन्दर की औलाद है या नहीं, आदमी बन्दर की औलाद के जैसा व्यवहार करेगा। भरोसा है—यह सवाल बड़ा नहीं है कि वह सच में है या नहीं। अभी तक तय भी नहीं है कि वह बन्दर की औलाद है। लेकिन डार्विन ने जो भरोसा पश्चिम को दिला दिया कि आदमी बन्दर की औलाद है—उसका बड़ा परिणाम हुआ। जब आदमी बन्दर की औलाद है, तो बात ही खत्म हो गई, हमने स्वीकार कर लिया कि हम बन्दर जैसे हैं।

जब फ्रायड ने लोगों को भरोसा दिला दिया कि आदमी सिवाय काम-वासना के, सिवाय सैक्सुअैलिटी के और कुछ भी नहीं है, तो पता नहीं वह ठीक कह रहा है कि गलत, लेकिन जिनको भरोसा आ गया कि हम सिर्फ सेक्स, सिर्फ काम-वासना हैं, वे काम वासना में ही ठहर गए। अगर आज पश्चिम पूरी तरह काम-वासना से भर गया है, तो उसका जुम्मा फ्रायड पर है, जिसने एक धारणा दे दी।

आदमी एक सम्भावना है—फ्लेक्सिबिल, बड़ी लोचपूर्ण सम्भावना है। यही उसकी खूबी है। आप किसी कुत्ते को और कुछ नहीं बना सकते, वह कुत्ता ही रहेगा। किसी शेर को कुछ नहीं बना सकते, वह शेर ही रहेगा। फ्लेक्सिबिल नहीं है, फिक्सड, लोच नहीं है। आदमी लोचपूर्ण है। आदमी को जो धारणा दे दें, वह वही बन जाएगा।

जब मैं आपसे कहता हूं आप ईश्वर हैं, तो मैं आपको एक धारणा दे रहा हूं परम विस्तार की। उस धारणा का आज ही फल नहीं हो जायेगा ना, कि आज ही आप एकदम से छलांग लगाकर ईश्वर नहीं हो जाएंगे—यह मैं जानता हूं। लेकिन वह धारणा अगर गहरे में बैठ जाय, तो आपके भीतर जो छिपा है, उसका आविष्कार हो जाएगा। और ईश्वर होना आपकी संभावना है, आपके भीतर छिपा है। आप कितने ही जन्मों जन्मों तक टालते रहें, बच न सकेंगे। इसलिए ईश्वर को कोई जल्दी भी नहीं है कि आप अभी ईश्वर हो जाएं; समय की वहां कोई कमी नहीं है। अनन्त समय पड़ा है। आप कितने ही जन्म भागते रहें, दौड़ते रहें, सब कुछ करते रहें, एक न एक दिन आप उसके जाल में गिर जाएगे। लेकिन जब तक आप नहीं गिरते, तब

तक अकारण दुख भोगते हैं। जोर में जोर देकर कहता हूं कि आप परमात्मा हैं, उसका कुल कारण गहरे में इतना है कि जो आपकी अन्तिम नियति है, जो डेस्टेनी है, जो आपकी आखिरी होने की सम्भावना है, वह परमात्मा है! और वह आपका बीज भी है क्योंकि आखिर में वह वही हो सकता है जो उसमें छुपा हो। शुरू से कुछ भी पैदा नहीं हो तो जो मौजूद है उसी का उद्घाटन होता है। अगर आपके मन में ख्याल बैठ जाय और यह ख्याल सत्य के अत्यन्त अनुकूल है कि आप खंड नहीं, अखंड आपके भीतर विराजमान है। ये कैसे अखंड विराजमान होगा? इसे थोड़ा हम समझें।

स्वामी राम कहा करते थे कि ऐसा हुआ एक बार कि एक राजा के महल में एक कुत्ता घुस गया। राजा ने जो महल बनाया था उसमें उसने हजारों कांच के टुकड़े लगाए थे। हर कांच का टुकड़ा एक दर्पण था। कुत्ता जब अन्दर गया तो उसने देखा कि लाखों कुत्ते खड़े हैं। हर कांच के दर्पण में एक-एक कुत्ता खड़ा था—पूरा का पूरा। ऐसा नहीं कि एक टुकड़ा, कि लाख कांच लगे थे तो लाख टुकड़े हो गये कुत्ते के और एक-एक टुकड़ा एक-एक कांच में दिखाई पड़ने लगा। लाख कांच लगे थे तो लाख कुत्ते हो गये—पूरे के पूरे। पूरा कुत्ता टुकड़ा में दिखाई पड़ने लगा। कुत्ता घबड़ाया, भौंका लाख कुत्ते भौंके। कुत्ता घबड़ा गया और भी ज्यादा, क्योंकि लाख कुत्ते भौंक रहे थे चारों तरफ से। चीखा, दौड़ा, कुत्ता कांच की आइनों की तरफ दौड़ा। कांच के आइनों के कुत्ते, कुत्तों की तरफ दौड़े। कुत्ता वहां मर गया उसी रात—लड़ता रहा रात भर, मर गया।

करीब-करीब आदमी की हालत यही है। आपमें परमात्मा पूरा प्रतिबिम्बित हो रहा है। आप एक दर्पण हैं, एक मिरर। हर आदमी एक मिरर है। और आदमी ही क्यों, पौधा, पशु, पक्षी, समस्त कण इस जगत के दर्पण हैं। और आपमें परमात्मा पूरा झलक रहा है, पूरा उसका प्रतिबिम्ब बन रहा है, कट नहीं गया, टुकड़ा नहीं हो गया। लेकिन आप अपने में बनते प्रतिबिम्ब को नहीं देख रहे हैं, आप भी उस कुत्ते का व्यवहार कर रहे हैं। आप भौंक रहे हैं, आसपास के दर्पणों में। वहां से उत्तर आ रहा है, आप घबड़ा रहे हैं, परेशान हो रहे हैं। जिन्दगी एक चिन्ता है, क्योंकि संघर्ष है चारों तरफ। वह कुत्ता जैसे मर गया उस रात उस महल में, हम भी संसार में ऐसे ही परेशान होकर मरते हैं। और जिससे हम परेशान हो रहे थे, वह

और हम एक का ही प्रतिबिम्ब थे। और जिससे हम परेशान हो रहे थे, वह हमारी ही छाया थी और हम उसकी छाया थे। लेकिन यह गहन अनुभव तभी संभव हो पाता है, जब विचार की एक पृष्ठभूमि तैयार हो जाये।

जब मैं कहता हूं कि आप परमात्मा हैं, तो सिर्फ इसलिए कि एक विचार की भूमिका तैयार हो जाय; और फिर आप इस यात्रा पर निकल पाएं। आप जिद करते हैं कि नहीं हैं। आप जिद यह कर रहे हैं कि हमें इस यात्रा पर नहीं जाना है। न जाना हो, आपकी मर्जी। आपको कोई जबर्दस्ती इस यात्रा पर नहीं भेज सकता है। लेकिन अगर जाना हो तो आपको इस यात्रा के कुछ सूत्र समझ लेने जरूरी हैं। और पहला सूत्र यह है कि अन्त में जो आप हो जाएंगे, वह आप आज और अभी, यहीं हैं। कितना ही समय लगे, लेकिन समय केवल वही प्रकट कर पाएगा जो आपमें छिपा था।

महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को हम भगवान कहते हैं इसीलिए कि उनमें वह प्रकट हो गया है जो हममें प्रकट नहीं है। लेकिन हममें और उनके स्वभाव में कोई भेद नहीं है, सिर्फ अभिव्यक्ति का फर्क है।

ऐसा समझिए कि दो कवि हैं। एक कवि चुप बैठा है और एक गा रहा है। जो गा रहा है वह आपको कवि मालूम पड़ेगा। जो चुप है वह कवि नहीं मालूम पड़ेगा। लेकिन कवि होने में जरा भी अन्तर नहीं है। वह भी गाएगा, वह भी गा सकता है। वह गाएगा ही, भीतर उसके गीत मौजूद हैं, वह प्रकट होगा। एक बीज पड़ा है और एक वृक्ष लगा है। वृक्ष में फूल खिल गये और बीज में तो कुछ भी पता नहीं चलता है, कंकड़-पत्थर की तरह पड़ा हुआ है। आपको वृक्ष अलग दिखाई पड़ता है, आप वृक्ष को नमस्कार करते हैं, बीज को नहीं। लेकिन बीज में भी वृक्ष छिपा है। और यह जो वृक्ष आज खड़ा है कल यह भी बीज की तरह कहीं पड़ा था। और आज जो बीज की तरह पड़ा है कल भविष्य में वृक्ष हो जाएगा।

आप बीज हैं परमात्मा के—जब मैं जोर देता हूं कि आप परमात्मा हैं। इसकी स्वीकृति, इसका सहज स्वीकार आपके विकास में सहयोगी, साथी बन जाता है। इसका अस्वीकार संकुचन दे देता है। आप अपने भीतर कुन्द होकर बन्द हो जाते हैं। फिर आपकी मर्जी।

अब हम सूत्र को लें।

"हे विश्वमूर्ति! मैं पहले न देखे हुए आश्चर्यमय आपके इस रूप को देखकर हर्षित हो रहा हूं, और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है। इसलिए हे देव! आप उस चतुर्भुज रूप को ही मेरे लिए दिखाइए। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होइए।"

सनातन द्वन्द्व का दर्शन

अर्जुन बड़ी दुविधा में है। दोहरी बातें एक साथ हो रही हैं। राबिया—एक सूफी फकीर औरत के बाबत सुना है मैंने कि वह हंसती भी थी और रोती भी थी—साथ-साथ। और जब लोग उससे पूछते कि राबिया, क्या तू पागल हो गई—तू हंसती भी है और रोती भी है साथ-साथ। हमने रोते हुए लोग भी देखे, हमने हंसते हुए लोग भी देखे। बाकी दोनों साथ-साथ करता हुआ हमने कभी नहीं देखा। कारण क्या है? तो राबिया कहती, हंसती मैं उसे देखकर और रोती मैं तुम्हें देखकर। हंसती मैं उसे देखकर जो छाया है चारों तरफ और रोती मैं तुम्हें देखकर कि तुम्हें बिलकुल दिखाई नहीं पड़ता। हंसती हूं मैं उसे देखकर, जो मुझे आज अनुभव आ रहा है और रोती हूं मैं उसे सोचकर, जो मैंने कल तक माना था। हंसना और रोना जब एक साथ घटित हो, तो हम आदमी को पागल कहते हैं; क्योंकि सिर्फ पागल ही हंसते और रोते एक साथ हैं। क्योंकि हम तो बांध लेते हैं समय में चीजों को। जब हम रोते हैं तो रोते हैं, जब हंसते हैं तो हंसते हैं, दोनों साथ-साथ नहीं करते। लेकिन जब बहुत बड़ा अनुभव घटित होता है, जिससे जिन्दगी दो हिस्सों में बंट जाती है—पिछली जिन्दगी अलग हो जाती है और आनेवाली जिन्दगी अलग हो जाती है—हम एक चौराहे पर खड़े हो जाते हैं, जहां पीछा भी दिखाई पड़ता है और आगा भी, और जहां दोनों बिलकुल भिन्न हो जाते हैं। और दोनों के बीच कोई सम्बन्ध भी नहीं रह जाता, वहां दोहरी बातें एक साथ घट जाती हैं।

तो अर्जुन को हर्षित होना भी हो रहा है, भयभीत होना भी हो रहा है। वह प्रसन्न भी है, जो उसने देखा अहोभाग्य उसका और वह घबड़ा भी गया है जो उसने देखा। इतना विराट है जो उसने देखा कि वह कंप रहा है। अपनी क्षुद्रता का अनुभव भी तभी होता है, जब हम विराट के सामने हों; नहीं तो अपनी क्षुद्रता का भी अनुभव कैसे हो? हमको किसी को भी

अपनी क्षुद्रता का अनुभव नहीं होता, क्योंकि मापदंड कहां है, जिससे हम तोलें कि हम क्षुद्र हैं। जो मेंढक अपने कुएं के बाहर ही न गया हो, उसे कुआं सागर दिखाई पड़े तो कुछ गलत तो नहीं है, बिल्कुल तर्कयुक्त है। तो मेंढक जब सागर के किनारे जाएगा तभी अड़चन आएगी। कहते हैं न, कि ऊंट जब तक पर्वत के पास न पहुंचे तब तक अड़चन नहीं होगी, क्योंकि तब तक वह खुद ही पर्वत है। पर्वत के करीब पहुंचकर पहली दफा तुलना पैदा होती है।

अर्जुन की घबड़ाहट तुलना की घबड़ाहट है। पहली दफा बूंद सागर के निकट है। पहली दफा 'न कुछ' 'सब कुछ' के सामने खड़ा है। पहली दफा 'सीमा' 'असीम' से मिल रही है। तो घबड़ाहट है। जैसे नदी सागर में गिरती है तो घबड़ाती होगी अज्ञात में, अनजान में, अपरिचित में, प्रवेश हो रहा है और ओर-छोर मिट जाएंगे, नदी खो जाएगी।

जिब्रान ने लिखा है—कि जब नदी सागर में गिरती है तो लौटकर पीछे जरूर देखती है। रास्ता जाना-माना परिचित था। अतीत, स्मृति। भविष्य, अपरिचित अनजान। यह अर्जुन ऐसी ही हालत में खड़ा है। जहां मिट जाएगा पूरा। रत्ती भी नहीं बचेगी और अब तक अपने को जो समझा था, वह कुछ भी नहीं साबित हुआ, क्षुद्र निकला और विराट सामने खड़ा है। इसलिए भयभीत भी हो रहा है और हर्षित भी हो रहा है। नदी जब सागर में गिरती है, तो अतीत खो रहा है इससे भयभीत भी होती होगी और अज्ञात मिल रहा है इससे हर्षित भी होती होगी। तो नदी नाचती हुई गिरती है। उसके पैर में भय का कम्पन भी होता होगा और आनन्द की पुलक भी होती है, क्योंकि अब विराट से एक होने जा रही है।

जिस दिन गेटे मर रहा था, तो कहते हैं, वह आंख खोलकर देखता था बाहर, फिर आंख बन्द कर लेता था; फिर आंख खोलकर बाहर देखता था, फिर आंख बन्द कर लेता था। किसी ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? तो गेटे ने कहा—मैं देख रहा हूं उस दुनिया को, जो छूट रही है और आंख बन्द करके देख रहा हूं उस दुनिया को, जो आ रही है। और मैं दोनों के बीच बड़ा खिंचा हुआ हूं। जो छूट रहा है, वह व्यर्थ था। लेकिन फिर भी उसके साथ मेरा लगाव हो गया है। जो मिल रहा है सार्थक है, लेकिन अपरिचित है, भय भी लगता है पता नहीं क्या होगा परिणाम!

अर्जुन कह रहा है:

"हर्षित भी हो रहा हूं और मेरा मन अति भय से व्याकुल भी हो रहा है। इसलिए हे देव! आप अपने चतुर्भुज रूप को ही ले लें। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न हो जाएं, वापिस लौट आएं, सीमा में खड़े हो जाएं, असीम को तिरोहित कर दें। इस असीम से मन कंपता है।

और हे विष्णु! मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किए हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूं। इसलिए हे विष्णु! हे सहस्त्रबाहो! आप उसी चतुर्भुज रूप से युक्त हो जाइए।"

यह हमें मन की एक और गतिविधि समझ लेनी चाहिए। जो न हो मन उसकी मांग करता है। जो मिल जाए तो जो नहीं हो जाता है, मन उसकी मांग करने लगता है। अर्जुन खुद ही कहा था कि मुझे दिखाओ अपना विराट रूप, असीम हो जाओ। अब तुम्हें देखना चाहता हूं, अनुभव करना चाहता हूं। अब सीमा से मेरी तृप्ति नहीं। अब तो मैं पूरा का पूरा, जैसे तुम हो अपने नग्न सत्य में वैसे ही निर्वस्त्र, तुम्हें तुम्हारी पूरी नग्नता में, सत्यता में देख लेना चाहता हूं।

यही अर्जुन की मांग थी, यह उसकी ही प्रार्थना थी। और अब देख कर वह कह रहा है वापिस लौट आओ—अपने पुराने रूप में खड़े हो जाओ। अब तो वही ठीक है—तुम्हारे चार हाथों वाला वह रूप। उसी में तुम वापिस आ जाओ, प्रसन्न हो जाओ।

जो खो जाता है, हम उसकी मांग करने लगते हैं। जो मिल जाता है, वह हमें व्यर्थ दिखाई पड़ने लगता है। कुछ भी मिल जाय तो हमें डर लगता है। पीछे लौटना चाहते हैं। आगे जाना चाहते हैं। मगर जो मिल जाय, उसके साथ राजी रहने की हमारी हिम्मत नहीं है।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है एक गीत, कि खोजता था परमात्मा को अनन्त-अनन्त कालों से। और बड़ा बेचैन रहता था, और बड़ा रोता-चिल्लाता था, और बड़ी तपश्चर्या करता था, और कभी किसी दूर तारे के किनारे उसकी शक्ल भी दिखाई पड़ती थी। जब तक वहां पहुंचता था तब तक वह दूर निकल जाता था। बड़ी व्याकुलता थी, मिलन का बड़ा आग्रह था। रोता-तड़पता, छाती पीटता भटकता था। फिर एक दिन ऐसा हुआ

कि उसके दरवाजे पर ही पहुंच गया। सीढ़ियां चढ़ गया, दरवाजे पर तख्ती लगी थी कि यही है उसका मकान, जिसकी तलाश थी। हाथ में सांकल लेकर दरवाजे की...जन्मों-जन्मों की प्यास पूरी होने के करीब थी...ठोंकने ही वाला था सांकल कि तभी मन ने कहा कि जरा सोच ले, अगर परमात्मा मिल ही गया तो फिर तू क्या करेगा ? फिर तू क्या करेगा ? अब तक तू उसको खोजता था और वह आखिरी खोज है और अगर मिल ही गया फिर तू क्या करेगा ? फिर तेरे होने का क्या अर्थ है ?

रवीन्द्रनाथ ने बड़ी मीठी कविता लिखी है। लिखा है कि धीरे से सांकल मैंने छोड़ दी कि कहीं आवाज न हो जाय, कहीं वह बाहर ही न आ जाय, कहीं वह आकर आलिंगन में ही न ले ले कि आ बहुत दिन से खोजता था अब मिलन हो जाय। जूते हाथ में निकाल लिए कहीं सीढ़ियों से लौटते वक्त आवाज न हो जाय और फिर मैं जो भागा हूं, तो मैंने लौटकर नहीं देखा।

अब मैं फिर खोज रहा हूं। अब मैं पूछता हूं लोगों से कि कहां है उसका मकान और मुझे उसका मकान पता है। और अब मैं जगह-जगह गुरुओं से पूछता हूं कि तुम्हारे चरण में आया हूं, रास्ता बताओ और मुझे उसका रास्ता पता है। और कभी भूल-चूक से भी कभी उसके घर के पास से मैं नहीं गुजरता हूं; क्योंकि अगर वह मिल ही जाय तो फिर...!

अर्जुन की भी यही हालत है। वह दरवाजे के भीतर घुस गया है। उसने कुण्डी बजा दी। अब परमात्मा मिल गया, अब वह कह रहा है कि नहीं, वापिस। फिर मुझे खोजने दो, फिर तुम अपनी सीमा में खड़े हो जाओ, ताकि फिर मैं असीम को खोजूं। अब तुम फिर मुस्कराओ। अब तुम फिर गदा हाथ में ले लो। अब तुम चतुर्भुज हो जाओ। तुम वही हो जाओ। क्योंकि तुम तो मुझे मिटाए दे रहे हो, अब मेरा कोई अर्थ ही नहीं रह जाता, कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।

आपको ख्याल में नहीं है। जो लोग दूर तक सोचते हैं, उनके ख्याल में है। रवीन्द्रनाथ ने बड़ा गहरा व्यंग किया है। बर्टेन्ड रसेल ने अपने एक वक्तव्य में ठीक यही बात कही है। रसेल ने कहा है कि मैं हिन्दुओं के मोक्ष से बहुत डरता हूं। मुझे सोचकर ही बात भयावनी मालूम पड़ती है कि सच में है ? आपने सोचा नहीं कभी, इसलिए फिक्र नहीं है। रसेल कहता है कि

मैं यह सोचकर ही बहुत भयभीत हो जाता हूं कि मोक्ष मिल जाएगा फिर क्या—देन व्हाट ? और बड़ी कठिनाई यह कि मोक्ष से संसार में वापिस नहीं आ सकते। संसार से तो मोक्ष में जा सकते हैं। एन्ट्रेन्स तो है, एक्जिट नहीं है। मोक्ष से वापिस नहीं लौट सकते, वहां से कोई दरवाजा नहीं कि जिससे निकल भागें—बाहर आ गए।

तो रसेल कहता है कि मोक्ष की बात ही घबड़ाती है—कि वहां न दुख होगा, न सुख होगा; परम शांति होगी ! लेकिन कितनी देर ? अनन्त काल तक ! अनन्त काल तक शांति ! शांति !! शांति !!! बहुत बोरडम, बहुत ऊब पैदा हो जाएगी। स्वाद में थोड़ी बदलाहट तो चाहिए ही आदमी को। थोड़ा दुख आता है, तो सुख में फिर मजा आ जाता है। थोड़ी अशांति होती है, तो शांति की फिर चाह पैदा हो जाती है। लेकिन वहां कोई विघ्न-बाधा ही न होगी। वहां एक-सुरा संगीत होगा, जिसमें कभी ऊंची-नीची ताल न होगी। वहां 'स रे ग म प ध नि' नहीं होगा। वहां बस 'स, स, स, स, स, स, स' चलता रहेगा अनन्त काल तक। उसमें—रसेल कहता है—घबड़ा जाएगी तबीयत और निकलने का रास्ता नहीं है। और यहां तो प्रभु से प्रार्थना करते थे कि मोक्ष पहुंचा दो, फिर क्या करेंगे ? मोक्ष के बाद फिर कोई उपाय नहीं है। तो रसेल कहता है, इससे तो नरक भी बेहतर, उसमें से कम से कम बाहर तो आ सकते हैं और कम से कम कुछ मजा तो रहेगा; कुछ चीजें तो बदलेंगी; फिर संसार ही क्या बुरा है !

यह रसेल ठीक कहता है। अगर सोचेंगे तो घबड़ाहट होगी। लेकिन ऐसा नहीं है कि बुद्ध और महावीर और कृष्ण ने बिना सोचे यह बात कही है। अगर आप अपनी बुद्धि को लेकर मोक्ष में चले जाएंगे, तो वही होगा जो रसेल कह रहा है, क्योंकि बुद्धि द्वंद्व है। वह एक को नहीं सह सकती, उसको दो चाहिए। लेकिन मोक्ष की अनिवार्य शर्त है—बुद्धि को दरवाजे पर छोड़ जाना। इसलिए वहां कोई कभी नहीं पहुंचता।

ध्यान रहे बोरडम के लिए बुद्धि जरूरी है। बुद्धि के नीचे भी बोरडम पैदा नहीं होती, बुद्धि के ऊपर भी बोरडम पैदा नहीं होती। आपने किसी गाय-भैंस को बोर होते हुए देखा है, कि भैंस बैठी है बोर हो गई, कि बहुत ऊब गई। वही घास रोज चर रही, वही सब रोज चल रहा है। भैंस को कोई ऊब नहीं है। क्यों ? क्योंकि ऊब पैदा होती है बुद्धि के साथ। बुद्धि

तो न करने लगती है—जो था, जो है, जो होगा इसमें। खोजने लगती है तो फिर भेद अनुभव होने लगता है। फिर कल भी यही भोजन मिला, आज भी यही मिला, परसों भी यही मिला, तो ऊब पैदा होने लगती है। भैंस को पता ही नहीं कि कल भी यही भोजन किया था। कल समाप्त हो गया। कल तो, बुद्धि संग्रहीत करती है। बुद्धि स्मृति बनाती है। भैंस जो भोजन कर रही, वह नया ही है, कल जो किया था, वह तो खो ही गया, उसका कोई स्मरण नहीं। कल जो होगा उसकी कोई खबर नहीं है, आज काफी है। इसलिए बुद्धि के नीचे भी कोई बोरडम नहीं है। कोई जानवर ऊबा हुआ नहीं है, जानवर बड़े प्रसन्न हैं। कोई आदमी के पार गया आदमी—बुद्ध, महावीर ऊबे हुए नहीं हैं। उनकी प्रसन्नता फिर प्रसन्नता है, क्योंकि जो बुद्धि हिसाब रखती थी, उसको वे पीछे छोड़ आए।

आदमी परेशान है जो भैंस और भगवान के बीच में है। इसलिए बड़ी तकलीफ है, वह ऊबा हुआ है। आदमी का अगर एक मात्र लक्षण, जो जानवर से उसे अलग करता है कोई खोजा जाय, तो वह बोरडम है। ऊब, हर चीज से ऊब जाता है। एक सुन्दर स्त्री के पीछे दीवाना है, मिली नहीं। मिल नहीं गई स्त्री कि ऊब शुरू हो गई। दो चार दिन में ऊब जाएगा। सब सौन्दर्य बासा पड़ जाएगा, पुराना पड़ जाएगा। एक अच्छे मकान की तलाश है, मिला नहीं कि दो चार आठ दिन में सब बासा हो जाएगा। एक अच्छी कार चाहिए, मिल गई, दो-चार-आठ दिन में बासी हो जाएगी, दूसरी कार नजर को पकड़ने लगेगी। बुद्धि तौलती है, ऊबती है। बुद्धि के नीचे भी ऊब नहीं, बुद्धि के पार भी नहीं।

रसेल ठीक कहता है। अगर बुद्धि को लिए ही कोई घुस जाएगा मोक्ष में, तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा। लेकिन कोई घुस नहीं सकता, इसलिए चिन्ता की कोई जरूरत नहीं।

अर्जुन ऐसी ही दिक्कत में पड़ा है। इसको दिखाई पड़ रहा है विराट। अब इसको याद आता है कृष्ण का वह प्यारा मुख, जिससे मित्रता हो सकती थी, जिसके कंधे पर हाथ रखा जा सकता था, जिसे कहा जा सकता था—हे यादव! हे कृष्ण! अरे सखा! जिससे मजाक की जा सकती थी। उसको पकड़ने का मन होता है।

सारी दुनिया में यह बात विचारणीय बनी रही है कि आखिर भारत में हिन्दुओं ने परमात्मा की इतनी साकार मूर्तियां क्यों निर्मित कीं, इतनी

निराकार की बात करने के बाद। इतनी साकार मूर्तियां क्यों निर्मित कीं? मुसलमानों को कभी समझ में नहीं आ सका कि उपनिषद् की इतनी ऊंचाई पर पहुंचकर भारत, जहां परम निराकार की बात है, फिर क्यों गांव-गांव, घर-घर में मूर्ति की पूजा कर रहा है?

इस सूत्र में उसका रहस्य है। इस मुल्क ने निराकार को देखा है। और जिन्होंने इस मुल्क में निराकार को देखा है, उन्होंने अपने पीछे आने वालों के लिए साकार मूर्तियां बना दीं, क्योंकि उन्हें पता है कि निराकार तो बहुत घबड़ा देता है अगर बिना तैयारी के कोई वहां पहुंच जाय। उसमें मिटने की तैयारी चाहिए। उसके पहले साकार ही ठीक है। उसके कंधे पर हाथ रखा जा सकता है। उसका शादी-विवाह रचाया जा सकता है। उसको कपड़े-गहने पहनाये जा सकते हैं। वह कुछ गड़बड़ नहीं करता। उसके साथ तुम्हें जो करना हो तुम कर सकते हो। भोजन करवाओ तो करवाओ, लिटाओ तो लिटाओ, सुला दो, उठा दो, द्वार बन्द कर दो, खोल दो, जो करना हो।

परमात्मा को जिन्होंने विराट में झांका है, उन्होंने आदमी के लिए मूर्तियां निर्मित करवा दीं—क्योंकि उन्हें पता चल गया कि आदमी जैसा है अगर ऐसा ही सीधा विराट में खड़ा हो जाय, तो या तो विक्षिप्त हो जाएगा, घबड़ा जाएगा और या फिर खड़ा ही नहीं हो पाएगा, देख ही नहीं पाएगा, आंख ही नहीं खुलेगी।

इसलिए निराकार का इतना चिन्तन करने वाले लोगों ने भी साकार को हटाया नहीं, साकार को बने रहने दिया। कभी-कभी बहुत कन्ट्राडिक्टरी लगता है।

शंकराचार्य जैसा व्यक्ति, जो बिल्कुल शुद्ध निराकार की बात करता है। फिर वह भी मूर्ति के सामने नाचता रहता है, कीर्तन करता है। वह भी गीत गाता है मूर्ति के सामने। बड़ी कठिन बात मालूम पड़ती है; क्योंकि पश्चिम में जो लोग वेदान्त का अध्ययन करते हैं, वे कहते हैं, यह कन्ट्राडिक्टरी है। यह शंकर के व्यक्तित्व में बड़ा विरोधाभास है। एक तरफ तो वेदान्त की इतनी ऊंची बात कि सब माया है और फिर इसी माया मिट्टी के बने हुए भगवान के सामने गीत गाना और नाचना और तल्लीन हो जाना। इस सूत्र में उसका रहस्य है।

शंकर को तो पता है, जो उनको दिखाई पड़ा है। लेकिन उनके पीछे जो लोग आ रहे हैं अब वे उनके संबंध में भी समझ सकते हैं कि जो शंकर को दिखाई पड़ा है—यह अगर किसी को आकस्मिक रुप से दिखाई पड़ जाय, कहीं कोने से टूट पड़े कोई धारा और इसका अनुभव हो जाय, तो झेलना मुश्किल हो जाय—वह एम्पैक्ट, वह आकार तोड़ जाएगा। इसलिए मूर्ति को रहने दो, जब तक कि अमूर्ति के लिए तैयार न हो जाय व्यक्ति। तब तक चलने दो उसे अपने खेल-खिलौनों के साथ, जब तक कि वह इतना प्रौढ़ न हो जाय कि सब छोड़ दे।

यह अर्जुन यही मांग कर रहा है कि तुम मूर्त बन जाओ, अमूर्त नहीं; और तुम्हारी मूर्ति वापिस ले आओ।

इस प्रकार अर्जुन की प्रार्थना को सुनकर कृष्ण बोले—हे अर्जुन! अनुग्रह पूर्वक मैंने अपनी योग शक्ति के प्रभाव से यह मेरा परम तेजोमय सबका आदि और सीमा रहित विराट रूप दिखाया, जो कि तेरे सिवाय दूसरे से पहले नहीं देखा गया। यह बड़ा उपद्रव का वचन है, क्योंकि इसमें बड़ी उलझनें हैं। जो लोग गीता में गहन चिन्तन करते हैं, मनन करते हैं, उनको बड़ी कठिनाई होती है। तेरे सिवाय दूसरे से पहले नहीं देखा गया है, इसका क्या मतलब? क्या अर्जुन पहला अनुभवी है, जिसने परमात्मा का विराट रूप देखा। यह बात तो उचित नहीं मालूम पड़ती। अनन्त काल से आदमी है। अनन्त सिद्ध पुरुप हुए हैं। अनन्त जाग्रत चेतनाएं हुई हैं। क्या अर्जुन पहला आदमी है।

यह अर्थ नहीं हो सकता इस वाक्य का। इस वाक्य का केवल एक ही अर्थ है और वह यह कि कृष्ण के द्वारा यह रूप दिखाया गया, यह पहली घटना है कृष्ण के द्वारा। मैंने पीछे कहा कि अगर कोई अर्जुन बनने को तैयार हो, तो यह विराट दिखाया जा सकता है।

एक मित्र मेरे पास आए और उन्होंने कहा कि मुझे तो पक्का पता नहीं है कि मैं अर्जुन हूं या नहीं; लेकिन आप कितने अर्जुनों को पहले दिखा चुके हैं। तो मैंने उनसे पूछा कि तुम पहले पुराने कृष्ण की फिक्र करो, कि कितने अर्जुनों को कृष्ण पहले दिखा चुके हैं? एक को ही दिखा पाए; और यही पहला भी था और यही आखिरी भी, क्योंकि अर्जुन जैसा समर्पण अति अति कठिन है। उतना सहज-भाव से छोड़ देना गुरू के हाथों में अति कठिन

है। उतना निसंदेह उतनी पूर्ण श्रद्धा से, उतने समग्र भाव से। यही अर्थ है इस सूत्र का, कि तेरे सिवाय दूसरे से पहले नहीं देखा गया है।

कृष्ण के संबंध में यह बात सच है कि कृष्ण ने इस रूप में, कृष्ण के रूप में, जिसे दिखाया, वह अकेला अर्जुन है और यह पहला कहा है, उन्होंने। लेकिन बाद में भी किसी दूसरे को नहीं दिखाया है, यह आखिरी भी है।

अर्जुन हो पाना अति कठिन है। इसे थोड़ा सोच लें। कृष्ण हो जाना इतना कठिन नहीं है जितना अर्जुन हो पाना कठिन है। तो जब मैं ऐसा कहूंगा, आपको थोड़ी अड़चन मालूम पड़ेगी। कृष्ण हो जाना उतना कठिन नहीं है, जितना अर्जुन होना कठिन है। बुद्ध, कृष्ण हो जाते हैं, महावीर, कृष्ण हो जाते हैं। लेकिन अर्जुन होना बड़ा कठिन है, क्योंकि कृष्ण होना तो स्वयं पर, स्वयं की श्रद्धा से होता है। अर्जुन होना स्वयं की दूसरे पर श्रद्धा से होता है, जो बड़ी जटिल बात है। स्वयं पर भरोसा रखना तो इतना कठिन नहीं है, क्योंकि हमारा भरोसा स्वयं पर होता ही है—थोड़ा कम-ज्यादा, यह बढ़ जाय। जिस दिन आदमी अपने में पूरे भरोसे से भर जाता है, उस दिन कृष्ण की घटना घट जाती है। यह तो सहज है, क्योंकि एक ही आदमी की बात है, अपने पर ही भरोसा करना है। लेकिन अर्जुन होना अति कठिन है, क्योंकि दूसरे पर ऐसे भरोसा करना है, जैसे वह मेरी आत्मा है और मैं उसकी परिधि हूं।

इसलिए अर्जुन को खोजना कृष्ण को भी मुश्किल पड़ा है। एक अर्जुन कृष्ण को उपलब्ध हुआ है। राम को कभी कोई ऐसा अर्जुन उपलब्ध हुआ, पता नहीं। बुद्ध को कभी कोई ऐसा अर्जुन उपलब्ध हुआ, पता नहीं। जीसस को कभी कोई ऐसा अर्जुन उपलब्ध हुआ, पता नहीं। उनके पास भी बहुत लोगों को घटनाएं घटी हैं लेकिन अर्जुन जैसी विराट अनुभव की घटना नहीं घटी। तो कृष्ण का यह कहना इस अर्थ में सार्थक है, कि इस प्रकार का समर्पण मुश्किल है, अति दुरूह है और इस प्रकार समर्पण हो, तो यह घटना घट सकती है।

"हे अर्जुन! मनुष्य लोक में इस प्रकार विश्व-रूप वाला मैं, न वेद के अध्ययन से, न यज्ञों के करने से, न दान से, न क्रियाओं से, न उग्र तपों से ही तेरे सिवाय दूसरे से देखे जाने योग्य शक्य हूं।

यह बड़ी गहरी और महत्वपूर्ण बात कही है। कहा है कि वेद के अध्ययन से भी यह नहीं होगा, यज्ञों के करने से भी यह नहीं होगा, दान से भी नहीं होगा, क्रियाओं से योग की भी नहीं होगा, उग्र तपों से भी यह नहीं होगा। क्यों नहीं होगा ? वेद के अध्ययन से क्यों नहीं होगा ! क्यों ? यहां कोई साधेगा तो नहीं होगा ! क्यों नहीं ? योग की क्रियाएं क्यों नहीं इस स्थिति में ले जा पाएंगी ? यह नहीं होगा इसलिए- कि वेद का अध्ययन हो, या यज्ञ हो, या योग की साधना हो—यह सारी की सारी प्रक्रियाएं स्वयं पर भरोसे से होती हैं। इनमें व्यक्ति अपना ही केन्द्र होता है। ये समर्पण के कोई प्रयोग नहीं हैं, ये सब संकल्प के प्रयोग हैं। और अर्जुन की घटना समर्पण से घटेगी, संकल्प से नहीं। कोई कितना ही योग साधे वो अर्जुन नहीं बन पायेगा, कृष्ण बन सकता है। इसे थोड़ा समझ लें। कितना ही योग साधे कृष्ण तो बन सकता है, इसलिए कृष्ण को महायोगी कहते हैं। वो बुद्ध बन सकता है, कोई भी इस जगह पहुंच सकता है। तो मैं अपने भीतर प्रयोग करता जाऊं अपनी ही शक्ति से तो एक दिन उस दिव्य का अनावरण कर लूंगा जो मुझमें छुपा है। लेकिन तब मैं अर्जुन नहीं रहूंगा, मैं कृष्ण हो जाऊंगा। अर्जुन दूसरी ही प्रक्रिया है। वो संकल्प नहीं, समर्पण है। वहां स्वयं खोज नहीं करनी, जिसमें खोज लिया है, उसके चरणों में अपने को छोड़ देना है। तो अर्जुन है, मीरा है, चैतन्य हैं—इनकी पकड़ दूसरी है। ये दूसरा उपाय है। जगत में दो तरह के मत हैं। एक—जो संकल्प से पायेंगे परमात्मा को; दूसरे—जो समर्पण से पायेंगे परमात्मा को। समर्पण में अपने को बिलकुल छोड़ देना है।

रामकृष्ण कहते थे, नदी को पार करने के दो ढंग हैं। एक तो है कि नाव को खेवो पतवार से—जो संकल्प है। और एक है कि प्रतीक्षा करो कि जब हवाएं अनुकूल हों, तब पाल बांध लो और नाव में चुपचाप बैठ जाओ, नाव खुद चल पड़ेगी। पाल में भरी हवाएं उसे ले जाने लगेंगी—ये समर्पण है। कृष्ण की हवा है, अर्जुन ने तो केवल पाल खोल दिये। अर्जुन खुद नहीं चला रहा है नाव हवा कृष्ण की है। बुद्ध खुद चला रहे हैं, पाल वगैरह नहीं हैं उनकी नाव पर; और पाल वगैरह वह पसन्द भी नहीं करते। मरते वक्त बुद्ध ने आनंद को कहा है—अपने पर ही भरोसा रखना, किसी और पर नहीं। स्वभावतः जिसने नदी को नाव को खेकर पार किया

हो पतवारों से, यही कहेगा। एक है समर्पण—कि छोड़ दो नाव उस पर अनुकूल हवाओं के लिये, वो ले जाय पार या डुबा दे तो भी समझना कि वही किनारा है; या खुद अपने ही बल से नदी को पार कर लेना।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि न वेद के अध्ययन से, न यज्ञ के अनुष्ठान से, न योग की क्रिया से, न उग्र तपश्चर्या से ये हो सकता है अर्जुन, जो तुझे हुआ है। यह समर्पण से होता है।

०

गीता अध्याय ११ :

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ।४९।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ।५०।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ।५१।

अस्तित्व की पुकार का दर्शन

गीता-ज्ञान यज्ञ, क्रास मैदान, बंबई, संध्या : दिनांक १३ जनवरी ७३

ग्यारहवां प्रवचन

एक मित्र ने पूछा है, क्या कोई मनुष्य, जो बच्चे की भांति सरल हो, जिसे कोई भी ज्ञान नहीं है, परमात्मा को पा सकता है ? यदि हां, तो कैसे ?

मुक्ति-द्वार : बच्चे जैसी सरलता

जीसस का बहुत प्रसिद्ध वचन है। जीसस से पूछा किसी ने कि कौन आपके राज्य का प्रवेश का अधिकारी है—प्रभु के राज्य में कौन प्रवेश कर सकेगा ? तो जीसस ने कहा, जो बच्चों की भांति सरल और निर्दोष होंगे।

लेकिन इसमें बहुत कुछ समझने जैसा है। एक तो जीसस ने यह नहीं कहा कि जो बच्चे हैं--वे। जीसस ने कहा कि जो बच्चों की भांति सरल हैं—वे; नहीं तो सभी बच्चे परमात्मा में प्रवेश कर जाएंगे। बच्चे की भांति सरल कौन होगा ? बच्चा कभी नहीं हो सकता। बच्चे की भांति सरल का अर्थ ही यह हुआ कि जो बच्चा नहीं है और बच्चे की भांति सरल है।

शरीर की उम्र बढ़ गई हो, मन की उम्र बढ़ गई हो, संसार को जान लिया हो, फिर भी जो बच्चे की भांति सरल हो जाता है। तो एक तो

बचपन है जो मां-बाप से मिलता है। वह शरीर का बचपन है। वह बचपन अज्ञान से भरा हुआ है। उस बचपन में परमात्मा को जानने का कोई उपाय नहीं है। बच्चा सरल है, लेकिन अज्ञान के कारण सरल है। ये सरलता झूठी है, बच्चे की सरलता झूठी है, इसे ठीक से समझ लें; क्योंकि सरलता के पीछे वह सब जहर छिपा है, जो कल जटिल बना देगा। यह सिर्फ ऊपर-ऊपर है। भीतर तो बच्चे के वही सब छिपा है, जो जवानी में निकलेगा, बुढ़ापे में निकलेगा। वह सब मौजूद है। यह बच्चा ऊपर से सरल है, भीतर से जटिल है। और ऊपर भी इतना सरल नहीं है, जितना हम मानते हैं।

फ्रायड की खोजों ने काफी जाहिर कर दिया है कि बच्चे भी बहुत जटिल हैं। आप सोचते यह हैं कि बच्चा क्रोध नहीं करता; सच तो यह है कि बच्चे जितना क्रोध करते हैं, बड़े नहीं कर पाते। आप सोचते यह हैं कि बच्चा ईर्ष्या से नहीं भरता, बच्चे भयंकर रूप से ईर्ष्यालु होते हैं। और दूसरे के हाथ में खिलौना देखकर उनको जितनी बेचैनी होती है, उतना दूसरे की कार देखकर आपको नहीं होती। और आप सोचते यह हैं कि बच्चों में घृणा नहीं होती। और सोचते यह हैं कि बच्चों में हिन्सा नहीं होती; पर बच्चे भयंकर रूप से हिंसक होते हैं। और कोई कीड़ा उनको दिखाई पड़ जाय चलता हुआ, तो जब तक उसको तोड़-मरोड़ न डालें, तब तक उनको चैन नहीं होती।

बच्चा तोड़ने में भी काफी रस लेता है, विध्वंस में भी काफी रस लेता है, ईर्ष्या से भी भरा होता है, हिन्सा से भी भरा होता है। और आप सोचते यह हैं कि बच्चे में काम-वासना नहीं होती, वह भी भ्रांति है; क्योंकि आधुनिकतम सारी खोजें कहती हैं कि बच्चे में सारी काम-वासना भरी है, जो बाद में प्रकट होने लगेगी। आप ख्याल करें, हालांकि हमारा मन बहुत-सी बातों को मानने को तैयार नहीं होता, क्योंकि हमारी बहुत-सी धारणाओं को चोट लगती है।

घर में अगर लड़का पैदा होता है तो लड़के और बाप के बीच थोड़ी-सी कलह बनी ही रहती है। वह दो पुरुषों की कलह है। और मनोविज्ञान कहता है कि वह एक स्त्री के लिए ही वह कलह है, मां के लिए है। वह बच्चे की जो मां है वह और बच्चे का बाप जो है, वे दोनों अधिकारी हैं—एक स्त्री के। और बच्चा पसन्द नहीं करता कि बाप ज्यादा बाधा डाले।

और बाप भी ज्यादा पसन्द नहीं करता कि बच्चा इतना बीच में आ जाय कि पत्नी और उसके बीच खड़ा हो जाय। बाप की दोस्ती बेटे से मुश्किल से होती है, लेकिन मां की दोस्ती बेटे से हमेशा होती है। बेटी हो तो बाप की दोस्ती होती है, मां की दोस्ती नहीं होती। बेटी और मां के बीच सूक्ष्म कलह निर्मित हो जाती है। जैसे-जैसे लड़की बड़ी होने लगेगी वैसे-वैसे मां और लड़की के बीच उपद्रव शुरू हो जाएगा।

फ्रायड कहता है कि यह सेक्स की जेलसी (ईर्ष्या) है, यह काम-वासना ही इसके पीछे मूल आधार है। बच्चा उतनी ही काम-वासना से भरा है जितना कोई और। फर्क सिर्फ इतना है कि अभी उसकी काम-वासना का यन्त्र तैयार हो रहा है। जिस दिन यन्त्र तैयार हो जाएगा वासना फूट पड़ेगी, चौदह वर्ष में तेरह वर्ष में, वासना फूट पड़ेगी। यन्त्र तो बन रहा है, वासना भीतर पूरी है, वह रास्ता खोज रही है। यन्त्र पूरे होते ही से उसका विस्फोट हो जाएगा।

बच्चे को हम जितनी सरलता मानकर चलते हैं, वह मानी हुई है। और उस मानने का कारण भी अहंकार है। क्योंकि हर आदमी यह मानना चाहता है कि बचपन में मैं बड़ा पवित्र था। इस भ्रांति के दो कारण हैं—एक तो आपको बचपन की ठीक-ठीक याद नहीं, और दूसरा जिन्दगी इतनी बुरी है और जिन्दगी इतनी बेहूदी और कष्ट और संकट से भरी है कि मन कहीं न कहीं राहत खोजना चाहता है। तो कम से कम बचपन स्वर्ग था, इसको मानने से थोड़ी राहत मिलती है। दो ही उपाय हैं—या तो आगे स्वर्ग मानें, भविष्य में जो कि मुश्किल है, क्योंकि वहां मौत दिखाई पड़ती है। इसलिए आगे स्वर्ग को मानने में बड़ा मुश्किल होता जाता है। और रोज आपकी उलझन बढ़ती जाती है, इसलिए आगे स्वर्ग होगा, इसमें भरोसा नहीं बैठता। आगे नर्क हो सकता है, लेकिन स्वर्ग कैसे होगा आगे?

रोज जब उलझन बढ़ती जाती है और जिन्दगी टूटती जाती है और आदमी बूढ़ा होने लगता है, तो आगे नर्क दिखाई पड़ता है। तो आदमी कहीं तो राहत चाहता है, सान्त्वना चाहता है। लौटकर अपने बचपन में स्वर्ग को रख लेता है। तो सभी लोग बचपन की याद करते रहते हैं कि बड़ा सुख था। यह सुखद होना एक भ्रांति है, मन के लिए एक सान्त्वना है। बचपन सुखद नहीं है। बच्चों से पूछें, सभी बच्चे जल्दी बड़े होना चाहते हैं।

कोई बच्चा, बच्चा नहीं रहना चाहता; क्योंकि बचपन इसे दुखद मालूम पड़ रहा है। बचपन के अपने दुख हैं जो आप भूल गए। वे बच्चों को निरीक्षण करने से पता चलते हैं, तो बच्चों को लगता है कि वे बिलकुल परतन्त्र हैं—कोई स्वतन्त्रता नहीं। हर बात में किसी की हां, और किसी की ना को स्वीकार करना पड़ता है। बच्चा जल्दी बड़ा होना चाहता है, यह गुलामी है। बच्चा कमजोर है। सब ताकतवर हैं उसके आसपास। इससे उसके अहंकार को भारी ठेस लगती है। वह भी बड़ा होना चाहता है और कहना चाहता है कि मैं भी कुछ हूं। हर चीज पर निर्भर है। खुद कुछ भी नहीं कर सकता, असहाय है, हेल्पलेस है। इसलिए बच्चा सुख में नहीं हो सकता। यह सुख बूढ़े का ख्याल है, धारणा है, पीछे लौटें। फिर आपको याद कितनी है। पांच साल के पहले की तो याद होती नहीं है। मुश्किल से कोई बहुत अच्छी याददाश्त हो तो चार साल, उसके पहले की आपको याद नहीं होती।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि चार साल पहले की आपको याद क्यों नहीं है? स्मृति तो होनी चाहिए। आप जिन्दा रहे। मां के पेट से पैदा हुए। चार साल तक आप जिन्दा थे, घटनाएं घटीं। उनकी स्मृति क्यों खो जाती है? आपका मन उनकी स्मृति को खो क्यों देता है? तो बड़ी अनूठी बात हाथ में आई है और वह यह कि चार साल की जिन्दगी इतनी दुखद है कि मन उसे याद नहीं करना चाहता। दुख को हम भुलाना चाहते हैं, लेकिन हम भूल ही नहीं सकते; क्योंकि जो घट गया है वह स्मृति में दबा है। इसलिए अगर आपको बेहोश किया जाय, सम्मोहित—हिप्नोटाइज—किया जाय तो आपको सब याद आ जाता है। ठीक पहले दिन जब आप पैदा हुए और जो आपने पहली चीख-पुकार मचाई, इस दुनिया में आते ही से जो आपने दुख की पहली घोषणा की थी—उससे लेकर सब याद आ जाता है। गहरे सम्मोहन में आपके मन की सारी परतें उघड़ आती हैं और सब याद आ जाता है। सम्मोहन के जो नतीजे हैं, वे यह हैं कि बचपन बहुत दुखद है, इसलिए हम उसे भूल गए। जो दुखद है, उसे याद करना मन नहीं चाहता। जो सुखद है, उसे याद करना चाहता है। तो हम बचपन में जो सुख है, उसको चुन लेते हैं और जो दुख है, उसे भूल जाते हैं। उसी सुख को इकट्ठा करके बाद में हम कहते हैं, बचपन स्वर्ग था। न तो बचपन

स्वर्ग है, न बचपन में ऐसी कोई सरलता है जैसा हम सोचते हैं। लेकिन सरलता लगती है, उसके कुछ कारण जरूर होने चाहिए।

एक तो बच्चा क्षण क्षण जीता है। यह बात सच है। न तो अतीत का बहुत हिसाब रखता है, क्योंकि हिसाब रखने की जितनी बुद्धि चाहिए, वह उसके पास नहीं है। न भविष्य की योजना बनाता है, क्योंकि भविष्य की योजना के लिए जितनी समझ चाहिए, वह भी उसके पास नहीं है : वह क्षण क्षण जीता है जैसे पशु जीते हैं। अभी जी लेता है। इसलिए बच्चा आप पर नाराज हो जाता है, घड़ी भर बाद भूल जाता है। इसलिए नहीं कि उसका क्रोध नहीं था, बल्कि इसलिए कि अभी हिसाब रखने वाला मन विकसित नहीं हुआ है। घड़ी भर पहले नाराज हो लिया, घड़ी भर बाद हंसने लगा। वह भूल गया कि नाराज हुआ था, अब हंसना नहीं चाहिए, इस आदमी के साथ। इन दोनों के बीच सम्बन्ध बिठाने की बुद्धि अभी विकसित नहीं हुई है।

तो बच्चे की सारी सरलता उसके क्षण-क्षण जीने, बुद्धिहीन होने, अज्ञान में होने के कारण है। ऐसी सरलता से कोई परमात्मा को नहीं पा सकता। एक और सरलता है; जो जीवन के सारे अनुभव को जानने के बाद इस अनुभव को उतारकर रख देने से उपलब्ध होती है।

जिन्दगी एक बोझ है—अनुभव का। बच्चा बड़ा हो रहा है, अनुभव इकट्ठा कर रहा है। एक दिन ऐसी घड़ी अगर आपके जीवन में आ जाय कि आपको पता लगे यह सारा अनुभव व्यर्थ है। यह जो जाना, जो सीखा, जो जिया—सब व्यर्थ है, कचरा है। और आप इस सारे कचरे को पटक दें अपने सिर से नीचे तो आपको एक नया बचपन मिलेगा। आप फिर वैसे सरल हो जाएंगे, जो निर्भार होने से कोई भी हो जाता है। वह सरलता जीसस का मतलब है कि जो बच्चों की भांति सरल है, यह बच्चों की भांति सिर्फ उदाहरण है।

संत फिर से बच्चे की भांति हो जाता है। या ठीक से हम कहें, तो संत सच में पहली बार बच्चा होता है; क्योंकि कोई बच्चा, बच्चा है नहीं। उसके भीतर सब रोग छिपे हैं, जो बड़े हो रहे हैं। समय की देर है, सब रोग प्रकट हो जाएंगे। रोग मौजूद हैं, उनका बीज तैयार है। सिर्फ पानी पड़ेगा, धूप लगेगी और सब प्रकट हो जाएगा।

तो बच्चे की जो सरलता है, वह झूठी है। संत की सरलता ही सच्ची है, क्योंकि अब रोग छूट गए—अब भीतर कुछ बचा नहीं -- संत खाली है। खालीपन सरलता है। अनुभव से खाली, ज्ञान से खाली, जीवन के सारे बोझ से खाली—रिक्त, शून्य। अब उसने जो भी जाना, सब पटक दिया। अब चेतना अकेली रह गई।

ऐसा समझें कि एक दर्पण है। दर्पण पर कोई आता है तो चित्र बनता है। ठीक ऐसे ही हमारे भीतर प्रज्ञा है, बुद्धि है। उस पर सब चित्र बनते हैं। संसार भर के चित्र बनते हैं। जो भी सामने आता है, जाता है—उसके चित्र बनते हैं। लेकिन दर्पण दो तरह के हो सकते हैं। एक दर्पण तो होता है फोटोग्राफर के कैमरे में, जहां प्लेट लगी है, वह भी दर्पण है; लेकिन खास तरह का दर्पण है। उसमें खास रासायनिक तत्व लगाए गए हैं। उसमें जो प्रतिबिम्ब बनेगा, वह बनेगा ही नहीं, पकड़ भी लिया जाएगा। वह जो फोटोग्राफर की प्लेट है, एक दफा काम में आ सकती है। उसमें फिर जो पकड़ गया, तो प्लेट खराब हो गई। अब उसका दुबारा उपयोग नहीं हो सकता। दर्पण है, उसका हजार बार उपयोग हो सकता है, क्योंकि दर्पण में प्रतिबिम्ब बनता है; लेकिन पकड़ता नहीं है। आप गए प्रतिबिम्ब चला गया, दर्पण फिर खाली हो गया।

आदमी अपने मन का दो तरह से उपयोग कर सकता है—फोटो प्लेट की तरह या दर्पण की तरह। जो आदमी फोटो प्लेट की तरह अपने मन का उपयोग करता है, वह सब चीजों को संग्रहीत करता जाता है, पकड़ता जाता है। जिन्दगी में जो भी होता है सब इकट्ठा करता जाता है—कूड़ा-करकट, गाली-गलौज, किसने क्या कहा, क्या नहीं कहा, क्या पढ़ा, क्या सुना; जो भी होता है, सब इकट्ठा करता जाता है। यही इकट्ठा बोझ भीतर आत्मा का बुढ़ापा हो जाता है। यह जो बोझ है, यही बुढ़ापा है आध्यात्मिक अर्थों में। शरीर हो सकता है आपका जवान भी हो, लेकिन यह जो बोझ है भीतर, यही आध्यात्मिक बुढ़ापा है। जिस दिन आपको यह समझ में आ जाता है कि मैं मन का एक और तरह का भी उपयोग कर सकता हूं—मिरर-लाइक, दर्पण की तरह। आप इस सारे बोझ को पटक देते हैं और खाली दर्पण हो जाते हैं।

यह जो खाली दर्पण हो जाना है, यह है बचपन आध्यात्मिक अर्थों में निर्बोझ, निर्भार। जीसस इसकी बात कर रहे हैं। अगर आप ऐसे बच्चे

हो सकते हैं तो परमात्मा को पाने के लिए और कुछ भी न करना पड़ेगा, इतना करना काफी है। लेकिन इसका मतलब यह हुआ कि बच्चे तो न पा सकेंगे, आपको एक दफे भटकना पड़ेगा। एक दफे बोझ इकट्ठा करना पड़ेगा। अनुभव से गुजरना पड़ेगा, संसार की पीड़ा झेलनी पड़ेगी और इस पीड़ा के झेलने के बाद अगर आप इस सबको छोड़ने को राजी हो जाएं, तो ही आपकी जिन्दगी में असली बचपन का जन्म होगा।

इसलिए हमने इस मुल्क में ब्राम्हणों को द्विज कहा है। सभी ब्राम्हण द्विज नहीं होते। सभी ब्राम्हण, ब्राम्हण भी नहीं होते। लेकिन हमारे कहने में बड़ा अर्थ है। द्विज का अर्थ है—ट्वाइस बार्न जिसका दुबारा जन्म हुआ। उसको ही द्विज कहा जाता है, जिसने इस बचपन को पा लिया—जिसका दुबारा जन्म हो गया—जो फिर से ऐसे पैदा हो गया जैसे गर्भ से ताजा आ रहा हो—कुआंरा, अछूता, जगत में जिसने रहकर भी कुछ पकड़ा नहीं है।

कबीर ने कहा है—ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया। कहा कि बहुत जतन से ओढ़ी तेरी चादर और फिर जैसी थी वैसी रख दी, जरा भी दाग नहीं लगने दिया। यह बचपन का मतलब है। जिन्दगी में जिए लेकिन इस जिन्दगी की काल कोठरी में कोई कालख न लगी या लगी भी तो उसे पोंछने की क्षमता जुटा ली। और जब वापस निकले इस कोठरी के बाहर तो वैसे शुभ्र थे जैसे इस कोठरी में कभी गए ही न हों।

जीवन के अनुभव से गुजरना तो जरूरी है, अन्यथा जीवन का कोई उपयोग ही नहीं रह जाता। इतना ही उपयोग है। ध्यान रहे, यहां जो भी दुख-सुख घटित होता है, उसका इतना ही उपयोग है कि आप इस बोझ को समझ समझ कर एक दिन इसके पार उठ सकें और जिस दिन आप पार उठ जाते हैं उसी दिन दुख-सुख बन्द हो जाते हैं और आनन्द की वर्षा शुरू हो जाती है।

पूछा है, फिर क्या करना जरूरी है ? कुछ भी करना जरूरी नहीं है। इतना अगर कर लिया कि जिन्दगी के कचरे को हटा दिया मन से और खाली कर लिया मन और दर्पण की तरह शांत हो गए, तो सब हो गया। परमात्मा तत्क्षण दिखाई पड़ जाएगा। वह भीतर मौजूद ही है। हम इतने भरे हैं, उस भरे के कारण वह दिखाई नहीं पड़ता। वह निकट ही मौजूद है, लेकिन

हमारी आंखों में इतने कंकड़-पत्थर पड़े हैं कि वह दिखाई नहीं पड़ता। बचपन की आंख मिल जाय ताजी, कुआंरी, वह अभी और यहीं उपलब्ध हो जाय।

धर्म और विज्ञान : जीवंत दृष्टि

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि स्वीडन के एक वैज्ञानिक डा० जैक्सन ने आत्मा को तौलने संबंध में कुछ खोज की है और कहा है, आत्मा का वजन इक्कीस ग्राम है। अगर आत्मा तोली जा सकती है, तो फिर उसे पकड़ा भी जा सकता है; और अगर आत्मा को पकड़ सकते हैं, तो फिर उसे उपयोग में भी ला सकते हैं। क्या आत्मा की तौल हो सकती है?

डा० जैक्सन की खोज मूल्यवान है, इसलिए नहीं कि उन्होंने आत्मा तौल ली है, जिसे उन्होंने तौला है, उसे वे आत्मा समझ रहे हैं। लेकिन उनकी तौल मूल्यवान है। आदमी सैकड़ों वर्षों से कोशिश करता रहा है कि जब मृत्यु घटित होती है, तो शरीर से कोई चीज बाहर जाती है या नहीं जाती? और बहुत प्रयोग किए गए हैं।

तीन हजार साल पहले भी आदमी को इजिप्त के फैरारोह ने कांच की एक पेटी में बन्द करके रखा मरते वक्त। क्योंकि अगर आत्मा जैसी कोई चीज बाहर जाती होगी, तो पेटी टूट जाएगी, कांच फूट जाएगा, कोई चीज बाहर निकलेगी। लेकिन कोई चीज बाहर नहीं निकलती। स्वभावतः दो ही अर्थ होते हैं। या तो यह अर्थ होता है कि आत्मा को बाहर निकलने के लिए कांच की कोई बाधा नहीं है, जैसे कि सूरज की किरण निकल जाती है कांच के बाहर और कांच नहीं टूटता, या तो यह अर्थ होता है; या तो यह अर्थ होता है कि कोई चीज बाहर नहीं निकलती।

फैरारोह ने तो यही समझा कि कोई चीज बाहर नहीं निकली; क्योंकि कोई चीज बाहर निकलती तो कांच टूटता। समझो कि कोई आत्मा नहीं है। फिर और भी बहुत प्रयोग हुए। रूस में भी बहुत प्रयोग हुए कि आदमी मरता है, तो उसके शरीर में कोई भी अन्तर पड़ता हो तो हम सोचें कि कोई चीज बाहर गई। लेकिन अब तक कोई अन्तर का अनुभव नहीं हो सका था।

जैक्सन की खोज मूल्यवान है कि उसने कम से कम इतना तो सिद्ध किया कि कुछ अन्तर पड़ता है, इतनी बात तय हुई कि आदमी जब मरता है तो अन्तर पड़ता है। मृत्यु और जीवन के बीच थोड़ा-सा फासला है, इक्कीस ग्राम का ही सही, अन्तर पड़ जाता है। अब यह जो इक्कीस ग्राम का अंतर पड़ता है, स्वभावतः जैक्सन वैज्ञानिक है, वह सोचता है कि यही आत्मा का वजन होना चाहिए, क्योंकि वैज्ञानिक सोच ही नहीं सकता कि बिना वजन के भी कोई चीज हो सकती है।

वजन पदार्थवादी मन की पकड़ है। बिना वजन के कोई चीज कैसे हो सकती है? वैज्ञानिक तो सूरज की किरणों में भी वजन खोज लिए हैं। वजन है, बहुत थोड़ा है। पांच वर्ग मील के घेरे में जितनी सूरज की किरणें पड़ती हैं, उनमें कोई एक छटाक वजन है। इसलिए एक किरण आप पर पड़ती है, तो आपको वजन नहीं मालूम पड़ता; क्योंकि पांच वर्गमील में जितनी किरणें पड़ें दोपहर में, उनमें एक छटाक वजन होता है।

लेकिन वैज्ञानिक तो तौलकर चलता है। मेजरेबिल, कुछ भी हो जो तौला जा सके, तो ही उसकी समझ गहरी होती है। एक बात अच्छी है कि जैक्सन ने पहली दफा मनुष्य के इतिहास में तौल के आधार पर ही तय किया कि जीवन और मृत्यु में थोड़ा फर्क है। कोई चीज कम हो जाती है। स्वभावतः वह सोचता है कि आत्मा इक्कीस ग्राम वजन की होनी चाहिए।

अगर आत्मा का कोई वजन है, तो वह आत्मा ही नहीं रह जाती, पहली बात। क्योंकि आत्मा और पदार्थ में हम इतना ही फर्क करते हैं कि जो मापा जा सके वह पदार्थ है। अंग्रेजी में शब्द है—मैटर, वह मेजर से ही बना हुआ शब्द है—जो तौला जा सके, मापा जा सके। हम माया कहते हैं, माया शब्द भी माप से ही बना हुआ शब्द है जो तौली जा सके, नापी जा सके, मेजरेबिल—माप्य हो। तो पदार्थ हम कहते हैं उसे—जो मापा जा सके, तौला जा सके। और आत्मा हम उसे कहते हैं—जो न तौली जा सके, न मापी जा सके। अगर आत्मा भी नापी जा सकती है, तो वह भी पदार्थ का एक रूप है।

और अगर किसी दिन विज्ञान ने यह खोज लिया कि पदार्थ भी मापा नहीं जा सकता, तो हमें कहना पड़ेगा कि वह भी आत्मा का विस्तार है।

यह जो इक्कीस ग्राम की कमी हुई है, यह आत्मा की कमी नहीं है, प्राणवायु की कमी है। आदमी जैसे ही मरता है, उसके शरीर के भीतर जितनी प्राणवायु थी, वह बाहर हो जाती है। और आपके भीतर काफी प्राणवायु की जरूरत है, जिसके बिना आप जी नहीं सकते। आक्सीजन की जरूरत है भीतर, जो प्रतिपल जलती है और आपको जीवित रखती है। सब जीवन एक तरह की जलन, एक तरह की आग है। सब जीवन आक्सीजन का जलना है। चाहे दिया जलता हो, तो भी आक्सीजन जलती है। और आप चाहे जीते हों तो भी आक्सीजन जलती है। तो एक तूफान आ जाए और दीया जलता हो, तो आप तूफान से बचाने के लिए एक बर्तन दिए पर ढांक दें, तो हो सकता है तूफान से दिया न बुझता, लेकिन आपके बर्तन ढांकने से दिया बुझ जाएगा। क्योंकि बर्तन ढांकते ही उसके भीतर जितनी आक्सीजन है, उतनी देर जल पाएगा, आक्सीजन के खत्म होते ही बुझ जाएगा।

आदमी भी एक दीया है। आक्सीजन भीतर प्रतिपल जल रही है। आपका पूरा शरीर एक फैक्टरी है, जो आक्सीजन को जलाने का काम कर रही है, जिससे आप जी रहे हैं। तो जैसे ही आदमी मरता है भीतर की सारी प्राणवायु व्यर्थ हो जाती है, बाहर हो जाती है। उसको जो पकड़ने वाला भीतर मौजूद था, वह हट जाता है, वह छूट जाती है। उस प्राणवायु का वजन इक्कीस ग्राम है। लेकिन विज्ञान को वक्त लगेगा अभी कि प्राणवायु का वजन माप के वह तय करे।

और अगर जैक्सन को पता चल जाय कि यह प्राणवायु का नाम है, तो सिद्ध हो गया कि आत्मा नहीं है, प्राणवायु ही निकल जाती है। इससे कुछ सिद्ध नहीं होता, क्योंकि आत्मा को वैज्ञानिक कभी भी न पकड़ पाएंगे। और जिस दिन पकड़ लेंगे, उस दिन आप समझें कि आत्मा नहीं है।

इसलिए विज्ञान से आशा मत रखिए कि वे कभी आत्मा को पकड़ लेंगे। और वैज्ञानिकों से सिद्ध हो जाएगा कि आत्मा है। जिस दिन सिद्ध हो जाएगा उस दिन आप समझना कि महावीर, बुद्ध, कृष्ण सब गलत थे। जिस दिन विज्ञान कह देगा आत्मा है, उस दिन समझना कि आपके सब अनुभवी नासमझ थे, भूल में पड़ गए। क्योंकि विज्ञान के पकड़ने का ढंग ऐसा है कि वह सिर्फ पदार्थ को ही पकड़ सकता है। वह विज्ञान की जो

पकड़ने की व्यवस्था है, वह मैथाडालाजी है, उसकी जो विधि है—वह पदार्थ को ही पकड़ सकती है, वह आत्मा को नहीं पकड़ सकती।

पदार्थ वह है, जिसे हम विषय की तरह, आब्जेक्ट की तरह देख सकते हैं। और आत्मा वह है, जो देखती है। विज्ञान देखने वाले को नहीं पकड़ सकता, जो भी पकड़ेगा वह दृश्य होगा। जो भी पकड़ में आ जाएगा, वह देखने वाला नहीं है, वह जो दिखाई पड़ रहा है, वही है। दृष्टा विज्ञान की पकड़ में नहीं आएगा। और धर्म और विज्ञान का यही फासला है। अगर विज्ञान आत्मा को पकड़ ले तो धर्म की फिर कोई भी जरूरत नहीं है। और अगर धर्म पदार्थ को पकड़ ले तो विज्ञान की फिर कोई भी जरूरत नहीं है। हालांकि दोनों तरह के मानने वाले पागल हैं। कुछ पागल हैं, जो समझते हैं कि धर्म काफी है, विज्ञान की कोई जरूरत नहीं है। वे उतने ही गलत हैं जितने कि कुछ वैज्ञानिक समझते हैं कि विज्ञान काफी है और धर्म की कोई जरूरत नहीं है।

विज्ञान पदार्थ की पकड़ है, पदार्थ की खोज है। धर्म आत्मा की खोज है, अपदार्थ की, 'नान-मैटर' की खोज है। ये दोनों खोज अलग हैं। इन दोनों खोज के आयाम अलग हैं। इन दोनों खोज की विधियां अलग हैं। अगर विज्ञान की खोज करनी है तो प्रयोगशाला में जाओ। और अगर धर्म की खोज करनी है तो अपने भीतर जाओ। अगर विज्ञान को खोज करनी है तो पदार्थ के साथ कुछ करो। अगर धर्म की खोज करनी है तो अपने चैतन्य के साथ कुछ करो। तो इस चैतन्य को न तो टेस्ट ट्यूब में रखा जा सकता है, न काटा-पीटा जा सकता है सर्जन की टेबल पर, कोई उपाय नहीं है। इसका तो एक ही उपाय है कि अगर आप अपने को सब तरफ से शान्त करके भीतर खड़े हो जाएं जागकर, तो इसका अनुभव कर सकते हैं। यह अनुभव निजी और वैयक्तिक है।

एक मित्र ने यह सवाल भी पूछा हैं कि धर्म और विज्ञान में क्या फर्क है? यही फर्क है। विज्ञान है—परंपरा समूह की। धर्म है—निजी अनुभव व्यक्ति का। विज्ञान प्रमाण दे सकता है, धर्म प्रमाण नहीं दे सकता। धर्म केवल अनुभव दे सकता है, प्रमाण नहीं। विज्ञान कह सकता है, सौ डिग्री पर पानी गर्म होता है, हजार लोगों के सामने पानी गर्म करके बताया जा सकता है, सौ डिग्री पर पानी गर्म हो जाएगा, प्रमाण हो गया। धर्म जिन

बातों की चर्चा करता है, वह किसी के सामने भी प्रकट करके नहीं बताई जा सकती। जब तक कि वह दूसरा आदमी अपने भीतर जाने को राजी न हो; और वह भी भीतर चला जाय, तो किसी दिन दूसरे के सामने प्रमाण नहीं दे सकेगा। धर्म के पास कोई प्रमाण नहीं है, सिर्फ अनुभव है। विज्ञान के पास प्रमाण है, अनुभव कुछ भी नहीं।

तो अगर आपको प्रमाण इकट्ठे करने हों, तर्क इकट्ठे करने हों, तो विज्ञान उचित है। और अगर आपको जीवन का अनुभव पाना हो, जीवन के रहस्य में उतरना हो तो धर्म की जरूरत है। और धर्म और विज्ञान पृथ्वी पर सदा बने रहेंगे, क्योंकि उनके आयाम अलग हैं—उनकी दिशाएं अलग हैं। जैसे आंख देखती है और कान सुनता है। अगर आंख सुनने की कोशिश करे तो पागल हो जाएगी। और अगर कान देखने की कोशिश करे तो पागल हो जाएगा। उनके आयाम अलग हैं, उनके डायमेन्शन अलग हैं।

विज्ञान और धर्म का क्षेत्र ही अलग है। वे कहीं एक दूसरे को 'ओवर-लैप' नहीं करते, एक दूसरे के ऊपर नहीं आते—अलग-अलग हैं। इसलिए कोई झगड़ा भी नहीं, कोई कलह भी नहीं है। न तो विज्ञान धर्म को गलत सिद्ध कर सकता है और न सही। और न धर्म विज्ञान को गलत सिद्ध कर सकता है और न सही। उनका कोई संबंध ही नहीं है। उनके यात्रा-पथ अलग हैं, उनका कहीं मिलना नहीं होता।

इसलिए दोनों की भाषा को अलग रखने की कोशिश करें, तो आपके अपने जीवन में सुविधा बनेगी। जहां पदार्थ की बात सोचते हों वहां विज्ञान की सुनें और जहां चेतना की बात सोचते हों, वहां विज्ञान की बिल्कुल मत सुनें—वहां धर्म की सुनें। और इन दोनों को मिलाएं मत। इन दोनों को आपस में गड्ड-मड्ड मत करें; अन्यथा आपका जीवन एक कन्फ्यूजन हो जाएगा।

तो डा० जैक्सन जो कहते हैं, वे ठीक कहते हैं। उन्होंने एक कीमती बात खोजी। लेकिन वह आत्मा का वजन नहीं है। वह ज्यादा से ज्यादा प्राणवायु का वजन हो सकता है, आत्मा का कोई वजन नहीं है।

प्रेम है तप

एक मित्र ने पूछा है, गीता जैसे अमृत-तुल्य परम रहस्य उपदेश को भगवान ने अर्जुन को ही क्यों दिया? अर्जुन में ऐसी कौन-सी योग्यता थी कि वह इसके लिए पात्र था? इसका ऐसा कौन-सा श्रेष्ठ तप था?

कुछ बातें ख्याल में लेने जैसी हैं। वे गीता के समझने में उपयोगी होंगी। स्वयं को समझने में भी। अर्जुन का कोई भी तप नहीं है। तप की भाषा ही गलत है। अर्जुन का प्रेम है, तप नहीं है। तप की भाषा अलग है। तप की भाषा है, संकल्प की भाषा। एक आदमी कहता है कि मैं पाकर रहूंगा, अपनी सारी ताकत लगा दूंगा। जो भी त्याग करना है, करूंगा; जो भी खोना है, खोऊंगा; जो भी श्रम करना है, करूंगा—अपनी सारी ताकत लगा दूंगा।

आपको ख्याल है, हिन्दुस्तान में दो संस्कृतियां हैं। एक तो है—आर्य संस्कृति; और दूसरी है—श्रमण संस्कृति। श्रमण संस्कृति में जैन और बौद्ध हैं, आर्य संस्कृति में बाकी शेष लोग हैं। कभी आपने समझा, इस श्रमण शब्द का क्या अर्थ होता है? श्रमण का अर्थ है—श्रम करके ही पाएंगे। चेष्टा से मिलेगा परमात्मा, तप से, साधना से, योग से; मुफ्त नहीं लेंगे। प्रार्थना नहीं करेंगे, प्रेम में नहीं पाएंगे; अपना श्रम करेंगे और पा लेंगे। एक सौदा है—जिसमें अपने को दांव पर लगा देंगे; जो भी जरूरी होगा करेंगे; भीख नहीं मांगेंगे, भिक्षा नहीं लेंगे; कोई अनुग्रह नहीं स्वीकार करेंगे।

तो महावीर परम श्रमण हैं। वे सब दांव पर लगा देते हैं। और घोर संघर्ष, घोर तपश्चर्या करते हैं, महातपस्वी कहा है उन्हें लोगों ने। बारह वर्ष तक निरन्तर खड़े रहते हैं—धूप में, छांव में, वर्षा में, सर्दी में। बारह वर्ष में कहते हैं कि सिर्फ तीन सौ साठ दिन उन्होंने भोजन किया। मतलब ग्यारह वर्ष भूखे, बारह वर्ष में। कभी एक दिन भोजन किया तो महीने भर भोजन नहीं किया, फिर दो महीने भोजन नहीं किया। सब तरह अपने को तपाया और तप के पाया।

यह समर्पण के विपरीत मार्ग है, संकल्प का। इसमें अहंकार को तपाना है और इसमें अहंकार को पूरी तरह दांव पर लगाना है। इसमें अहंकार को पहिले ही छोड़ना नहीं है, अहंकार को शुद्ध करना है। और शुद्ध करने की प्रक्रिया का नाम तप है—अहंकार को शुद्ध करने की प्रक्रिया का

नाम तप है। जैसे सोने को हम आग में डाल देते हैं। सोना तप जाता है, जो भी कचरा होता है, जल जाता है। फिर निखालिस सोना बचता है।

महावीर कहते हैं, जब निखालिस अस्मिता बचती है तपने के बाद, सिर्फ 'मैं' का भाव बचता है, शुद्ध 'मैं' का भाव, तपते, तपते, तपते, तब आत्मा परमात्मा हो जाती है। वह शुद्धतम अहंकार ही आत्मा है। यह एक मार्ग है। इसमें सोने को तपाना जरूरी है।

एक दूसरा मार्ग है, जो समर्पण का है। जिसमें तपाने वगैरह की चिन्ता नहीं है। सोने को, कचरे को, सबको परमात्मा के चरणों में डाल देना है। सोने को कचरे से अलग नहीं करना है। कचरे सहित सोने को भी परमात्मा के चरणों में डाल देना है और कह देना है, जो तेरी मरजी, बस! समर्पण का अर्थ है—अपने को छोड़ देना है किसी के हाथों में। अब वह जो चाहे। यह छोड़ना ही घटना बन जाती है। यह प्रेम का मार्ग है। आप तभी छोड़ सकते हैं जब प्रेम हो।

संकल्प में प्रेम की कोई जरूरत नहीं है। समर्पण में प्रेम की जरूरत है। अर्जुन का प्रेम है कृष्ण से गहन। वही उसकी पात्रता है। वहां प्रेम ही पात्रता है। उसका प्रेम अतिशय है। उस प्रेम में वह इस सीमा तक तैयार है कि अपने को सब भांति छोड़ सका है। क्या घटना घटती है जब कोई अपने को छोड़ देता है? हमारी जिन्दगी का कष्ट क्या है, कि हम अपने को पकड़े हुए हैं—हम अपने को सम्हाले हुए हैं। यही हमारे ऊपर तनाव है, यही हमारे मन का खिंचाव है कि मैं अपने को सम्हाले हुए हूं, पकड़े हुए हूं।

आपको पता है चिकित्सक कहते हैं कि अगर कोई आदमी बीमार हो और उसे नींद न आए तो बीमारी ठीक नहीं हो पाती, कोई भी बीमारी हो। बीमारी के ठीक होने के लिए नींद आना जरूरी है। क्यों? दवा से ठीक करें। लेकिन चिकित्सक पहले नींद की फिक्र करेगा, नींद की दवा देगा कि पहले नींद आ जाय। क्यों? क्योंकि आप बीमार हैं और जब तक आप जग रहे हैं, आप बीमारी को जोर से पकड़े रहते हैं, उसको छोड़ते नहीं हैं। कांशस, चेतन, जकड़ बनी रहती है बीमारी की, आपकी छाती के ऊपर मन के ऊपर, मैं बीमार हूं, मैं बीमार हूं। नींद में गिरते ही सब आपके हाथ से छूट जाता है। और जैसे ही छूटता है वैसे ही प्रकृति काम शुरू कर देती है। सुबह तक आप बेहतर हालत में उठते हैं। रोज सांझ आप थके सोते

हैं। क्यों थकते हैं आप? थकते हैं इसलिए कि आपको लग रहा है कि मैं कर रहा हूं—मैं कर रहा हूं, तो थक जाते हैं। रात नींद में खो जाते हैं, सुबह ताजे हो जाते हैं; क्योंकि कम से कम रात आपको कुछ नहीं करना पड़ा, छोड़ दिया, जो हुआ।

नींद में आप गिर जाते हैं उस स्त्रोत में, जहां आपके श्रम की कोई भी जरूरत नहीं है। प्रेम जागते हुए नींद में गिर जाना है। थोड़ा कठिन लगेगा समझना। प्रेम का मतलब है होशपूर्वक, जागते हुए किसी में गिर जाना; और छोड़ देना अपने को कि अब मैं नहीं हूं, तू है। प्रेम एक तरह की नींद है जागृत। इसलिए प्रेम समाधि बन जाती है। कोई ध्यान करके पहुंचता है, तब बड़ा श्रम करना पड़ता है। कोई प्रेम करके पहुंच जाता है, तब श्रम नहीं करना पड़ता। लगेगा कि बहुत आसान है, लेकिन इतना आसान नहीं है। शायद ध्यान ही ज्यादा आसान है। अपने हाथ में है, कुछ कर सकते हैं। प्रेम आपके हाथ में कहां है, हो जाय, हो जाय; न हो जाय, न हो जाय।

लेकिन अगर छोड़ने की कला धीरे-धीरे आ जाय। हमें पता नहीं कि जिन्दगी में जो भी महत्वपूर्ण है, वह छोड़ने की कला से मिलता है। कुछ लोगों को नींद नहीं आती, इनसोमेनिया, अनिद्रा की बीमारी हो जाती है। हजार उपाय करने पड़ते हैं, फिर भी नींद नहीं आती। जितना वे उपाय करते हैं उतनी ही नींद मुश्किल हो जाती है। उन्हें एक सूत्र का पता नहीं है कि नींद चेष्टा से नहीं आ सकती। आपसे अगर कोई कहे आपको नींद आती है? यहां काफी लोग होंगे जिनको नहीं आती होगी। और अगर आपको अब भी नींद आती है, तो आप प्रीमिटिव, थोड़े असभ्य हैं। सभ्य आदमी तो इतना बेचैन हो जाता है कि नींद-वींद; उसकी बुद्धि चलती रहती है। वह लाख कोशिश करता है सोने की, बुद्धि चलती चली जाती है।

लोग चेष्टा करते हैं। आज अमरीका में करीब-करीब पचास से साठ प्रतिशत लोग बिना सामक दवा के नहीं सो सकते। और अमरीकी मनस्-वैज्ञानिकों का कहना है कि इस सदी के पूरे होते-होते ऐसा आदमी खोजना मुश्किल हो जाएगा अमरीका में, जो बिना दवा के सो जाए। वह अनूठी चीज हो जाएगा कि कोई आदमी सिर रख लेता है तकिए पर और सो

जाता है। ऐसे लोगों की तकलीफ है कि कैसे सोएं ? तो कोई कहता है कि गिनती करो—एक से सौ तक, सौ से वापिस एक तक। कोई कहता है, मन्त्र पढ़ो। कोई कहता है, भगवत् नाम जपो। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है। लोग करते भी हैं। और जितना करते हैं उतना ही पाते हैं कि नींद और भाग गई; क्योंकि नींद के आने का एक ही सूत्र है कि आप कुछ मत करें—आप चुपचाप पड़ जाएं ताकि नींद आ सके। जब आप नहीं करते हैं कुछ, तब नींद आती है। नींद के लाने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। कुछ भी करना बाधा है। नींद उतरती है आपके ऊपर जब आप कुछ भी नहीं करते। अगर आपको नींद न आती हो तो मजे से पड़े रहें। और नींद न आने का मजा लेते रहें। नहीं आ रहो, मजा है, नींद आ जाएगी। आप नींद के लिए सीधा कुछ मत करें। सीधो चेष्टा बाधा है।

फ्रांस के एक बहुत बड़े विचारक गहन अनुभवी कुवे ने एक सूत्र विकसित किया है, वह सूत्र है—'ला आफ रिवर्स इफेक्ट' विपरीत परिणाम का नियम। कुछ चीजें हैं कि जिनमें आप अगर प्रयास करें तो उलटा परिणाम हाथ आता है। नींद वैसी ही चीज है, आपको उल्टा परिणाम हाथ आएगा। अगर आप लाने की कोशिश करेंगे, नींद नहीं आएगी। अगर आप सब छोड़ देंगे, थक जाएंगे कोशिश कर-करके छोड़ देंगे; नींद आ जाएगी। नींद गहन चीज है, आपके हाथ में नहीं है।

परमात्मा और भी गहन है, नींद तो प्रकृति है। परमात्मा और भी गहन है। वह आपके हाथ में बिलकुल नहीं है। यह समर्पण के सूत्र के कहने वालों का नियम है कि आप परमात्मा को पकड़ने, खोजने की चेष्टा मत करें। आप सिर्फ अपने को उसमें छोड़ दें, जैसे नींद में छोड़ दें, डूब जाएं—कह दें कि तू है और मैं नहीं हूं। अब तुझे जो करना हो, उसके लिए मैं राजी हूं। नियति की बात इसमें सहयोगी होगी। केवल नियति को मानने वाला ही पूरा समर्पण कर सकता है। जो मानता है कि मैं कुछ कर सकता हूं, वह समर्पण नहीं कर सकता।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि संकल्प से नहीं पहुंचा जा सकता। संकल्प से लोग पहुंचे हैं। संकल्प से पहुंचा जा सकता है। मगर गीता का वह मार्ग नहीं है। और अर्जुन की वह पात्रता नहीं है। इसलिए अर्जुन ने कोई तप नहीं किया है। अगर आप प्रेम को ही तप कहें तब बात दूसरी है। प्रेम भी

तप है। क्योंकि जो करता है, वह प्रेम में वैसे ही जलता है, जैसे कोई आग में जलता हो। और शायद प्रेम की आग और भी गहन आग है। और शायद साधारण आग ऊपर-ऊपर जलती होगी, प्रेम की आग भीतर तक राख कर जाती है।

अगर प्रेम को भी तप कहें तब मुझे कोई अड़चन नहीं है। लेकिन तब भाषा को साफ समझ लेना जरूरी है। तप उनका मार्ग है—जो कहते हैं, हम कोशिश करके पा लेंगे। प्रेम उनका मार्ग है—जो कहते हैं, हमारी कोशिश से क्या होगा, हम असहाय हैं, तुम उठा लो। इसलिए तप के मार्ग पर ईश्वर को मानने की भी जरूरत नहीं है। महावीर ने ईश्वर को नहीं माना। बुद्ध ने ईश्वर को नहीं माना। प्राचीन योग सूत्रों ने कहा है कि मानो तो ईश्वर को ठीक, न मानो तो भी चलेगा। योग साधो घटना घट जाएगी। ईश्वर को मानने न मानने की कोई जरूरत नहीं है।

लेकिन प्रेम के मार्ग पर तो ईश्वर को मानकर ही चलना होगा, नहीं तो समर्पण कैसे करेंगे ? किसको समर्पण करिएगा ? ईश्वर यदि न हो तो अगर आप समर्पण कर सकते हैं, तो आप पा लेंगे परम अनुभूति, इसलिए प्रेम का मार्ग मानकर चलता है कि ईश्वर है परम केन्द्र जीवन का, अस्तित्व का। उसमें हम अपने को छोड़ देंगे। हम अपने तरफ से अपने को नहीं ढोते। प्रेम के पथिक का कहना है कि सब तरह के प्रयास ऐसे हैं, जैसे कोई आदमी अपने जूते के फीते पकड़कर खुद को उठाने की कोशिश करे। यह नहीं हो सकता, छोड़ दो !

कृष्ण के सामने अर्जुन की एक ही योग्यता है कि वह छोड़ सका—पूरा का पूरा। अगर आप भी छोड़ सकते हैं, तो जो अर्जुन को घटा, वह आपको भी घट जाय। नहीं छोड़ सकते हैं तो बेहतर है फिर अर्जुन के रास्ते पर न चलें। फिर महावीर का रास्ता है, पातंजलि का रास्ता है—उस पर चलें। फिर चेष्टा करें, श्रम करें।

हम ऐसे बेईमान हैं कि हम दोनों के बीच समझौता खोज लेते हैं। चेष्टा भी नहीं छोड़ते और चाहते हैं मुफ्त में मिल भी जाय। कहते हैं हम अपने को छोड़ेंगे भी नहीं और वैसी ही घटना घट जाय, जैसी अर्जुन को घटी। पर अर्जुन को घटी इसलिए कि वह छोड़ सका।

आपको पता है, आप अगर जिन्दा आदमी हों और तैरना नहीं जानते तो नदी में डूबकर मर जायेंगे। अगर आपको नदी में फेंक दें और आप तैरना न जानते हों तो डूब के मर जाएंगे लेकिन क्या आपने एक बात कभी देखी है कि जब आप मर जाएंगे तब आपकी लाश ऊपर तैरने लगेगी, उसको नदी न डुबा सकेगी। बड़े मजे की बात है। जिन्दा आदमी डूब मरा, मुर्दे को नदी नहीं डुबा पा रही। मुर्दे की क्या खूबी है? मुर्दे की पात्रता क्या है? और आपकी क्या कमी थी? जिन्दा थे तब डूब मरे और अब मरकर मजे से ऊपर तैर रहे हैं। और नदी अब कुछ भी नहीं कर सकती। मुर्दे की एक ही पात्रता है, कि अब उसने नदी पर अपने को छोड़ दिया उसकी और कोई पात्रता नहीं है। अब वह लड़ नहीं सकता, यही उसको योग्यता है। आप लड़ रहे थे, वही आपकी अयोग्यता थी। नदी से जो लड़ेगा वह डूबेगा। जिसको हम तैरने वाला कहते हैं, वह क्या सीख लेता है, आपको पता है? तैरना कोई कला थोड़े ही है। वह यही सीख लेता है कि नदी में मुर्दा कैसे हुआ जाय, बस! तैरना कोई कला है! तैरने में करते क्या हैं आप? हाथ-पैर थोड़े तड़फड़ा लेते हैं। वह भी जो सिक्खड़ है, वह तड़फड़ाता है। जो जानता है, वह हाथ-पैर छोड़कर भी नदी पर तैर लेता है। वह मुर्दा होना सीख गया। अब वह नदी से लड़ता नहीं है। वह नदी के खिलाफ कोई कोशिश नहीं करता। वह नदी को कहता है कि तू भी ठीक मैं तेरे साथ राजी हूं। वह तैरने लगता है।

नदी में मुर्दे की भांति ही जाएं तो आप अर्जुन हो जाएंगे। फिर कोई आपको डुबा न सकेगा। अर्जुन की योग्यता थी कि वह अपने को छोड़ सका। वही भक्त की योग्यता है।

प्रार्थना में क्षुद्र की मांग बाधा है

एक मित्र ने पूछा है कि शायद मैं ठीक से समझ नहीं पाया। आप कहते हैं, प्रार्थना में मांगें मत—कोई वासना, आकांक्षा न करें। क्या आपका यह मतलब है कि प्रार्थना में कुछ मांगा जाय तो वह पूरा नहीं होगा?

नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है। वह तो पूरा हो जाएगा, प्रार्थना बेकार हो जाएगी। आपने सस्ते में प्रार्थना बेच दी। जिससे परमात्मा मिल सकता था उससे आपने एक बेटा पा लिया, जिससे परमात्मा मिल सकता था उसमें आपने कोई नौकरी पा ली आपने या कुछ और पा लिया। मेरा

यह मतलब नहीं है कि प्रार्थना में अगर आप मांगेंगे तो पूरा नहीं होगा, पूरा हो जायगा यही खतरा है। क्योंकि तब आप प्रार्थना के साथ गलत संबंध जोड़ लेंगे और व्यक्ति की मांग प्रथम हो जायगी, पूरा हो जाएगा। पूरा इसलिये नहीं हो जायगा कि परमात्मा आपकी प्रार्थना पूरी करने में लगा है, इसलिए भी नहीं, क्योंकि आपकी क्षुद्र प्रार्थनाओं का क्या मूल्य है? प्रार्थना इसलिए पूरी हो जाती है कि प्रार्थना अगर आपने पूरे भाव से की है, तो आप ही उसके पूरे करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। अगर आपने प्रार्थना पूरे भाव से की है तो आपका मन सशक्त हो जाता है। अगर आपने प्रार्थना पूरे भाव से की है, तो आपके मन की शक्ति ही उस प्रार्थना के कार्य को पूरा करवा देती है। कोई आपकी प्रार्थना में आ नहीं रहा, आप अकेले हैं। वह मोनोलाग है, एकालाप है। उसमें कोई दूसरा उत्तर नहीं दे रहा है। लेकिन अगर आपने बलपूर्वक कोई प्रार्थना की है, तो उस प्रार्थना को बलपूर्वक करने में आप बलशाली हो गए। और वह जो बलशाली हो जाना है आपके मन का, वही सूक्ष्म शक्तियों को विकीर्णित कर देता है और घटना घट जाती है। अगर सन्देह से की है तो घटना नहीं घटती। क्योंकि सन्देह अगर साथ मौजूद है, तो आप बलशाली हो ही नहीं पाते।

लेकिन प्रार्थना पूरा कर देगी, आप जो भी मांगेंगे पूरा हो जाएगा—यह मेरा मतलब नहीं था। मेरा मतलब यह था कि जब आप मांगते हैं तब यह प्रार्थना नहीं रही, मांग ही हो गई। प्रार्थना तो वह शुद्ध क्षण है जब आपका और विराट का मिलन होता है। वहां छोटी-छोटी मांगें बीच में खड़ी न करना। उन क्षुद्र बातों के कारण आड़ पड़ जाएगी। और छोटी-छोटी चीजें इतनी बड़ी आड़ बन जाती हैं जिसका हिसाब नहीं। कभी ख्याल किया, आंख में एक छोटा-सा तिनका चला जाय, और सामने हिमालय भी खड़ा हो तो फिर हिमालय भी दिखाई नहीं पड़ता, आंख बंद हो जाती है। आंख ही बन्द हो एक छोटा-सा तिनका पूरे हिमालय को ढंक देता है। आंख ही बन्द हो जाती है।

छोटी-सी मांग आंख को बन्द कर देती है। फिर परमात्मा सामने भी खड़ा हो तो दिखाई नहीं पड़ता। परमात्मा के पास मांगते हुए मत जाना। इसका यह मतलब नहीं है कि आपके मन की ताकत नहीं है, आपके मन की बड़ी ताकत है। और अगर आप पूरे भरोसे से कोई बात को तय कर लें, वह हो जाएगी। उसको कोई परमात्मा बीच में आकर पूरा करने नहीं आता,

आप ही पूरा कर लेते हैं। इतने के लिए तो आप भी काफी परमात्मा हैं। यह जो मन की क्षमताएं हैं, अगर आप कोई विचार बहुत गहरे मन में ले लेते हैं, तो आपका मन उस विचार को पूरा करने में संलग्न हो जाता है। और आपके पास न मालूम कितनी सूक्ष्म शक्तियां हैं, जिनका आपको पता नहीं है, जिनका आपको ख्याल नहीं है।

समझें, आपको नौकरी नहीं मिल रही है। आप पच्चीस इन्टरव्यू दे आए और जहां भी जाते हैं वहीं से खाली हाथ लौट आते हैं। कभी आपने सोचा कि जब इंटरव्यू देकर खाली हाथ लौटते हैं, तो उसमें इंटरव्यू लेने वाले का तो थोड़ा हाथ है ही, आपका भी काफी हाथ है। ज्यादा आपका ही हाथ है। आप जिस ढंग से प्रवेश करते हैं उसके दफ्तर में, आपकी शक्ल-सूरत आपने जैसी बना रखी है, कुटी-पिटी, हारी हुई; भीतर से आप डरे हुए हैं और पहले ही से सोच रहे हैं कि नौकरी तो मिलनी नहीं है। ये वायब्रेशन्स आप लेकर उसके दफ्तर में प्रवेश करते हैं। वह आपकी तरफ देखते ही निगेटिव हो जाता है। आप उसको निगेटिव कर रहे हैं। आप उसको नकार से भर देते हैं। आपको देखते ही उसके मन में आकर्षण पैदा नहीं होता कि खींच ले आपको पास या आपके पास खिंच जाय। ऐसा लगता है कि कब आदमी यह बाहर निकले। और जैसे ही आप उसके चेहरे पर देखते हैं कि इसको लग रहा है कि कब यह आदमी निकले, आप और कंप जाते हैं, आप पक्का हो जाता है कि गई, यह नौकरी भी गई। यह आप ही कर रहे हैं।

अगर आप प्रार्थना कर सकें किसी मन्दिर में जाकर, चाहे वहां कोई देवता हो या न हो, यह सवाल बड़ा नहीं है। असली हो देवता, नकली हो, यह भी सवाल नहीं है। अगर आप किसी मन्दिर में जाकर प्रार्थना कर सकें, पूरे भरोसे के साथ, यह प्रार्थना किसी देवता को नहीं बदलेगी, आपको बदल देगी। आप उस मन्दिर से जब लौटेंगे अब भरोसा होगा, आत्म विश्वास होगा, पैरों में ताकत होगी, आंखों में रौनक होगी। और जब आप दफ्तर में प्रवेश करेंगे किसी नौकरी के, तो आपके भीतर एक 'यश-मूड' होगा, एक 'हां' का भाव होगा कि नौकरी मिलने वाली है, प्रार्थना पूरी होने वाली है। अब कोई रोक नहीं सकता, परमात्मा मेरे साथ है। यह जो आप भीतर प्रवेश कर रहे हैं, आपकी तरंगें अब दूसरी हैं, पॉजिटिव हैं, विधायक हैं। जो भी आदमी आपको देखेगा, वह खिंचेगा, आकर्षित होगा—आप मैग्नेट बन गए।

प्रार्थना ने किसी परमात्मा के विचार को नहीं बदला, प्रार्थना ने आपको बदल दिया। और आपकी प्रार्थनाएं परमात्मा के विचार को कैसे बदल पाएंगी? इसका तो मतलब यही हुआ कि जब तक आपने प्रार्थना नहीं की थी परमात्मा कुछ गलती में था। आपने सलाह दी तब उनको अक्ल आई। अब तक नौकरी नहीं दिलवा रहे हैं या तो इसका यह मतलब होता है, या इसका यह मतलब होता है कि रिश्वत की तलाश में था भगवान कि जब तक आप हाथ-पैर न जोड़ो, फूल-पत्ते न चढ़ाओ, नारियल न पटको, सिर न पटको उनके पैरों में तब तक वे राजी न होंगे। आपकी स्तुति की खोज थी, खुशामद, कोई रिश्वत। यह तो ब्लेक मेलिंग है। आदमी को नौकरी दिलवाना है तो पहले सिर पटकवाओ।

नहीं। न परमात्मा आपको रिश्वत की तलाश में है, न आपकी स्तुति की, न आपकी प्रार्थना की। लेकिन जो आप कर रहे हैं, वह उससे आप बदल रहे हैं। आप दूसरे आदमी होकर प्रवेश कर रहे हैं। यह जो आपका आकर्षण है—पॉजिटिव बिन्दु का, विधायक बिन्दु का—इसका परिणाम होगा, नौकरी मिल सकती है। और नौकरी मिल जाएगी, तो आपका एक भाव दृढ़ हो जाएगा कि प्रार्थना से मिली। अब आप और मजबूत हो जाएंगे, अब दुबारा किसी दूसरी जगह प्रार्थना करके पाएंगे, तो आपके पैरों की ताकत अलग होगी, आप हवा में उड़ेंगे। यह आत्मविश्वास काम करता है। प्रार्थना आत्म-विश्वास देती है। आत्मविश्वास आपकी शक्तियों को विधायक बना देता है। अविश्वास अपने को नकारात्मक बना देता है। तो यह मैंने नहीं कहा कि प्रार्थना करेंगे तो कोई मांग पूरी नहीं होगी। पूरी हो जाएगी यही खतरा है। पूरी न होती तो शायद आप कभी न कभी प्रार्थना में मांग बन्द कर देते। वह पूरी हो जाती है, तो मांग आदमी जारी रखता है। धन्यभागी हैं वे, जिनकी प्रार्थनाएं कभी पूरी नहीं होतीं। चूंकि तब उनको समझ में आ जाएगा कि प्रार्थना में मांग व्यर्थ है। तो शायद किसी दिन उस सार्थक प्रार्थना को कर सकें, जिसमें मांग नहीं होती, सिर्फ भाव होता है।

ठीक से समझ लें, प्रार्थना मांग नहीं दान है। अगर आप परमात्मा को देने गए हैं, तो प्रार्थना है, अगर उससे कुछ लेने गए हैं, तो प्रार्थना नहीं है।

अस्तित्व की पुकार का दर्शन

अब हम सूत्र को लें :

"इस प्रकार के मेरे इस विकराल रूप को देखकर तेरे को व्याकुलता न होवे और मूढ़ भाव भी न होवे और भयरहित, प्रीतियुक्त मन वाला तू उस ही मेरे शंख, चक्र, गदा, पद्म सहित चतुर्भुज रूप को फिर देख ।"

कृष्ण ने कहा कि मैं लौट आता हूं वापिस, साकार में; ताकि तुझे भय न होवे । तेरे मन को राहत मिले, सान्त्वना मिले; इसलिए मैं अपने उसी रूप में वापिस लौट आता हूं, जिसकी तू मांग कर रहा है ।

यहां एक बात समझ लेने जैसी जरूरी है, कि विराट का और व्यक्ति का सम्बन्ध मां और बेटे का सम्बन्ध है । कहता हूं—मां और बेटे का, बाप और बेटे का नहीं, सोचकर । पीछे आपसे बात करूंगा । विराट और व्यक्ति के बीच जो सम्बन्ध है, वह मां और बेटे का सम्बन्ध है; क्योंकि हम विराट से उत्पन्न होते हैं । उसकी ही लहरें हैं । उसकी ही तरंगें हैं । हम हैं । वही हममें खिला । वही हममें फूल-पत्ता बना । वही हमारा व्यक्तित्व है ।

तो हमारे और विराट के बीच जो सम्बन्ध है, वह वही होगा जो एक मां और बेटे के बीच है; क्योंकि मां के गर्भ में बेटा होता है—उसके अंग की भांति, उसके शरीर की भांति, कुछ भेद नहीं होता । मां मरेगी तो उसका बेटा मर जाएगा, और बेटा भीतर मर जाए तो मां की मौत घट सकती है । दोनों एक हैं । एक से ही जुड़े हैं । बेटा अपनी सांस भी नहीं लेता, मां से ही जीता है । मां का ही प्राण उसका प्राण है । मां के साथ एक है, जैसे लहर सागर के साथ एक है । फिर यह बेटा पैदा होगा । तो जैसे मां का ही एक हिस्सा बाहर गया । जैसे मां का ही एक अंग अनन्त की यात्रा पर निकला । यह कहीं भी रहे, कितना ही दूर रहे, मां से बहुत सूक्ष्म तन्तुओं से जुड़ा रहता है ।

अगर सच में ही मां और बेटे की घटना घटी हो । सच में इसलिए कहता हूं कि सभी के भीतर नहीं भी घटती, कुछ माताएं केवल जननी होती हैं, माताएं नहीं । कोई बहुत भाव से जन्म नहीं देतीं । एक जबरदस्ती थी, एक बोझ था, एक काम था, निपटा दिया । इन माताओं का बस चलेगा तो आज नहीं कल, जैसा आज वे बच्चे के पैदा होने के बाद नर्स को पालने के लिए रख लेती हैं । आज नहीं कल वे किसी नर्स को गर्भ के लिए भी रख

लेंगी । और पश्चिम में उपाय हो गये हैं अब, कि आपका बेटा किसी दूसरे के गर्भ में पैदा हो सकता है । तो जो सुविधा सम्पन्न हैं, वे अपने गर्भ में बड़ा नहीं करेंगी, वे किसी और के गर्भ में बड़ा करेंगी ।

मां का तो मतलब यह है कि इस बेटे में मैं जन्मी—इस बेटे में मेरा जीवन आगे फैला, जैसे वृक्ष की एक शाखा दूर आकाश में निकल जाय, बस ठीक मेरी एक शाखा आगे गई । जीवन इतना इकट्ठा मालूम पड़े जिस मां को भी, उसके बेटे के बीच हजारों मील के बीच भी सम्बन्ध होता है । इस पर बड़ा काम हुआ है । और अगर बेटा बीमार पड़ जाय, तो मां बेचैन हो जाती है । हजारों मील के फासले पर अगर बेटा मर जाय, तो मां को तत्क्षण आघात पहुंचता है ।

अभी रूस के कुछ वैज्ञानिक पशुओं के साथ प्रयोग कर रहे थे तो बहुत चकित हुए और पता चला कि पशुओं में मातृत्व शायद ज्यादा है मनुष्यों की बजाय । खरगोश पर वे प्रयोग कर रहे थे । तो खरगोश के बच्चों को रखा गया ऊपर और उनकी मां को ले गए नीचे समुद्र में—एक पनडुब्बी में । और उन्होंने बच्चों को ऊपर सताना शुरू किया, मां वहां बेचैन हो गई । उन्होंने सब यन्त्र लगा रखे थे, ताकि उसकी बेचैनी नापी जा सके कि कितनी परेशान है । और जब उन्होंने बच्चों को मार डाला, तो उसकी परेशानी का कोई अन्त नहीं कि वह बेहोश हो गई परेशानी में ।

यह प्रयोग कोई सौ बार किया । और हर बार अनुभव हुआ कि वह खरगोश और उसकी मां के बीच समय और स्थान का कोई फासला नहीं है । उनके भीतर कुछ अन्तरंग वार्ता चल रही है निरन्तर, कोई अन्तरंग संबंध चल रहा है, कोई ध्वनि तरंगें उन दोनों को जोड़े हुए है ।

मां और बेटे के बीच जैसा सम्बन्ध है, उससे भी गहन, उदाहरण के लिए कह रहा हूं मां और बेटे का, अस्तित्व और आपके बीच सम्बन्ध है । आप अस्तित्व के ही हिस्से हैं । अस्तित्व ही आपमें फैल गया है और दूर तक आप अस्तित्व हैं । इसका क्या अर्थ है ? इसका अर्थ यह है कि अस्तित्व आपको दुख नहीं देना चाहता । अस्तित्व आपको भयभीत भी नहीं करना चाहता । क्यों करना चाहेगा ? मां बेटे को क्यों दुख देना चाहेगी ? अस्तित्व आपको परेशान नहीं करना चाहता और अगर आप परेशान हैं, वह आप अपने ही कारण हैं । अगर भयभीत हैं तो अपने ही कारण होंगे । अगर दुखी

हैं तो अपने ही कारण होंगे। अस्तित्व आपको दुखी नहीं करना चाहता। जीवन तो आपको पूरे आनन्द का मौका, सुविधा, अवसर, सामर्थ्य सब देता है। आप ही कुछ गड़बड़ कर लेते हैं। आप ही बीच में खड़े हो जाते हैं और अस्तित्व और अपने बीच बाधा बन जाते हैं।

यह जो कृष्ण का कहना है कि मैं वापिस लौट आता हूं। यह इसका सूचक है, कि अस्तित्व से जो भी आप गहन भाव से प्रार्थना करेंगे, अस्तित्व से जो भी आप गहन भाव से कहेंगे, प्रेमपूर्वक अस्तित्व से जो भी आप निवेदन करेंगे; अस्तित्व बहरा नहीं है, अस्तित्व हृदयहीन नहीं है। यहीं विज्ञान और धर्म की समझ का भेद है। विज्ञान कहता है—अस्तित्व है हृदयहीन, हार्टलेस; कुछ भी करो, अस्तित्व तुम्हारी सुनने वाला नहीं है; कुछ भी करो, अस्तित्व के पास कान नहीं है कि तुम्हारी सुने; कुछ भी करो अस्तित्व को पता भी नहीं चलेगा। यह विज्ञान की दृष्टि है—अस्तित्व है उपेक्षा में। तुम क्या हो, हो या नहीं हो, कोई प्रयोजन नहीं है।

धर्म कहता है—यह असंभव है। अगर हम अस्तित्व के ही हिस्से हैं, तो यह असंभव है कि अस्तित्व हमारे प्रति इतनी उपेक्षा से भरा हो। अस्तित्व हमारे प्रति किसी गहरे लगाव में न हो—यह नहीं माना जा सकता, क्योंकि हम अस्तित्व से पैदा हुए। अगर हम अस्तित्व से ही पैदा हुए हों, और उसी में लीन हो जाएंगे, तो हम उसी का खेल हैं। तो अस्तित्व प्रतिपल हमारे प्रति सजग है। और अस्तित्व हृदयपूर्ण है।

वह जो मुसलमान अपनी मस्जिद के मीनार पर खड़े होकर अजान दे रहा है, कबीर ने उसकी खूब मजाक की है। वह मजाक एक अर्थ में सही और एक अर्थ में बिलकुल गलत है। कबीर ने कहा है कि क्या तेरा खुदा बहरा हो गया है, जो तू इतने जोर से चिल्ला रहा है। यह बात सच है इतने जोर से चिल्लाने की कोई जरूरत भी नहीं है। मौन में भी कहा जा सकता है, तो भी वह सुन लेगा। यह मतलब है कबीर का। लेकिन यह जो जोर से चिल्ला रहा है इसकी भी एक सचाई है। यह असल में यह कह रहा है कि मैं तो बहुत कमजोर हूं, मेरी आवाज तुझ तक पहुंचे, न पहुंचे। तो अपनी पूरी ताकत लगाकर चिल्ला रहा हूं। और यह भरोसा है मेरा कि तू बहरा नहीं है, सुन ही लेगा। जोर से इसलिए नहीं चिल्ला रहा हूं कि तू बहरा है; जोर से इसलिए चिल्ला रहा हूं कि मैं कमजोर हूं। तो कबीर की बात एक

अर्थ में ठीक है, खुदा बहरा नहीं है; लेकिन दूसरी बात में गलत है। यह जो अजान देने वाला है, यह कमजोर है। यह सिर्फ अपनी कमजोरी जाहिर कर रहा है, यह कह रहा है, मैं असहाय हूं। बच्चा देखता है कि मां नहीं है पास, तो जोर से चिल्लाने लगता है, रोने लगता है। इसलिए नहीं कि मां बहरी है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि बच्चा कमजोर है। उसकी आवाज का खुद ही उसे भरोसा नहीं है, इसलिए जोर से चिल्ला रहा है।

यह जो सूत्र है—कृष्ण कहते हैं मैं वापिस लौटे आता हूं। यह इस बात की खबर है कि अस्तित्व वैसा ही हो जाएगा जैसी आपकी गहरी मौन प्रार्थना होगी, गहरा भाव होगा, अस्तित्व वैसा ही राजी हो जाएगा। इसके बड़े इंप्लीकेशंस, इसकी बड़ी रहस्यपूर्ण उत्पत्तियां हैं। इसका मतलब यह हुआ कि आप जो भी कर रहे हैं, वह भी अस्तित्व ने रूप ले लिया है आपकी वासनाओं के कारण। आपने मांगी थी एक सुन्दर स्त्री, वह आपको मिल गई। आपने मांगा था एक मकान, वह घटित हो गया। आपने चाहा था एक सुन्दर शरीर वह हो गया। आप कहेंगे, नहीं होता। मांगी थी सुन्दर स्त्री, मिल गई कुरुप। मांगा था सुन्दर स्वस्थ शरीर, मिल गई बीमारियों वाली देह।

लेकिन उसमें भी आप ख्याल करें कि उसमें भी आपकी ही मांग रही होगी। आपको जो भी मिल गया है, उसमें कहीं न कहीं आपकी मांग रही होगी। आपकी मांगें बड़ी कंट्राडिक्टरी हैं, विरोधाभासी हैं, इसलिए दिक्कत में है। अस्तित्व भी बड़ी दिक्कत में होता है, क्योंकि आप एक तरफ से जो मांगते हैं, दूसरी तरफ से खुद ही गलत कर लेते हैं।

अभी एक लड़की मेरे पास आई और उसने कहा कि मुझे पति ऐसा चाहिए शेर जैसा, सिंह हो, दबंग हो; लेकिन सदा मेरी माने। अब मुश्किल हो गई। अब इसको अगर ऐसा पति मिलेगा, जो देखने में शेर हो और भीतर से भेड़-बकरी तब इसको तकलीफ होगी। उसकी मांगें विरोधी हैं। जो दबंग होगा वह तुझसे क्यों दबेगा, वह सबसे पहले तुम्हीं को दबाएगा। सबसे निकट तेरे को पाएगा। अब यह इसकी—स्त्री की जो मांग है, वह विरोधाभासी है, कन्ट्राडिक्टरी है; हालांकि उसे ख्याल भी नहीं है।

पुरुष ऐसी स्त्री चाहता है, जो बहुत सुन्दर हो। स्त्री तो चाहता है जो बहुत सुन्दर हो, लेकिन साथ में वह ऐसी स्त्री भी चाहता है, जो कि

पक्की पतिव्रता हो। साथ में वह यह भी चाहता है कि किसी आदमी की नजर मेरी स्त्री की तरफ बुरी न पड़े। अब वह सब उपद्रव की बातें चाह रहा है। बहुत सुन्दर स्त्री होगा, दूसरों की नजर भी उस पर पड़ेगी और ध्यान रहे, बहुत सुन्दर स्त्री भी बहुत सुन्दर पुरुष की तलाश कर रही है, आपकी तलाश नहीं कर रही है ! तो पतिव्रता होना जरा मुश्किल है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बहुत देर तक अविवाहित रहा। लोग उससे पूछते कि मुल्ला, विवाह क्यों नहीं कर लेता ? वह कहता कि मैं एक पूर्ण स्त्री की तलाश कर रहा हूं—सर्वांग सुन्दर। तो लोगों ने पूछा, तुम बूढ़े हुए जा रहे हो, तलाश कब पूरी होगी ? क्या इतने दिन से खोजते-खोजते तुम्हें कोई पूर्ण स्त्री नहीं मिली ? उसने कहा; एक दफे मिली; लेकिन मुसीबत, वह भी किसी पूर्ण पुरुष की तलाश कर रही थी। मिली, बाकी मैं उसके योग्य नहीं था।

हमारी वासनाएं हैं विरोधी। हम जो मांग करते हैं, वे एक दूसरे को काट देती हैं। अस्तित्व हमारी सब मांगें पूरी कर देता है, यह जानकर आप हैरान होंगे। लेकिन आपको पता ही नहीं, आप क्या मांगते हैं। कल जो मांगा था, आज इन्कार कर देते हैं। आज जो मांगते हैं, सांझ इन्कार कर देते हैं। आपको पता ही नहीं कि आपने इतनी मांगें अस्तित्व के सामने रख दी हैं कि अगर वो सब पूरी करे तो आप पागल होंगे ही, कोई और उपाय नहीं है। जिन्होंने धर्म में गहन प्रवेश किया है वो जानते हैं कि आदमी की जो भी मांगें हैं, वो सब पूरी हो जाती हैं। यही आदमी की हार है कि अस्तित्व राजी है, जरा सोच-समझकर उससे मांगना। बेहतर है मत मांगना, उसी पर छोड़ देना कि जो तेरी मर्जी। तब आपकी जिन्दगी में कष्ट नहीं होगा, क्योंकि अब उसकी मर्जी में कोई विरोध नहीं है। समर्पण का यही अर्थ है कि तू जो ठीक समझे, करना। हममें से जो बड़े से बड़े लोग हैं, वो भी इतनी हिम्मत नहीं कर पाते। जीसस सूली पर लटके हैं, आखिरी क्षण में जब फांसी लगने लगी और हाथ-पैर में खीले ठोंक दिए गए, तो जीसस के मुंह से निकला कि हे परमात्मा ! यह मुझे क्या दिखा रहा है ? मतलब साफ था कि जीसस ने सोचा नहीं था कि तू मुझे ये दिखाएगा। ये कभी सोचा नहीं था कि तेरे भक्त को, तेरे इकलौते बेटे को इतनी तकलीफ देखनी पड़ेगी ! इसमें सब बात आ गई, लेकिन जीसस बड़े सचेत आदमी थे। तत्क्षण समझ लिया कि भूल हो गई—इस बात को बोलते ही कि तू क्या

दिखा रहा है, दूसरा वाक्य उन्होंने कहा—तेरी मर्जी पूरी हो, 'दाई विल बी डन।' इसी क्षण में जीसस, क्राइस्ट हो गए। इस एक वाक्य को बोलने में जीसस दूसरे ही क्षण क्राइस्ट हो गये।

एक क्षण पहले ही जीसस की आवाज कि तू ये क्या दिखा रहा है, यह मनुष्य की आवाज है। ये सब मनुष्य की वासनायें ईश्वर के प्रतिकूल खड़ी हैं। मनुष्य कह रहा है कि आखिरी मेरी इच्छा पूरी होना चाहिए। मेरी इच्छा पूरी कर, तो ही मैं प्रसन्न रहूंगा। मेरी प्रसन्नता में शर्त है, जो मैं चाहता हूं—वो हो। और आदमी को पता नहीं कि वह जो चाहता है अगर पूरा हो जाए, तो वह कभी प्रसन्न नहीं होगा। एक क्षण में जीसस ने कहा कि 'दाई विल बी डन', तेरी मर्जी पूरी हो। यहां आदमी समाप्त हो गया, इसी क्षण जीसस मरियम का बेटा—ईश्वर का बेटा क्राइस्ट हो गया। जीसस मर गया सूली के पहले, सूली जीसस को नहीं लगी, वो तो जीसस उसी क्षण समाप्त हो गया जिस क्षण उसने कहा—तेरी मर्जी। इसलिए फिर सूली—सूली नहीं, फिर सूली आनन्द है। फिर सूली भी उसके मिलन का द्वार है। फिर वो चाहता है सूली, तो यही प्रेम है उसका, कोई फर्क नहीं है। कृष्ण ने कहा मैं पूरा किए देता हूं, जैसा अर्जुन चाहता है वैसा हो जाता हूं।

वासुदेव भगवान ने अर्जुन के प्रति इस प्रकार कहकर, फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूप को दिखाया और फिर महात्मा कृष्ण ने सौम्य मूर्ति होकर, इस भयभीत हुए अर्जुन को धीरज दिया।

कहा वासुदेव भगवान ने अर्जुन के प्रति दयावान होकर, अपने चतुर्भुज रूप को ग्रहण किया। फिर महात्मा कृष्ण ने, फिर भगवान कृष्ण नहीं कहा; क्योंकि जैसे ही सीमा में बंध गए, भगवान छूटकर महात्मा हो गए, महात्मा और परमात्मा में इतना ही फर्क है, परमात्मा अपनी मर्जी के अनुकूल नहीं चलता, आपको उसकी मर्जी के अनुकूल होना पड़ेगा। महात्मा आपकी मर्जी के अनुकूल होकर, आपको धीरज और सांत्वना दिलाता है। ईश्वर आपकी मर्जी के अनुकूल नहीं है, इससे जो मरने को तैयार है, वो ईश्वर में प्रवेश करें। लेकिन अगर हमारी मांग सीमा की है तो महात्मा प्रगट होता है। महात्मा ईश्वर का वह रूप है, जो हमारे अनुकूल हो। इसलिए कृष्ण को हमने पूर्ण अवतार कहा, क्योंकि बहुत जगह वो हमारे अनुकूल नहीं हैं। राम को हमने आंशिक अवतार कहा, क्योंकि वे बिलकुल हमारे अनुकूल हैं।

राम ने भूल-चूक कहीं नहीं की, कृष्ण में भूल-चूक काफी हैं। राम और सीता का संबंध समझ में आता है, कृष्ण और गोपियों का संबंध, सज्जन से सज्जन आदमी को शंका में डाल देता है। ऐसा लगता है कि यह बात न ही उठाओ। कृष्ण में कुछ है जो हमें डराता है, इसलिए हमने उन्हें पूर्ण अवतार कहा है—क्योंकि हम उनसे कई जगह राजी नहीं हैं। हम इतने अधूरे हैं कि उनके अधूरे व्यक्तित्व को स्वीकार करते हैं, राम को हमने अपूर्ण अवतार कहा क्योंकि हम उनसे पूरे राजी हो जाते हैं। हम राजी हो जाते हैं, वे हमारे इतने अनुकूल हैं कि वे पूरे नहीं हो सकते, बात जाहिर है। इसलिए व्यास कहते हैं महात्मा कृष्ण ने सौम्य मूर्ति होकर, इस भयभीत हुए अर्जुन को धीरज दिया।

इसके उपरांत अर्जुन बोला : हे जनार्दन ! आपके इस अति शांत मनुष्य रूप को देखकर अब मैं शांत चित्त हुआ, अपने स्वभाव को प्राप्त हो गया हूं।

अर्जुन ने कहा ये देखकर आपका सीमा में लौट आना, मैं अपने स्वभाव को : ये स्वभाव क्या है अर्जुन का—मनुष्य का स्वभाव। वह कहता है : ऐसे हो जाओ, ऐसे होओगे, तो ही मैं शांति को प्राप्त होऊंगा।

सुना है मैंने कि तुलसीदास एक बार कृष्ण के मंदिर में गए, तो वे तो थे राम-भक्त, और वे तो धनुर्धारी राम को ही सिर झुका सकते थे। वहां देखा कि कृष्ण बांसुरी लिए खड़े हैं, तो कहा गया है कि तुलसीदास ने कहा कि ऐसे नहीं, जब तक धनुष बाण हाथ में न लोगे, तब तक मैं न झुकूंगा। एक अर्थ में यह बड़ी अजीब सी बात है, हम भगवान को भी शर्त लगाते हैं कि ऐसे हो जाओ, तो ही। मेरे अनुकूल हो जाओ, तो ही। इसका तो मतलब ये हुआ, कि भक्त भगवान को भी बांधता है, सोचता है भगवान मुझे मुक्त करे, लेकिन कर यह रहा है कि मैं भी भगवान को बांध लूं। और इसका अर्थ यह भी है कि मैं हूं मनुष्य, मेरी प्रीति-अप्रीति, मेरे लगाव-अलगाव, मैं तुम्हें उस रूप में देखना चाहता हूं—जो मेरे अनुकूल हो। और इसलिए देखना चाहता हूं इस रूप में कि मैं जैसा हूं, वैसा का वैसा तुम्हारे चरणों में गिर सकूं। मेरा जैसा स्वभाव है, उसका ध्यान रखो। वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम्हारा बांसुरी लिए जो रूप है, वह भगवान का नहीं है, वह होगा; मेरे लिए नहीं। मेरी पात्रता ने उस रूप को स्वीकार किया है कि तुम

धनुष-बाण लेकर राम हो जाओ तो मैं तुम्हारे चरणों में समर्पित हो जाऊं। कथा बड़ी मीठी है, कथा यह है कि मूर्ति बदल गई और कृष्ण की मूर्ति की जगह राम धनुष-बाण लिए दिखे, तब तुलसीदास चरणों में गिरे।

अर्जुन कह रहा है अब मैं अपने स्वभाव में आ गया। अर्जुन अपने स्वभाव के बाहर चला गया था, एक अर्थ में चला गया था। और एक अर्थ में अपने स्वभाव के गहरे में चला गया। एक अर्थ में बाहर चला गया था क्योंकि मनुष्य की बुद्धि के जो परे है, वह उसके दर्शन में आ गया था। और वह भयभीत हो गया, उसकी सारी की सारी मनुष्यता डवांडोल हो गई। मनुष्य की पकड़ में न आ सके, ऐसा उसे दिख गया, और एक अर्थ में वह अपने गहरे स्वभाव में चला गया। लेकिन वह स्वभाव जागतिक है वह मनुष्य का नहीं है, अर्जुन कहता है कि मैं अपने स्वभाव में आ गया।

परमात्मा के साथ साधक और भक्त का यही फर्क है—साधक कहता है तुम जैसे हो वैसा ही मैं देख लूंगा अपने को बीच में नहीं लाऊंगा। वह संकल्प कर रहा है, अगर तुम ऐसे हो तो अपने को बदलूंगा, अपनी नई आंख पैदा करूंगा, तुम जैसे हो, वैसे ही तुम्हें देखूंगा। साधक अपनी कोई धारणा उस पर नहीं थोपता, अपनी सब धारणा छोड़ देता है।

सत्य जैसा है उसे तुम वैसा ही देखने को राजी होना, उसके लिए खुद को, जितना खुद को तपाना पड़े, गलाना पड़े, मिटाना पड़े—मिटाना, लेकिन खुद को तोड़ना, खुद को निखारना, उस पर कोई आग्रह मत करना कि ऐसा हो। साधक संकल्प से अपने को बदलता है और एक दिन जिस दिन शून्य हो जाता है शांत, सत्य को देख लेता है।

भक्त, कहता है कि मैं जैसा हूं—हूं। मैं अपने को बदलने वाला नहीं हूं, तुम्हें ही बदलना है। और जब तक मैं ऐसा हूं तब तक मेरी शर्त है कि तुम ऐसे प्रगट होओ। भक्त कहता कि जब तक मैं नहीं बदला हूं और मैं अपने को क्या बदल सकूंगा, तुम्हीं बदल सकोगे। और तुम भी मुझे तभी बदल सकोगे जब मेरे से ताल-मेल बैठ सकेगा। मैं जैसा हूं, उससे ही संबंध बनाओ। मैं तुम्हें कृष्ण की तरह, राम की तरह, क्राइस्ट की तरह चाहता हूं ताकि मेरा सम्बन्ध बन जाय। सम्बन्ध बन जाय तो फिर तुम मुझे बदल लेना। यह बड़ी मजेदार बात है। भक्त यह कह रहा है कि मैं अपने को क्या बदलूं, कैसे बदलूंगा, मुझे कुछ भी तो पता नहीं है। मेरी सामर्थ्य, शक्ति भी कितनी है कि कैसे मैं अपने को शुद्ध करूंगा, मैं तो अशुद्ध जैसा भी हूं—यह

हूं। तुम ऐसा ही मुझे स्वीकार कर लो। अशुद्ध आदमी की धारणा है कि तुम ऐसे ही स्वीकार कर लो, ताकि सम्बन्ध जुड़ जाए। एक दफा सम्बन्ध जुड़ जाय और मैं तुम्हारी नाव में सवार हो जाऊं, फिर तुम जहां भी ले जाओगे, चलूंगा। लेकिन अभी मेरी मर्जी की नाव बन जाओ।

दोनों ही तरह घटना घटती है, जो अपनी सब धारणाओं को गिरा देगा, उसके लिए कोई नाव की जरूरत नहीं, उसे उस पार जाने की भी कोई जरूरत नहीं। लेकिन जिसे अपनी धारणाओं से उस पार जाना है, उसके लिए बड़ा कठिन है। जिसको बदलना है उसके ही द्वारा उसे अपने में बदलाहट लाना बड़ा कठिन है। जैसे बीमार अपना इलाज करे, डाक्टर भी बीमार हो जाता है तो दूसरे डाक्टर के पास जाता है क्योंकि खुद का इलाज करने में एक घबड़ाहट होती है। दूसरे का इलाज करने में तो एक दूरी होती है, तो इलाज आसान होता है। बड़े से बड़ा सर्जन भी अपना आपरेशन नहीं करेगा। राग बीच में आता है।

तो अपने को ही बदलना हो तो अपने से तो बहुत राग है इसलिए भक्त कहता है कि अपने से संभव नहीं कि हम अपने को बदल लें। हम तो जैसे हैं—ऐसे हैं। बुरे-भले जैसे हैं—हैं।

इन दोनों मार्गों में साफ होना जरूरी है, नहीं तो आदमी दोनों में डोलता रहता है। दोनों के बीच कोई मार्ग नहीं है। या तो स्पष्ट समझ लेना कि मुझे खुद ही बदलना है, तब फिर किसी परमात्मा को, किसी गुरू को, बीच में लाने की जरूरत नहीं है, कितनी ही हो लम्बी यात्रा और कितने ही अनन्त युग लगें, लड़ते रहना, यह भी बुरा नहीं है। यह भी मनुष्य की गरिमा के अनुकूल है।

लेकिन अगर लगता हो कि ये लड़ाई लम्बी है और हम चुक जायेंगे, तब फिर व्यर्थ लड़ना नहीं। सीधा इसी क्षण छोड़ देना, यह मनुष्य की गरिमा के अनुकूल है। क्योंकि, वही समर्पण भी कर पाता है जो कि कम से कम अपना इतना मालिक है कि छोड़ सके। आप वही छोड़ सकते हैं जिसके आप मालिक हैं। ये दो रास्ते हैं, इनमें समझौता कोई नहीं।

इनमें से जो ठीक-ठीक चुन लेता है अपने अनुकूल रास्ता, वो पहुंच जाता है, व्यर्थ भटकाव से बच जाता है।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः।५२।
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।५३।
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।५४।
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।५५।

खोज के पार का दर्शन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, क्रास मैदान, बम्बई, संध्या : दिनांक १४ जनवरी, ७३

बारहवां प्रवचन

● सृष्टि और सृष्टा यदि एक है और अगर हम स्वयं भगवान ही हैं, तो फिर भगवान को पाने और खोजने की बात ही असंगत है ?

खोज की व्यर्थता भगवान पर ले आती है

निश्चित ही असंगत है। इससे ज्यादा बड़ी और कोई भूल की बात नहीं कि कोई भगवान को खोजे—क्योंकि खोजा केवल उसी को जाता है जिसे हमने खो दिया हो। जिसे हमने खोया ही नहीं है उसे खोजने का कोई उपाय ही नहीं है। लेकिन, जब ये पता चल जाय कि मैं भगवान हूं तभी खोज असंगत है उसके पहले असंगत नहीं है। उसके पहले तो खोज करनी ही पड़ेगी। खोज से भगवान नहीं मिलेगा, खोज से सिर्फ यही पता चल जाएगा कि जिसे मैं खोज रहा हूं वही मैं नहीं हूं बल्कि जो खोज रहा है वही है। खोज की व्यर्थता भगवान पर ले आती है, खोज की सार्थकता नहीं। इसे थोड़ा समझना कठिन होगा लेकिन समझने की कोशिश करें।

यहां खोजने वाला ही वह है जिसकी खोज चल रही है। जिसे आप खोज रहे हैं वह भीतर छिपा है। इसलिए जब तक आप खोज

करते रहेंगे, तब तक उसे न पा सकेंगे। लेकिन कोई सोचे कि बिना खोज किए ऐसे जैसे हैं ऐसे ही रह जायें तो उसे पा लेंगे वो भी नहीं पा सकेगा। क्योंकि अगर बिना खोज किए आप पा गए होते, तो आपने पा ही लिया होता। बिना खोज किए मिलता नहीं और खोजने से भी नहीं मिलता। जब सभी खोज समाप्त हो जाती और खोजने वाला चुक जाता है, कुछ खोजने को नहीं बचता, उस क्षण घटना घटती है। कबीर ने कहा है, 'खोजत-खोजत हे सखी, रहो कबिरा हिराय'—खोजते-खोजते वो तो नहीं मिला, लेकिन खोजने वाला धीरे-धीरे खो गया और जब खोजने वाला खो गया तो पता चला कि जिसे हम खोजते थे, वह भीतर मौजूद था। हम जब परमात्मा को खोजते हैं तो ऐसे ही जैसे हम दूसरी चीजों को खोजते हैं। कोई धन को खोजता है, कोई यश को खोजता है, कोई पद को खोजता है। आंखें बाहर खोजती हैं—धन को, पद को, यश को—वैसे ही भगवान को हम बाहर खोजना शुरू कर देते हैं। हमारी खोज की आदत बाहर खोजने की है। उसे भी हम बाहर खोजते हैं। बस वहीं भूल हो जाती है। वह भीतर है। वह खोजने वाले की अन्तरात्मा है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मैं आपसे कह रहा हूं कि खोजें मत। आप खोज ही कहां रहे हैं जो आपसे कहूं कि खोजें मत, जो खोज रहा हो, खोज के थक गया हो—उससे कहा जा सकता है, रुक जाओ। जो खोजने ही न निकला हो, जो थका ही न हो, जिसने खोज की कोई चेष्टा न की हो, उससे यह कहना कि चेष्टा छोड़ दो, नासमझी है। चेष्टा छोड़ने के लिए भी चेष्टा होनी चाहिए।

एक मजे की बात मुझे स्मरण आती है। एक मित्र ने पूछी भी है, उपयोगी होगी। कृष्ण भी कहते हैं कि वेद में मैं नहीं मिलूंगा, शास्त्र में नहीं मिलूंगा, यश में नहीं मिलूंगा, योग में, तप में नहीं मिलूंगा। लेकिन आपको पता है किन लोगों से कहा है उनने। जो वेद में खोज रहे थे, यज्ञ में खोज रहे थे, तप में--योग में खोज रहे थे—उनसे कहा है, आपसे नहीं कहा। आप तो खोज ही नहीं रहे। बुद्ध ने कहा कि शास्त्रों को छोड़ दो, तभी सत्य मिलेगा। लेकिन, ये उनसे कहा है जिनके पास शास्त्र थे। कृष्णमूर्ति भी कह रहे हैं—शास्त्रों को छोड़ दो सत्य मिलेगा, लेकिन वे उनसे कह रहे हैं, जो शास्त्र पकड़े ही नहीं हैं। आप छोड़िएगा—खाक। जिसको पकड़ा ही नहीं उसको छोड़िएगा कैसे। कृष्णमूर्ति को सुनने

वाले लोग सोचते हैं, तब तो ठीक है, सत्य तो हमें मिला ही हुआ है, क्योंकि हमने शास्त्र को कभी पकड़ा ही नहीं। जिसने पकड़ा नहीं है, वह छोड़ेगा कैसे? और सत्य मिलेगा छोड़ने से, पकड़ना उसका अनिवार्य हिस्सा है।

आपके पास जो है, वही छोड़ सकते हैं। जो आपके पास नहीं है, उसे कैसे छोड़िएगा? आपकी खोज होनी चाहिए, और जब आप खोज में थक जायेंगे, ऊब जायेंगे, परेशान हो जायेंगे, जब न खोजने का कोई रास्ता बचेगा, न खोजने की हिम्मत बचेगी, जब सब तरफ उदास, टूटे हुए आप गिर पड़ेंगे—उस गिर पड़ने में उसका मिलना होगा। क्योंकि जब बाहर खोजने को कुछ भी नहीं बचता, तभी आंखें भीतर को तरफ मुड़ती हैं और बाहर जब चेतना को जाने का कोई मार्ग नहीं बचता तब चेतना अंतर्गामी होती है। एक गरीब आदमी से हम कहें कि धन का त्याग कर दे, एक भिखमंगे से हम कहें कि बादशाहत को लात मार दे, भिखमंगे सदा तैयार हैं, बादशाहत को लात मारने। लेकिन बादशाहत कहां है जिसको वो लात मार दें, धन कहां है जिसको वो छोड़ दें। और जिसके पास धन नहीं है, वह धन को कैसे छोड़ेगा, और जिसके पास बादशाहत नहीं, वह बादशाहत को कैसे छोड़ेगा? हम वही छोड़ सकते हैं, जो हमारे पास है।

ध्यान रखें जब मैं आपसे कहता हूं कि परमात्मा को खोजने की कोई भी जरूरत नहीं है क्योंकि वह खोजने वाले में छिपा है तो मैं ये उनसे कह रहा हूं जो खोज रहे हैं। उनसे नहीं कह रहा हूं जो खोज नहीं रहे हैं, उनसे तो मैं कहूंगा खोजो, जहां भी तुम्हारी सामर्थ्य हो वहां खोजो। मूर्ति में, शास्त्र में, तीर्थ में, जहां तुम खोज सको, खोजो। तुम्हारे मन को थोड़ा थकने दो, खोज व्यर्थ होने दो तभी तुम भीतर मुड़ सकोगे। जिंदगी में छलांग नहीं होती, जिंदगी में एक क्रमिक गति होती है।

आप भी सुन लेते हैं कि जब शास्त्र में नहीं है तो क्या फायदा? एक मित्र ने पूछा है कि जब कृष्ण कहते हैं कि शास्त्र में नहीं है, तो फिर गीता समझाने से क्या होगा? रामायण पढ़ने से क्या होगा? जब कृष्ण खुद कहते हैं कि वेद में कुछ नहीं है, तो गीता में कैसे हो सकता है? ठीक कहते हैं, वो मित्र ठीक पूछ रहे हैं कि अगर कृष्ण की ही बात हम मान लें तो फिर गीता में भी क्या रखा है। लेकिन इतनी बात

भी आपको पता चल जाए कि वेद में नहीं है, इतना भी गीता से पता चल जाय तो बहुत पता चल गया। अगर शास्त्र पढ़ने से इतना भी पता चल जाय कि शास्त्र बेकार है तो काफी पता चल गया। यह भी आपको अपने से कहां पता चलता है।

मेरे पास लोग आते हैं, कहते हैं कि कृष्णमूर्ति कहते हैं कि किसी की भी मत मानो, अपना खोजो। मैं उन लोगों से पूछता हूं कि तुम कृष्ण-मूर्ति की मानकर चले आये हो, और कृष्णमूर्ति समझाते हैं कि किसी की मत मानो। और तुम मुझे कह रहे हो कि कृष्णमूर्ति कहते हैं किसी की मत मानो, हम अब किसी की बात न मानेंगे, तुमने किसी की मान ली। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि गुरू से कुछ न मिलेगा। तो कृष्णमूर्ति के पास किसलिए गए थे, और अगर इतना भी तुम्हें मिल गया तो कृष्ण-मूर्ति कम से कम इतने के लिए तुम्हारे गुरु हो गए। और अब तुम बार-बार क्यों जा रहे हो जब कृष्णमूर्ति कहते हैं कि गुरू से कुछ न मिलेगा। तो लगभग कृष्णमूर्ति के सुनने वालों को देखें, चालीस साल से वे शक्लें बार-बार बैठी वहां दिखाई देती हैं। ये क्या चल रहा है, अगर गुरू से कुछ नहीं मिलता। तो कृष्णमूर्ति से कैसे मिलेगा? लेकिन अगर इतना भी मिल गया तो भी कुछ कम नहीं है।

ध्यान रहे, जीवन बहुत विरोधाभासी है। गुरुओं ने सदा ही कहा है कि गुरुओं से नहीं मिलेगा लेकिन ये खबर भी उनसे मिली है। शास्त्रों ने सदा कहा है कि शास्त्रों में क्या रखा है, लेकिन ये पता भी शास्त्र से चलता है। चेष्टा करने से ही पता चलेगा कि चेष्टा से नहीं मिलता है। और जब यह पता चलेगा तो यह अनुभव और है।

दो तरह के लोग हैं। मैंने सुना है कि एक बार ऐसा हुआ कि एक तीर्थ यात्रा पर जाने वाले लोगों की भीड़ थी एक स्टेशन पर। सारे लोग जा रहे थे हरिद्वार। शायद अमृतसर का स्टेशन था। एक आदमी कहने लगा कि मैं ट्रेन में तभी चढ़ूंगा जब मुझे उतरना न पड़े और अगर उतरना ही है तो चढ़ने का फायदा क्या ? वो आदमी ठीक तर्क की बात कह रहा था। वो कह रहा था अगर इस ट्रेन में से उतरने में बहुत भीड़-भड़क्का था और घुसना भी बहुत मुश्किल था तो इस ट्रेन में इतनी चढ़ने की दिक्कत क्यों उठानी, हम तो उतरे ही हुए हैं। और अगर इतनी मुश्किल करके, जान

मुसीबत करके भीतर घुसना है तो एक बात पक्की हो जाय कि उतरना तो नहीं पड़ेगा। उसके मित्रों ने कहा, बातचीत में समय मत गंवाओ, सीटी बजी जा रही है, ट्रेन जा रही है, उन्होंने जबरदस्ती खींचकर ऊपर किया। लेकिन वो चिल्लाता ही रहा, वह ज्ञानी था। वो आदमी चिल्लाता है कि पहले यह तो पता चल जाय कि इससे उतरना तो नहीं पड़ेगा। इतनी मुश्किल से चढ़ रहे हैं, हाथ-पैर टूटे जा रहे हैं, हड्डियां टूटी जा रही हैं, तुम मुझे खींचे जा रहे हो, ये तो बताओ कि इससे उतरना तो नहीं पड़ेगा। सबने उसे भीतर बिठा लिया और कहा इसे पीछे समझ लेंगे। खैर, वो आदमी अन्दर हो गया फिर हरिद्वार पर उतरने की नौबत आ गई। वो आदमी फिर कहने लगा कि मैंने पहले ही कहा था कि अगर उतरना ही है तो चढ़ने से क्या मतलब था, हम तो उतरे ही हुए थे। उसके मित्रों ने कहा कि गाड़ी जाने को है, नीचे उतरो। वो कहने लगा कि आप हो किस तरह के लोग, कभी चढ़ने के लिए खींचते हो, कभी उतरने के लिए खींचते हो। और तुम्हें, इतनी भी बुद्धि नहीं आती है कि तुम दोनों विरोधी काम—चढ़ने-उतरने के एक साथ करते हो। मैं तो पहले ही उतरा हुआ था। तभी एक बूढ़े आदमी ने कहा—तू पहले उतरा हुआ था अमृतसर पर, अब तू उतर रहा है हरिद्वार पर। और इन दोनों में फर्क है।

एक आदमी है जिसने शास्त्रों को छुआ ही नहीं है, वह भी बड़ा प्रसन्न हो जाता है सुनकर कि शास्त्रों से कुछ नहीं मिलेगा। उसकी प्रसन्नता यह नहीं है कि वो समझ गया। उसकी प्रसन्नता यह है कि अच्छा, जो शास्त्र पढ़-पढ़ के ज्ञानी बने जा रहे थे, वो भी कोई ज्ञानी नहीं हैं। मैं पहले से ही उतरा हुआ हूं। अगर तुमको उतरना ही है तो हम पहले से ही उतरे हुए हैं। अगर एक बार फिर ज्ञान को छोड़ कर अज्ञानी बनना ही पड़ेगा तो हम तो अज्ञानी पहले से ही हैं। तो तुमने कमाई ही क्या की, तुमने व्यर्थ समय गवांया। और नाहक अकड़ रहे थे कि शास्त्र पढ़ लिया, वेद के ज्ञाता हो गए, लेकिन उसको पता नहीं कि एक अज्ञान—ज्ञान के पहले का है और एक अज्ञान वो है जो ज्ञान के बाद आता है। ज्ञान के बाद के अज्ञान से, ज्ञान के पहले के अज्ञान का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। कहां अमृतसर, कहां हरिद्वार ! दोनों में बड़ी यात्रा का फर्क है।

ज्ञान के पहले जो अज्ञान है, वह सिर्फ अज्ञान है। ज्ञान के बाद जब ज्ञान को भी कोई छोड़ देता है तब जो अज्ञान घटित होता है, वह चित्त की निर्दोषिता है, निर्भारता है। वह अज्ञान नहीं है। वही ज्ञान है। सुकरात ने कहा है "जब कोई जान लेता है तो वो कह देता है कि अब मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।" इसलिए उपनिषदों ने कहा है कि अज्ञानी तो भटकते ही हैं अन्धकार में, ज्ञानी महा अन्धकार में भटक जाते हैं। तो फिर बचेगा कौन ? वो बचेगा जो ज्ञान के बाद आने वाले अज्ञान को उपलब्ध होगा। जो नहीं खोजते वो तो परमात्मा को पाते ही नहीं, जो खोजते हैं, वो और दूर निकल जाते हैं। लेकिन खोज के बाद भी खोज के छोड़ देने की एक घटना है, वे उसे पा लेते हैं।

ये तीन बातें हैं। आप जो कि खोज ही नहीं रहे हैं, साधु-संन्यासी, पंडित, खोज रहे हैं, कोई तप में, कोई शास्त्र में, कोई कहीं और। और एक तीसरा ज्ञानी : परमहंस, जो खोज भी छोड़ दिया, शास्त्र भी। जो अब बैठ गया, जैसा है वैसा ही छोड़ दिया । अब कहीं भी खोजने नहीं जाता। जो न जाने वाली चेतना है, स्वयं में खो जाती है। जो न जाने वाली चेतना है, स्वयं में प्रज्ज्वलित हो जाती है। कहीं न जाने वाली चेतना नया आयाम पकड़ लेती है। आपने सुनी हैं : दस दिशायें। जो जानते हैं, कहते हैं : ग्यारह दिशाएं हैं। दस दिशायें बाहर हैं और एक दिशा भीतर है। जब दसों दिशाएं बेकार हो जाती हैं, तब चेतना भीतर की तरफ मुड़ती है। जब और कहीं न मिलता हो, तब आदमी अपने में खोजता है। आखिरी समय में, अंतिम क्षण में आदमी अपने में खोजता है। तो अगर आपको पता चल गया कि आप भगवान हैं, तब तो बात ही खतम हो गई, खोज व्यर्थ है। अगर, मेरे कहने से मान लिया तो अभी खोज करनी पड़ेगी। मेरे कहने से मान ली गई बात आपका अनुभव नहीं है। मेरे कहने से खोज शुरू होगी, अनुभव नहीं हो जाएगा और ट्रेन में अभी चढ़ना होगा। और अगर आपकी यह जिद हो कि उतरना ही पड़ेगा बाद में तो हम चढ़ेंगे ही नहीं तो आपकी मर्जी। लेकिन फिर आप समझ लेना कि अमृतसर पर ही खड़े हैं। फिर हरिद्वार की तरफ गति नहीं होगी। चढ़ें भी, उतरें भी। सीढ़ियों पर चढ़ना भी पड़ता है, उतरना भी पड़ता है। जो सीढ़ियों पर नहीं चढ़ता, वह नीचे की मंजिल पर रह जाता है। जो फिर जिद करता है सीढ़ियों से नीचे नहीं उतरूंगा, वह सीढ़ियों पर रह जाता है। वह भी ऊपर की मंजिल पर नहीं पहुंचता। ऊपर की मंजिल पर वह पहुंचता है जो सीढ़ियों पर चढ़ता है फिर सीढ़ियों को पकड़ नहीं लेता, सीढ़ियों को छोड़ भी देता है।

बुद्ध ने कहा है कुछ ना-समझ मैंने देखे हैं : गांव में। जो नदी पार किए थे नाव में बैठकर। और फिर उन्होंने सोचा कि जिस नाव ने उन्हें नदी पार करा दी उसे हम कैसे छोड़ सकते हैं। तो कुछ दिन तो वो नाव पर रहे, लेकिन नाव पर कितने दिन रह सकते थे। भोजन की तकलीफ हो गई, सोने की तकलीफ हो गई और फिर उन्होंने सोचा कि नाव को सिर पर लेकर चल पड़ें। क्योंकि जिस नाव ने हमें पार करवा दिया, उसे हम कैसे छोड़ सकते हैं, और अगर छोड़ना ही था तो हम चढ़े ही क्यों ? तो वे नाव को सिर पर लेकर गांव में निकले। गांव के लोगों ने पूछा तुम ये क्या कर रहे हो ? बुद्ध उस गांव में थे। उन्होंने कहा : ये बड़े ज्ञानी हैं, पंडित हैं। अज्ञानी तो उसी पार रह गए, वो नाव पर ही नहीं चढ़े। लेकिन ये ज्ञानी हैं। इनकी मुसीबत यह है कि ज्ञान इनके ऊपर चढ़ गया है, नाव उनके ऊपर चढ़ गई, अब ये उसको छोड़ नहीं पा रहे। अब ये शास्त्र को ढो रहे हैं। इसलिए उपनिषद् ठीक कहते हैं : अज्ञानी ये तो और मूढ़ता हो गई । इसलिए उपनिषद् ठीक कहते हैं : अज्ञानी भटकते हैं अन्धकार में, ज्ञानी महा अन्धकार में भटक जाते हैं। फिर से अज्ञानी होना जरूरी है। लेकिन वो फिर से अज्ञानी होना, बड़ी और बात है। खोज छोड़नी पड़ती है, लेकिन खोज करने के बाद। संसार छोड़ना पड़ता है, लेकिन जानने के बाद। त्याग मूल्यवान है, लेकिन भोग के बाद। अन्यथा उसका कोई मूल्य नहीं है।

- एक मित्र ने पूछा है कि भक्त अपनी पसंद के अनुसार इष्ट का साकार दर्शन कर लेते हैं। श्री रामकृष्ण देव ने काली का किया या मीरा ने कृष्ण का किया या अर्जुन ने चतुर्भुज रूप कृष्ण का। क्या इस अवस्था को परम ज्ञान की अवस्था मान सकते हैं ?

साकार से निराकार की यात्रा

ये परम ज्ञान की पहले की अवस्था है, परम ज्ञान की नहीं। क्योंकि परम ज्ञान में तो दूसरा बचता ही नहीं। न काली बचती है, न कृष्ण बचते हैं, न क्राइस्ट बचते हैं। ये आखिरी है, सीमांत। ये आखिरी है, संसार समाप्त हो गया, अनेकता समाप्त हो गई, सब समाप्त हो गया, लेकिन द्वैत अभी

भी बाकी रह गया। भक्त है और भगवान। अभी भक्त भगवान नहीं हो गया। अभी भक्त है और भगवान। अभी दो बाकी हैं। सारा जगत खो गया, विविध रूप खो गए। सारे रूप दो में समाविष्ट हो गए। सारा जगत दो रह गया, भक्त है और भगवान है। सब तिरोहित हो गया लेकिन दो अभी बाकी हैं। ये परम ज्ञान के ठीक पहले की अवस्था है। जैसे १०० डिग्री पर पानी उबलता है, अभी भाप नहीं बना। भाप बनने के करीब है, एक क्षण और पानी भाप बन जाएगा। ठीक ये १०० डिग्री अवस्था है, बस जरा सी देर है। जरा सी देर है कि भगवान भी खो जाएगा और भक्त भी खो जाएगा और एक ही बच रहेगा। उसको फिर कोई चाहे तो भगवान कहे चाहे कोई भक्त कहे, चाहे कोई नाम न दे, कोई फर्क नहीं पड़ता। एक बच रहेगा : अनाम। वह अद्वैत की अवस्था है। अद्वैत परम ज्ञान है। परम ज्ञान की हमारी परिभाषा बड़ी अनूठी है। परम ज्ञान हम तब कहते हैं जब जानने वाला न बचे, जाने, जाने वाला न बचे। दोनों खो जायें। दृश्य और दृष्टा खो जायें। ज्ञाता और ज्ञेय दोनों खो जायें। मात्र ज्ञान रह जाए। सिर्फ जानना मात्र रह जाए। न तो उस तरफ कुछ हो जानने को, न इस तरफ कुछ हो जानने वाला। तब सिर्फ ज्ञान रह जाए। उस ज्ञान की आखिरी घड़ी को परम ज्ञान कहा है।

महावीर ने उसे कैवल्य कहा है। कैवल्य का अर्थ है : बस केवल ज्ञान। कुछ नहीं बचा। वो जो खोज रहा था, वो भी नहीं है अब। जिसको खोज रहा था, वो भी नहीं है अब। दोनों का द्वन्द्व विलीन हो गया। अब सिर्फ होना मात्र 'जस्ट-बीईंग', जस्ट कान्सीअसनेस, सिर्फ होश भर बचा है। वो दोनों छोर खो गए हैं। दोनों छोरों के बीच में जो ज्ञान की घटना घटी है, वही बची है।

तो काली का दर्शन परम ज्ञान नहीं है, कृष्ण का दर्शन भी परम ज्ञान नहीं है। परम ज्ञान के पहले की आखिरी सीढ़ी है जहां से आप सीढ़ियां छोड़ देते हैं।

ऐसा हुआ—रामकृष्ण के जीवन में कि रामकृष्ण तो काली के भक्त थे, अनूठे भक्त थे। उस जगह पहुंच गए जहां काली और वो ही बचे। लेकिन तब उनको एक बेचैनी होने लगी कि ये तो द्वैत है और अद्वैत का अनुभव कैसे हो। अभी भी दो तो है ही, मैं हूं, काली है। अभी दो की, दुई नहीं

खोती। अभी दो तो बने ही रहते हैं। तो वे एक अद्वैत गुरु की शरण में गए। उस अद्वैत गुरु को कहा उन्होंने कि अब मैं क्या करूं। ये दो अटक गए हैं, इसके आगे अब कोई गति नहीं होती। अब दिखाई भी नहीं पड़ता कि जाऊं कहां, शांत हो जाता हूं, काली खड़ी हो जाती है, मैं होता हूं, काली होती है। बड़ा आनन्द है। गहन अनुभव हो रहा है। लेकिन दो अभी बाकी हैं, एक आखिरी अभीप्सा मन में उठती है कि एक कैसे हो जाऊं। तो जिस गुरु से उन्होंने कहा था, फिर तुम्हें थोड़ी हिम्मत जुटानी पड़ेगी। और हिम्मत कठिन है। और मन को चोट करने वाली है। गुरू ने कहा कि भीतर जब काली खड़ी हो तो भीतर तलवार उठाकर दो टुकड़े कर देना। रामकृष्ण ने कहा कि क्या कहते हैं...तलवार उठाकर दो टुकड़े... काली के। ऐसी बात ही मत कहें...ऐसा सुनने से मुझे बहुत दुख-पीड़ा होती है। तो गुरू ने कहा कि फिर तू अद्वैत की फिकर छोड़ दे, क्योंकि अब काली ही बाधा है। अब तक काली साधक थी, साधन थी, सहयोगी थी। अब काली ही बाधा है। अब सीढ़ी छोड़नी पड़ेगी। अब तू सीढ़ी को मत पकड़। माना कि इसी सीढ़ी से तू इतनी दूर आया, इसलिए मोह पैदा हो गया। आसक्ति बन गई। हमारी आसक्ति संसार में ही नहीं बनती, हमारी आसक्ति हमारी साधना के उपाय से भी बन जाती है।

अब किसी जैन को कहो कि महावीर के दो टुकड़े कर दो। किसी बौद्ध को कहो कि बुद्ध के दो टुकड़े कर दो, तो बहुत बेचैनी होगी कि क्या बातें कर रहे हैं। ये कोई बात हुई धर्म की, आध्यात्म हुआ कि ये तो घोर नास्तिकता हो गई। लेकिन रामकृष्ण जानते थे कि जो आदमी कह रहा है, वह ठीक तो कह रहा है। ये मेरी मजबूरी है कि मैं न तोड़ पाऊं, लेकिन उस गुरू ने कहा कि तू मेरे सामने बैठ और ध्यान कर। और जैसे ही काली भीतर आए, उठाना तलवार और काट देना। रामकृष्ण ने कहा लेकिन मैं तलवार कहां से लाऊंगा। उस गुरू ने बड़ी कीमती बात कही कि तू काली को ले आया भीतर, तलवार न ला सकेगा। काली कहां थी पहले। तू काली को ले आया तो तलवार तो तेरे बायें हाथ का खेल है। जैसे काली को तूने कल्पना से अपने भीतर विराजमान करके, साकार कर लिया है, ऐसे ही उठा लेना तल-वार को। रामकृष्ण ने कहा तलवार भी उठा लूंगा तो तोड़ नहीं पाऊंगा। मैं भूल ही जाऊंगा, तुमको भी भूल जाऊंगा, तुम्हारी बात को भी भूल जाऊंगा। काली दिखी कि मैं तो मुग्ध हो जाऊंगा, मैं तो नाचने लगूंगा,

तलवार नहीं उठा सकूंगा। तो गुरु ने कहा कि मैं कुछ करूंगा बाहर से। एक कांच का टुकड़ा गुरु उठा लाया और रामकृष्ण को कहा कि जब मैं देखूंगा कि तुम मस्त होने लगे, डोलने लगे—क्योंकि भीतर जब काली आती तो रामकृष्ण डोलने लगते, हाथ-पैर कंपने लगते, रोंगटे खड़ हो जाते और चेहरे पर एक अद्‌भुत आनन्द का भाव मस्ती छा जाती। तो उस गुरू ने कहा कि ठीक इसी क्षण मैं तुम्हारे माथे पर कांच से काट दूंगा, चमड़ी को काट दूंगा और भीतर जब काटने का ख्याल आ जाए तो चूकना मत उठाकर तलवार तू भी दो टुकड़े कर देना। और ऐसा ही किया गया। गुरु ने कांच से काट दी माथे की चमड़ी जहां तृतीय नेत्र है—सबसे नीचे तक दो टुकड़े कर दिए—खून की धार बह पड़ी। रामकृष्ण को भीतर होश आया तो उठाकर काली के दो टुकड़े कर दिए। रामकृष्ण और दो टुकड़े! ये भक्त की आखिरी हिम्मत है। इससे बड़ी हिम्मत नहीं है जगत में और जो इस हिम्मत को न जुटा पाए, वह अद्वैत में प्रवेश नहीं कर पाता। काली विसर्जित हो गई, रामकृष्ण अकेले रह गए। या कहें कि चैतन्य मात्र बचा, छः दिन बाद होश में आए। आंखें खोलीं तो पहले जो शब्द थे: 'कृपा गुरु की, कि आखिरी बाधा भी गिर गई।' लास्ट बेरिअर फेल डाउन।

रामकृष्ण के सामान्य भक्तों ने इस उल्लेख को छोड़ दिया है, क्योंकि ये उल्लेख साधना के विपरीत पड़ता है। बहुत थोड़े से भक्तों ने इसका उल्लेख किया है, बाकी ने छोड़ दिया। इतनी मेहनत की काली के लिए रोए· नाचे-गाए-चिल्लाए—प्यास से भरे, जीवन दांव पर लगाया, फिर जब काली को पा लिया तो टुकड़े किए। लिखने वाले भक्तों को बड़ा विपरीत मालूम पड़ा, तो अधिक भक्तों ने इसे छोड़ दिया। लेकिन ये उल्लेख बड़ा कीमती है और जिनको भी भक्ति के मार्ग पर जाना है उन्हें याद रखना है कि जिसे हम आज बना रहे हैं, उसे कल मिटा देना पड़ेगा। आखिरी छलांग सीढ़ी से भी उतर जाने की, नाव भी छोड़ देने की, रास्ता भी छोड़ देने का—विधि भी छोड़ देने की। तो जो रामकृष्ण को हुआ है, काली के दर्शन में वो अंतिम नहीं है। अंतिम तो ये हुआ जब काली भी खो गई। जब कोई प्रतिमा नहीं रह जाती मन में। कोई शब्द नहीं रह जाता, कोई आकार नहीं रह जाता। जब सब शब्द शून्य हो जाते हैं, सब प्रतिमायें विलीन हो जाती हैं—आखिर में सब आकार निराकार में डूब जाता है, जब मैं न बचता है न तू बचता है।

एक बहुत बड़े विचारक, यहूदी चिंतक, दार्शनिक बूबर ने एक किताब लिखी है—आई एन्ड दाऊ। इस सदी में दो चार लिखी गई अत्यंत कीमती किताबों में से एक है। और इस सदी में हुए दो चार कीमती आदमियों में मार्टिन बूबर एक है। बूबर ने लिखा है कि अंतिम जो अनुभव है परमात्मा का—आई एन्ड दाऊ। मैं और तू। लेकिन ये अंतिम नहीं है। ये अंतिम के पहले का है। लेकिन यहूदी विचारक हिम्मत नहीं जुटा पाता आखिरी छलांग की। यही फर्क है: यहूदी, इस्लाम, ईसाइयत ये तीनों में से कोई भी आखिरी हिम्मत नहीं कर पाते। बिलकुल आखिरी तक जाते हैं, लेकिन दो को बचा लेते हैं। फिर दो को छोड़ने की मुश्किल हो जाती है। इसलिए इस्लाम कभी भी राजी नहीं हो पाया कि मंसूर जो कहता है अनलहक 'मैं ब्रह्म हूं' ये बात ठीक है क्योंकि ये तो बात आखिरी हो गई। ये तो परमात्मा के साथ एक होने की बात ठीक नहीं है, अधार्मिक है। इसलिए मंसूर की हत्या कर दी गई। इस्लाम कभी सूफियों को स्वीकार करने को राजी नहीं हो पाया पूरी तरह, हालांकि सूफी ही इस्लाम की गहनतम बात है। वहीं उनका रहस्य है, वहीं उनकी आत्मा है, लेकिन इस्लाम राजी नहीं हो पाया, क्योंकि इस्लाम अंतिम के पहले रुक जाता है। इस्लाम-यहूदी-ईसाई—परमात्मा और भक्त पर ही रुक जाते हैं। लेकिन इससे कोई अड़चन नहीं आती, क्योंकि जो आदमी यहां तक पहुंच जाता है—वो नहीं रुकता, इसे जरा समझ लें। इस्लाम भला रुक जाता हो, लेकिन इस्लाम को मानने भी जो आदमी आखिरी जगह पहुंच जाएगा, उसको तो फिर ख्याल में आ जाता है कि अब ये आखिरी बात और रह गई। संसार का आखिरी हिस्सा और रह गया, इसलिए छोड़ें। वो आखिरी छलांग लगा लेता है। सूफी वही मुसलमान है जिन्होंने आखिरी छलांग लगा ली। मुसलमान की धर्म की जो व्यवस्था है वो दो पर रुक जाती है। आम धर्म की व्यवस्था दो पर रुका देती है। आम भक्ति के जितने भी दर्शन हैं वो दो पर रुक जाते हैं। परम ज्ञान वो नहीं है, लेकिन उसके बिना भी परम ज्ञान नहीं होता, ये ख्याल में रखना। उससे सौ अंश डिग्री तक पानी उबल जाता है, और आखिरी छलांग आसान हो जाती है। जिनमें हिम्मत हो वो लगा लेते हैं और उस समय तक पहुंचते-पहुंचते हिम्मत भी आ जाती है। जिसने सारा संसार खो दिया, वो इस एक परमात्मा की प्रतिमा को भी कब तक संभाले छाती से फिरेगा। जो

सब कुछ छोड़ चुका, जिसने सारे बन्धन छोड़ दिए, जिसने सारा बोझ हटा दिया, वो इस प्रतिमा को भी कब तक ढोएगा। एक जन्म, दो जन्म, तान जन्म, कितनी देर तक। एक दिन वो खुद ही कहेगा कि अब ये भी बोझ हो गई, इसको भी अब विसर्जित करता हूं।

इसलिए हमने हिन्दुस्तान में एक व्यवस्था की है कि हम परमात्मा की मूर्ति बनाते हैं, गणेशोत्सव आता है—गणेश की मूर्ति बनाते हैं। काफी शोरगुल मचाते हैं, भक्ति भाव प्रगट करते हैं और फिर जाकर समुद्र में विसर्जित कर आते हैं।

ये प्रतीक है असल में कि जैसे अभी मिट्टी की मूर्ति के साथ खेल रहे हो, बना रहे हो, नाच रहे हो, गा रहे हो और फिर हिम्मत से विसर्जित कर आते हो, ऐसे ही अन्त में एक दिन परमात्मा की सब प्रतिमायें विसर्जित करने की हिम्मत रखना, इस हिम्मत का प्रशिक्षण होता रहे। इसलिए हिन्दुस्तान अकेला मुल्क है जहां हम भगवान को बनाते-मिटाते, दोनों काम करते हैं। दुनिया में कोई कौम भगवान को बनाने-मिटाने के दोनों काम नहीं करती है। बनाने का काम करते हैं कुछ लोग, मिटाने का नहीं करते। कुछ लोग इस डर से मिटाना पड़े, बनाने का काम ही नहीं करते। जैसे इस्लाम है, वो प्रतिमायें नहीं बनाता, कि कहीं प्रतिमा में फंस न जायें। ईसाइयत ने प्रतिमायें बना ली हैं लेकिन उनका विसर्जित करने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। इस मुल्क में हमने एक अनूठा प्रयोग किया—हम भगवान के साथ भी खेलते हैं, बना लेते हैं और जब बना लेते हैं तो पूरी भक्ति-भाव प्रगट करते हैं। ऐसा नहीं कि अपने ही बनाए हुए हैं तो क्या भक्ति-भाव प्रगट करना। खुद ही रंगा—बनाया है इनको, अब क्या इनके चरणों में गिरना—उसकी हम फिकर छोड़ देते हैं। जैसे ही हमने प्रतिष्ठा की कि ये भगवान हैं हम चरणों में गिर जाते हैं और समारोह पूरा हुआ कि उन्हें हम समुद्र में विसर्जित कर आते हैं।

ये बनाना और मिटाना, चढ़ना और उतरना, खोजना और खोज छोड़ देना, ज्ञान इकट्ठा करना और ज्ञान का त्याग कर देना, दोनों की सम्मिलित जो व्यवस्था है—ये ध्यान में रहे तो आप कभी भटकेंगे नहीं।

अन्यथा भटकाव हो सकता है। ये अनुभव द्वैत का है, परम ज्ञान के एक क्षण पहले का लेकिन परम ज्ञान नहीं।

- एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि कीर्तन में धुन लगाएं, सम्मिलित हों, तो क्या शरीर के बिना कीर्तन में सम्मिलित नहीं हुआ जा सकता है ? क्या मन ही मन कीर्तन नहीं किया जा सकता ?

कीर्तन में शरीर को साथ लें

बराबर किया जा सकता है। लेकिन और किन-किन बातों में आप ये शर्त रखते हैं। जब किसी को प्रेम करते हैं तो मन ही मन करते हैं या शरीर को भी बीच में लाते हैं। तब नहीं कहते कि प्रेम मन ही मन नहीं किया जा सकता। शरीर को क्यों बीच में लाना। कितनी चीजों में ख्याल रखते हैं इसका, अगर बाकी सब चीजों में ख्याल रखते हों तो मैं राजी हूं। बिल्कुल शरीर का उपयोग न करें, कीर्तन भीतर ही भीतर हो जाएगा। लेकिन अगर बाकी सब चीजों में शरीर को लाते हैं, तो धोखा मत दें—अपने आपको। डर क्या है शरीर को कीर्तन में लाने में। जब किसी को प्रेम करते हैं तो गले लगा लेते हैं, क्यों शरीर को बीच में लाते हैं, हाथ-हाथ में ले लेते हैं। क्यों हाथ को बीच में ले आते हैं, बस दूर खड़े रहें बुद्ध की मूर्ति बने हुए, मन ही मन में। लेकिन तब आपको लगेगा कि ये समय खो रहा है। मन ही मन में कब तक करते रहेंगे ?

आपका मन और आपका शरीर अभी दो नहीं है। अभी आपका मन और आपका शरीर एक है। अभी जल्दी मत करें। अभी आपका मन आपके शरीर का ही दूसरा छोर है। वो शरीर से ही संचालित हो रहा है। शरीर ही अभी उसको गति दे रहा है। इसलिए उचित है कि कीर्तन में अभी शरीर को भी डूबने दें तो ही आपका मन डूब पाएगा और जिस दिन आप मन ही मन में डुबाने में आप सफल हो जायेंगे, मुझसे पूछने की कोई जरूरत नहीं रहेगी। आपको खुद ही पता चल जाएगा कि शरीर को बीच में लाने की जरूरत नहीं। मन में ही हो जाए तो आप मन में कर लेना, लेकिन जब तक ये नहीं हो सकता, तब तक शरीर से ही शुरू करें।

आप शरीर में जी रहे हैं, इसलिए आपकी सब यात्रा शरीर से शुरू होगी। और जो ये धोखा देगा अपने को कि शरीर का क्या करना है, वो

असल में धोखा दे रहा है। वो धोखा ये दे रहा है कि करना ही नहीं चाहता।

आदमी वहीं से तो चल सकता है, जहां खड़ा है। जहां आप खड़े नहीं हैं, वहां से आप चलेंगे कैसे? आपकी मन की स्थिति क्या है? अभी आपको शराब पिला दें तो शराब आपके शरीर में जाती है, मन में तो जाती नहीं। क्या आप समझते हैं कि आप होश में बने रहेंगे—आप बेहोश हो जायेंगे। क्यों बेहोश हो गए आप? शराब तो शरीर में जाती है, कोई मन में तो जाती नहीं, आत्मा में तो घुस नहीं जाती शराब। मन में, आप होश में रहें आइए—पी लीजिए शराब, क्या हर्ज है—तब आपको पता चलेगा हर्ज का है मामला। अभी कोई आपको एक धक्का मार दे जोर से तो धक्का शरीर तक ही लगता है कि मन तक आ जाता है। मन तक चला जाता है। सच तो ये है कि शरीर को बाद में पता चलता है मन को पहले पता चलता है। तो अभी आपका शरीर और मन दोनों करीब हैं। अभी दूरी नहीं है उसमें।

निरंतर मैं एक घटना कहता रहा हूं। एक मुसलमान फकीर हुआ फरीद। एक आदमी उसके पास आया और फरीद से पूछने लगा कि मैंने सुना है कि मंसूर को काट डाला तब भी मंसूर हंसता रहा। भरोसा नहीं आता इस बात पर। और ये भी मैं सुनता हूं कि जीसस को सूली लगा दी और उन्होंने कहा कि ये जो सूली लगाने वाले लोग हैं, हे परमात्मा इन्हें माफ कर देना। ये बात भी जंचती नहीं, कोई मुझे पत्थर मारे, कोई मुझे सूली लगाए, कोई मेरी गर्दन काटे, ये मैं नहीं कर सकता हूं। मैं यह समझने आया हूं। तो फरीद ने उसे उठाकर हाथ में एक नारियल दे दिया और कहा कि तू इसे फोड़ कर ला। एक ही बात का ख्याल रखना कि गिरी भीतर की साबित रहे, टूट न पाए। वो नारियल कच्चा था। वो आदमी मुश्किल में पड़ गया। उसकी ऊपर की खोल तोड़े तो वो भीतर की गिरी टूटती थी, बड़ी कोशिश की लेकिन गिरी टूट गई। लौट के आया और उसने कहा: माफ करें मैं गिरी को बचा न पाया, क्योंकि खोल और गिरी बिल्कुल जुड़ी हैं। नारियल अभी कच्चा है।

फरीद ने दूसरा नारियल दिया उठाकर—वो नारियल सूखा था और कहा इसकी गिरी बचाकर ले आना। उसने बजाकर देखा। उसने कहा कि

इसमें कोई अड़चन नहीं है। खोल तोड़ देंगे, गिरी बच जायगी। क्योंकि गिरी और नारियल के बीच फासला पैदा हो गया। तो फरीद ने कहा: नारियल फोड़ने की कोई जरूरत नहीं। जीसस नारियल थे सूखे हुए, और तू नारियल है गीला। अभी तेरी गिरी और खोल जुड़े हुए हैं, अभी तू इतनी फिकर मत कर। जो खोल पर होगा, वो गिरी तक जाएगा। अभी शरीर और मन इकट्ठा है आपका। जिन मित्र ने पूछा है अगर उनके पूछने का कारण यह होता है कि उनका शरीर और मन अलग-अलग हो गया है, तो वे पूछते ही नहीं। क्या पूछना है..? आपको पता ही होता कि मेरी गिरी अलग है, खोल अलग है। भीतर मैं अपना मजा ले रहा हूं, शरीर को कोई पता ही नहीं चलता। पूछने का कारण दूसरा है शायद बहुत ही कच्चे नारियल हैं, बहुत ज्यादा जुड़े हैं शायद अभी भीतर; गिरी भी नहीं है, पानी ही पानी है।

क्यों—ये डर क्यों हो रहा है कि शरीर भाग न ले। डर हो रहा है कि पास-पड़ोस में कोई देख न ले। अरे आप कंप रहे हैं, ताली बजा रहे हैं, आनंदित हो रहे हैं! आपको कोई रोते देखे तो कोई एतराज नहीं, आपको कोई उदास देखे तो कोई बात नहीं, आप बिल्कुल रोती शकल बनाए जिन्दगी भर घूमते रहें तो कोई बात नहीं। आप जरा मस्त हुए तो आपके आस-पास के लोग परेशान हैं, और वे आपको कहेंगे कि होश खो रहे हैं, जैसे दुखी होना समझदारी है, खुशी होना नासमझी है। ठीक है, दुखी लोगों के समाज में जो आदमी मस्त होगा, वो आदमी समाज के बाहर जा रहा है। तो ईर्ष्या जब पैदा होती है तो दूसरे लोग उसकी निंदा करने लगते हैं, कहेंगे कि पागल है। क्योंकि कोई अपने को पागल नहीं मानना चाहता, और ये भीड़ उदास लोगों की इसकी संख्या ज्यादा है। और कोई भी जब आनंदित होता है तो भीड़ कहेगी कि तुम्हारा दिमाग पागल है। एक आदमी ने मुझे आकर कहा कि जबसे मैं ध्यान करने लगा हूं, मस्त रहने लगा हूं, मेरी पत्नी परेशान है वो आपके पास आना चाहती है। वो कहती है मुझे क्या हो गया है इतनी मस्ती तो कभी देखी ही नहीं, दिमाग में कुछ खराबी तो नहीं हो गई। मस्ती खराबी का लक्षण है। पहले क्रोध भी करते थे, अब तो इनसे कुछ कहो तो हंसते हैं। तो डर लगता है कि दिमाग में कोई नट बोल्ट ढीला तो नहीं हो गया है क्योंकि स्वभावतः जब कोई गाली दे तो लड़ने को तैयार होना था,

ये हंसते हैं। हम सबको ऐसा लगेगा क्योंकि भीड़ पागलों की है। उसमें अगर कोई आदमी होश से भर जाय, आनन्द से भर जाय, तो शीघ्र ही हम उसको दिक्कत में डाल देंगे। वो जो मित्र को डर लग रहा है, वो पड़ोसियों का डर है। वो डर है कि कोई क्या कहेगा तो मन ही मन में करो। अगर मन में ही करना है, तो और सब चीजें भी मन में करना तब कीर्तन भी करना। अगर और सब शरीर से कर रहे हो, तो कीर्तन भी आपको शरीर से ही करना होगा। आप जहां हो – वहीं से यात्रा हो सकती है।

- दो छोटे-छोटे प्रश्न और हैं, फिर मैं सूत्र लेता हूं। एक बहिन ने पूछा है कि आपने कल कहा कि पूर्ण पुरुष सुन्दर स्त्री की प्रतीक्षा करता है तो क्या सुन्दर स्त्री पूर्ण पुरुष की प्रतीक्षा नहीं कर सकती? इसका भी मन तो होता है बहिन ने लिखा है कि वो पूर्ण पुरुष को पाए और ये भी पूछा है कि कुरूप व्यक्ति भी क्यों सुन्दर स्त्री को पाना चाहता है?

अंतस सौन्दर्य का बोध

उसका कारण है कि अपने को कोई कुरूप नहीं मानता। और कोई कारण नहीं है, अपने को कोई कुरूप नहीं मानता। अपने को तो लोग सुन्दर ही मानते हैं। कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी अपने को सुन्दर मानता है और अगर ये शरीर तक ही प्रश्न होता तो मैं इसका उत्तर नहीं देता ये हमारे आध्यात्म की भी स्थिति है। हम अपने को तो ठीक मानते ही हैं और अपने को ही ठीक मानकर सारे जगत को तौलते हैं। यही भूल है। अगर कोई व्यक्ति अपने को पहली दफे सोचेगा तो अपने से ज्यादा कुरूप किसी को भी न पाएगा। बुरा किसी को न पाएगा, अपने से ज्यादा बेईमान किसी को न पाएगा। और जब अपने को ठीक से देख लेगा तो जो मिल जाए इस जगत में उसे लगेगा कि अनुकंपा है प्रभु की कि मैं तो इसके बिलकुल योग्य नहीं था और ऐसा व्यक्ति जो अपने में सारी बुराइयां देख लेगा, वह सक्षम हो जाता है, इन बुराइयों के पार होने में। बुराई के पार होने का पहला सूत्र है, इसकी पहचान है। जो ठीक से देख लेता है बुरा हूं वो अच्छा होना शुरू हो जाता है। और जो ठीक से देख लेता है मैं कुरूप हूं, उसके जीवन में एक सौन्दर्य का अवतरण हो जाता है, जो कि बहुत अनूठा है।

असल में सबसे ज्यादा कुरूप वे ही होते हैं जो खुद को सुन्दर मानते हैं। उनमें एक तरह की कुरूपता—प्रगट कुरूपता होती है, जो उनके चेहरे पर छाई होती है, चाहे वह कितना भी रंग-रोगन करें। लिपाई-पुताई कितनी भी तरह की करें उससे काई फर्क नहीं पड़ता। अगर उन्हें ये ख्याल है कि मैं सुन्दर हूं तो जो अहंकार है वह सब तरफ से व्यक्तित्व को कुरूप कर जाता है। उनकी सौन्दर्य की स्थिति सतह से ज्यादा नहीं होगी। कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी सुन्दर हो जाता है अगर उसे भीतर से पता चल जाए कि मैं कुरूप हूं। और जैसा हूं उसमें जरा भी झूठ करने की इच्छा न रह जाये, प्रमाणिक हो जाए उसका भाव। तो उसके भीतर से एक नये सौन्दर्य का जन्म शुरू हो जाता है। और जितना भीतर का सौन्दर्य बढ़ता है उतना ही शरीर सौन्दर्य से आविष्ठ होता चला जाता है। संतों के चेहरे पर जो सौन्दर्य है वह शरीर का नहीं है, भीतर से आने वाली किरणों का है।

इस जगत में दो तरह के सौन्दर्य हैं। एक सौन्दर्य है अंतस् का, अंतरात्मा का। आकृति का सौन्दर्य तो बिल्कुल काल्पनिक बात है। काल्पनिक कहता हूं इसलिए कि आज जो सुन्दर है कल फैशन बदल जाए तो कुरूप हो जाता है। ऐसा समझें कि जमीन पर एक ही आदमी हो तो वो सुन्दर होगा कि कुरूप होगा। वो न सुन्दर होगा न कुरूप। क्योंकि सुन्दर और कुरूप की मान्यता तय करने वाले दूसरे लोग हैं—वो तय करते हैं। चीन में गाल की हड्डी कुरूप नहीं समझी जाती, क्योंकि मंगोल जाति की गाल की हड्डी बड़ी होती है। हिन्दुस्तान में गाल की हड्डी कुरूप है। चीन में चपटी नाक सुन्दर समझी जाती है, आर्य मुल्कों में, हिन्दुस्तान में, इंग्लैंड में, यूरोप-जर्मनी में चपटी नाक कुरूप है। नीग्रो बड़े होंठ पसन्द करते हैं—नीग्रो स्त्रियां पत्थर लटका कर होंठ बड़ा करती हैं क्योंकि बड़े होंठ सुन्दर हैं। आर्य मुलकों में पतले होंठ सुन्दर माने जाते हैं और बड़ा होंठ हो लटका हुआ तो शादी होना मुश्किल हो जाता है। क्या मतलब हुआ—कौन है सुन्दर! अगर हम ३ हजार साल के ज्ञात इतिहास को देखें तो सब तरह के लोग सुन्दर समझे गए हैं, सब तरह के लोग। अलग-अलग तरह से लोगों ने सुन्दर समझा है, मान्यता की बात है, प्रचलन की बात है, फैशन की बात है। सौन्दर्य बाहर का तो दूसरों की नजर की बात है। भीतर का सौन्दर्य ही असली बात है।

लोगों की मान्यता का जो सौन्दर्य है, उसका कोई मूल्य नहीं है। मगर हम लोगों की मान्यता से ही जीते हैं—'पब्लिक ओपिनियन' लोग क्या

समझेंगे। जो लोगों की मान्यता से जीता है, वो सांसारिक आदमी है और सांसारिक ही रहेगा। लोगों की मान्यता से मुक्त हो जायें, अपनी तरफ अपनी नजर से देखें। अपने को ही खोजें कि मैं क्या हूं? सोचें कि आप अकेले हैं जमीन पर क्या हैं? सुन्दर हैं—कुरूप हैं, अच्छे हैं—बुरे हैं, झूठे हैं—सच्चे हैं। सोचें। और इस तरह जियें कि आपको अपनी कोई बुराई कोई कुरूपता ढांकनी न पड़े; बल्कि आपके भीतर का सौन्दर्य आविर्भूत हो और आपकी सारी बुराई को, कुरूपता को बहा ले जाय। सभी सुन्दर को पाना चाहते हैं, जिन बहिन ने पूछा है—ठीक पूछा है। कुरूप स्त्री भी सुन्दर पुरुष को पाना चाहती है, लेकिन उसे पता होना चाहिए कि जिस सुन्दर को वो पाना चाहती है, उस सुन्दर को वो भी पाना चाहता है। इसलिए मेल कहां होगा?

- एक मित्र ने दो दिन-तीन दिन से निरन्तर पूछा है जवाब मैंने नहीं दिया, क्योंकि मैंने सोचा कि इससे गीता का कोई संबंध नहीं है। पूछा है कि एक स्त्री के प्रेम में है वो, समझा-समझा के परेशान हो गए, वर्षों हो गए, अब तक ये नहीं समझा पाए उस स्त्री को कि प्रेम क्या है? और वो स्त्री इनके प्रेम में नहीं है, तो कैसे उसको समझायें।

प्रेम बिना शर्त प्रवाह है

बड़ा मुश्किल है, बड़ा कठिन है। क्योंकि आप जिसको चाहते हैं उसकी भी अपनी मापदंड है, उसकी भी अपनी चाहतें हैं, अपनी वासनायें हैं। और ये बड़े मजे की बात है कि जब भी दो व्यक्तियों में एक दूसरे को चाहता है तो दूसरा उतना ही नहीं चाह सकता। फ्रायड का कहना है कि दो व्यक्तियों में जब भी प्रेम होता है, सौ में से निन्यानबे मौकों पर एक तरफा होता है। 'वन वे ट्रेफिक' होता है। एक स्त्री एक पुरुष को चाहती है, क्योंकि वो पुरुष उसे सुन्दर मालूम पड़ता है, उस पुरुष की अपनी धारणाएं हैं सौन्दर्य की, वो किसी और स्त्री को चाहता है। वो उसे सुन्दर मालूम पड़ती है, वो किसी और पुरुष को चाहती है; उसे कोई और सुन्दर मालूम पड़ता है।

दो व्यक्तियों की धारणाओं का मेल बहुत मुश्किल है। क्योंकि दो व्यक्ति इतने अलग-अलग हैं कि धारणाओं का मेल होता नहीं। इसलिए जब भी प्रेमी मिल जाते हैं तो भी तकलीफ पाते हैं। नहीं मिलते तो सोचते हैं कि पता नहीं स्वर्ग मिल जाता, और मिल जाते हैं तो लगता है कि ये तो नर्क अपने हाथ से बुला लिया। दो व्यक्ति मिल नहीं पाते। इसलिए जिस व्यक्ति को सच में ही प्रेम को आविर्भाव करना है, उसे समझ लेना चाहिए कि दूसरा करेगा या नहीं करेगा, इसकी फिकर छोड़ दें। प्रेम से भर जाय और जितना प्रेम कर सके करे, प्रेम को मांगे न।

इस जगत में प्रेम का उसी को आनन्द मिलता है जो करता है और मांगता नहीं। जो मांगता है, वो कर नहीं पाता। और आनन्द तो उसे मिलता ही नहीं।

कृष्ण का चतुर्भुज रूप

अब हम सूत्र को लें। इस प्रकार अर्जुन के वचनों को सुनकर कृष्ण बोले—हे अर्जुन! मेरा यह चतुर्जुज रूप देखने को अति दुर्लभ है, कि जिसको तुमने देखा। देवता भी इस रूप को देखने तरसते हैं। चतुर्भुज रूप कृष्ण का सहज रूप नहीं है। वो कोई चार हाथ वाले नहीं हैं। दोनों हाथ वाले हैं। जैसे सभी आदमी हैं। लेकिन अर्जुन ने चाहा था कि कृष्ण चतुर्भुज रूप में प्रगट हों। चार हाथ वाले प्रगट हों। ये चार हाथ एक प्रतीक है। हजार हाथ रूप वाले परमात्मा की भी हमने कल्पना की है, वो एक प्रतीक है। मा बच्चे को उठाती है दोनों हाथों से, ये दो हाथों से उठाने तक तो मनुष्य का प्रेम है। लेकिन जहां परमात्मा चार हाथ से किसी को उठाता है, वहां मनुष्य के ऊपर से प्रेम की खबर लाने के लिए दो हाथ हमने और जोड़े हैं। जैसे परमात्मा दोहरी माता है हमारी, दोहरे अर्थों में। वो इस जगत में तो हमको संभाले ही हुए है, उस जगत में भी संभालेगा। ऐसे हमने चार हाथ की कल्पना की है। ये प्रतीक है—काव्यगत प्रतीक है कि परमात्मा हमें इस जगत् में भी संभाले हुए है, उस जगत में भी संभाले हुए है। उसके चार हाथ हैं, वो चारों दिशाओं से हमें संभाले हुए है। सब ओर से हमें संभाले हुए है, उसके हाथ में हम सुरक्षित हैं। हम छोड़ सकते हैं अपने को, वहां कोई असुरक्षा नहीं है।

कृष्ण के तो दो ही हाथ हैं—लेकिन अर्जुन ने जब विराट रूप देखा तो उसने प्रार्थना की कि अब मैं इतना घबड़ा गया हूं कि तुम चार हाथ वाले की तरह प्रगट हो जाओ। अर्जुन कह रहा है कि वह इतना असुरक्षित हो गया है कि मालूम पड़ रहा है कि मरा। ये जो अनुभव हो रहा है वह अत्यंत डरावना है, इससे वह अपने को उबार न सकेगा—कभी, अब ये भय पीछा

करेगा। अब मैं सो न सकूंगा, उठ न सकूंगा, ये मौत जो मैंने देखी है, अतिशय हो गई। अब पुराने तुम्हारे दो हाथ काम न करेंगे, अब तुम जैसे थे वैसे ही से काम न चलेगा, अब तुम और भी प्यारे होकर प्रगट हो जाओ।

इसका मतलब यह है कि तुम अनन्त प्रेम होकर प्रगट हो जाओ, तुमने जो मौत मुझे दिखा दी उसको संतुलित करने के लिए चारों हाथ फैलाकर मुझे झेल लो, ताकि मैं सुरक्षित हो जाऊं। ये प्रतीक है चार हाथ का। मतलब यह है कि तुम मां का हृदय बन जाओ मेरे लिए। और ऐसी मां का जो इस जगत में भी और उस जगत में भी संभाले। जिसकी गोद में मैं सिर रख लूं, और भूल जाऊं, जिसको मैंने देखा है। जो मैंने देखा है, उसको मैं भूल जाऊं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मृत्यु से जितना भय आदमी के मन में है, उसी भय के कारण आदमी मोक्ष को खोजता है। और मनोवैज्ञानिक और अनूठी बात कहते हैं, वो शायद समझ में एकदम से न भी आए; वो कहते हैं मोक्ष की जो धारणा है, आदमी की वह वही है, जो बच्चे को गर्भ की स्थिति में होती है। जब बच्चा गर्भ में होता है तो पूर्ण सुरक्षित होता है, कोई असुरक्षा नहीं होती गर्भ में। कोई भय नहीं होता, कोई चिन्ता नहीं, कोई जिम्मेवारी नहीं, कोई नौकरी नहीं, कोई मकान नहीं बनाना, भोजन इकट्ठा नहीं करना, कल की कोई फिकर नहीं। सब स्व-चालित (आटोमेटिक), बच्चा गर्भ में पूर्ण बिश्रान्ति में है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं। सब उसको मिल रहा है, बिना मांगे मिल रहा है। जरूरत के माफिक मिल रहा है। उसे कुछ करना नहीं पड़ता, वो तैरता रहता है जैसे कि विष्णु क्षीर सागर में तैर रहे हैं, ऐसा बच्चा मां के गर्भ में द्रवीय पदार्थों में क्षीर सागर में तैरता है। कोई चिन्ता नहीं, कोई उपद्रव नहीं, संसार का कोई पता नहीं। कोई दूसरा नहीं, कोई स्पर्धा नहीं, कोई मृत्यु का पता नहीं। निश्चिन्त परम शांति में बच्चा रहता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष की जो धारणा है वो मनुष्य के मन में गहरा जो गर्भ का अनुभव है उसी का विस्तार है। वो थोड़ी दूर तक ठीक कहते हैं। क्योंकि हमें ख्याल ही कैसे मिलता है आनन्द का। दुख हम जानते हैं—सुख हम थोड़ा बहुत जानते हैं। लेकिन हम सबके मन में ये भी लगा रहता है कि आनन्द मिले। आनंद का हमें अनुभव कहां है, हम सब चाहते हैं—शांति मिले, शांति को हम जानते तो हैं नहीं।

इसलिए, बिना जाने किसी चीज की वासना कैसे जगती है। जब तक

दुनिया में कार नहीं थी, तब तक किसी आदमी के मन में वासना नहीं उठती थी कि कार हो। बैलगाड़ी हो—अच्छे बछड़े वाली हो, रथ हो वो होता था, लेकिन कार हो, ऐसी किसी आदमी के मन में वासना नहीं जगती थी। लेकिन अब जगती है। क्योंकि अब कार दिखाई पड़ती है। चारों तरफ मौजूद है। शांति को आदमी जानता ही नहीं, अशांति को ही जानता है तो ये शांति की आकांक्षा कहां से जगती है! मनुष्य विद् कहते हैं, कि वो जो गर्भ का नौ महीने का अनुभव है, वो गहरे अचेतन में बैठ गया है। वहां हमको पता है कि नौ महीने हम किसी गहरी शांति में रह चुके हैं। नौ महीने जिन्दगी निश्चिन्त थी, सुरक्षित थी। मृत्यु का कोई भय न था। हम अकेले थे। और सब तरफ से मालिक थे। कल्पवृक्ष के नीचे थे।

हमने कल्पना की—स्वर्ग में कल्पवृक्ष होंगे जहां आदमी बैठेगा, इच्छा करेगा, करते ही इच्छा पूरी हो जाएगी। आपको अगर कल्पवृक्ष मिल जाए तो बहुत संभल के बैठना। क्योंकि आपको अपनी इच्छाओं का कोई पता नहीं।

मैंने सुना है एक आदमी, वो यहां मौजूद होगा आदमी—एक दफा कल्पवृक्ष के नीचे पहुंच गया। उसको पता ही नहीं था कि ये कल्पवृक्ष है, उसके नीचे बैठकर उसे इच्छा हुई कि बहुत भूख लगी है, अगर कहीं भोजन मिल जाता। वो एकदम चौंका—एकदम थालियां चारों तरफ आ गईं। वो थोड़ा डरा भी कि ये एकदम क्या मामला है, कोई भूत-प्रेत तो नहीं है! कहीं यहां कोई भूत-प्रेत न हो—थालियां तिरोहित हो गईं, भूत-प्रेत चारों तरफ खड़े हो गए। वो घबड़ाया कि ये तो बड़ा उपद्रव है, कोई गर्दन न दबा दे। भूत-प्रेतों ने उसकी गर्दन दबा दी। आपको अगर कोई कल्पवृक्ष मिल जाए तो भागना क्योंकि आपको अपनी इच्छाओं का कोई पता नहीं कि आप क्या मांग बैठेंगे? क्या आपके भीतर से निकल आएगा पता नहीं, आप झंझट में पड़ जायेंगे, वहां पूरा हो जाएगा, सब कुछ।

मनुष्य विद् कहते हैं कि कल्पवृक्ष की कल्पना गर्भ की ही अनुभूति है और स्मृति का विस्तार है। गर्भ में बच्चा जो भी चाहता है, चाहने से पहले, कल्पवृक्ष के नीचे तो पहले चाहना पड़ता है, फिर मिलता है। गर्भ में बच्चा चाहता है उसके पहिले मां के शरीर से उसे मिल जाता है। बच्चे को कभी वासना की पीड़ा नहीं होती। जो मांगता है, मांगने के पहिले मिल जाता है। वो तृप्त होता है, पूर्ण तृप्त होता है। ये जो कृष्ण

का विराट, विकराल भयंकर रूप देखकर अर्जुन घबड़ा गया है, वो कह रहा है तुम चारों हाथ वाले गर्भ बन जाओ, मैं तुममें डूब जाऊं। तुम्हारे प्रेम में, तुम्हारी सुरक्षा में। जो मैंने देखा है, उसको संतुलित कर दो, दूसरे पलड़े पर इतना ही प्रेम, इतनी ही सुरक्षा बरसा दो।

कृष्ण कहते हैं तेरे लिए जो अति दुर्लभ है और देवता भी जिसको देखने के लिए तरसते हैं, वो मैं तेरे लिए प्रगट करता हूं। हे अर्जुन! न मैं वेदों से, न तप से, न दान से, न यश से, इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं देखा जाने को शक्य हूं जैसा अभी मुझे देखता है। परन्तु हे श्रेष्ठ तप वाले अर्जुन! अनन्य भक्ति करके तो इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिए और तत्त्व से जानने के लिए तथा प्रवेश करने के लिए अर्थात् एकीभाव से प्राप्त होने के लिए भी शक्य हूं।

जो छीन-झपट करता है तप से, जो सौदा करता है, कि मैं ये देने को तैयार हूं मुझे ये अनुभव मिल जाए, उसको तो ये अनुभव नहीं मिलता। क्योंकि ये अनुभव प्रेम का है, सत्य को रूखा-सूखा साधक पा लेता है, लेकिन चार भुजाओं वाला प्रेम-पूर्ण भक्त ही पा पाता है। साधक भी सत्य को पा लेता है लेकिन उसका जो अनुभव होता है सत्य का होता है, गणित का (मैथमेटिकल) होता है। भक्त का जो सत्य का अनुभव होता है वो होता है काव्य का, प्रेम का। गणित का नहीं। भक्त पहुंचता है रस से डूबा हुआ, और जैसे आप हैं, वैसा ही आपको सत्य का अनुभव होता है। अगर आप रस से भरे गए हैं, प्रेम से भरे गए हैं, तो सत्य जिस रूप में प्रगट होता है, वो प्रेम होगा।

अगर आप गणित, तर्क, विचार, साधना, तप—हिसाब से भरे गए हैं (केलकुलेटेड) तो जो सत्य प्रगट होता है, उसका रूप गणित होता है। अरस्तू ने कहा है—परमात्मा बड़ा गणितज्ञ है। किसी और ने नहीं कहा, क्योंकि अरस्तू बड़ा गणितज्ञ था। और अरस्तू सोच ही नहीं सकता था, परमात्मा की और कोई छवि होगी, गणित से भिन्न होगा। क्योंकि गणित अरस्तू के लिए परम सत्य है। और गणित से ज्यादा सत्यतर कुछ भी नहीं है। इसलिए अरस्तू को लगता है, परमात्मा भी एक बड़ा गणितज्ञ है और सारा जगत गणित का एक खेल है।

मीरा से कोई पूछे तो मीरा कहेगी कि परमात्मा एक नर्तक है। सारा जगत नृत्य का एक विस्तार है। अगर बुद्ध से कोई पूछे तो बुद्ध कहेंगे —परम शून्य, शांति, मौन, विराट मौन जहां कुछ भी नहीं है। न लहर

उठती है न मिटती है। सदा से ऐसा ही। ये प्रत्येक व्यक्ति जिस तरह से पहुंचता है, जो उसके पहुंचने की व्यवस्था होती है, जो उसका अपने व्यक्तित्व का ढांचा होता है, उसके अनुकूल परमात्मा उसे प्रतीत होता है और वो जब उसे भाषा देता है, तब और भी अनुकूल हो जाता है। कृष्ण कह रहे हैं कि तप से तो ये रूप मिलने वाला नहीं, क्योंकि तपस्वी इस रूप की मांग भी नहीं करता। महावीर कभी सोच भी नहीं सकते कि सत्य चार भुजाओं वाला प्रगट हो। असंभव है। अकल्पनीय है। महावीर कहेंगे कि क्या मतलब है चार भुजाओं वाले से। ऐसे सत्य की कोई जरूरत नहीं। महावीर के लिए सत्य कभी चार भुजाओं वाला सोचा भी नहीं जा सकता। अर्जुन कह रहा है कि 'चार भुजाओं वाला सत्य। प्रेमपूर्ण सत्य, मां के हृदय जैसा, गर्भ जैसा सत्य। जहां मैं सुरक्षित हो जाऊं, मैं भयभीत हो गया हूं।' एक छोटे बच्चे की पुकार, जो इस जगत् में अपनी मां को खोज रहा है। इस पूरे अस्तित्व को जो मां की तरह देखना चाहता है तो कृष्ण कहते हैं, लेकिन अनन्य भक्ति से जिसने पुकारा हो, उसके लिए मैं प्रत्यक्ष हो जाता हूं इस रूप में। न केवल प्रत्यक्ष हो जाता हूं बल्कि वो मुझमें प्रवेश भी कर सकता है। और मेरे साथ एक भी हो सकता है। हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे लिए ही, सब कुछ मेरा समझता हुआ, सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मों को करने वाला और मेरा परायण है—अर्थात् मेरे को परम आश्रय और परम गति मानकर मेरी प्राप्ति के लिए तत्पर है, तथा मेरा भक्त है और आसक्ति रहित है, स्त्री, पुत्र, धनादि सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों में स्नेह रहित है और सम्पूर्ण भूत प्राणियों में वैर-भाव से शून्य है, ऐसा वो अनन्य भक्ति वाला पुरुष मेरे को ही प्राप्त होता है।

अन्त में दो-तीन बातें समझ लेने जैसी हैं और बहुत उपयोग की हैं। जो साधक हैं, उनके लिए बहुत काम की हैं। पहिली बात, कृष्ण कहते हैं—जो सब कुछ मेरे ऊपर छोड़ दे, प्रेम छोड़ता है घृणा छोड़ने से डरती है। क्योंकि घृणा में अपने को सुरक्षित खुद ही करना होता है। प्रेम छोड़ता है, प्रेम का मतलब ही है कि हम दूसरे पर सब कुछ छोड़ दें।

मैंने सुना है एक युवक विवाह करके लौट रहा था। पानी के जहाज से यात्रा कर रहा था, ज़ोर का तूफान आया। उसकी प्रेयसी कंपने लगी और घबड़ाने लगी, लेकिन वो युवक शांत था। उसकी प्रेयसी ने कहा कि तुम इतने शांत क्यों हो, मौत दिखाई पड़ती है—नाव डूबेगी लगता है,

मल्लाह भी घबड़ा गए हैं। उस युवक ने कहा घबराओ मत, ऊपर जो है—मैंने सब उस पर छोड़ दिया है. उस स्त्री ने कहा चाहे कुछ भी छोड़ा हो या न छोड़ा हो, यहां मौत खड़ी है। उस युवक ने म्यान से तलवार खींच ली—नंगी चमकती हुई तलवार थी. उसने अपनी प्रेयसी के कंधे पर तलवार रख दी।

पत्नी हंसने लगी कि तुम क्या खेल कर रहे हो। उस युवक ने पूछा कि नंगी चमकती हुई तलवार, जरा-सा धक्का और तेरा सिर अलग हो जाय। तुझे मेरे हाथ में तलवार देख कर भय नहीं लगता ? उसकी पत्नी ने कहा—तुम्हारे हाथ में तलवार देखकर भय कैसा ! तुमसे मेरा प्रेम है। उस युवक ने तलवार भीतर रख ली और कहा—'उससे मेरा प्रेम है, उसके हाथ में तूफान देखकर मुझे कोई भय नहीं लगता।' उसकी मर्जी। अगर डुबाने में ही हमें कुछ लाभ होता होगा, तो डुबाएगा और बचने में कोई हानि होती होगी तो वह हमें नहीं बचाएगा। उस पर छोड़ा हुआ है। प्रेम छोड़ता है पूरा, तो कृष्ण कहते हैं जिसने मेरे ऊपर छोड़ा है पूरा और जो प्रत्येक कार्य को ऐसे करता है जैसे वो मेरा—कृष्ण का काम है, उसका नहीं है। जिसका अहं भाव पूरा समर्पित है। ये बड़ा कठिन मालूम पड़ेगा सूत्र और जो आसक्ति रहित है। पत्नी में, बच्चे में, धन में जिसकी कोई आसक्ति नहीं, जिसने अपना सारा प्रेम मेरी तरफ मोड़ दिया है।

इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक खतरनाक मतलब है जो आम तौर से लोग ले लेते हैं। उसका मतलब यह है कि पत्नी को प्रेम मत करो, बच्चे को प्रेम मत करो। सब तरफ से प्रेम को सिकोड़ लो और परमात्मा के चरणों में डाल दो। ये आम तौर से लिया गया निर्णय है, जो खतरनाक है। क्योंकि इसका परिणाम, इसका परिणाम एक ऐसा आदमी होता है, जो सब तरफ से टूट जाता है। रसहीन हो जाता है। और ये पत्नी और बच्चे और मित्रों से जो खींचता है, इस छीना-झपटी में ही प्रेम मर जाता है।

वो करीब-करीब ऐसा है जैसे कोई लगे लगाए पौधे को उखाड़कर कहीं और लगाने चले। और पत्नी और परमात्मा में—उखाड़कर प्रेम को पत्नी की तरफ से परमात्मा में लगाने में ही प्रेम की जड़ें टूट जाती हैं। वो परमात्मा तक कभी पहुंच नहीं पाता। पत्नी से तो उखड़ जाता है, परमात्मा तक कभी पहुंच नहीं पाता। लेकिन ये आम भाव हैं, जो

लोगों ने लिया है।

मेरी ऐसी दृष्टि नहीं है। मेरा मानना ये है कि पत्नी की तरफ भी तुम्हारा जो प्रेम है वह भी कृष्ण का ही प्रेम है, तुम्हारा प्रेम नहीं। तुम अपने को हटा लो, प्रेम को मत हटाओ। क्योंकि जब कर्मों में तुम कहते हो कि सब कर्म उसके हैं, तो प्रेम भी उसका है। पत्नी के प्रति भी तुम्हारा जो प्रेम है वो भी उसका है। तुम्हारा नहीं। और पत्नी में तुम्हें जो भी दिखाई पड़े, पत्नी को देखना बन्द कर देना और कृष्ण को देखना शुरू कर देना। बच्चे से हटाना मत प्रेम को सूख जायगा, पौधा बहुत कमजोर है। वैसे ही तो प्रेम नहीं है—बच्चे से क्या खाक प्रेम है और पत्नी से क्या प्रेम है। ऐसे ही तो ऊपर ही ऊपर लगाया हुआ—मौसमी पौधा है। उसको उखाड़कर परमात्मा में लगाने गए, उखाड़ की छीना-झपटी में ही टूट जायगा और जड़ें उसकी इतनी कमजोर हैं कि परमात्मा तक पहुंचती नहीं। बेहतर तो ये है कि पत्नी में ही थोड़ा और जड़ों को गहरे पहुंचा देना, इतने गहरे पहुंचा देना कि पत्नी ऊपर रह जाए और भीतर परमात्मा हो जाए। और बच्चे में प्रेम को इतना उंडेल देना कि बच्चा दिखना बन्द हो जाए और बाल-गोपाल दिखाई पड़ने लगे। तो पत्नी नहीं रही, बच्चा नहीं रहा। सारा प्रेम परमात्मा को समर्पित होगा।

ये दो रास्ते हैं—पहिला रास्ता आम तौर से प्रचलित है। मैं उसके सख्त खिलाफ हूं, मेरी व्याख्या तो यही है कि जहां भी तुम्हारा प्रेम हो, वहां परमात्मा को देखना शुरू करना। प्रेम को भूल जाना और परमात्मा को देखना। धीरे-धीरे वही पौधा जो तुम्हारी पत्नी पर लगा था—धीरे-धीरे जड़ें फैला लेगा और परमात्मा में प्रवेश कर जाएगा।

क्योंकि तुम्हारी पत्नी में काफी परमात्मा है। कोई परमात्मा की वहां कमी नहीं। और कहीं उखाड़ कर ले जाने की जरूरत नहीं है, वहीं गहरा करने की जरूरत है। प्रेम की गहराई प्रार्थना बन जाती है। और प्रेम अगर पूर्ण गहरा हो जाए तो जहां पहुंच जाता है, वहीं परमात्मा है। कृष्ण कहते हैं सारा प्रेम मुझे दे दे। वो ये नहीं कहते कि उखाड़ ले कहीं से। वो ये कहते हैं सारा प्रेम मुझे दे दे। जहां से भी है, मुझको ही देना। नदी कहीं से भी गिरे, मेरे सागर में ही गिरे। रास्ता कोई भी हो, किनारे कोई भी हों। किनारों से छूट के तू सागर तक नहीं पहुंच

सकेगा। किनारों में बहना मजे से, लेकिन जानना कि ये किनारे भी सागर में पहुंचा रहे हैं।

जीवन की सारी प्रेम धारा परमात्मा की तरफ बहने लगे, और कहीं आसक्ति न रह जाए, ये मेरा अर्थ है। सारी आसक्ति परमात्मा की तरफ बहने लगे और जिस दिन सारी आसक्ति परमात्मा की तरफ बहने लगेगी उस दिन स्वभावतः जगत में कोई बैर-भाव न रह जाएगा।

ये मेरी व्याख्या समझें तो ही ख्याल में आएगा। अगर आप पहली गलत व्याख्या समझते हैं तो जगत पूरा बैरी हो जाएगा। जो पति—पत्नी को छोड़कर भागता है, पत्नी बैरी हो जाती है। और जिससे आप प्रेम को तोड़ते हैं तो तटस्थ होना मुश्किल है। प्रेम को अगर तोड़ना है तो घृणा पैदा करनी पड़ती है, तभी तोड़ पाते हैं। जिस पत्नी को मैंने प्रेम किया है, अगर आज उससे मैं, प्रेम को हटाऊं तो मुझे एक ही काम करना पड़ेगा कि मुझे उसके प्रति घृणा पैदा करनी पड़ेगी। इसलिए साधु-संत लोगों से कहते हैं कि क्या है तुम्हारी पत्नी में—मांस, हड्डी, खून यही सब भरा हुआ है। इसको देखो। इसको देखने से वितृष्णा पैदा होती है। इसको देखने से घृणा पैदा होगी। किस पत्नी के पीछे दीवाने हो रहे हो, उसमें है ही क्या? कचरे का ढेर है भीतर, उसको देखो। लेकिन जिस पत्नी में कचरे का ढेर है भीतर और जो साधु-संन्यासी समझा रहे हैं, उनके भीतर क्या है? वो भी कचरे का ढेर है और मजा ये है कि वो भी कचरे के ढेर से पैदा हुए हैं। वो जिस मां से पैदा हुए हैं, उसी कचरे के ढेर से पैदा हुए हैं। उसी का विस्तार है, उसी मवाद, उसी हड्डी-मांस का थोड़ा-सा और फैलाव है। अगर आपको प्रेम हटाना है संसार से जबरदस्ती, तो आपको घृणा पैदा करनी पड़ेगी। बैर-भाव पैदा करिये तो आप प्रेम को हटा पायेंगे।

और कृष्ण का दूसरा सूत्र है कि बैर-भाव किसी से रखना मत। इस संसार में किसी के प्रति बैर-भाव न रह जाए। बड़ी मुश्किल बात है। संसार में बैर-भाव न रहे यह तभी हो सकता है जब संसार में प्रेम भाव इतना गहरा हो जाए कि बैर-भाव न बचे। तो संसार से प्रेम को मत तोड़ना, संसार से प्रेम की धारा को गहन करना, गहन करना और खोदना और खोदना और संसार के प्राणों तक प्रेम को पहुंचा देना। कोई बैर-भाव न रह जाएगा और संसार के करीब ही परमात्मा है। ●

भगवान श्री कृष्ण का

विराट स्वरूप दर्शन